सेठ भोलाराम सेकसरिया स्मारक ग्रन्थ-माला--१८

जायसी की भाषा

लेखक
डॉ० प्रभाकर शुक्ल
एम० ए०, पी-एच्० डी०
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रधान सम्पादक
डॉ० दीनदयालु गुप्त
एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्०
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

स० २०२२ वि०

प्रकाशक
विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ

मूल्य सोलह रुपये
प्रथम सस्करण स० २०२२ वि०

मुद्रक
नव ज्योति प्रेस,
लखनऊ
फोन २३६४९

परम पूज्य पिता

स्वर्गीय श्री गंगानारायण जी शुक्ल

की

पुण्य स्मृति

को

सादर समर्पित

भँवर आइ बनखड हुति लेहि कँवल कै बास ।
दादुर बास न पावहिं भलेहि जो आछहि पास ।।

—जायसी

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् सेठ शुभकरन जी सेकसरिया ने लखनऊ विश्वविद्यालय की रजत-जयन्ती के अवसर पर बिसवॉ-शुगर-फैक्ट्री की ओर से बीस सहस्र रुपयो का दान देकर हिन्दी विभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिन्दी अनुराग का द्योतक है। इस धन का उपयोग हिन्दी मे उच्च कोटि के मौलिक एव गवेषणात्मक ग्रन्थो के प्रकाशन के लिए किया जा रहा है जो श्री सेठ शुभकरन सेकसरिया जी के पिता के नाम पर 'सेठ भोलाराम सेकसरिया स्मारक ग्रन्थमाला' मे सग्रथित हो रहे है। हमे आशा है कि यह ग्रन्थमाला हिन्दी साहित्य के भण्डार की समृद्धि करके ज्ञान-वृद्धि मे सहायक होगी। श्री सेठ शुभकरन जी की इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते है।

दीनदयालु गुप्त
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष,
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय-भाषा-विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय।

विषयानुक्रम

उपोद्घात

हिन्दी के सूफी प्रेममार्गी कवियो मे मलिक मुहम्मद जायसी का स्थान सर्वोपरि है। उनकी कविता सूफीमत की दृष्टि से तो महत्वमयी है ही, काव्य की दृष्टि से भी उनकी कृतियो का महत्व है। उन्होने हिन्दी-काव्य की श्रीवृद्धि करने के साथ-साथ हिन्दी की उपभाषा अवधी के विकास मे भी महत्वपूर्ण योग दिया है। काव्य-क्षेत्र मे अवधी का प्रयोग जायसी के कुछ पूर्ववर्त्ती कवियो ने किया था, परन्तु यह निर्विवाद है कि अवधी का, उसकी आरभिक अवस्था मे, जैसा आकर्षक तथा सलोना शृगार जायसी ने किया, वैसा गोस्वामी तुलसीदास को छोडकर अन्य कोई कवि आज तक नही कर सका। साहित्य-समीक्षको ने जायसी के कवित्व और उनकी दार्शनिक विचारधारा पर अनेक सुन्दर ग्रन्थो का प्रणयन किया है, परन्तु उनकी भाषा का शास्त्रीय अध्ययन नही हुआ। उनके काव्य के मर्म को भली प्रकार समझने तथा उनकी भाषा के सौष्ठव को आँकने के लिए यह आवश्यक था कि उनकी भाषा का सर्वांगीण विवेचन तथा विश्लेषण और ग्रन्थो का प्रामाणिक पाठ प्रस्तुत किया जाय। हर्ष का विषय है कि मेरे प्रिय शिष्य डॉ० प्रभाकर शुक्ल ने मेरे सुझाव पर जायसी की भाषा के सर्वांगीण अध्ययन का कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न किया और एक बडे अभाव की उन्होने पूर्ति की। इस शोध-प्रबन्ध पर उन्हे इस विश्वविद्यालय से पी- एच्० डी० की उपाधि भी मिली।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध सात अध्यायो मे विभाजित है। प्रथम अध्याय मे अवधी के उत्थान मे जायसी की देन पर विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय से लेकर पचम अध्याय तक ध्वनि, रूप, शब्द-समूह तथा शब्द-रचना की दृष्टि से जायसी की भाषा की विस्तृत विवेचना की गई है। षष्ठ तथा सप्तम अध्याय मे कवि की भाषा के कला-पक्ष तथा सास्कृतिक महत्व पर सम्यक् प्रकाश डाला गया है। उपसहार के अन्तर्गत जायसी की भाषा की प्रमुख प्रवृत्तियो का निर्देश करते हुए कवि की विविध कृतियो मे प्रयुक्त भाषा की तुलनात्मक समीक्षा की गयी है। इस प्रकार अवधी को पल्लवित करने मे जायसी के महत्वपूर्ण योग को भली प्रकार से स्पष्ट किया गया है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मे डॉ० शुक्ल ने जायसी की भाषा का तो वैज्ञानिक विश्लेषण बडी सफलतापूर्वक किया ही है, साथ ही उन्होने जायसी के कवि रूप को भी स्पष्ट किया है। यही कारण है कि प्रस्तुत अध्ययन मे वैज्ञानिकता के साथ-साथ रोचकता भी है। डॉ० शुक्ल को साहित्य के अतिरिक्त भाषा-विज्ञान के पठन-पाठन का भी अनुभव है। वे हमारे हिन्दी विभाग के श्रेष्ठतम विद्यार्थियो मे रहे है, इसीलिए

उनकी यह शोधकृति प्रौढ तथा उच्च कोटि की है। यह ग्रन्थ उनके अथक परिश्रम, विस्तृत अध्ययन और गम्भीर मनन का प्रतिफल है। मुझे विश्वास है कि यह कृति साहित्य के मर्मज्ञो के लिए रुचिकर तथा उपयोगी सिद्ध होगी। मेरी मगल कामना है कि डॉ० शुक्ल की लेखनी से और भी अनेक महत्वपूर्ण तथा गवेषणात्मक ग्रन्थो का सृजन हो।

दीनदयालु गुप्त

डॉ० दीनदयालु गुप्त,
एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्०
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष,
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय,
अध्यक्ष, हिन्दी-समिति, उत्तर प्रदेश शासन
लखनऊ।
दिनाक ६ मई १९६५ ई०

दो शब्द

साहित्यस्रष्टा अपने युग की विचारधारा और भाषा का प्रतिनिधि होता है। वह अपनी मौलिक उद्भावनाओ के द्वारा लोक प्रचलित भाषा के माध्यम से जनजीवन मे एक नई क्रान्ति लाने मे समर्थ होता है, फलत उसकी उन भावनाओ और उनकी अभिव्यंजिका भाषा का जनसाधारण मे पूर्ण समादर भी होता है। महान् कवियो की प्रतिभा बहुमुखी होती है, अतएव उनकी कृतियो का अध्ययन भी अनेक दृष्टियो से होना स्वाभाविक है। कवि का भाषाविषयक दृष्टिकोण काव्य के सदृश ही कम महत्व का नही होता। विशेष रूप से ऐसे कवि की भाषा का अध्ययन, जिसने लोक प्रचलित गाथाओ को लोकभाषा मे निबद्ध कर युग को एक नया मोड दिया हो, और भी अधिक महत्वपूर्ण कहा जायेगा। इस दृष्टि से मलिक मुहम्मद जायसी अग्रणी है और उनकी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की इसी आवश्यकता का अनुभव कर यह कार्य डॉ० प्रभाकर शुक्ल को दिया गया। मुझे यह कहने मे प्रसन्नता है कि डॉ० शुक्ल ने सहर्ष पूर्ण निष्ठा के साथ प्रस्तावित विषय पर अनुसधान कार्य किया और उनके इस प्रबन्ध पर लखनऊ विश्वविद्यालय ने पी-एच्०डी की उपाधि प्रदान की। अब यह प्रबन्ध विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित भी हो गया है।

विगत कुछ वर्षो से विश्वविद्यालयो मे हिन्दी के प्रमुख कवियो और उनकी कृतियो की भाषा का व्याकरणिक और सास्कृतिक दृष्टियो से अध्ययन आरम्भ हुआ है। यह हर्ष और गौरव की बात है कि लखनऊ विश्वविद्यालय मे इस प्रकार के अध्ययन का सूत्रपात सन् १९४९ मे ही हो गया था। छ-सात वर्षो से तो हिन्दी विभाग मे भाषाशास्त्र विषय के पृथक् अध्ययन की भी व्यवस्था आदरणीय गुरुवर डॉ० दीनदयालु गुप्त के सौजन्य से सम्भव हो सकी है। इससे भाषा के शोध-कार्यो मे और अधिक गति आ गई है। विभागीय शोध-प्रबधो मे हिन्दी के प्रमुख कवियो की भाषा के अध्ययन की शृंखला मे प्रस्तुत ग्रन्थ तीसरी महत्वपूर्ण कडी है। इसके पूर्व तुलसी तथा सूर की भाषा का अध्ययन शोध-प्रबन्धो के रूप मे विभाग के दो वरिष्ठ योग्य अध्यापको के द्वारा सम्पन्न हो चुका है। अन्यत्र रासो की भाषा, कबीर ग्रथावली की भाषा तथा सन्तो की भाषा पर शोध-प्रबन्ध लिखे जा चुके है। केशव, बिहारी, भूषण, देव आदि रीतिकालीन प्रमुख कवियो की भाषा पर भी शोधकार्य हो रहा है। ये शोधकार्य हिन्दी की विभिन्न उपभाषाओ से सम्बन्धित होने के कारण राष्ट्रभाषा हिन्दी के सगठन मे भी अपना महत्वपूर्ण योगदान करेगे, यह मेरा निश्चित विश्वास है।

जायसी की भाषा का कई दृष्टियो से महत्व है। वे ऐसे सर्वप्रथम कवि है जिन्होने अपने काव्य मे जनप्रचलित भाषा अवधी के प्रकृत रूप का प्रयोग किया है। आगे चलकर सूर और तुलसी ने अपने काव्य मे भाषा के साहित्यिक रूपो को प्रधानता दी। यह प्रायः सभी भाषाशास्त्री स्वीकार करेगे कि भाषाशास्त्रीय अध्ययन

मे भाषा के नैसर्गिक रूप का विशेष महत्व होता है। उसके साहित्यिक प्रयोगों मे भाषा की प्रकृतिस्वरूप का प्रायः लोप हो जाता है। परिणामस्वरूप भाषा के स्वाभाविक रूप का सम्यक् विश्लेषण सम्भव नही हो पाता। भाषा-अध्ययन की दृष्टि से जायसी मे हमे यह अभाव नही मिलता। यह प्रसन्नता की बात है कि जायसी की कृतिया काव्य की दृष्टि से जितनी श्रेष्ठ है, भाषा की दृष्टि से भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। अतएव उनकी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन हिन्दी के अन्य महान् कवियो की अपेक्षा अपना कम महत्व नही रखता। डॉ० शुक्ल ने जायसी की समस्त कृतियो का गहन अध्ययन करने के अनन्तर ही उनकी भाषा के यथार्थ स्वरूप का वैज्ञानिक तथा सारगर्भित विवेचन प्रस्तुत किया है। भाषा-अध्येताओ पर यह आक्षेप प्रायः होता है कि वे अपने अध्ययन मे साहित्य की यत्किञ्चित् उपेक्षा कर देते है। मेरे विचार मे यह आक्षेप उचित नही है क्योंकि साहित्य तो उनके अध्ययन की आधार-शिला होती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे डॉ० शुक्ल ने जायसी की भाषा की ध्वनि और व्याकरण सम्बन्धी सामान्य तथा सूक्ष्म विशेषताओ का विधिपूर्वक गहन विश्लेषण किया है। इस सम्बन्ध मे उनके निष्कर्ष ऐतिहासिक भाषाशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जायसी की कृतियो मे व्यवहृत शब्दावली के विवेचन मे विभिन्न स्रोतो मे आगत शब्दों का प्रतिशत देकर अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले गये है। इस ग्रन्थ मे जायसी की भाषा के कलात्मक प्रयोगो की सोदाहरण चर्चा से रोचकता का भी समावेश हो गया है। उक्तिवैचित्र्य, बोधगम्यता, चित्रात्मकता, मधुरता तथा सरलता आदि अनेक गुण भाषा को प्रभावशाली और चित्ताकर्षक बनाने मे समर्थ होते है। जायसी की भाषा के इन गुणो पर भी इस कृति मे यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। जायसी के काव्य मे शब्द प्रयोग, शब्दशक्ति, काव्यगुण तथा काव्यशैली का सुष्ठु विवेचन डॉ० शुक्ल के भाषा और काव्यसम्बन्धी गहन अध्ययन का परिचायक है। डॉ० शुक्ल ने जायसी द्वारा प्रयुक्त शब्दावली के आधार पर मध्ययुग की लोकजीवन सम्बन्धी विशिष्टताओं का भी यथावश्यक उल्लेख किया है। सास्कृतिक दृष्टि से उनका यह विवेचन अत्यन्त महत्व का है। यह ग्रथ डॉ० शुक्ल की अध्यवसायी वृत्ति, साहित्यिक क्षमता, भाषापटुता और शास्त्रीय दक्षता का परिणाम है। अपने एक योग्य तथा प्रिय शिष्य की ऐसी प्रौढ, मौलिक तथा सुन्दर कृति को देख कर प्रसन्नता और गौरव का अनुभव होना स्वाभाविक ही है। मेरा विश्वास है कि हिन्दी जगत् डॉ० शुक्ल के इस ग्रन्थ का स्वागत करेगा और इससे हिन्दी के अन्य कवियो के भाषाविषयक अध्ययन का मार्ग प्रशस्त होगा।

सरयूप्रसाद अग्रवाल

डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल,
एम० ए० (लखनऊ), एम० ए० (कलकत्ता), एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी०
प्रोफेसर, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
२८ अप्रैल सन् १९६५ ई०

आमुख

भक्तिकाल के प्रमुख स्तम्भो मे से एक होने हुए भी मलिक मुहम्मद जायसी बीसवी शती के प्रथम चरण तक उपेक्षित ही रहे है। इस उपेक्षा का कारण अंशत धार्मिक पूर्वग्रह और अशत कवि द्वारा प्रयुक्त भाषा का दुर्बोध रूप तथा पाठ-परम्परा का फारसी-अरबी मे अस्तित्व था। अन्ततोगत्वा सर जॉर्ज ग्रियर्सन की दृष्टि इस धूलिधूसरित रत्न पर पडी और उन्होने महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी की सहायता से पद्मावत का सम्पादन तथा व्याख्यात्मक अनुशीलन आरम्भ किया। उस समय से अब तक अनेक विद्वानो ने जायसी-काव्य का मथन कर बहुत से काव्यशास्त्रीय, साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा दार्शनिक रत्न खोज निकाले है, किन्तु अब भी इस 'मानसर' मे प्रचुर 'अमोल नग' भरे पडे है, जिन्हे 'मरजिया' पा सकते है। प्रस्तुत प्रबन्ध मे जायसी की काव्य-भाषा का प्रथम सर्वाङ्गीण तथा विस्तृत विवेचन प्रस्तुत कर इसी रत्न-सम्पदा के एक अश को खोज कर प्रकाश मे लाने की चेष्टा की गई है।

विद्वानो तथा शोधको की खोज के आधार पर जायसी की रचनाएँ चौबीस बतलाई जाती है, जो इस प्रकार है—

१	पद्मावत	२	अखरावट	३.	सखरावत	४	चम्पावत
५.	इतरावत	६.	मटकावत	७	चित्रावत	८	खुर्वानामा
६	मोराईनामा	१०	मुकहरानामा	११	मुखरानामा	१२.	पोस्तीनामा
१३.	होलीनामा	१४	आखिरी कलाम	१५.	घनावत	१६	सोरठ
१७.	जपजी	१८	नैनावत	१६.	मेखरावटनामा	२०	कहरानामा या कहारनामा
२१.	स्फुट कविताएँ	२२	लहनावत	२३.	सकरानामा	२४.	मसला या मसलानामा

किन्तु इनमे से अधिकाश अप्राप्य तथा सदिग्ध है। अभी तक पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, कहरानामा (महरी बाईसी), चित्ररेखा (सम्भवतः चित्रावत) तथा मसला-नामा ही प्रकाश मे आ सकी है। इन कृतियो मे से भी केवल पद्मावत का ही सम्यक् संपादन हो सका है। अन्य कृतियो के पाठ-संशोधन का जो कार्य अभी तक हुआ है, वह अपर्याप्त है तथा उसे आगे बढाने की आवश्यकता है ताकि उन कृतियो के मूल पाठ की समस्या का सतोषजनक समाधान निकल सके। प्रामाणिक पाठ के अभाव मे, प्राप्त पाठ के आधार पर, भाषा सम्बन्धी निष्कर्ष भ्रामक हो सकते है, इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुए प्रस्तुत प्रबंध मे डॉ० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित जायसी-ग्रन्थावली को अध्ययन का

आधार बनाया गया है, क्योकि जायसी-काव्य के समस्त संस्करणो मे वह सबसे अधिक प्रामाणिक है। अन्य संस्करणो को ध्यान मे रखने तथा यत्र-तत्र उनके उपयोग का भी प्रयास किया गया है, किन्तु विवेचना मे उदाहरण डॉ० गुप्त वाले संस्करण से ही दिए गये है। उल्लेखनीय है कि डॉ० गुप्त को भी आखिरी कलाम तथा अखरावट का स्वसम्पादित पाठ अपनोषजनक लगा है, क्योकि उन्हे इन ग्रन्थो की कोई प्राचीन प्रति नही मिल सकी। महरी बाईसी का भी पाठ सम्पादन सम्भव नही हो सका है, क्योकि यह कृति केवल सन् ११९४ हिजरी की एक प्रति के आधार पर प्रकाशित हुई - जिसमे कही-कही पंक्तियाँ तक छूटी हुई है। प्रस्तुत अध्ययन मे यत्र-तत्र इन तीनो रचनाओं की भाषा विवेचित है, किन्तु भाषा सम्बन्धी तथ्यो को यथासम्भव त्रुटिरहित रखने के उद्देश्य से अधिकांश उदाहरण पद्मावत से दिए गये है।

जायसी के समीक्षको ने उनकी काव्य-कला पर प्रकाश डालते हुए प्रसंगवश ही भाषा के सम्बन्ध मे विचार किया है। इस क्षेत्र मे भाषाविषयक विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव तो किया जाता रहा है, किन्तु किसी भी विद्वान ने अब तक विशेष प्रयास नही किया था। जायसी-काव्य और उसकी आलोचना के रूप मे जो सामग्री अब तक प्रकाश मे आई है, स्थूल रूप मे उसे तीन वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है - -

(१) पद्मावत अथवा जायसी-ग्रंथावली के सम्पादित संस्करण।
(२) मूल पाठरहित पद्मावत की टीकाएँ।
(३) जायसी-साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन।

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित संस्करणो का उल्लेख किया जा सकता है —

१. नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ मे सन् १८८१ ई० मे प्रकाशित (सम्पादक अज्ञात)।

२ सम्पादक पं० रामजसन मिश्र, चन्द्रप्रभा प्रेस, काशी से सन् १८८४ ई० मे प्रकाशित।

३ सम्पादक मौलवी अलीहसन, मुंशी नवलकिशोर द्वारा प्रकाशित (तिथि अज्ञात)।

४. सम्पादक शेख अहमद अली, शेख मुहम्मद अजीमुल्लाह द्वारा कानपुर से प्रकाशित (तिथि अज्ञात)।

५ बंगवासी फर्म द्वारा सन् १८९६ ई० मे प्रकाशित।

६ दि पदुमावति ऑफ मलिक मुहम्मद जायसी (१ से २५ खण्ड तक), सं० जॉर्ज ए० ग्रियर्सन तथा महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता द्वारा सन् १८९६–१९११ मे प्रकाशित।

७ जायसी-ग्रंथावली, सं० पं० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित। प्रथम संस्करण सन् १९२४ ई०, द्वितीय संस्करण सन् १९३५ ई०। प्रथम संस्करण मे पदमावत और अखरावट संकलित थे, द्वितीय संस्करण मे आखिरी कलाम भी सम्मिलित है।

८. पदमावत (पूर्वार्द्ध– १ से ३३ खण्ड तक), स० लाला भगवानदीन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन से सन् १९२८ ई० मे प्रकाशित।

९ पदुमावती (१ से २५ खण्ड तक), स० डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री, पजाब यूनिवर्सिटी लाहौर से सन् १९३४ ई० मे प्रकाशित ।

१०. स० प० भगवती प्रसाद, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा प्रकाशित (तिथि अज्ञात) ।

११ पदुमावती (केवल १०६ छन्द), स० डॉ० लक्ष्मीधर, ल्यूजक एण्ड कम्पनी, लदन द्वारा सन १९४९ ई० मे प्रकाशित ।

१२ जायसी-ग्रन्थावली (पदमावत अखरावट, आखिरी कलाम तथा महरी बाईसी) स० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद द्वारा सन १९५१ ई० मे प्रकाशित ।

१३ जायसी-ग्रन्थावली, स० डॉ० मनमोहन गौतम, रीगल बुक डिपो, देहली द्वारा सन् १९५४ ई० में प्रकाशित ।

१४. पदमावत, सम्पादक तथा व्याख्याकार डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी द्वारा सन् १९५५ ई० मे प्रकाशित ।

१५. जायसी-ग्रन्थावली, स० श्री दानबहादुर पाठक, हिन्दी साहित्य ससार, दिल्ली द्वारा सन् १९५८ ई० मे प्रकाशित ।

१६ चित्ररेखा, स० प० शिवसहाय पाठक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी द्वारा सन् १९५९ ई० मे प्रकाशित ।

१७. कहरानामा और मसलानामा, सम्पादक अमरबहादुरसिह 'अमरेश', हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद द्वारा सन् १९६२ ई० मे प्रकाशित ।

१८ पदमावत, सम्पादक तथा व्याख्याकार डॉ० माताप्रसाद गुप्त, भारती-भण्डार, इलाहाबाद द्वारा सन् १९६३ ई० मे प्रकाशित ।

इनके अतिरिक्त प० श्रीनिवास शर्मा तथा श्री राजनाथ शर्मा द्वारा सम्पादित जायसी-ग्रथावली के सस्करण भी उपलब्ध होते है, किन्तु इन सस्करणो मे तथा दानबहादुर पाठक और डॉ० मनमोहन गौतम के सस्करणो मे कोई मौलिकता नही है और वे प० रामचन्द्र शुक्ल अथवा डॉ० माताप्रसाद गुप्त वाले सस्करणो पर ही आधारित है । जायसी-काव्य के स्फुट अश, स० डॉ० श्यामसुन्दरदास तथा सत्यजीवन वर्मा द्वारा सम्पादित तथा इण्डियन प्रेस, प्रयाग से सन् १९२६ ई० मे प्रकाशित सक्षिप्त पदमावत, प० परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा सन् १९५१ ई० मे प्रकाशित सूफी-काव्य-सग्रह, श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित हिन्दी प्रेमगाथा काव्य सग्रह और श्री इन्द्रचन्द नारग द्वारा सम्पादित तथा हिन्दी भवन, इलाहाबाद द्वारा सन् १९५७ ई० मे प्रकाशित पदमावत-सार मे सग्रहीत है ।

उल्लिखित विविध सस्करणो मे से प० रामजसन मिश्र द्वारा सम्पादित सस्करण तथा वगवासी फर्म वाला सस्करण अव अप्राप्य है। नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित सन् १८८१ ई० का सस्करण तथा मौलवी अलीहसन, शेख अहमद अली खा, भगवती प्रसाद तथा लाला भगवानदीन द्वारा सम्पादित सस्करणो का भी जायसी की आलोचना से कोई सम्बन्ध नही है, अतएव यहाँ उनकी चर्चा अनावश्यक है। 'जायसी-ग्रथावली' मे डॉ० माताप्रसाद गुप्त की दृष्टि भी पाठानुसधान पर ही केन्द्रित रही हे, अतएव जायसी की समीक्षा को उनकी प्रतिभा से लाभ उठाने का सुअवसर प्राप्त न हो सका, फिर भी इतना कह देना आवश्यक है कि डॉ० गुप्त ने पद्मावत की पाठ-सम्बन्धी अनेक समस्याओ को शास्त्रीय ढग से सुलझाकर जायसी काव्य के अध्येताओ के लिए मार्ग प्रशस्त किया हे। जायसी-ग्रन्थावली के विविध संस्करणो मे से डॉ० गुप्त का सस्करण सर्वाधिक प्रामाणिक है तथा परवर्त्ती सम्पादको ने उसी को आधार रूप मे स्वीकार किया है। अन्य सस्करणो मे टीका अथवा शब्दार्थ तथा टिप्पणी के साथ-साथ जायसी के सम्बन्ध मे भी कुछ न कुछ कहा गया है, अतएव यहाँ संक्षेप मे उसकी ओर सकेत कर देना अनुचित न होगा।

सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'पदुमावति' की छोटी सी भूमिका मे जायसी की भाषा के महत्व की ओर अध्येताओ का ध्यान आकृष्ट किया है। कवि के जीवन-वृत्त तथा उसके काव्य के भाव-पक्ष के सम्बन्ध मे भी सूक्ष्म सकेत दिए हैं। अन्त मे जायसी द्वारा प्रयुक्त छन्द-योजना तथा व्यवहृत भाषा के व्याकरण का सक्षिप्त परिचयात्मक विवरण है।

जायसी के अध्ययन तथा मूल्याकन की दृष्टि से प० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सम्पादित जायसी-ग्रन्थावली की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण हे। शुक्ल जी ने इसमे प्रेम-गाथा की परपरा, जायसी का जीवन-वृत्त, पद्मावत की कथा तथा उसका ऐतिहासिक आधार, पद्मावत की प्रेम-पद्धति, वियोग-पक्ष, सभोग शृगार, ईश्वरोन्मुख प्रेम, प्रेम-तत्व, प्रबध-कल्पना, वस्तु-वर्णन, भाव-व्यजना, अलकार, मत और सिद्धान्त तथा जायसी का रहस्यवाद आदि विषयो एव कतिपय अन्य स्फुट प्रसगो के सम्बन्ध मे चर्चा करते हुए जायसी-काव्य की विशेषताओ का उद्घाटन सर्वथा मौलिक रूप मे किया हे। अन्त मे उन्होने जायसी की भाषा के सम्बन्ध मे भी विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है, किन्तु भूमिका मे इतना अवसर नही था कि वे कवि की भाषा का विस्तृत विवेचन कर सकते, अतएव भाषा सम्बधी चर्चा सक्षेप मे ही सम्भव हो सकी है। शुक्ल जी ने जायसी की भाषा के व्याकरणिक तथा कलात्मक पक्षो पर प्रकाश डाला है।

तीसरा उल्लेखनीय सस्करण डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री द्वारा सम्पादित है। 'पदुमावति' के इस प्रथम भाग मे पच्चीस खड सग्रहीत है तथा श्री टेकचन्द जी के 'प्राक्कथन' और डॉ० सूर्यकान्त जी के 'आमुख' के अतिरिक्त ग्रन्थ के अन्त मे व्युत्पत्तिसहित शब्दकोश भी दिया गया है। टेकचन्द जी के अनुसार जायसी सस्कृत के विद्वान थे।[१] डॉ० सूर्यकान्त ने पदुमावति

---

१. श्री टेकचन्द : पदुमावति (फोरवर्ड), श्री सूर्यकान्त शास्त्री द्वारा सम्पादित, पृ० २।

की कथावस्तु, जायसी की धार्मिक सहिष्णुता, रहस्यवाद, जीवनी तथा जन्मतिथि आदि पर सक्षेप मे विचार किया है। उनके अनुसार जायसी पर्यटनशील साधु थे। पदुमावति की भाषा की सामान्य चर्चा करते हुए उन्होने उसे जायसीकालीन 'ठेठ अवधी' का वास्तविक रूप बताया है।[1]

डॉ० लक्ष्मीधर द्वारा सम्पादित 'पदुमावति' सम्पूर्ण पद्मावत का एक अश-मात्र है। यह समालोचनात्मक सम्पादन लन्दन विश्वविद्यालय की पी-एच्० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध के रूप मे किया गया है। डॉ० लक्ष्मीधर ने इस कृति मे सम्पादित पाठ के अतिरिक्त उसका अग्रेज़ी अनुवाद तथा शब्द-सग्रह भी किया है, साथ ही जायसी, तुलसी तथा नानक की शब्दावली की तुलनात्मक समीक्षा की है। ग्रन्थ के आरम्भ मे सम्पादित अश (पद्मावत के मध्यवर्ती १०६ छन्द) के आधार पर जायसी द्वारा प्रयुक्त ध्वनियो तथा व्याकरणिक रूपो का सुन्दर विश्लेषण मिलता है। ध्वनि-विचार तथा रूप-विचार की दृष्टि से यह विवेचन विशेष महत्व का है।

सन् १९५५ ई० मे डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल की कृति 'पद्मावत-मूल और सजीवनी व्याख्या' प्रकाश मे आई। इस कृति के द्वारा डॉ० अग्रवाल ने डॉ० माताप्रसाद गुप्त के कार्य को आगे बढाया है। डॉ० गुप्त ने जायसी-ग्रन्थावली का वैज्ञानिक विधि से सम्पादन कर पाठ-निर्णय किया और डॉ० अग्रवाल ने कवि के अर्थों को भली प्रकार स्पष्ट करने का स्तुत्य कार्य किया। वासुदेवशरण जी ने प्राक्कथन के अन्तर्गत कतिपय पाठान्तरो पर विचार करते हुए जायसी की जीवनी, गुरु-परम्परा तथा अध्यात्म-भावना आदि विषयो पर अत्यन्त सारगर्भित विवेचन किया है। इस कृति मे उनका दृष्टिकोण सास्कृतिक रहा है, अत जायसी द्वारा प्रयुक्त शब्दो के अर्थो की व्याख्या करते समय उन्होने जायसीकालीन संस्कृति की जॉच-पडताल की है। विद्वान लेखक ने कवि की भाषा के सम्बन्ध मे विचार तो नही किया है किन्तु जायसी की अवधी को 'भाषाशास्त्रियो के लिए स्वर्ग' बता कर उसके महत्व को अवश्य ही स्वीकार किया है।

सन् १९६३ ई० मे डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने पद्मावत का पुनर्सम्पादन किया। इसकी भूमिका मे उन्होने ग्रन्थ के रचनाकाल, कथा-प्रसंग तथा उसकी ऐतिहासिकता, जीवन-दर्शन तथा कुछ अन्य सम्बद्ध समस्याओ पर विचार किया है। इस कृति मे छन्दो के अर्थ के साथ टीका भी प्राप्त होती है। अन्त मे शब्द-प्रयोगो और उनकी व्युत्पत्ति के आधार पर एक लम्बी तथा महत्वपूर्ण अनुक्रमणिका भी है। इस सस्करण मे जायसी की भाषा के सम्बन्ध मे स्वतत्र विवेचन को स्थान नही मिल सका है।

जायसी-काव्य के अन्य सम्पादित सस्करणो अथवा सग्रहो मे भी कवि के सम्बन्ध

---

1 पदुमावति : प्रीफेस, पृ० ६।

मे कुछ न कुछ समालोचनात्मक सामग्री प्राप्त होती है। इन सभी कृतियो मे कवि के जीवन-वृत्त, ग्रन्थ, भाव-पक्ष तथा कला-पक्ष की सुन्दर विवेचना मिलती है। कुछ विद्वानो ने कवि की जन्म-तिथि और गुरु-परम्परा के सम्बन्ध मे खोज-कार्य करके अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किए है।[1] दार्शनिक सिद्धान्तो तथा अन्य पक्षो पर भी प्रौढ विचार उपलब्ध होते है, किन्तु जायसी की भाषा के अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव करते हुए भी विद्वान सम्पादको ने इस दिशा मे अधिक प्रयास नही किया है।

द्वितीय वर्ग मे आने वाली पद्मावत की मूलपाठरहित टीकाओ के अन्तर्गत दो कृतियाँ विशेषत उल्लेखनीय है। एक श्री ए० जी० शिरेफ कृत अग्रेजी अनुवाद और दूसरा डॉ० मुशीराम शर्मा द्वारा लिखित 'पद्मावत का भाष्य'। श्री ए० जी० शिरेफ ने स्वरचित टीका की भूमिका मे जायसी की कृतियो की मूल लिपि, जायसी का निवास-स्थान, जीवन-वृत्त, ग्रन्थ तथा सूफी-मत आदि की सक्षिप्त चर्चा की है। भाषाविषयक चर्चा इस कृति मे नही उपलब्ध होती है। डॉ० मुशीराम शर्मा ने 'भाष्य' की भूमिका मे कवि के जन्म-सवत् रचना-काल, निवास-स्थान, गुरु-परम्परा, व्यक्तित्व, भाव-पक्ष, कला-पक्ष, दर्शन तथा साधना-पथ आदि का विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। भाषा का नामोल्लेख मात्र है।

जायसी सम्बन्धी अधिकाश समालोचना 'पद्मावत' अथवा 'जायसी-ग्रन्थावली' की भूमिका रूप मे प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त कुछ समालोचनात्मक ग्रन्थ भी प्रकाश मे आए है, जिनमे जायसी-साहित्य के विविध पक्षो पर विचार किया गया है। इस वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित ग्रन्थो का उल्लेख किया जा सकता है-

मलिक मुहम्मद जायसी (उर्दू) सैयद कल्बे मुस्तफा।
मलिक मुहम्मद जायसी (प्रथम भाग)– डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ।
कविवर जायसी और उनका पद्मावत– डॉ० सुधीन्द्र।
पदमावत का काव्य-सौन्दर्य– प० शिवसहाय पाठक।
मलिक मुहम्मद जायसी–एक अध्ययन– डॉ० रामरतन भटनागर।
जायसी-साहित्य और सिद्धान्त– प० यज्ञदत्त शर्मा।
जायसी की काव्य-साधना– दानबहादुर पाठक।
पदमावत का ऐतिहासिक आधार– इन्द्रचन्द्र नारग।
जायसी– भारतभूषण सरोज।
कबीर और जायसी का रहस्यवाद तथा **तुलनात्मक अध्ययन**— डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत।
कबीर और जायसी का मूल्याकन श्री पुरुषोत्तमचन्द्र वाजपेयी।
जायसी और उनका पदमावत - **एक सर्वेक्षण**– श्री राजनाथ शर्मा।
पदमावत काव्य और **दर्शन**– डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत।

१—पं० शिवसहाय पाठक, चित्ररेखा (भूमिका)।

जायसी एक विवेचन– देशराजसिह भाटी ।
सूफी महाकवि जायसी– डॉ० जयदेव कुलश्रेष्ठ ।
मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य–डॉ० शिवसहाय पाठक ।

उल्लिखित ग्रन्थो मे से डॉ० सुधीन्द्र, भारतभूषण सरोज, दानबहादुर पाठक, पुरुषोत्तमचन्द्र वाजपेयी राजनाथ शर्मा, डॉ० रामरतन भटनागर, प० यज्ञदत्त शर्मा तथा देशराजसिह भाटी के ग्रन्थ छात्रोपयोगी हैं । इन लेखको का दृष्टिकोण अनुसधानपरक नही रहा है, अत उन्होने अन्य ग्रन्थों के आधार पर ही जायसी के जीवन तथा साहित्य के विविध पक्षो पर प्रकाश डाला है । भाषा की सक्षिप्त समीक्षा भी मिलती है, किन्तु उसमे कोई मौलिकता नही है । इन ग्रन्थो की पृथक्-पृथक् चर्चा अनावश्यक है, अन्य ग्रन्थो का अत्यधिक सक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है ।

मलिक मुहम्मद जायसी–सैयद कल्बे मुस्तफा ने उर्दू भाषा में, एक छोटा किन्तु उपयोगी, ग्रन्थ लिखा है । इस कृति मे सैयद साहब ने जायसी के जीवन-वृत्त, व्यक्तित्व, ग्रन्थ और काव्य के कलापक्ष तथा भाव पक्ष पर सुन्दर प्रकाश डाला है । उन्होने जायसी की 'ठेठ अवधी' की शुद्धता तथा शब्द-योजना की प्रशसा की है ।

मलिक मुहम्मद जायसी (प्रथम भाग)–डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ ने इस पुस्तक मे कवि के जीवन-वृत्त, ग्रन्थ, विचार-पक्ष, काव्य-पक्ष तथा विविध प्रकार के वर्णनो की (नख-शिख वर्णन, प्रकृति-वर्णन, युद्धवर्णन तथा नगर-वर्णन आदि की) समीक्षा प्रस्तुत की है। भाषा की विवेचना सम्भवत दूसरे भाग मे होने वाली थी, किन्तु वह भाग अभी तक अप्रकाशित है ।

पदमावत का काव्य-सौन्दर्य–प० शिवसहाय पाठक ने इस कृति मे पद्मावत के कथानक का मूल स्रोत, पद्मावत की ऐतिहासिकता, रूप-सौन्दर्य वर्णन और अप्रस्तुत-विधान, प्रकृति-वर्णन का सौन्दर्य, जायसी के रहस्यवाद का सौन्दर्य, पद्मावत की साकेतिकता, छन्द विधान, महाकाव्यत्व और मसनवी-शैली, चरित्र-चित्रण, सामाजिक स्थिति-चित्रण तथा प्रेम का आदर्श आदि विषयो की सुन्दर समीक्षा की है । प्रस्तुत कृति मे भाषा-सौन्दर्य पर भी प्रकाश डाला गया है । लेखक ने जायसी की भाषा की कतिपय महत्वपूर्ण प्रवृत्तियो की ओर सकेत किया है । ग्रन्थ के अन्त मे जायसी की भाषा का सक्षिप्त व्याकरणिक विवेचन भी है ।

पद्मावत का ऐतिहासिक आधार– इन्द्रचन्द्र नारग की इस कृति का लक्ष्य तो उसके नाम से ही स्पष्ट है । ऐतिहासिक तथ्यो की खोज तथा निष्कर्षों की दृष्टि से यह पुस्तक महत्वपूर्ण है, किन्तु इसमे भाषा सम्बन्धी अध्ययन का तो प्रश्न ही नही उठता ।

सूफी महाकवि जायसी–डॉ०जयदेव कुलश्रेष्ठ ने अपने इस शोध-प्रबध मे कवि के जीवन, काव्य और दर्शन का विशद विवेचन किया है । इस कृति मे जायसी के जन्मकाल तथा विविध ग्रन्थो के रचनाकाल आदि का निश्चय करने का तर्कयुक्त प्रयास किया गया है । कवि के वस्तु-विन्यास, चरित्र-चित्रण, भावानुभूति, सौन्दर्यानुभूति तथा वर्णन-वैचित्र्य आदि पर भी प्रकाश

डाला गया है। भाषा की भी सक्षिप्त समीक्षा की गई है। इस समीक्षा मे शुक्ल जी की विचारधारा की छाप स्पष्ट है।

कबीर और जायसी का रहस्यवाद तथा तुलनात्मक अध्ययन, पदमावत : काव्य और दर्शन——डॉ० त्रिगुणायत की उक्त दो पुस्तके जायसी से सम्बद्ध है। प्रथम कृति मे उन्होने रहस्यवाद और उसकी विविध धाराओ का परिचय देते हुए जायसी-काव्य मे रहस्यवाद की स्थिति पर प्रकाश डाला है। इस पुस्तक मे लेखक ने कबीर के रहस्यवाद की तुलना जायसी के रहस्यवाद से की है। भाषा सम्बन्धी विवेचन इस ग्रन्थ का विषय नही है। अपनी दूसरी पुस्तक मे डॉ० त्रिगुणायत ने जायसी के जीवन-वृत्त, ग्रथ, आध्यात्मिक विचार, आध्यात्मिक साधनाओ के स्वरूप, पद्मावत के महाकाव्यत्व, पद्मावत के आधार पर जायसी की बहुज्ञता, अभिव्यजना-शैली तथा भावुकता पर विचार किया है। भाषा की समीक्षा इस कृति मे भी उपेक्षित रही है।

मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य——डॉ० शिवसहाय पाठक ने अपने इस शोध-प्रबन्ध मे जायसी और उनके काव्य का सागोपाग अध्ययन किया है। विद्वान लेखक ने अनेक स्थलो पर शोधपूर्ण नये तथ्य तथा विचार प्रस्तुत किए है। इस प्रबन्ध मे जायसी के जीवन वृत्त, व्यक्तित्व, अन्य सम्बद्ध तथ्य, काव्य, कथानक के सघटन, चरित्र-चित्रण, प्रकृति-चित्रण, रस, अलकार, छद-विधान तथा रहस्यवाद आदि का सुन्दर तथा सारगर्भित विवेचन किया गया है। जायसी की काव्य-भाषा पर एक स्वतत्र अध्याय है, जिसमे कवि की भाषा की अनेक विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है।

उल्लिखित कृतियो के अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य के इतिहास-ग्रन्थो तथा पत्र-पत्रिकाओ मे भी जायसी-विषयक समालोचनात्मक सामग्री प्राप्त होती है। इन सभी मे कवि के जीवन-वृत्त, प्रेम-निरूपण तथा भाव एव कला-पक्ष की विवेचना उपलब्ध होती है। प० चन्द्रबली पाण्डेय[1], श्री गोपालराय[2] तथा रामखिलावन पाण्डेय[3] ने कवि की जन्म-तिथि तथा रचना-काल के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण तर्क प्रस्तुत करके अपने निष्कर्ष सामने रखे है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने पद्मावत के कुछ शब्दो की व्युत्पत्ति तथा उनके अर्थ पर विचार किया है[4]। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो– यथा गार्सा द तासी[5], शिवसिह सेगर[6], जॉर्ज ग्रियर्सन,[7] मिश्र बधु[8], म०म०

---

१ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १४, पृ० ३६७।

२. हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ११, अंक ३; सन् १९५८, पृ० १०।

३. हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषाक, पृ० ३५८-३७८।

४ हिन्दी अनुशीलन, जनवरी-मार्च, सन् १९५८, पृष्ठ १२।

५ इस्त्वार दल लितरैत्यूर ऐंन्दुई ऐं ऐन्दुस्तानी, हिन्दी अनुवाद—
हिन्दुई साहित्य का इतिहास, अनु० डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० ८३-८६।

६ शिवसिंह सरोज, स० १९४० (रॉयल एशियॉटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल)।

७. दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान, हिन्दी अनुवाद-हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, किशोरीलाल गुप्त, पृ० ८१।

८. मिश्रबंधुविनोद: हिन्दी ग्रथ प्रसारक मडली, खडवा और प्रयाग।

गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, श्यामसुन्दर दास, डॉ० रामकुमार वर्मा[1] तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल[2] आदि ने भी जायसी के काव्य के विविध पक्षों पर विचार किया है। इन सभी अध्ययनों में भाषाविषयक समीक्षा सीमित ही है।

यहाँ जायसी की भाषा के अध्ययन से सम्बद्ध एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा उपयोगी कृति का उल्लेख करना आवश्यक है। यह कृति डॉ० बाबूराम सक्सेना कृत एवोल्यूशन आफ अवधी है। डॉ० सक्सेना ने अपने इस ग्रन्थ में अवधी-भाषा के विकास-क्रम का विशेष अध्ययन किया है। अवधी के इतिहास-क्रम में प्राचीन अवधी के रूपों को खोजने के लिए सक्सेना जी ने जायसी, तुलसीदास तथा नूरमुहम्मद की रचनाओं को आधार बनाया है, फलतः इस कृति में पदमावत के बहुत से व्याकरणिक रूपों का विश्लेषण हो गया है। सक्सेना जी की दृष्टि प्रधानतः जायसी की भाषा पर न होकर अवधी पर केन्द्रित थी, अतः उनका यह अध्ययन प्रस्तुत अध्ययन से भिन्न है, फिर भी प्रस्तुत प्रबन्ध-लेखन में वह ग्रन्थ अत्यधिक सहायक सिद्ध हुआ है। अवधी के भाषावैज्ञानिक विकास तथा व्याकरणिक विश्लेषण का प्रथम विशद प्रयास होने के कारण यह कृति अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

जायसीविषयक उपर्युक्त सामग्री के इस संक्षिप्त विवेचन से इतना भली प्रकार स्पष्ट है कि जायसी की भाषा अभी तक स्वतंत्र अध्ययन तथा विस्तृत विश्लेषण का विषय नहीं बन पाई है। प्रस्तुत प्रबन्ध इसी अभाव की पूर्ति की दिशा में एक प्रयास है।

यह शोध-प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय 'अवधी और जायसी' है। इसके अन्तर्गत अवध तथा अवधी का सम्बन्ध, अवधी-क्षेत्र तथा सीमा और जायसी-पूर्व अवधी-साहित्य आदि की चर्चा की गई है। तत्पश्चात् जायसी और अवधी के सम्बन्ध पर विचार किया गया है। कवि के भाषाविषयक दृष्टिकोण को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय ध्वनि-विचार है। इसके अन्तर्गत अवधी का ध्वनि-समूह तथा जायसी के तत्सम्बन्धी प्रयोग दिए गए हैं। स्वरों के सामान्य, सानुनासिक तथा संयुक्त प्रयोगों पर विचार किया गया है। इसी प्रकार व्यंजनों के सामान्य, द्वित्व तथा संयुक्त रूपों पर प्रकाश डाला गया है। ध्वनि-परिवर्तन के विविध प्राप्त प्रयोगों की सोदाहरण विवेचना भी इसी अध्याय में की गई है। अन्त में जायसी की लिपिशैली से सम्बद्ध कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को पहली बार प्रकाश में लाया गया है।

तृतीय अध्याय का सम्बन्ध जायसी द्वारा प्रयुक्त शब्द-समूह से है। इस अध्याय में जायसी द्वारा प्रयुक्त शब्दावली का वर्गीकरण करते हुए पूर्ववर्ती भाषाओं, समकालीन

---

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४४४।

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ९९-१०६।

बोलियो तथा विभाषाओ एव देशी-विदेशी भाषाओ के शब्दो के साथ-साथ देशज तथा अनुकरणात्मक शब्दो की चर्चा भी की गई है।

चतुर्थ अध्याय रूप-विचार है। इस अध्याय के अन्तर्गत जायसी को भाषा का अध्ययन व्याकरण की दृष्टि से किया गया है। कवि द्वारा प्रयुक्त सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्ययो की विशेषताओ का सम्यक् अनुशीलन किया गया है। इस अध्याय के लिखने मे लेखक को डॉ० बाबूराम सक्सेना कृत एवोल्यूशन ऑफ अवधी तथा डॉ० लक्ष्मीधर द्वारा सम्पादित पद्मावती के व्याकरणिक अध्ययन मे यथेष्ट सहायता मिली है, किन्तु साथ ही यह भी उल्लेखनीय है, कि लेखक ने बहुत से स्थलो पर भिन्न तथा नवीन व्याकरणिक रूपो का विवेचन एव विश्लेषण और तत्सम्बन्धी नियमो का अनुसधान निजी प्रयत्न से किया है। व्याकरणिक रूपो की विभिन्नता तथा विशदता के सम्बन्ध मे इतना सकेत ही पर्याप्त होगा कि डॉ० बाबूराम सक्सेना कृत अध्ययन ग्रियर्सन द्वारा सम्पादित पद्मावत के अपूर्ण सस्करण पर आधारित है और डॉ० लक्ष्मीधर ने पद्मावत के १०६ छन्दो का ही अपने विवेचन का आधार बनाया है। इस अध्याय मे पहली बार जायसी-ग्रन्थावली की समस्त कृतियो के विभिन्न शब्द-भेदो तथा उपभेदो का विश्लेषण कर निष्कर्ष प्रस्तुत किए गये है।

पचम अध्याय मे जायसी के शब्द-रचना-विधान पर विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत पूर्व-प्रत्ययो तथा पर-प्रत्ययो की चर्चा सोदाहरण हुई है। समासो के जायसीकृत प्रयोग भी उदाहरण सहित वर्णित हैं।

षष्ठ अध्याय जायसी की भाषा के कला-पक्ष से सम्बद्ध है। इस अध्याय मे वर्ण, शब्द, वाक्याश तथा वाक्य आदि भाषा के विभिन्न अगो का पृथक्-पृथक् उल्लेख करके नवीन विवेचन-प्रणाली के द्वारा उनके कला-पक्ष का विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन मे सामान्य तथा काव्यशास्त्रीय दोनो प्रकार के मानदण्डो का प्रयोग किया गया है। शब्द-शक्ति, गुण, अलकार-वृत्ति तथा रीति आदि की भी चर्चा प्रसगवश हुई है। कवि की द्वयर्थक शब्द-योजना, शब्द-क्रीडा तथा अल्पाक्षरविशिष्टता को भी स्पष्ट किया गया है। कुछ दूषित प्रयोगो की ओर भी निर्देश किया गया है।

सप्तम अध्याय का सम्बन्ध जायसी की भाषा और लोक जीवन मे है। इस अध्याय के अन्तर्गत जायसी द्वारा प्रयुक्त शब्दावली को आधार बनाकर तत्कालीन जीवन के विविध पक्षो पर (सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक तथा कला-कौशल आदि पर) प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। यह अध्याय वर्ण्य-विषय तथा निष्कर्ष-विधान आदि की दृष्टि से अधिकाश मे मौलिक है। विवेचन-प्रणाली के लिए लेखक को डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल कृत 'हर्षचरित– एक सास्कृतिक अध्ययन' से यथेष्ट सहायता मिली है। 'पदमावत' के आधार पर तत्कालीन लोक-जीवन से सबद्ध परिस्थितियो के सकेत खोजने मे डॉ० अग्रवाल द्वारा सम्पादित 'पदमावत' भी बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।

उपसहार के रूप मे लेखक ने सभी अध्यायो मे किये गए विवेचन के आधार पर प्राप्त तथ्यो तथा तत्सम्बन्धी निष्कर्षों को सक्षेप मे प्रस्तुत किया है। साथ ही जायसी

के विभिन्न ग्रन्थो की भाषा की तुलनात्मक समीक्षा की है। अन्त मे अवधी के लिए जायसी के योगदान का स्पष्ट किया है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध-प्रबंध मे जायसी की भाषा का सर्वाङ्गीण अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

इस शोध-प्रबन्ध मे विश्लेषण की कई शैलियो का अनुसरण किया गया है। कार्यारम्भ करते समय स्थूल रूपरेखा की समस्या डॉ० देवकीनन्दन कृत तुलसीदास की भाषा, डॉ० प्रेमनारायण टण्डन कृत सूर की भाषा तथा डॉ० नामवर सिह कृत पृथ्वीराज रासो की भाषा ने बिल्कुल हल कर दी। लेखक ने उक्त सभी कृतियो से यथेष्ट लाभ उठाया है जिसके लिए लेखक इन विद्वानो का अत्यन्त कृतज्ञ है। ध्वनि-विचार तथा रूप-विचार के हेतु, लेखक ने श्रद्धेय डॉ० धीरेन्द्र वर्मा की प्रसिद्ध कृति व्रजभाषा तथा आदरणीय डॉ० बाबूराम सक्सेना के महत्वपूर्ण ग्रन्थ एवोल्यूशन ऑफ अवधी का आश्रय ग्रहण किया है। उक्त दोनो अध्यायो मे उन्ही की कार्य-प्रणाली को आदर्श माना गया है। लेखक इन विद्वानो का भी हृदय से आभारी है। शब्दावली के आधार पर सास्कृतिक निष्कर्षो की खोज करने मे लेखक को डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा सम्पादित पद्मावत से विशेष सहायता मिली है। इस सहायता के लिए लेखक डॉ० अग्रवाल के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है।

लेखक उन सभी विद्वानो तथा गुरुजनो के प्रति भी हृदय से कृतज्ञ है, जिन्होने समय-समय पर उसकी सहायता की है। लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्रद्धेय डॉ० दीनदयालु गुप्त जी का वात्सल्य तथा आशीर्वाद लेखक को सदैव प्राप्त रहा है। प्रबन्ध की समाप्ति मे उनका प्रोत्साहन सदैव छाया के समान लेखक के साथ रहा। उनके प्रति कृतज्ञता किन शब्दो मे व्यक्त की जाए। लेखक की यही कामना है कि वह अपने को उनके ऋण की गरिमा के योग्य सिद्ध कर सके। श्रद्धेय डॉ० धीरेन्द्र वर्मा तथा पूज्य डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने प्रबन्ध का परीक्षण कर जो आशीर्वाद दिया है, उससे लेखक का उत्साह बढ़ा है। लेखक इन विद्वानो का अत्यन्त आभारी है। पूज्य गुरुवर डॉ० केसरीनारायण शुक्ल, डॉ० भगीरथ मिश्र, डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी तथा डॉ० व्रजकिशोर मिश्र ने प्रबन्ध की पाडुलिपि देखकर अनेक मूल्यवान सुझाव दिए है। उन्हे धन्यवाद क्या दिया जाय? उन्हीं के चरणो मे बैठकर तो लेखक ने लिखना सीखा है। अग्रज-तुल्य डॉ० प्रेमनारायण टण्डन तथा डॉ० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल ने जिस सहज ममत्व के साथ सब प्रकार की सहायता की है, उसका प्रतिदान शब्द कभी नही दे सकते, अत उस सबंध मे मौन ही श्रेयस्कर है। अन्त मे लेखक अपने पूज्य गुरु तथा निर्देशक डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल का आभार अत्यन्त श्रद्धापूर्वक मानता है, जिनकी कृपा तथा सतत प्रेरणा से ही यह प्रबध पूर्ण हो सका है। शोध-काल मे यदि लेखक को उनका आशीर्वाद तथा विद्वत्तापूर्ण निर्देशन न मिला होता तो इस अनुष्ठान का पूर्ण होना सम्भव न था। कार्य की पूर्णता पर लेखक उनके सम्मुख श्रद्धावनत है।

हिन्दी विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रभाकर शुक्ल

संकेताक्षर

अ०	अरबी
अख०	अखरावट
अ० पु०	अन्य पुरुष
अर्द्ध०	अर्द्ध तत्सम
आखि०	आखिरी कलाम
आ० भा० आ० भा०	आधुनिक भारतीय आर्य भाषा
उ० पु०	उत्तम पुरुष
ए० व०	एकवचन
छ०	छन्द
तद्०	तद्भव
दो० स०	दोहा मख्या
प०	पद्मावत
पृ०	पृष्ठ
प्रा० भा० आ० भा०	प्राचीन भारतीय आर्य भाषा
प्रा० वै०	प्राचीन वैदिक
पु०	पुल्लिग
फा०	फारसी
ब० व०	बहुवचन
म० पु०	मध्यम पुरुष
म० बा०	महरी बाईसी
म० भा० आ० भा०	मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा
स०	सस्कृत
स०	सवत्

विशेष-चिह्न

‿	ह्रस्वताद्योतक
>	पूर्ववर्ती रूप व्युत्पादक और परवर्ती रूप व्युत्पन्न है।
∠	पूर्ववर्ती रूप व्युत्पन्न और परवर्ती रूप व्युत्पादक है।
√	धातु-चिह्न
~	वैकल्पिक रूप

मलिक मुहम्मद जायसी

१

अवधी और जायसी

प्रेम की पीर के अमर गायक मलिक मुहम्मद जायसी हिन्दी साहित्य की सूफी-काव्य-धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि है । उनका काव्य प्रेम-पद्धति-निरूपण सौन्दर्य-वर्णन, अध्यात्म, दर्शन, लोक-सस्कृति, रचना-शिल्प, छन्द-विधान तथा कथावस्तु का सघटन आदि सभी दृष्टियो से तो उत्कृष्ट कोटि का है ही, भाषा के मर्मस्पर्शी माधुर्य तथा 'ठेठपन' की दृष्टि से भी अनूठा है । जायसी की भाषा जहाँ एक ओर माधुर्य का उत्स है, वहाँ दूसरी ओर वह सोलहवी शताब्दी मे अवध-प्रान्त मे बोली जाने वाली लोक-भाषा का यथार्थ तथा सजीव चित्र प्रस्तुत करने के कारण भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । तत्कालीन भाषा का यह स्वरूप अवधी के विकास-क्रम को समझने मे अत्यन्त सहायक हो सकता है । सचमुच ही 'जायसी की अवधी भाषा-शास्त्रियो के लिए स्वर्ग है जहाँ उनकी रुचि की अपरिमित सामग्री सुरक्षित है' ।[1] अस्तु, जायसी की भाषा का विश्लेषण करने के पूर्व अवधी का सक्षिप्त परिचय दे देना समीचीन होगा ।

अवधी पूर्वी हिन्दी की सबसे महत्वपूर्ण बोली है । इस बोली का नामकरण 'अवध' (∠ अयोध्या)[2] के आधार पर हुआ है ।[3] वस्तुत यह बोली जिस क्षेत्र से सम्बद्ध है, वह भारतीय इतिहास मे अत्यन्त प्रसिद्ध है । अयोध्या भारतवर्ष का एक अति प्राचीन तथा महत्वपूर्ण नगरी है । यह हिन्दू जाति के लिए धार्मिक प्रेरणा की स्रोत रही है । राजनैतिक तथा सास्कृतिक दृष्टि से भी इस नगरी का विशिष्ट महत्व रहा है । प्राचीन काल मे यह कोशल की राजधानी थी । बौद्धकाल मे भी यह स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा और गुप्त, मुगल तथा ब्रिटिश-काल मे भी इसकी तथा इसके समीपवर्ती क्षेत्र की महत्ता

---

१ डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत, प्राक्कथन, पृ० २८ ।

२ डॉ० बाबूराम सक्सेना एवोल्यूशन ऑफ अवधी, पृ० २ ।

३. कुछ लोग 'अवध' की व्युत्पत्ति 'अवधि' (राम के वनवास की अवधि) से मानते है (देखिए, गजेटियर ऑफ दि प्राविंस ऑफ अवध, पृ० २), किन्तु यह मत उचित नही है ।

सुरक्षित रही। कालान्तर मे इसी स्थान के नाम पर समीपवर्ती प्रदेश अवध कहलाने लगा। अवधक्षेत्र मे कला, साहित्य तथा संस्कृति को पल्लवित तथा विकसित होने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ है। 'अवधी' इसी प्रदेश की प्रचलित बोली है तथा हिन्दी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बोलियो मे से एक कही जाती है।

'अवधी' शब्द से ऐसा प्रतीत होता है कि अवधी सम्पूर्ण अवध की बोली है किन्तु यह सम्भावना पूर्णरूपेण सत्य नही है। यह एक ओर तो अवध-प्रदेश[1] के कुछ भागो मे—हरदोई, खीरी तथा फैजाबाद के कुछ भागो मे—नही बोली जाती और दूसरी ओर अवध के बाहर फतेहपुर, इलाहाबाद, जौनपुर (केराकत तहसील को छोडकर) तथा मिर्जापुर के पश्चिमी भागो मे बोली जाती है। 'अवधी' के अन्य नाम 'पूर्वी'[2] तथा 'कोशली'[3] भी है, किन्तु यह अधिक उपयुक्त नही है। 'पूर्वी' का शाब्दिक अर्थ 'पूर्व दिशा से सम्बद्ध' है और यह नाम हिन्दी के सभी पूर्वी-रूपो के लिए अधिक उपयुक्त हो सकता है।[4] इसी प्रकार अवधी को 'कोशली' संज्ञा से अभिहित कर उसका सम्बन्ध कोशल राज्य से जोड दिया जाता है, किन्तु ऐसी स्थिति मे उसके अन्तर्गत छत्तीसगढी को भी स्थान देना पडेगा, जिसे एक स्वतंत्र बोली के रूप मे स्वीकार किया गया है। 'अवधी' नाम भी सर्वथा दोषमुक्त नही है। भाषा-विस्तार की दृष्टि से उसमे एक ओर अतिव्याप्ति है, दूसरी ओर अव्याप्ति, फिर भी लोक-व्यवहार मे 'अवध' शब्द के अत्यधिक प्रचलन के कारण उससे सम्बद्ध बोली का नाम अवधी ही अन्य नामो की अपेक्षा अधिक प्रचलित हुआ और अद्यावधि वही स्वीकृत तथा मान्य है। कभी-कभी 'अवधी' के स्थान पर 'बैसवाडी' शब्द का भी व्यवहार किया जाता है,[5] किन्तु 'बैसवाडी' 'अवधी' के अन्तर्गत एक सीमित क्षेत्र की बोली है। उन्नाव, लखनऊ, रायबरेली तथा फतेहपुर का कुछ भाग 'बैस' राजपूतो की प्रधानता के कारण बैसवाडा कहलाता है और 'बैसवाडी' इसी क्षेत्र की बोली है। इसकी कतिपय निजी विशेषताएँ है जो इसके स्वतंत्र अस्तित्व एव महत्व को स्पष्ट करती है।

अवधी की भाषागत सीमाएँ—अवधी-क्षेत्र सभी ओर अन्य बोलियो से घिरा हुआ है। इसके पश्चिम मे कनौजी तथा बुन्देली है, और पूर्व मे भोजपुरी का क्षेत्र है। उत्तर मे पहाडी भाषाएँ बोली जाती है, दक्षिण मे छत्तीसगढी प्रचलित है। भौगोलिक दृष्टि से यदि

---

१. वर्तमान अवध के अन्तर्गत १२ जिले आते है
बहराइच, बाराबकी, फैजाबाद, गोडा, हरदोई, खीरी, लखनऊ, प्रतापगढ, रायबरेली, सीतापुर, सुलतानपुर तथा उन्नाव।

2 Linguistic Survey of India, vol. V, part II, P 43.

3 Linguistic Survey of India, vol VI, P 9.

४ डॉ० बाबूराम सक्सेना एवोल्यूशन ऑफ अवधी, पृ० २।

5. Linguistic Survey of India, Vol VI, p 9.

अवधी की सीमा खीचने की चेष्टा की जाय तो हम एक सीधी रेखा गोलागोकरननाथ से सीतापुर जिले के नेरी स्थान तक खीचनी होगी जो कन्नौजी और अवधी की सीमा होगी। नेरी से गोमती नदी अवधी की दक्षिणी-पश्चिमी सीमा बनाती हुई उस स्थान तक जाती है जहाँ वह हरदोई जिले को लखनऊ से पृथक् करती है। यहाँ से दक्षिण-पश्चिम की ओर लखनऊ, हरदोई तथा उन्नाव जिलो की सीमा से होती हुई एक रेखा उन्नाव की पश्चिमी सीमा तक खीची जा सकती है। कानपुर पश्चिमी हिन्दी-क्षेत्र मे है और उन्नाव, फतेहपुर तथा इलाहाबाद जिले अवधी के अन्तर्गत आते है।[1]

पूर्व की ओर अवधी तथा गोडा जिले की सीमा एक है। यहाँ से घाघरा नदी के साथ-साथ यह सीमा पूर्व मे टाँडा तक जाती है। यदि टाँडा से जौनपुर तक और वहाँ से मिर्जापुर तक एक सीधी रेखा खीची जाय तो यह अवधी की दक्षिणी-पूर्वी सीमा होगी। मिर्जापुर शहर के पश्चिम ओर कुछ मील की दूरी से अवधी आरम्भ होती है। यहाँ से दक्षिण-पूर्व मे इलाहाबाद जिले की सीमा तथा पूर्व मे रीवाँ राज्य की सीमा वस्तुत अवधी की पूर्वी सीमा है। मिर्जापुर के दक्षिणी-पूर्वी त्रिभुजाकार क्षेत्र मे भोजपुरी-मिश्रित-अवधी बोली जाती है। इसके दक्षिण की ओर छत्तीसगढी की सरगुजा बोली का क्षेत्र है। उत्तर मे अवधी नेपाल की तराई मे रुम्मनदेई (प्राचीन 'लुम्बिनी') तथा बुटवल तक बोली जाती है, किन्तु गोरखपुर जिले मे नेपाल की तराई मे स्थित उत्तरी-पूर्वी रेलवे के नौतनवा स्टेशन के आसपास भोजपुरी बोली जाती है।[2]

अवधी की दक्षिणी सीमा निर्धारित करने के पूर्व एक अन्य तथ्य भी उल्लेखनीय है। ग्रियर्सन महोदय ने अवधी के दक्षिण मे बघेली बोली के अस्तित्व को स्वीकार किया है, किन्तु साथ ही उन्होने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि बघेली के स्वतन्त्र अस्तित्व को केवल तत्स्थानीय जनता की भावना का सम्मान करने की दृष्टि से ही स्वीकार किया गया है।[3] डॉ० बाबूराम सक्सेना ने 'अवधी' तथा 'बघेली' की तुलना करके यह सिद्ध किया है कि भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से 'बघेली' 'अवधी' से भिन्न नही है और उसे अवधी की ही एक बोली मानना उचित है।[4] 'गोडवानी' अथवा 'मडलाही' भी अवधी के अधिक निकट है। यदि इन दोनो बोलियो को अवधी के अन्तर्गत स्थान दे दिया जाय तो अवधी की दक्षिणी सीमा छत्तीसगढी का स्पर्श करने लगती है, अन्यथा अवधी और बघेली की सीमाओ को यमुना नदी पृथक् करती है जो फतेहपुर और बाँदा जिले मे होते हुए प्रयाग मे गगा से

---

१ डॉ० बाबूराम सक्सेना एवोल्यूशन ऑफ अवधी, पृ० २।

२. वही, पृ० ५।

3. 'Its separate existence has only been recognised in deference to popular prejudice' Linguistic Survey of India, Vol. VI, p 1

४. डॉ० बाबूराम सक्सेना एवोल्यूशन ऑफ अवधी, पृ० ४।

मिल जाती है ।[1]

जायसी-पूर्व अवधी-साहित्य यह तो स्पष्ट ही है कि अवधी हिन्दी की एक महत्वपूर्ण बोली है तथा उसमे प्राचीन साहित्य उपलब्ध भी होता है, किन्तु यह सर्वथा निश्चयपूर्वक कह सकना कठिन है कि अवधी किस समय से बोलचाल की भाषा के रूप मे प्रचलित हुई और साहित्य मे उसका सर्वप्रथम स्वतत्र रूप मे प्रयोग कब आरम्भ हुआ । इसका कारण यह है कि मध्यकालीन आर्यभाषाओ के अतिम चरण मे प्रयुक्त अपभ्रश-भाषाओ की समाप्ति और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ के स्वतत्र रूप धारण कर लेने की स्थिति के सक्रान्तिकाल का इतिहास अभी बहुत अस्पष्ट है । इस युग का अध्ययन अभी अपूर्ण ही है और अब तक इस प्रकार के प्रामाणिक साधन नही प्राप्त हो सके है जिनके आधार पर यह असदिग्ध रूप से कहा जा सके कि अपभ्रश भाषा अमुक समय तक बोलचाल की भाषा बनी रही और अमुक समय मे आधुनिक भारतीय भाषाएँ अपनी विविध विशेषताओं से सयुक्त होकर स्वतत्र रूप से अस्तित्व मे आईं । सच तो यह है कि मनुष्य के जन्म-सवत् की भाँति किसी भी भाषा के जन्म-सवत् को निर्धारित कर सकना सभव नही है । भाषा का निर्माण एक-दो दिन या एक-दो वर्ष मे नही होता । उसको विकसित होकर प्रकाश्य रूप ग्रहण करने मे सदियाँ लग जाती है । भाषा की प्रवृत्ति कठिनता से सरलता की ओर होती है । जब साहित्य की भाषा सर्व-साधारण के लिए अग्राह्य होने लगती है तो लोक मे उसका स्वरूप अविकृत नही रह पाता । प्रयत्न-लाघव की प्रवृत्ति के कारण साहित्यिक भाषा के स्वरूप मे धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगते है । अर्थ-व्यवस्था के असतुलन तथा सामाजिक एव राजनैतिक उथलपुथल के फलस्वरूप लोगो के स्थान-परिवर्तन और विभिन्न जातियो अथवा सस्कृतियो के परस्पर सम्पर्क तथा सम्मिलन का भी प्रभाव भाषा के स्वरूप पर पडता है । विकसित होती हुई भाषा के लक्षण आरम्भ मे बोलचाल की भाषा मे प्रकट होने लगते है और दीर्घकाल तक निरन्तर सघर्ष करने के उपरान्त ही उसे साहित्यिक भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित होने का गौरव प्राप्त हो पाता है, किन्तु प्राय आरम्भिक साहित्यकार लोकभाषा को साहित्यिक भाषा के रूप मे ग्रहण कर लेने के उपरान्त भी प्राचीन भाषा के प्रति मोह नही छोड पाते और इसीलिए उनकी रचनाओ मे प्राचीन भाषा का प्रभाव स्पष्टतया प्रतिबिम्बित होता रहता है । कभी इस प्रभाव की झलक कालान्तर मे दूर हो जाती है और कभी वह निरन्तर सश्लिष्ट रूप मे चलती रहती है । भारतीय वाड्मय इसका ज्वलत उदाहरण है । लोक-भाषा के रूप मे प्रचलन समाप्त हो जाने के उपरान्त भी अपभ्रश भाषा का साहित्य मे प्रयोग होता रहा और आधुनिक आर्यभाषाओ के विकसित होने तथा साहित्य मे प्रयुक्त होने के बाद भी कुछ समय तक अपभ्रश-रूपो का व्यवहार चलता रहा ।

---

१. 'यह सीमा बहुत ठीक नहीं है क्योंकि फतेहपुर में यमुना नदी के उत्तरी किनारे पर तिरहारी बोली जाती है । इसमें बघेली का सम्मिश्रण है ।'
डॉ० उदयनारायण तिवारी; हिन्दी भाषा का उदगम और विकास,प्रथम संस्करण, पृ० २६४ ।

ईसा की सोलहवी शताब्दी से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ मे ऐसी साहित्यिक कृतियाँ उपलब्ध होने लगती है जो अपभ्रश के प्रभाव से लगभग मुक्त तथा निजी विशेषताओ से सयुक्त है। इन भाषाओ का साहित्य मे मान्य स्थान प्राप्त कर लेना यह प्रकट करता है कि कथ्य-भाषा के रूप मे इन्हे लोक मे पहले ही यथेष्ट मान्यता प्राप्त हो चुकी होगी, अन्यथा इनका इस प्रकार स्वतन्त्र रूप धारण करना तथा साहित्य मे प्रयुक्त होना सम्भव न हुआ होता। अपभ्रश भाषा का विशेष प्रयोग बारहवी शती तक होता रहा, किन्तु इसी बीच जनभाषाओ ने भी जन्म ले लिया हो, यह सर्वथा सम्भव है। बारहवी शती के उपरान्त जनभाषाओ की प्रगति तीव्रता के साथ हुई और अगली दो-तीन शताब्दियो के बाद उन्होने स्वतत्र रूप धारण कर लिया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आचार्य हेमचन्द्र के पश्चात् तेरहवी शती के आरम्भ से आ० भा० आ० भाषाओ के अभ्युदय के समय पन्द्रहवी शती के पूर्व तक का काल सक्रान्तिकाल था, जिसमे भारतीय आर्यभाषा धीरे-धीरे अपभ्रश की स्थिति को छोड कर आधुनिक काल की विशेषताओ से युक्त होती जा रही थी।[१]

यहा यह अनुमान करना सभवत अनुचित न होगा कि अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ की भाति ही अवधी का जन्म तथा विकास भी समान परिस्थितियो मे हुआ होगा। इसका सर्वथा आरम्भिक स्वरूप क्या था, यह कह सकना कठिन है क्योकि डॉ० तिवारी द्वारा कथित सक्रान्तिकाल की भाषा का अध्ययन करने के लिए अभी तक जो सामग्री सुलभ हो सकी है, वह पर्याप्त नही है। जो कुछ थोडा बहुत साहित्य उपलब्ध भी हो सका है उसमे अपभ्रश की छाप लगी हुई है, अत वह अवधी के स्वाभाविक विकास के ज्ञान मे विशेष सहायता नही प्रदान करता। हाँ, इसका इतना महत्व अवश्य है कि उसमे नवीन भाषा के कतिपय लक्षण अवश्य दृष्टिगोचर होते है।

अवधी के तत्कालीन स्वरूप का आभास पाने के लिए एक कृति विशेषत उल्लेखनीय है और वह है काशी, कन्नौज के गहडवार-नरेश गोविन्दचन्द्र (१११४–११५५ ई०) के आश्रित पडित दामोदर की रचना 'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरणम्'। इस ग्रन्थ का प्रणयन राजकुमारो को स्थानीय लोकभाषा सिखाने के लिए किया गया था, अत इसमे तत्कालीन लोकभाषा के स्वरूप का विवेचन होना सर्वथा स्वाभाविक था। सस्कृत के माध्यम से इस ग्रन्थ मे तत्कालीन प्रचलित वाग्व्यवहार की शिक्षा दी गई है और इसी प्रसग मे काशी, कोशल प्रदेश की काव्य-भाषा के स्वरूप की भी प्रामाणिक विवेचना हो गई है। पडित दामोदर ने लोक-व्यवहार मे प्रचलित भाषा को 'अपभ्रश' या 'अपभ्रष्ट' नाम से उल्लिखित किया है,[२] जिससे ज्ञात होता है कि उस समय तक अवधी तथा अन्य भाषाओ को स्वतत्र रूप मे महत्त्व न प्राप्त हो सका था।

---

१ डॉ० उदयनारायण तिवारी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० १४१।

२ उक्ति-व्यक्ति-प्रकरणम् ग्रन्थ-सम्पादक का प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ७।

'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरणम्' मे प्राप्त अपभ्रंश भाषा मे सामान्यत प्राच्य-प्रदेश और मध्य-प्रदेश की भाषा तथा विशेषत कोशली (पूर्वी हिन्दी) के अध्ययन की सर्वाधिक प्रामाणिक सामग्री प्राप्त होती है ।[1] अवधी के प्राचीनतम प्राप्त रूपो के अध्ययन की दृष्टि से इस ग्रन्थ का विशिष्ट महत्त्व है ।[2] इसकी भाषा की प्रमुख विशेषताए इस प्रकार है ।[3]

पदान्त दीर्घ स्वरो को ह्रस्व करने की प्रवृत्ति स्पष्टतया लक्षित की जा सकती है, यथा –आकाख ∠आकाक्षा, लाज ∠लज्जा, पाणि ∠पानीय आदि, परन्तु 'इअ' तथा 'उअ' के सकोच से 'ई', 'ऊ' भी कुछ शब्दो मे प्राप्त होते है, यथा —भडारी ∠ भडारिअ ∠भाडागारिक, गोरु ∠गोरूअ ∠गोरूप आदि ।

अनुस्वार की ध्वनि लुप्त होती प्रतीत होती है और जान पडता है कि आधुनिक अवधी (कोशली) के समान उसका उच्चारण 'न' हो गया था । स्वर-मध्यग अनुस्वार या तो समीपवर्ती सम्पर्कित-स्वर की सानुनासिकता का परिचायक था, या 'वु' अथवा 'उ' की उपस्थिति का द्योतक था, यथा गाउ–गाउ=गाउ या गावु∠ (ग्राम–) । नासिक्य व्यजन अथवा सानुनासिक स्वर का सम्पर्कित - स्वर भी सानुनासिक हो गया जान पडता है, यथा विहाणहि (विहाणहि∠विभान–), काहे = काहे (तुलना करिए, अवधी–काहै), माझ (=माझ) ।

विभक्ति-प्रत्ययो मे सानुनासिक-रूपो के साथ निरनुनासिक रूप भी मिलते है, यथा तेइँ—तेइ, सबहि—सबहि ।

नासिक्य—व्यजनो के ह्रस्वोच्चरित रूप के व्यवहार की पवृत्ति यहा भी मिलती है, यथा नाद (=नान्द), सेफ (सेम्फ) आदि ।

---

१ **उक्ति–व्यक्ति–प्रकरणम् व्याकरणिक अध्ययन, पृ० ७० ।**

2 "In the NIA speech of Uktı–vyaktı, we have specımens of thıs Awadhı or Kosalı speech some 350 years older than the work of Tulsı dasa For convenıence thıs speech can be desıgnated as Old Kosalı, as a name at least as good as Old Awadhı, although Old Awadhı cannot be suıtably used to desıgnate the common source of Awadhı, Bagheli and Chattıs-garhı, and about a thousand or eıght hundred years from now these dıalects ın all lıkelıhood had not dıfferentıated from each other and certaınly ıs more suıtable than Old Eastern Hındı" – Dr. S K Chatterjı, Uktı – Vyaktı-Prakaranam, (Introductıon) P 3

३. **उक्ति-व्यक्ति-प्रकरणम् व्याकरणिक अध्ययन तथा डॉ० उदयनारायण तिवारी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० १५२–५३ ।**

न्ह्, ल्ह्, म्ह् के रूप मे तीन महाप्राण ध्वनिया भी मिलती हैं ऊन्ह∠उष्ण, ल्हुमिआरु (∠स० लुटाक), बाम्हण ∠ब्राह्मण। श्, ष् के स्थान मे स् का प्रयोग भी मिलता है, यथा साकर ∠शर्करा, बिस ∠विष।

द्वित्व-व्यजनो को सरल कर पूर्व-स्वर को दीर्घ करने की प्रवृत्ति यहाँ परिलक्षित होती है यथा–भात∠भत्त∠भक्त, पाक∠पक्क∠पक्व, कूकुर∠कुकुरु∠कुक्कुरो ∠कुर्कुर, मीत∠मित्त∠मित्र, जाड∠जड्ड∠जाड्य इत्यादि।

'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरणम्' की 'कोसली' मे क्रिया के सामान्य वर्तमान (अन्य पु०, ए०व०) के प्रत्यय-अइ,-एइ का 'अ' मे परिवर्तन हुआ है, यथा पढ∠पढइ∠पठति, सोह∠ सोहइ∠शोभते इत्यादि। आ० भा० आ० भाषाओ मे या तो–'अइ' रूप सुरक्षित है या इसका परिवर्तन 'ऐ', 'अए', 'ए' अथवा 'एइ' मे हो गया है। मलिक मुहम्मद जायसी एव तुलसीदास की अवधी मे इस 'अ' परिवर्तन के उदाहरण मिल जाते है।

यहाँ सभी प्रातिपदिक स्वरात है और रूप-निष्पत्ति मे 'अकारान्त' प्रातिपदिक का अनुसरण करते है। इन रूपो मे सरलता है। नपुसक-लिग, पुल्लिग मे विलीन हो गया है। अधिक-प्रयुक्त स्त्री-प्रत्यय – 'इ' या – 'ई' है, यथा – नागि (हि० नगी), 'अधारी राति' (अधेरी रात मे)। अप्राणिवाचक शब्दो के स्त्रीलिग रूप उस वस्तु का लघुत्व अथवा सौदर्य व्यक्त करते है, यथा-पोटलि (हि० पोट्ली), पोथी (पु० पोथा)।

'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरणम्' की 'कोसली' विश्लेषणात्मक-अवस्था की ओर पर्याप्त रूप से अग्रसर है। इसमे परसर्गों के प्रयोग को खूब अपनाया गया है। सम्प्रदान-कारक मे 'किह्', 'केह्', 'किह' या 'किह्' तथा 'कर', 'केर', अपादान मे 'तो', 'पास', और 'हुत' या 'हती', करण कारक मे 'पास' तथा 'सउ' या 'सेउ', अधिकरण मे 'करि', 'माझ' या 'माझ' और सम्बन्ध कारक मे 'करै', 'केर' परसर्गों का अत्यधिक प्रयोग हुआ है।

धातु-रूपो मे सरलीकरण की प्रक्रिया, अपभ्रश से आगे बढी हुई है। सभी धातुएँ प्रथम-गणीय है। एक विशेषता यह है कि अनेक सज्ञा एव विशेषण पदो से क्रियापद बना लिए गए है। अनेक सस्कृत धातुओ को तत्सम अथवा अर्धतत्सम रूप मे अपनाया गया है और अनेक सस्कृत शब्दो से भी नए-नए धातु-पद बनाये गए है, यथा √जाम ∠स जन्म, √घिण-(स० घृणा) इत्यादि। इनके अतिरिक्त अनेक देशी धातुएँ भी यहाँ मिलती है, यथा, √कूद, √घूम, √हिडोल, √रिग, √झड इत्यादि। √आछ्, √रह्, √हो सहायक क्रियाओ का काल-निर्माण मे व्यवहार किया गया है।

√'कर्' के सयोग से निष्पन्न सयुक्त-क्रियापद भी यहाँ मिल जाते है और 'ले पला' (हि० ले भागना) मे 'ले' के साथ सयुक्त क्रियापद का एक उदाहरण मिलता है।

'उक्ति-व्यक्ति–प्रकरणम्' मे सस्कृत के तत्सम या अर्ध-तत्सम शब्दो को प्रचुर मात्रा मे अपनाया गया है। इसमे फारसी-अरबी के दो-चार ही शब्द मिलते है।

इस प्रकार उक्ति-व्यक्ति-प्रकरणम् की लोकभाषा मे आधुनिक-भारतीय-आर्य भाषाओ को जन्म देने वाली सामान्य प्रवृत्तिया सक्रिय दिखाई देती है ।

अवधी के उल्लेख की दृष्टि से 'प्राकृत-पैंगलम्' नामक ग्रन्थ भी उल्लेखनीय है। यह छन्द शास्त्र का ग्रन्थ है तथा इसमे जो छन्द सकलित है वे डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी के मतानुसार एक काल के न होकर सन् ९००-१४०० ई० तक की रचनाएँ है। इसमे दो छन्द कर्पूरमजरी (प्राकृत) के भी है। अधिकाश पद्यो मे साहित्यिक अपभ्रंश ही मिलती है, पर कुछ मे आ० भा० आ० भाषाओ के पूर्वरूपो की झलक भी मिल जाती है। अवधी के प्रयोग की दृष्टि मे निम्नलिखित छन्द द्रष्टव्य है

पउव बसहि जम्म धरीजै।
सम्पअ अज्जि अधम्मक दिज्जे।
सोउ जुहट्ठिर सकट पावा।
देवक लिक्खिअ केण मेटावा।'[1]

इस उद्धरण मे 'पावा' और 'मेटावा' क्रिया-पद अवधी का स्पष्ट रूप प्रकट करते है।

सन् १९६० ई० मे डॉ० माताप्रसाद गुप्त रोडा कविकृत एक शिलाकित भाषा-काव्य 'राउर वल' (राजकुल विलास) प्रकाश मे लाए है। डा० गुप्त के मतानुसार[2] लेख की भाषा दक्षिण कोसली है, और वह 'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरणम्' की भाषा मे कुछ प्राचीनतर है। डॉ० गुप्त ने लिपि-विन्यास के आधार पर उक्त लेख का समय ग्यारहवी शताब्दी माना है जो परीक्षणीय है। डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त इसे तेरहवी शती के आस-पास की रचना मानते है।[3]

इस काव्य मे विभिन्न प्रदेशो की स्त्रियो का रूप-वर्णन किया गया है तथा भाषा का स्वरूप स्थल-स्थल पर बदलता गया है। अनेक प्रयुक्त वर्तमानकालिक क्रियाएँ अवधी क्रिया-रूपो के समान है, यथा – 'भावइ', 'सुहावइ', 'पावइ', 'आवइ',[4] 'देखसि', 'सोहइ', 'पइसइ', 'दीसइ'[5] तथा 'नावइ'[6] आदि। यह प्रयोग निश्चित रूप से अवधी के पूर्व रूप की

---

१. प्राकृत-पैङ्गलम् एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बगाल सस्करण, १९०२, पृ० ४१२।
२ हिन्दी अनुशीलन वर्ष १३, अक १-२, १९६०, पृ० २३।
३ चन्दायन परिचय, पृ० ३४।
४ हिन्दी अनुशीलन वर्ष १३, अंक १-२, पृ० २६।
५. वही, पृ० २७।
६ वही, पृ० २८।

ओर सकेत करते है किन्तु भाषा की दृष्टि से उक्त रचना का स्वतन्त्र अध्ययन नितान्त अपेक्षित है क्योकि उसमे अपभ्रशोत्तर विविध बोलियो के तत्वो की झलक मिलती है और ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी भाषा प्रादेशिक न होकर देश के विस्तृत भाग म फैली हुई भाषा का रूप है।[1]

'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरणम्' के पश्चात् जो अद्यावधिज्ञात कृतियाँ जायसी के पूर्ववर्ती लेखको द्वारा अवधी मे रचित है उनकी सूची डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस प्रकार दी है[2]

१ – मुल्लादाऊद कृत चदायन (१३७० ई०) ।

२ – ईश्वरदास कृत अगद-पैज, दिल्ली के बादशाह शाह सिकन्दर (सन् १४८९-१५१७) के समय की रचना ।

३ – ईश्वरदास (इशरदास) कृत भरत-विलाप (या भरत मिलाप) । दिल्ली के बादशाह शाह सिकन्दर (सन् १४८९-१५१७ ई०) के राज्यकाल के समय की रचना ।

४ – ईश्वरदास कृत सत्यवती की कथा (१५०१ ई०) ।

५ – कुतुबनकृत मृगावती (सन् १५०३ ई०), शेरशाह के पिता हुसेन शाह के काल मे लिखी गई ।

६ – चदाकृत हितोपदेश (सन् १५०६ ई०) ।

७ – बुरहानकृत अरील (रचना काल अज्ञात) ।

८ – बक्सन कृत छन्द बारहमासा (रचना काल अज्ञात) ।

९ – साधन कृत मैनासत (रचना काल अज्ञात) ।

यहाँ यह उल्लेख कर देना भी आवश्यक है कि एक विद्वान ने 'आल्हखड' को अवधी की सर्वप्रथम रचना माना है[3] जो उचित नही प्रतीत होता । यह सर्वविदित है कि अभी तक उक्त पुस्तक की कोई भी प्राचीन प्रति प्राप्त नही हुई है और उसे सन् १८६५ ई० मे ही पहली बार लिपिबद्ध कराया गया । कहने की आवश्यकता नही कि जगनिक (स० १२३०) के इस काव्य की भाषा मे कई शताब्दियो तक मौखिक रूप से प्रचलित रहने के कारण कितना अन्तर आ गया होगा । उसके वर्तमान उपलब्ध पाठ मे न केवल भाषा सम्बन्धी विकृतियाँ ही प्राप्त है, अपितु उसमे ऐसे शब्दो तक का समावेश हो गया है जिनके कारण उसकी भाषा के वास्तविक रूप का ज्ञान तथा उसका काल-निर्णय अत्यधिक कठिन हो गया

---

१ डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त चन्दायन, परिचय, पृ० ३५ ।

२ डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल पद्मावत, भूमिका, पृ० २९ ।

है। साथ ही यह भी विचारणीय है कि जगनिक बुंदेलखंड का था। अत उसकी भाषा के प्रारम्भिक रूप में बुन्देली के व्यवहार की सम्भावना अधिक है।

अन्य उपरिलिखित ग्रन्थों में से कुछ तो सुलभ नहीं है और जिनकी हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त है अथवा जो अभी हाल में प्रकाशित हुए है,[१] उनकी भाषा के यथार्थ स्वरूप-निर्णय में अनेक बाधाएँ है। प्रथम तो यही कि अधिकाशत प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थ अपने मूल रूप में नहीं है, वरन् प्रतिलिपि-रूप में प्राप्त होते है। प्रतिलिपिकार प्रतिलिपि करते समय प्राय भाषा की शुद्धता पर विशेष बल नहीं देते रहे, और यत्र-तत्र तो उन्होंने भाषा को सुधार दिया है। ऐसी स्थिति में भाषा का वास्तविक रूप भ्रष्ट हो जाता है। इसके साथ ही मौखिक रूप से प्रचलित होने के कारण एक तो भाषा में विकृति आती है, साथ ही अनेक प्रक्षिप्त अशो का समावेश भी हो जाता है, अतएव इस प्रकार के दोषों से युक्त ग्रन्थ भाषा के मूल स्वरूप-निर्णय में सहायता प्रदान नहीं करते।

इनके अतिरिक्त एक अन्य कारण यह भी है कि मुसलमान कवियों द्वारा रचित हिन्दी-प्रेमाख्यान-काव्य अधिकाशत अरबी-फारसी लिपि में लिखे गए। इस लिपि में व्यजन मुख्यत नुक्तों (बिन्दुओं) पर आधारित है और शीघ्रता में लेखक प्राय इन बिन्दुओं तथा मात्राओं (जेर, जबर, पेश) का व्यवहार नहीं करते, फलत नागरी-लिपि में प्रतिलिपि करते समय अशुद्धियों की पर्याप्त सम्भावना है, जैसे, एक ही शब्द 'पुरुख', 'बिरिख' अथवा 'बरख' पढा जा सकता है, अतएव विद्वानों द्वारा सुसम्पादित सस्करणों के प्रकाश में आने के उपरान्त ही भाषा का स्वरूप-निर्णय हो सकता है।

'चन्दायन' तथा 'मृगावती' की भाषा के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय तो उनके पाठ के सम्यक् निर्धारण तथा विस्तृत व्याकरणिक अध्ययन के उपरान्त ही दिया जा सकता है किन्तु सामान्य रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इन कृतियों में एक ओर हिन्दी की उदयकालीन तथा अपभ्रशोत्तर भाषा के प्रचुर लक्षण प्राप्त होते है और दूसरी ओर अवधी युक्त भाषा का वह रूप लक्षित किया जा सकता है जो देश के विस्तृत भूभाग में प्रचलित भाषा से यथेष्ट प्रभावित था। इसीलिए अब्दुर्कादिर बदायूनी ने चदायन को

---

१ (अ) मैनचैस्टर (इगलैण्ड) के जॉन रीलैण्ड्स पुस्तकालय की प्रति तथा कतिपय अन्य प्रतियों की सहायता से डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'चन्दायन' का एक पाठ सन् १९६४ ई० में प्रकाशित किया है। इससे पहले डॉ० विश्वनाथप्रसाद हिन्दी इस्टीट्यूट आगरा से 'चन्दायन' का एक पाठ प्रस्तुत कर चुके है।

(आ) डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 'मृगावती' का एक पाठ सन् १९६४ ई० में प्रकाशित किया है।

(इ) ग्वालियर के श्री हरिहरनिवास जी द्विवेदी ने सन् १९५९ ई० में 'मैंनासत' का एक पाठ प्रकाशित किया है।

'हिन्दवी भाषा की मसनवी' कहा है ।[1] कुतुबन ने भी 'मृगावती' मे एक स्थल पर कहा है

खट भाखा आहहि एहि माँझ ।[2]

'खट भाखा' से कवि का तात्पर्य 'मिश्रित भाषा' अथवा बोलचाल की भाषा से ही जान पडता है क्योकि एक अन्य स्थल पर कवि कहता है

सास्तर अषिर बहुतै आये । औ देसी चुनि चुनि कछु लाये ।
पढत सुहावन दीजै कानू । इह के सुनत न भावै आनू ।।[3]

कथा को सरस बनाने के उद्देश्य से कवि ने शास्त्रो का निचोड तो रखा ही, साथ ही चुने हुए देशी शब्दो का भी व्यवहार किया। 'मृगावती' मे अवधी व्यवहृत है किन्तु उसमे प्राकृत-अपभ्रश की शब्दावली सर्वथा स्पष्ट है और देशज शब्दो का उल्लेखनीय मात्रा मे प्रयोग है। वास्तव मे सत्य यह है कि सूफी कवियो ने अवधी मे काव्य-रचना की किन्तु विभिन्न रचनाओ मे अवधी किन-किन रूपो मे थी, इसका स्पष्टीकरण काव्यो के रचना-कालो को ध्यान मे रखते हुए ही किया जा सकता है। जो काव्य जितना प्राचीन होगा वह अपभ्रश के तत्वो से उतना ही अधिक पूर्ण होगा और शुद्ध अवधी से उतना ही दूर। यही कारण है कि 'चन्दायन' तथा 'मृगावती' मे अवधी का वह परिष्कृत रूप नही मिलता जो परवर्त्ती रचनाओ मे उपलब्ध होता है।

सक्षेपत यह कहा जा सकता है कि साहित्यिक परम्परा के अन्तर्गत आने वाली इन कृतियो मे प्रयुक्त होने के अतिरिक्त, अवधी, लोकभाषा के रूप मे भी विकसित तथा प्रचलित होती रही होगी, और इस प्रकार साहित्य तथा लोक-जीवन का अंग बन कर वह धीरे-धीरे जो शक्ति तथा सौदर्य सचित करती रही उसी का अत्यन्त भव्य प्रकाशन जायसी-काव्य मे हुआ।

जायसी का अवधी से सम्बन्ध कदाचित् यह कहने की आवश्यकता नही कि अवधी भाषा पर जायसी का असाधारण अधिकार है। उनकी कृतियो मे उसका जितना सहज, स्वाभाविक तथा सजीव रूप निखरा है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जायसी को इतनी सफल अभिव्यञ्जना करने की क्षमता किस प्रकार प्राप्त हुई ? भाषा के साधिकार प्रयोग के हेतु प्रतिभा का होना तो आवश्यक है ही, सतत् अभ्यास के द्वारा भी इसमे समुचित योगदान प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त यदि प्रयोगार्ह भाषा प्रयोगकर्ता की भाषा हो, अथवा उसके निवासस्थान की भाषा हो तो जीवन के

---

१. "व किताब चन्दाबन रा कि मसनवीस्त बजबान हिन्दवी दर बयान इश्क लोरक व चन्दा नाम" — मुनतखब-अल्-तवारीख, सं० मौलवी अहमदअली, बिबिलिओथिका इण्डिका सीरीज, सन् १८६८ ई०, भाग १, पृ० २५० ।

२. कुतुबन कृत मृगावती, सं० डॉ० शिवगोपाल मिश्र, पृ० २०३ ।

३ वही, पृ० २०३ ।

लगभग सभी व्यापारो मे नित्य-प्रति उस भाषा का प्रयोग करने के कारण उसमे कवि की पैठ और गहरी हो जाती है। इन कारणो के साथ ही पूर्ववर्ती कवियो की तत्सबधी कृतियो का अध्ययन भी भाषा-ज्ञान को बढाने मे महत्वपूर्ण योग देता है। किसी भी भाषा के उत्कृष्ट कवियो की कृतियो का अध्ययन करने से उस भाषा के सुन्दर प्रयोगो एव अभिव्यजक रूपो का ज्ञान होना स्वाभाविक ही है और इसीलिए कुछ विद्वानो ने भाषा पर अधिकार प्राप्त करने के लिए सम्बद्ध प्रदेश मे निवास के साथ ही साथ तदन्तर्गत विशिष्ट कृतियो के अध्ययन के महत्व को स्वीकार किया है।[1] अस्तु, उपर्युक्त तथ्यो को ध्यान मे रखते हुए जायसी के भाषा-ज्ञान के कारणो से पूर्णतया परिचित होने के हेतु, उनके जीवन-वृत्त के सम्बद्ध अशो—जन्मकाल, जन्म-स्थान तथा अन्य निवासस्थान और शिक्षा-दीक्षा आदि—की चर्चा करना अप्रासगिक न होगा।

जन्म-काल यह खेद का विषय है कि हिन्दी के अन्य प्राचीन कवियो की भाति जायसी के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध मे हमारा ज्ञान अत्यधिक सीमित है। जायसी ने अपने जन्मकाल के सम्बन्ध मे लिखा है

भा अवतार मोर नव सदी। तीस बरिख ऊपर कवि बदी।[2]

इस पक्ति का अर्थ विद्वानो ने कई प्रकार से किया है। प० रामचन्द्र शुक्ल[3] तथा सैयद कल्वे मुस्तफा[4] नौ सदी का अर्थ ९०० हिजरी करते हुए इसी वर्ष (स० १४९४-९५ ई०) को जायसी का जन्मकाल मानते है। डॉ० जयदेव कुलश्रेष्ठ[5] भी इससे सहमत है। प० चन्द्रबली पाडेय[6] तथा श्री सूर्यकान्त शास्त्री[7] ने इस पक्ति का अर्थ नवी सदी हिजरी मे तीस वर्ष बीतने पर, अर्थात् ८३० हिजरी (सन् १४२७ ई०) स्वीकार कर उसी को जायसी का जन्मकाल माना है। डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ[8] ने आखिरी कलाम की एक अन्य पक्ति —

नौ सै बरस छतिस जो भए। तब एहि कविता आखर कहे।[9]

---

१ **ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानौ**
ऐसे ऐ कविन की बानी हू जो जानिए। काव्यनिर्णय, पृ० ६।
२ **जायसी ग्रन्थावली, स० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ६८८।**
३ **जायसी ग्रन्थावली, स० पं० रामचन्द्र शुक्ल, पंचम सस्करण, भूमिका, पृ० ५।**
४ **सैयद कल्बे मुस्तफा मलिक मुहम्मद जायसी, पृ० ७५।**
५. **डॉ० जयदेव कुलश्रेष्ठ सूफी महाकवि जायसी, पृ० ३१।**
६. **नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १४, पृ० ३९७।**
७ **पदुमावति-प्रीफेस, पृ० ५।**
८ **डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ : मलिक मुहम्मद जायसी, पृ० १६।**
९ **आखिरी कलाम, १३।१**

के आधार पर यह अनुमान लगाया है कि ९३६ हिजरी से तीस वर्ष पूर्व, अर्थात् ९०६ हिजरी मे कवि का जन्म हुआ था। श्री गोपालराय[1] के मतानुसार नौ सदी का अर्थ है ८०१ से ९०० तक की सौ वर्षो की अवधि। अत उनके विचार से जायसी का जन्म इसी अवधि के बीच ८८१ हिजरी (१४७६ ई०) मे हुआ था। प० शिवसहाय पाठक[2] भी इसके पक्ष मे है।

भाषा–विवेचन के प्रसग मे उपर्युक्त विभिन्न मतो की छानबीन तथा समीक्षा एव तत्सबधी निर्णयात्मक विवेचन अप्रासगिक होगा किन्तु इतना कहा जा सकता है कि उक्त पक्ति की प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे किसी को लेशमात्र भी सन्देह नही है और यह सम्भव है कि जायसी का जन्म ९०० हिजरी के आसपास हुआ होगा।

इसकी पुष्टि अन्य प्रमाणो से भी होती है। जायसी ने अपने जन्मकाल के आस पास आने वाले भूकम्प[3] तथा सूर्यग्रहण[4] का उल्लेख किया है। अन्य सूत्रो के अनुसार भी ९११ हिजरी (१५०५ ई०) मे एक बडा भूकम्प अवश्य आया था[5] और एक सूर्यग्रहण ९०८ हिजरी मे पडा था।[6]

---

१ हिन्दी-अनुशीलन, वर्ष ११, अंक ३, १९५८, पृ० १०।

२ चित्ररेखा, सं० प० शिवसहाय पाठक, भूमिका, पृ० २८।

३ आवत उधतचार बड ठाना। भा भूकम्प जगत अकुलाना।
धरती दीन्ह चक्र बिधि भाईं। फिरै अकास रहट के नाईं।
गिरि पहार मेदिनि तस हाला। जस चाला चलनी भल चाला।
मिरित लोक जेंहि रचा हिंडोला। सरग पताल पवन घट (खट) डोला। आखि. ४।२-५

४ सौ अस बपुरै गहनै लीन्हा। औ धरि बाधि चंडाले दीन्हा।
गा अलोप होइ भा अँधियारा। दीखै दिनहिं सरग मां तारा।
उवतै झाँप्पि लीन्ह धुप चापें। लाग सरप(सरब) जिउ थरथर कांपे।
जिउ का परे कया (ग्यान?) सब छूटै। तब भा मोख गहन जो छूटै। आखि. ५।४-७

5 'Next year (911 A H, -1505 A D) a violent earthquake occurred at Agra which shook the earth to its foundations and levelled many beautiful buildings and houses to the ground'
Dr Ishwari Prasad, A Short History of Muslim Rule in India, P 232

इस सम्बन्ध मे द्रष्टव्य – आइने अकबरी, पृ० ४२१; दि जर्नल ऑफ वि विहार रिसर्च सोसाइटी, भाग ३९, पृ० १९; बाबरनामा-इलियट भाग ४, पृ० २१८ तथा मुंतखबुतवारीख (अंग्रेजी अनुवाद : रैंकिग), भाग १, पृ० ४२१।

६ राबर्ट सीवेल और शंकर बालकृष्ण दीक्षित इंडियन कलेंण्डर सन् १८९६ई०, पृ० १२५।

इन उल्लेखो के अतिरिक्त जायसी के काव्य मे एक अन्य उल्लेख प्राप्त होता है जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । उन्होंने एक स्थान पर शेरशाह का शाहेवक्त के रूप मे वर्णन किया है

सेरसाहि ढिल्ली सुलतानू । चारिउ खड तपइ जस भानू ।[1]

जायसी के उक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि शेरशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठ चुका था और उसका अभ्युदय हो चुका था । सम्भवत इसी अभ्युदयकाल मे उनकी भेट शेरशाह से हुई थी । इस सम्बन्ध मे पदमावत का यह दोहा उल्लेखनीय है

दीन्ह असीस मुहम्मद करहु जुगहि जुग राज ।
पातसाहि तुम्ह जग के जग तुम्हार मुहताज ।।[2]

इस दोहे की शब्दावली इस प्रकार की है जैसे कवि ने स्वय हाथ उठाकर सुलतान को आशीर्वाद दिया हो और इसी प्रत्यक्ष घटना को दोहे मे निबद्ध कर दिया हो । ऐतिहासिक सूत्रो के अनुसार शेरशाह का दिल्ली के सुलतान-पद पर अभिषेक २६ जनवरी, १५४२ ई० को हुआ था ।[3] जायसी उस समय जीवित रहे होगे और उन्होंने सुलतान का अभ्युदय देखा होगा, यह निश्चित ही प्रतीत होता है । अतएव जायसी की जन्मतिथि भले ही अनिश्चित हो किन्तु उनके युग के सम्बन्ध मे कोई शका नही हो सकती । भाषा के अध्ययन की दृष्टि से उनके युग का निश्चय ही अधिक महत्वपूर्ण है और उस सम्बन्ध मे प्राप्त अन्तस्साक्ष्य अत्यन्त स्पष्ट है ।

जन्म-स्थान जन्मस्थान के सम्बन्ध मे भी किंचित् मतभेद है । यह तो सभी स्वीकार करते है कि जायस से जायसी का अत्यधिक घनिष्ठ सबध था तथा उन्होंने पदमावत की रचना भी इसी स्थान मे की थी, किन्तु वे जायस मे ही पैदा हुए थे अथवा किसी अन्य स्थान से आकर जायस मे बसे थे, यह विवाद का विषय है । जायसी ने एक स्थल पर कहा है

जाएस नगर धरम अस्थानू ।तहवां यह कबि कीन्ह बखानू ।[4]

इसी पक्ति के दो अन्य पाठान्तर भी प्राप्त होते है

१ – जाएस नगर धरम अस्थानू । तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू ।[5]
२ – जाएस नगर धरम अस्थानू । तहाँ जाइ कवि कीन्ह बखानू ।[6]

---

१. पदमावत १३।१
२ पदमावत १३।८-९
३ डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत, भूमिका, पृ० ३३ ।
४. पदमावत २३ । १
५. जायसी ग्रन्थावली . सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १३४ (पाठान्तर) ।
६. वही, पृ० १३४ ।

जायसी का जन्म स्थान
तथा अन्य
निवास स्थान
पहाड़ी
गोला गोकरन नाथ
खीरी
सीतापुर
बहराइच
गोंडा
बाँसी
बस्ती
बाराबंकी
जायस
फैजाबाद
टाँडा
लखनऊ
अमेठी
उन्नाव
गंगा
रायबरेली
मानिकपुर
गाजीपुर
जौनपुर
फतेहपुर
इलाहाबाद
जमुना
बाँदा
मिर्जापुर
रीवाँ
जबलपुर
नर्मदा
मंडला
निश्चित निवास स्थान
सम्भावित निवास स्थान
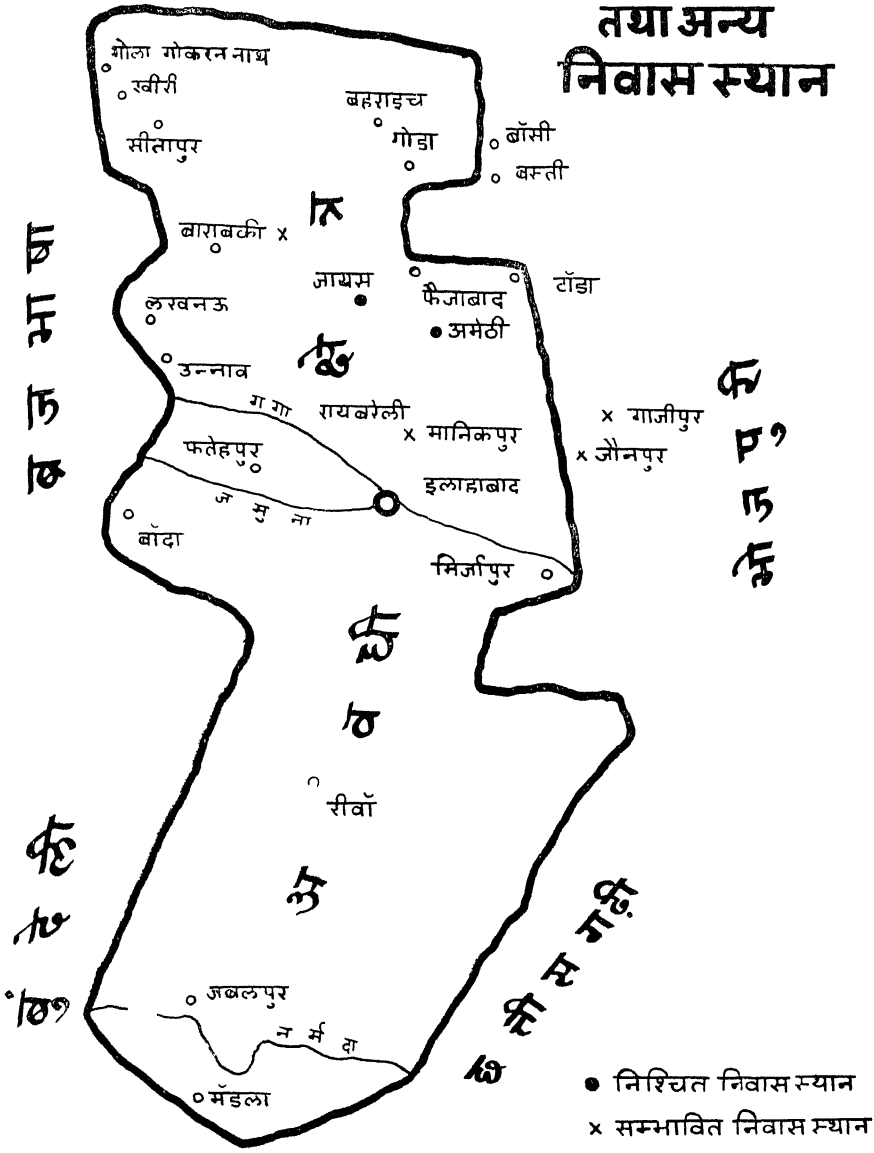
सर ग्रियर्सन तथा प० सुधाकर द्विवेदी ने 'तहाँ आइ' वाले पाठ को स्वीकार करते हुए यह अनुमान किया है कि जायसी ने किसी अन्य स्थान से आकर जायस मे निवास किया और वहाँ आकर पदमावत की रचना की। इस सम्बन्ध मे जायमी की दो अन्य पक्तिया भी उद्धृत की जाती है

> **जाएस नगर मोर अस्थानू। नगर क नावँ आदि उदयानू।**
> **तहाँ दिवस दस पहुँनै आएउँ। भा बैराग बहुत सुख पाएउँ।[१]**

इसमे कथित 'दिवस दस पहुँनै आएउँ' का अर्थ भी इसी प्रकार निकाला गया है कि सचमुच 'जायसी किसी दूसरी जगह से जायस मे कुछ दिनो के लिए पाहुने के रूप मे आये थे, किन्तु वहाँ आकर उनके जीवन मे एक ऐसी घटना घटी जिसने जीवन के प्रवाह को ही वदल डाला और उन्हे अनुभव के एक नए लोक मे पहुचा दिया। उनके हृदय मे वैराग्य की पहली किरण स्फुटित हुई। हृदय मे कोई अपूर्व ज्योति भर गई'।[२] डॉ० मुशीराम शर्मा का भी मत यही है।[३] किन्तु आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल का मत इससे भिन्न है। उन्होने जायस के निवासियो का हवाला देते हुए जायसी की जन्मभूमि जायस को ही माना है,[४] प० सूर्यकान्त शास्त्री भी यही मानते है।[५] कुछ जनश्रुतियो के अनुसार ये गाजीपुर मे पैदा हुए थे।[६] अन्य निवासस्थानो मे मानिकपुर[७] (जिला प्रतापगढ), अमेठी[८] (जिला सुलतानपुर) तथा सामाराम[९] का भी उल्लेख किया जाता है।[१०]

सच तो यह है कि जायसी के जन्मस्थान अथवा निवासस्थान के सम्बन्ध मे इतनी कम सामग्री प्राप्त है कि उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह कह सकना कठिन है कि जायसी की जन्मभूमि जायस थी अथवा वे किसी अन्य स्थान से आकर जायस मे बस गये थे किन्तु इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कवि जायसी का जायस से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था। ऐसी स्थिति मे जायसी की भाषा पर जायस तथा उसके समीपवर्ती प्रदेश की भाषा का प्रबल प्रभाव न होना ही अस्वाभाविक कहा जायगा।

---

१ आखिरी कलाम, १०।१-२
२ डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत, भूमिका, पृ० ३५।
३ डॉ० मुशीराम शर्मा पदमावत–भाष्य, पृ० २८।
४ प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रंथावली, भूमिका, पृ० ६।
५ डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री, पदुमावति, प्रीफेस, पृ० ५।
६ डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ मलिक मुहम्मद जायसी, पृ० ११।
७ डॉ० जयदेव कुलश्रेष्ठ सूफी महाकवि जायसी, पृ० ३२।
८ सैयद कल्वे मुस्तफा मलिक मुहम्मद जायसी, पृ० ३८ तथा रामचन्द्र शुक्ल जायसी-ग्रथावली, भूमिका, पृ० ११।
९ हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषाक, पृ० ३७२।
१० डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ मलिक मुहम्मद जायसी, पृ० ११।

शिक्षा-दीक्षा जायसी की शिक्षा-दीक्षा के सम्बन्ध मे इस प्रकार के उल्लेख नही प्राप्त होते है जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि उन्होने किसी स्थान पर नियमित रूप मे शिक्षा प्राप्त की थी। साम्प्रदायिक दृष्टि से वे निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा मे आते है। यह परम्परा दो शाखाओ मे विभाजित हुई, एक जायस वाली और दूसरी मानिकपुर कालपी वाली। कवि ने इन दोनो ही परम्पराओ का उल्लेख किया है किन्तु मानिकपुर कालपी वाली अपेक्षाकृत अधिक विस्तार मे वर्णित है इसलिए ग्रियर्सन ने उन्हे शेख मोहिदी का शिष्य माना है। उन्होने सैयद अशरफ जहागीर को जायसी का मन्त्र-गुरु माना है।[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का विचार है कि सैयद अशरफ जहागीर जायसी के दीक्षा-गुरु थे[2] किन्तु यह उचित नही जान पडता क्योकि सैयद अशरफ की मृत्यु जायसी के जन्म से बहुत पूर्व ८०८ हिजरी मे हो चुकी थी[3] इसलिए कुछ लोगो ने यह अनुमान किया है कि उनके उत्तराधिकारी शाह मुबारक बोदले, जो मुहीउद्दीन के समकालीन थे, जायसी के गुरु थे। इधर हाल ही मे जायसी की एक नवीन कृति 'चित्ररेखा' प्रकाश मे आई है जिसमे जायसी ने अपने गुरु के सम्बन्ध मे इस प्रकार कहा है

> महदी गुरू सेख बुरहानू।
> कालपि नगर तेहिक अस्थानू॥
> मक्कइ चौथ कहहि जस लागा।
> जिन्ह वे छुए पाप तिन्ह भागा॥
> सो मोरा गुरु तिन्ह हौं चेला।[4]

यह पदमावत की निम्नलिखित चौपाइयो पर प्रकाश डालता है

> गुरु मोहदी खेवक मै सेवा।
> चले उताइल जिन्ह कर खेवा॥
> अगुआ भएउ सेख बुरहानू।
> पथ लाइ जेहि दीन्ह गिआनू॥[5]

इससे यह सिद्ध हो जाता है कि कालपी के शेख बुरहान के बाद मेहदी गुरु नाम के कोई सन्त जायसी के गुरु नही थे बल्कि शेख बुरहान के दादागुरु और शेख अहलदाद के गुरु सैयद मोहम्मद, महदी के विरद के अनुसार, स्वय शेख बुरहान ही महदी गुरु थे और जायसी उनके शिष्य थे। कवि को अशरफी परम्परा के शाह मुबारक बोदले (शेख—मुबारक)

---

१ ग्रियर्सन तथा म० म० सुधाकर द्विवेदी पदुमावती, पृ० ११।
२ पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली, (भूमिका) पृ० १०।
३ हिन्दी अनुशीलन धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, पृ० ३६८।
४ चित्ररेखा, सं० पं० शिवसहाय पाठक, पृ० ७४।
५ पदमावत, २०।१-२

से भी ज्ञान-क्षेत्र मे महत्वपूर्ण उपलब्धिया हुई होगी, अतएव स्वभाव मे विनम्र कवि ने उनकी परम्परा का भी श्रद्धापूर्वक उल्लेख किया है।

समुचित प्रमाणो के अभाव मे यह निश्चयपूर्वक कह सकना कठिन है कि उन्होने काव्य-सिद्धान्तो, रीति-ग्रन्थो तथा अन्य विषयो का नियमित रूप से अध्ययन किया था। ग्रियर्सन महोदय का अनुमान है कि जायसी ने जायस मे आकर पडितो से सस्कृत-काव्य-शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की[1]। श्री इन्द्रचन्द्र नारग के मतानुसार जायसी सस्कृत के पडित थे और उन्होने सस्कृत अलकार-शास्त्र का गहन अध्ययन किया था,[2] किन्तु उन्होने अपने इस अनुमान की पुष्टि के लिए कोई प्रमाण नही प्रस्तुत किया है। जायसी की रचनाओ का अध्ययन करने से उनके सस्कृत-ज्ञान का कोई आभास नही मिलता, उनकी कृतियो मे तत्सम शब्दो का अनुपात बहुत कम है और दैनिक बोलचाल के शब्दो का ठेठ रूप ही अधिकतर प्रयुक्त हुआ है। यदि जायसी सस्कृत के ज्ञाता होते तो उनकी रचनाओ मे सस्कृत शब्दो का अनुपात स्वत बढ गया होता। प० रामचन्द्र शुक्ल ने इस सम्बध मे दो अन्य तर्क प्रस्तुत किए है।[3] एक तो यह कि जायसी ने पर्यायवाची शब्दो का (—विशेषत सूर्य और चद्र के-जिनका जायसी-काव्य मे बहुत स्थलो पर उपयोग हुआ है) बहुत कम व्यवहार किया है और दूसरे यह कि सस्कृत-व्याकरण की दृष्टि से जायसी के अनेक प्रयोग दूषित है। ये दोनो तर्क सर्वथा सत्य है और कवि के सीमित सस्कृत-ज्ञान की पुष्टि करते है। ऐसी स्थिति मे जायसी को सस्कृत का पडित मानना अनुचित ही होगा। प्रसगवश यह भी उल्लेखनीय है कि जायसी के काव्य मे अरबी-फारसी की उक्तियो तथा शब्दावली का भी यत्र-तत्र प्रयोग मिलता है, किन्तु इस आधार पर यह नही कहा जा सकता कि जायसी ने उन भाषाओ का विधिवत् अध्ययन किया था। मध्यकालीन मुसलमानो के पारस्परिक व्यवहार की भाषा फारसी थी और अरबी उनकी धार्मिक भाषा थी। अस्तु, मुसलमान होने तथा अन्य मुसलमानो के सम्पर्क मे आने के कारण उन्हे इन भाषाओ का ज्ञान सहज रूप से ही रहा होगा। जहा तक जायसी के काव्यशास्त्रीय ज्ञान का प्रश्न है, शुक्ल जी का यह अभिमत ही उचित प्रतीत होता है

'जायसी ने काव्य-शैली किसी पडित मे न सीख कर किसी कवि से सीखी। उस समय काव्य व्यवसायियो को प्राकृत और अपभ्रश से पूर्ण परिचित होना पडता था। छद और रीति आदि के परिज्ञान के लिए भाषा-कविजन प्राकृत और अपभ्रश का सहारा लेते थे। ऐसे ही किसी कवि से जायसी ने काव्य-रीति सीखी होगी'।[4]

---

१ ग्रियर्सन तथा म० म० सुधाकर द्विवेदी पदुमावती, पृ० २।
२ इन्द्रचन्द्र नारग पदमावत-सार, कवि-परिचय, पृ० ३-४।
३ रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली (भूमिका) पृ० १७४।
४ वही, पृ० १७५।

पदमावत मे प्राकृत-अपभ्रंश के 'दिनअर', 'ससिअर', 'अहुठ', 'पुहुमी', 'खग्गि', 'कथ्था', नित्त', 'कित्त', 'लष्पन', 'अग्गि', 'जग्गि', 'सुक्ख', 'झरक्कि', 'दरक्कि', 'भुम्मि', 'दह', 'पठ्वै', 'दिब्ब', 'बिज्जु' आदि शब्दो के प्रयोग तथा 'हि' विभक्ति का सब कारक-अर्थों मे प्राकृत-अपभ्रंश की प्रथा के अनुसार प्रयोग भी जायसी के सम्बन्ध मे इस अनुमान की पुष्टि करते है।

इस तथ्य के भी प्रमाण मिलते है कि जायसी अपने पूर्ववर्त्ती अवधी-साहित्य से भली प्रकार परिचित थे और उन्होंने उसका अध्ययन भी किया था। 'चन्दायन' और 'पदमावत' के वर्णनो मे अनेक स्थलो पर अत्यधिक साम्य है, यथा

	चन्दायन	पदमावत
(अ)	**सिरजसि छाँह सीजु औ धूपा। (१।५)**	**कीन्हेसि धूप सीउ औ छाँहा। (१।६)**
(आ)	**गउव सिघ एक पँथहि रेंगावै।**	**गउव सिंध रेंगहि एक बाटा।**
	एक घाट दुहुँ पानि पियावै ॥(१२।४)	**दूअउ पानि पिअँहि एक घाटा ॥ (१५।५)**
(इ)	**चकवा चकवी केरि कराहै।(२२।१)**	**करई चकवा केलि कराहीं। (३३।५)**
(ई)	**पडित बैद सयान बुलाए।(१६४।३)**	**ओझा बैद सयान बोलाए। (१२०।२)**

जो हो, इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जायसी बहुश्रुत थे। समाज के विभिन्न वर्गों के साथ उनका सत्सग था और उन्होने प्रत्येक वर्ग से कुछ न कुछ सीखा हो, यह असभव नही प्रतीत होता। उनकी प्रवृत्ति सारग्राहिणी थी और उदारता, सहिष्णुता तथा दैन्य-भावना तो जैसे उनमे कूट-कूट कर भरी थी। उनके जैसा अहकारशून्य व्यक्ति[1] हर एक से कुछ न कुछ सीख सकता था। जायसी के इस अर्जित-ज्ञान का परिचय हमे विविध दृष्टियो से उनके काव्य का अध्ययन करने पर मिलता है। सर्वप्रथम उनके कवि रूप को ही देखे।

शिक्षा-दीक्षा तथा ज्ञानार्जन की दृष्टि से कवि के लिए काव्य-रीतियो का अध्ययन ही पर्याप्त नही है, उसे मानव-स्वभाव की सूक्ष्म प्रवृत्तियो तथा प्रकृति और जगत् के तत्वो की परख होनी भी आवश्यक है। सच्चा कवि सत्य का ज्ञाता, सौदर्य का कर्ता तथा रहस्य का वक्ता होता है। उसके लिए प्रत्येक वस्तु चेतन है, प्रकृति का अणु-अणु उसकी दृष्टि मे मुखर हो उठता है। वह सभ्यता तथा सस्कृति का व्याख्याकार होता है। हम यदि उपर्युक्त तथ्यो को ध्यान मे रख कर जायसी के काव्य का अध्ययन करे तो विदित होता है कि यद्यपि उन्होने रस, छन्द, अलकार, रीति, वृत्ति तथा गुण आदि विविध काव्य-शास्त्रीय तत्वो की सैद्धानिक तथा पारिभाषिक विवेचना नही की है तथापि उन सभी को व्यावहारिक रूप मे अपने काव्य के अतर्गत सुन्दर ढगसे प्रस्तुत किया है। भारतीय लोक तथा साहित्य-प्रचलित परम्पराओ मे प्राप्त कथानक-रूढियो का ग्रहण तथा पदमावत के

---

१ हौं सब कबिन्ह केर पछिलगा। किछु कहि चला तबल दइ डगा। पदमावत २३।२

काव्य-सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए उनका प्रयोग कवि के व्यापक ज्ञान का प्रमाण है। पदमावत मसनवी शैली मे कवि की प्रबन्ध-कल्पना का एक ज्वलन्त उदाहरण है। वह शृगाररस-प्रधान प्रबध-काव्य है अत उसमे रामचरितमानस की भाति विविध जीवन-दशाओ तथा मानव- सम्बधो का चित्रण तो नही हो सका है किंतु रसात्मकता के सचार की दृष्टि से पदमावत का घटना-चक्र प्रबध-काव्य के अनुकूल ही है और विविध प्रसगो मे परस्पर सम्बन्ध-निर्वाह तथा सम्पूर्ण घटनाचक्र मे से उपयुक्त स्थलो के चयन आदि मे कवि की प्रतिभा स्पप्टत लक्षित की जा सकती है। पदमावत मे जायसी का प्रधान उद्देश्य प्रेम-पथ का निरूपण था, मानव-चरित्र की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विशेषताओ का परिचय देना नही अतएव उन्होने चरित्र-चित्रण को विशेष महत्व तो नही दिया है किन्तु सर्वथा उपेक्षा भी नही की है। प्रकृति के प्रति भी कवि सवेदनशील रहा है। वे केशव की भाति प्रकृति के भीतर आखे बन्द करके चलने वाले व्यक्ति नही थे। उनकी कविता मे प्रकृति का—विशेषत ग्राम्य-प्रकृति का—अत्यन्त भव्य रूप निखरा है। जगत् तथा जीवन के प्रति कवि की उदार और व्यापक सवेदनशीलता के साथ ही उसकी नवनवोन्मेषशालिनी कल्पना तथा प्रतिभा ने काव्य-सौन्दर्य मे और अधिक प्राण-शक्ति का सचार कर दिया है।

कवि-कर्म सम्बधी ज्ञान के साथ ही साथ जायसी का अध्यात्म-ज्ञान भी बहुत बढा-चढा था। विशिप्ट जनसमुदाय के सम्पर्क तथा सन्त-समागम ने उनके ज्ञान मे विशेषरूप से अभिवृद्धि की। साथ ही जन-जीवन के उपयोगी तत्वो की चयन-वृत्ति ने उनके दृष्टिकोण को और अधिक व्यापक बना दिया। गोरखपथ, रसायन, वेदान्त, नाथपथ तथा सिद्धो के सहजयान आदि से उन्होने कुछ न कुछ ग्रहण किया और उनकी शब्दावली को अत्यन्त सुन्दर ढग से अपने काव्य मे पिरोकर उसे समृद्ध बनाया।[1] ऐसे स्थलो पर उन्होने द्वयर्थक शब्दावली का प्रयोग किया है जिससे एक ओर तो बाह्य रूप से कथानक की गति भी अवरुद्ध नही होती, दूसरी ओर आध्यात्मिक अर्थों की सरस्वती भी प्रवाहित होती रहती है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने पदमावत के पूर्वार्ध भाग को सहजयान मार्ग तथा नाथ योगियो के मार्ग का प्रतिनिधि ग्रन्थ कहा है।[2] ऐसा कहने मे वे इसी प्रकार की शैली से प्रभावित हुए जान पडते है। काव्य-पक्ष और अध्यात्म-पक्ष का इतना सुन्दर समन्वित प्रयोग जहाँ एक ओर कवि की प्रतिभा का द्योतक है, वही वह उसके ज्ञान पर भी स्पष्ट रूप से प्रकाश डालता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है

गढ तस बाँक जैसि तोरि काया। परखि देखु तैं ओहि की छाया।
पाइअ नाहिं जूझि हठि कीन्हे। जेइ पावा तेइं आपुहि चीन्हे।
नौ पौरी तेहि गढ मँझिआरा। औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा।
दसवं दुआर गुपुत एक नाँकी। अगम चढाव वाट सुठि बाँकी।

---

१ प्रस्तुत कृति षष्ठ अध्याय।

२. **पदमावत . सं० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राक्कथन, पृ० ४४।**

भेदी कोइ जाइ ओहि घाटी । जौं लै भेद चढ़ै होइ चाँटी ।
गढ तर सुरँग कुड अवगाहा । तेहि महँ पंथ कहौ तोहि पाहां ।
चोरि पैठि जस सेंधि सँवारी । जुआ पैंत जेउँ लाव जुआरी ।
जस मरजिया समुँद धँसि मारै हाथ आव तब सीप ।
ढूँढि लेहि ओहि सरग दुआरी औ चढ़ु सिघल दीप ।[१]

इन पक्तियो मे यह स्पष्ट ही लक्षित किया जा सकता है कि जायसी-कृत सिंहलगढ का यह वर्णन द्वयर्थक शब्दावली के कारण मानव-शरीर पर भी घटित किया जा सकता है । जायसी ने इसी प्रकार की शैली अन्यत्र भी अनेक स्थलो पर अपनाई हे ।[२] उनके काव्य मे उपरिलिखित वर्गों के अतिरिक्त इस्लाम तथा हिन्दू धर्मों के अन्य दार्शनिक सिद्धान्तो की झलक भी दिखाई पडती हे । सूफी-सिद्धान्त भी कवि के उल्लेख का विषय रहे है, अत इन सबसे सम्बद्ध शब्दावली तथा भावात्मक प्रयोग जायसी की सारी कृतियो मे बिखरे पडे है । विविध मत-मतान्तरो तथा सम्प्रदायो मे सम्बद्ध शब्दावली जायसी की भाषा का एक महत्वपूर्ण अग है ।

स्फुट जानकारी के अन्तर्गत हम ज्योतिष, इतिहास, स्थापत्य-कला, राज्य-प्रणाली तथा शासन-व्यवस्था और सामाजिक वातावरण आदि के ज्ञान की चर्चा कर सकते है । इन सभी से सम्बद्ध शब्दावली के प्रयोग की सविस्तार चर्चा षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत की गई है, अत इस स्थल पर उनकी विवेचना अनावश्यक है किन्तु इतना कह देना उचित होगा कि लेखक का मन्तव्य यह कदापि नही है कि जायसी इन विषयो के प्रकाण्ड पडित थे । अभीष्ट केवल इतना ही है कि जायसी ने किसी पाठशाला मे नियमित रूप से अध्ययन न करते हुए भी अपनी निरहकार, विनम्र, सहिष्णु तथा उदार प्रकृति के कारण ही ऐसा ज्ञानार्जन किया था जिसने उनकी भाषा पर अपनी अमिट छाप लगाकर उसे और अधिक गौरवमय रूप प्रदान किया है ।

जायसी का भाषा-विषयक दृष्टिकोण यहाँ एक अन्य दृष्टिकोण से भी जायसी और अवधी के सम्बन्ध पर विचार करना अनुचित न होगा, वह यह कि जायसी ने जिस भाषा को अपनी प्रतिभा तथा अर्जित ज्ञान से इतना भव्य रूप प्रदान किया उसके प्रति उनका कोई निश्चित दृष्टिकोण रहा है अथवा नही, और यदि है तो क्या ? इस दृष्टि से उनके काव्य का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि जायसी ने किसी भी स्थल पर इस प्रकार का कोई भी मत व्यक्त नही किया है । यह एक सर्वविदित तथ्य है कि उनके युग मे लोकभाषाओ की प्रतिष्ठा काव्य-भाषा के रूप मे हो चुकी थी और अवधी तथा ब्रज की साहित्यान्तर्गत स्थायी प्रतिष्ठा लगभग निश्चित हो चुकी थी किन्तु अब भी लोकभाषाओ

---

१. पदमावत २१५।१-६
२. पदमावत, दो० २९३-२९४; ३१२-३१३ आदि ।

को काव्यभाषा के रूप मे अपनाते हुए लोगों को हिचक होती थी तथा कुछ ऐसे ही कवि लोकभाषामे रचना करने के कारण ही अपने को हीन समझ बैठते थे। केशव की यह उक्ति

भाषा बोलि न जानही जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मदमति तेहि कवि केशवदास।[1]

इसी प्रकार के हीनभाव से ग्रस्त कवियो की भावना का अत्यन्त सजीव प्रमाण है। इस प्रकार की हीनता का कारण था एक ओर सस्कृत का विशाल तथा विविध रूपात्मक साहित्य और उसकी परिष्कृत, परिमार्जित, समृद्ध तथा सफल भावाभिव्यजक भाषा का होना और दूसरी ओर लोक- प्रचलित- भाषा का अनगढ तथा भदेसपन से युक्तस्वरूप। सस्कृत के इस महत्वपूर्ण पक्ष को ऐसे ही उपेक्षा की दृष्टि से देख कर तो टाला नही जा सकता था और साथ ही लोक-भाषा के व्यवहार्य-पक्ष की ओर से भी आँखे बन्द करना सम्भव न था। कबीर ने तो अपने अक्खड तथा निर्भीक स्वर मे अपना भाषा-विषयक दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया

संस्कीरत है कूप जल, भाषा बहता नीर।[2]

किन्तु तुलसी ने इस एकागी दृष्टिकोण को उचित न ठहराते हुए अपनी समन्वयवादिनी तथा सन्तुलित प्रवृत्ति के अनुसार काव्य-भाषा के सम्बन्ध मे एक स्वस्थ विचार प्रस्तुत किया

का भाषा का सस्कृत, प्रेम चाहिए साच।
काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच ॥[3]

केशव, कबीर तथा तुलसी के उपर्युक्त कथन केवल उनके निजी दृष्टिकोण ही नही थे, वे तत्कालीन साहित्यकारो के तीन प्रकार के दृष्टिकोणो को प्रस्तुत करते थे। जायसी का व्यक्तित्व इन सब से भिन्न था। वे प्रेम की पीर के कवि थे और सम्भवत अपनी सरलता, सहृदयता तथा भाव-प्रवणता के कारण ही उन्होने अपने आपको इन विवादो से दूर रखा। काव्य-भाषा के सम्बन्ध मे उनका केवल एक[4] ही उल्लेख है

---

१ कविप्रिया दूसरा प्रभाव, दोहा सं० १७।
२ सद्गुरु कबीर साहब का साखी ग्रन्थ, भाषा कौ अंग, साखी १, पृष्ठ ३७९।
३. दोहावली. दोहा ५७२।
४. भाषाओ के सम्बन्ध में जायसी का एक अन्य उल्लेख भी प्राप्त होता है :

तुरकी अरबी हिंदुई, भाषा जैती आहि।
जैहि महं मारग प्रेम कर सबै सराहै ताहि।

किंतु उसे डॉ माताप्रसाद गुप्त ने प्रक्षिप्त माना है (जायसी ग्रथावली, पृष्ठ ५६२)।

लिखि भाषा चौपाई कहैं ।[1]

जिससे उनका कोई मत अथवा तर्क सामने नही आता, केवल इतना ही स्पष्ट होता है कि उन्होने अपने समय की अवधी को 'भाषा' कहा है ।[2] उनके काव्य का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हे जनभाषा ही प्रिय थी । वे न तो संस्कृत के ज्ञाता थे और न भावाभिव्यजना मात्र के लिए उन्होने उसका ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता समझी, किन्तु कही भी संस्कृत के प्रति अनादर का भाव उनकी रचनाओ से प्रकट हो, ऐसी बात नही । वस्तुत जैसा अभी कहा जा चुका है कि जायसी प्रेम की पीर के कवि थे । वे अपनी अनुभूति को सामान्यतम व्यक्ति तक के हृदय की गहराइयो मे उतार देना चाहते थे और इसीलिए उन्होने लोकप्रचलित भाषा को अपनाया । उल्लेखनीय यह है कि उस युग मे ब्रजभाषा भी काव्यभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित थी और वह अवधी की अपेक्षा अधिक व्यापक भी थी, किन्तु जायसी ने फिर भी अवधी को ही अपने काव्य की भाषा के रूप मे स्वीकार किया । पिछले पृष्ठो मे इस बात का संकेत किया जा चुका है कि जायसी अवधी-क्षेत्र के कवि थे तथा अवधी उनकी मातृभाषा भी रही थी । उनके सम्बन्ध मे जो उल्लेख प्राप्त है उनसे इसी प्रकार की अधिक सम्भावना होती है कि वे पर्यटनशील साधु नही थे तथा एक स्थान पर रहना ही उनको अधिक प्रिय था । ऐसी स्थिति मे यह सर्वथा स्वाभाविक था कि वे अवधी को काव्यभाषा के रूप मे अपनाते । अन्य सूफी फकीरो की भी यही विशेषता रही है कि वे जिस क्षेत्र मे गए वहा की बोली को उन्होने अपनाया और वहा के रहने वालो मे अपने विचार उनकी ही बोली मे व्यक्त किए ।[3]

लोकभाषा की प्रतिष्ठा के लिए जायसी का यह प्रयास बडा ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ क्योकि इन्होने उसकी अभिव्यजना-शक्ति को भव्य रूप मे प्रदर्शित करके यह सिद्ध कर दिया कि जनभाषा मे भी व्यजनात्मक शक्तियो का अस्तित्व है । जायसी-कृत काव्य ने अवधी के महत्व को बढाने मे प्रशसनीय योग दिया, इस दृष्टि से अवधी और जायसी का सम्बन्ध अटूट है ।

---

१. पदमावत : २४।५

२. तुलसी ने भी मानस को 'भाषाबद्ध' या भाषा भणिति कहा है ।

३. मौलाना अब्दुलहक : उर्दू की इब्तिदाई नशोनुमा में सूफियाये कराम के काम, पृ० ४ ।

२

ध्वनि-विचार

अवधी-ध्वनि-समूह आधुनिक अवधी मे ध्वनियो की स्थिति इस प्रकार है

स्वर[1] · अ, अ, अॅ, आ, इ, इँ, इ०, ई, ईँ, उ, उँ, उ०, ऊ, ऊँ ए̮, ए̮ँ, ए̮०, ए, एँ, ओ̮, ओ̮, ओ, ओ।

व्यजन[2]

		द्वयोष्ठ्य	दन्त्य	वर्त्स्य	तालव्य	मूर्धन्य	कठ्य	स्वरयत्रमुखी
स्पर्श	अल्पप्राण	प् ब्	त् द्			ट् ड्	क् ग्	
	महाप्राण	फ् भ्	थ् ध्			ठ् ढ्	ख् घ्	
स्पर्श-सघर्षी	अल्पप्राण				च् ज्			
	महाप्राण				छ् झ्			
अनुनासिक	अल्पप्राण	म्		न्	(ञ्)	(ण्)	(ङ्)	
	महाप्राण	म्ह्	न्ह्					
पार्श्विक	अल्पप्राण				ल्			
	महाप्राण				ल्ह्			
लुण्ठित	अल्पप्राण			र्				
	महाप्राण			र्ह्				
उत्क्षिप्त	अल्पप्राण					ड़्		
	महाप्राण					ढ़्		
सघर्षी				स्				ह् ( )
अर्धस्वर		व्		य्				

१. डॉ० बाबूराम सक्सेना : एवोल्यूशन ऑफ अवधी, पृ० २५।

२ वही, पृ० २४।

साहित्यिक हिन्दी के ध्वनि-समूह से उपर्युक्त ध्वनि-समूह की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनो की अधिकाश ध्वनियाँ समान है। वर्तमान साहित्यिक हिन्दी के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाली कुछ व्यजन ध्वनियाँ क़्, ख़्, ग़्, ज़्, फ़्, तथा व् मूलत विदेशी है जिन्हे हिन्दी ने विदेशी शब्दो के सम्पर्क मे आने तथा उनके मूलरूप को यथासम्भव सुरक्षित रखने की भावना के कारण अपना लिया है। अवधी मे इन ध्वनियो का अभाव है। एक तो हिन्दी की तुलना मे अवधी ने विदेशी भाषाओ की शब्दावली कम ग्रहण की है और दूसरे, जहाँ कही आवश्यकता पडी भी, वहाँ उन ध्वनियो मे किचित् परिवर्तन करके उन्हे अवधी की मिलती-जुलती ध्वनियो मे परिवर्तित कर लिया गया। इस प्रकार उपर्युक्त ध्वनियो के स्थान पर क्रमश क्, ख्, ग, ज् फ् तथा व् का प्रयोग होने लगा जो आज भी प्रचलित है। विदेशी शब्दो मे प्रयुक्त 'श्' ध्वनि के स्थान पर अवधी मे वर्त्स्य 'स्' का प्रयोग होता है।

स्वर-ध्वनियो के व्यवहार मे अवधी का योग विशेष महत्वपूर्ण है। हिन्दी की अपेक्षा उसमे फुसफुसाहट वाले स्वर (इ॰, उ॰, ए॰), उदासीन स्वर (अ) और ए̮, एँ̮, ओ̮ तथा ओ̮ ध्वनियो का आधिक्य है। यहाँ इतना अवश्य उल्लेखनीय है कि उदासीन तथा फुसफुसाहट वाले उपर्युक्त स्वरो का अध्ययन आधुनिक अवधी मे ही उच्चारण के सुनने की सुविधा होने के कारण सम्भव हो सका है। प्राचीन अवधी-ग्रन्थो मे प्रयुक्त ध्वनियो के अध्ययन का आधार केवल लिपि ही है और चूँकि उन ग्रन्थो मे इन स्वरो के बोधार्थ कोई पृथक् लिपि-चिह्न नही मिलता, अत इनके तत्कालीन अस्तित्व के सम्बध मे निश्चयपूर्वक कुछ भी कह सकना कठिन है। यद्यपि ए̮, एँ̮, ओ̮, तथा ओ̮ ध्वनियो के लिए भी इन ग्रन्थो मे पृथक् लिपि-चिह्न प्रयुक्त नही हुए है तथापि छन्दोऽनुरोध से यदा-कदा इन ध्वनियो के प्रयोग की आवश्यकता पड जाती है और इनके अस्तित्व का ज्ञान छन्दगत प्रयोग के लयात्मक उच्चारण तथा मात्राओ की गणना से होता है। हिन्दी के 'ऐ' तथा 'औ' स्वर अब मूल-स्वर स्वीकार किये जाने लगे है किन्तु इनकी चर्चा सयुक्त-स्वर के रूप मे भी होती रही है।[1] डॉ० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल इन्हे दोनो रूपो मे स्वीकार करते है।[2] डॉ० बाबूराम सक्सेना के अनुसार आधुनिक अवधी मे यह ध्वनियाँ न तो मूल स्वर है और न सयुक्त स्वर।[3] यहाँ इनकी स्थिति स्वर-सयोग के रूप मे है।[4] प्राचीन अवधी ग्रन्थो मे इन ध्वनियो के लिपि-चिह्न 'ऐ' तथा 'औ' है, यत्र-तत्र 'अइ' तथा 'अउ' लिपि-चिह्नो का प्रयोग भी मिलता है।

---

1 A Basic Grammar of Modern Hindi, P 4.

२ **'मुझे ऐसा जान पडता है कि आगरा के पश्चिम की बोलियों में यथा कौरवी, बाँगरू एवं पजाबी में वह मूलस्वर है; अन्यत्र सयुक्त स्वर।'–**

बुन्देली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन, पृ० ३०।

३ **डॉ० बाबूराम सक्सेना · एवोल्यूशन ऑफ अवधी, पृ० २५।**

४ **वही, पृ० ८१।**

जायसी द्वारा प्रयुक्त स्वरो की विवेचना करने से पहले इस परम्परागत विवाद का उल्लेख भी आवश्यक है कि 'नखत', 'चाँद', 'नग' आदि शब्दो को स्वरान्त माना जाए अथवा व्यजनान्त । उच्चरित रूप के आधार पर इन्हे आधुनिक अवधी मे व्यजनान्त माना जाता है[1] किन्तु प्राचीन ग्रथो की भाषा का विश्लेषण लिखित रूप के आधार पर करना अधिक सुविधाजनक है, अत इस शोध-प्रबन्ध मे लिखित रूप को महत्व देते हुए इन्हे स्वरान्त ही माना गया है।

जायसी द्वारा प्रयुक्त ध्वनि-समूह

मूल स्वर –'ए' तथा 'ओ' के अतिरिक्त अन्य स्वर – अ आ इ ई उ ऊ ए ओ – पद के आदि, मध्य और अन्त, तीनो स्थानो मे प्रयुक्त है । 'ए' तथा 'ओ' का प्रयोग आदि और मध्य मे प्राप्त होता है, अन्त मे नही, यथा

	आदि	मध्य	अन्त
अ	अचरिजु[2]	काँवरू[3]	रहिअ[4] ।
आ	आछरि[5]	पुरानु[6]	सिला ।[7]
इ	इराकी[8]	बिहिस्त[9]	राति ।[10]
ई	ईसर[11]	पसीजा[12]	ढिलाई ।[13]
उ	उलहाना[14]	कंचुकि[15]	सँजोत ।[16]
ऊ	ऊखा[17]	मँजूसा[18]	आगू ।[19]
ए	एतनिक[20]	भएउ[21]	×

---

1 "A does not occur finally in Awadhi in modern dialects It is found in early Awadhi in the documents but the probability is that it was never pronounced even then "-Saxena, B R . Evolution of Awadhi, p 64

२. प. ६६।३   ३ प ४४८।६   ४ म बा ७।५
५ प २७७।७   ६ प ३६।३   ७ प ४१।७
८ प. ४६६।७   ९ आखि ४६।१   १० आखि ५।२   ११ म. बा. ६।७
१२ प २०२।५   १३ प ४५६।६   १४ म बा ८।१०   १५ प २८०।३
१६ प ५१२।२   १७ प १६८।७   १८ प ७७।२   १९ म बा १४।२

I I I I S I   I I I   I I S S
२० एतनिक दोस बिरञ्चि पिउ रूठा । प० ८६।३

S I I   I I I   I S I   I S S
२१ तौ अति भएउ असूझ अपारा । प २१।५

	आदि	मध्य	अन्त
ए —	एरापति[१]	जगदेऊ[२]	पाँडे ।[३]
ओ —	ओहि[४]	घोरसारा[५]	×
ओ —	ओझा[६]	घगोई[७]	छओ ।[८]

'ऋ' ध्वनि

अखरावट मे 'ऋ' लिपि-चिह्न दो स्थलो पर आदि-स्थान मे मिलता है

(क) **बीतै छओ ऋतु बारह मासा ।[९]**
(ख) **ऋतु बसन सब खेल धमारी ।[१०]**

इसके अतिरिक्त 'ऋ' के मात्रिक लिपि-चिह्न (ृ) का प्रयोग भी कतिपय पदो मे हुआ है, यथा– अमृत[११], मृजा[१२], भृ गि[१३] तथा मृदग[१४] आदि, किन्तु यह निश्चित है कि इमका तत्कालीन उच्चारण मूल स्वर के ममान न होकर 'रि' था । व्रज तथा अवधी की बहुत सी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो मे यह इसी प्रकार लिखा भी गया है । जायसी-काव्य मे 'ऋ' ध्वनि अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, इरि तथा रि मे परिवर्तित हो गई है । इनके उदाहरण आगे ध्वनि-परिवर्तन के अन्तर्गत दिए गये है ।

अनुनासिक स्वर . लगभग सभी स्वर सभी स्थानो पर अनुनासिक मिलते है

	आदि	मध्य	अन्त
अँ –	अँबिरथा[१५]	रहँट[१६]	महँ ।[१७]
आँ –	आँच[१८]	चाँद[१९]	कुआँ ।[२०]
इँ –	इँबिली[२१]	किँगरी[२२]	भुइँ ।[२३]
ईँ –	ईँगुर[२४]	छीँक[२५]	साईँ ।[२६]
उँ –	उँचाई[२७]	समुँद[२८]	नाउँ ।[२९]

---

१ प २६।५   २ प. ६११।३   ३. प. ४१०।१

S SSS।। SSS   S।।।।। S। ।। SS
४ ना कोई है ओहि के रूपा । प. ८।४   ५. सोरह सहस घोर घोरसारा । प. २६।४

६. प. १२०।२   ७. प. ३६८।२   ८. अख. ६।७   ९ अख० ६।७

१० अख० २२।४   ११ आखि० ४७।६   १२ अख० ६।८   १३ प० १६८।६

१४ प० ६३६।७   १५ अख० २०।४   १६ म०बा० ४।६   १७ प० ३८७।६

१८ आखि० ५।३   १९ प० ३२८।७   २० प० ३०।१   २१ प० २८।६

२२ प० १२६।१   २३ आखि० १८।६   २४ म०बा० १२।२   २५ अख० ६।७

२६ अख० १।३   २७ प० ४०।६   २८ अख० ८।५   २९ प० ११।१

		आदि	मध्य	अन्त
ऊँ	—	**ऊँच**[१]	**घूँघट**[२]	**गोहूँ** ।[३]
एँ	—	**एँगुर**[४]	**भटा**[५]	**बाएँ** ।[६]
ओ	—	×	**सोटिया**[७]	**सो** ।[८]

सयुक्त-स्वर : सयुक्त-स्वरो की गणना शब्द के अक्षर-वितरण के आधार पर की जाती है । अवधी की आधुनिक उच्चारण-प्रवृत्ति के अनुसार यह कहा जा सकता है कि अवधी मे दो सयुक्त स्वर प्राप्त होते है 'ऐ' तथा 'औ' । एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जावेगा । 'ऐसन' पद मे 'ऐ' एक अक्षर (Syllable) है और एक अक्षर मे एक ही स्वर सभव है, चाहे वह मूल हो अथवा सयुक्त[९] । 'ऐ' के उच्चारण को सुन कर यह ज्ञात होता है कि उसमे अ+इ की सयुक्तता है, अतएव उसे सयुक्त स्वर की कोटि मे ही रखा जाना चाहिए । 'औ' (अ+उ) की स्थिति भी इसी प्रकार की है ।

जायसी की भाषा मे 'ऐ' तथा 'औ' सयुक्त-स्वर पद के आदि, मध्य तथा अन्त मे प्रयुक्त हैं, यथा

		आदि	मध्य	अन्त
ऐ	—	**ऐसन**[१०]	**रैनि**[११]	**तुरै**[१२] ।
औ	—	**औघट**[१३]	**भौंहैं**[१४]	**सौ**[१५] ।

इन दोनो सयुवत-स्वरो के सानुनासिक प्रयोग भी मिलते है, यथा

ऐं (अं) — अंठा[१६], लहरैं[१७], मैं[१८], सैंता[१९], बाहैं[२०], बातैं[१] ।

औं — औंधी[२२], सौं[२३], जिऔं[२४], हौं[२५], अढ़वौं[२६], जौं[२७] ।

स्वर - सयोग हिन्दी तथा उसकी बोलियो की एक प्रमुख विशेषता उसमे दो अथवा दो से अधिक स्वरो का एक साथ प्रयुक्त होता है । शब्द के मध्य तथा अन्त्य व्यजन के लोप और उनके स्थान पर स्वर-प्रयोग की प्रवृत्ति मध्य आर्यभाषाकाल से चल पडी थी और हिन्दी की सभी बोलियो ने इसे अपना लिया ।

---

१. आखि. २६।२ २. म. बा. ८।१२ ३. अख० ७।२ ४. प० २६४।७
५. अख० २०।७ ६. अख० २१।३ ७. म. बा. ७।११ ८. अख. १३।२
9 A Basic Grammar of Modern Hindi P 12
१०. अख० ३५।६ ११ प० ६४८।२ १२ ८६।७ १३ म० बा० १।११
१४ प० ५६८।६ १५. प० ५६६।६ १६ प० ४२२।४ १७ अख० १२।१०
१८ म० बा० १।१ १९. प० ३८६।६ २० प० ३६०।३ २१ प ३८८।२
२२ प० २६३।१ २३. अख० १४।११ २४ प० १४०।८ २५ प० ३४०।५
२६. प० ३५८।८ २७. प ७८।६

प्राचीन तथा आधुनिक अवधी मे स्वर-सयोग के उदाहरण बराबर मिलते है अधिकाश उदाहरण दो स्वरो के सयोग के है। जायसी की भाषा मे भी दो स्वरो सयोग की प्रधानता है। उसमे दो स्वरो की सयुक्तता निम्न रूपो मे प्राप्त होती है —

	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए̮	ए	ऐ	ओ̮	ओ	औ
अ			✓	✓	✓		✓	✓			✓	
आ			✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓			
इ	✓	✓			✓	✓	✓		✓			
ई	✓				✓	✓		✓				✓
उ	✓	✓	✓	✓			✓	✓	✓			✓
ऊ				✓								✓
ए̮			✓		✓	✓						
ए			✓	✓	✓	✓						
ऐ	✓	✓			✓							
ओ̮			✓		✓							
ओ			✓	✓	✓	✓		✓				
औ		✓										

उदाहरण इस प्रकार है —

अइ — गइ[1], उहइ[2], अइस[3], कइ[4], पुरइन[5], भइ[6]।
अई — धरई[7], दई[8], गरई[9], अगुसरई[10] करई[11]।
अउ — अउर[12], अउ[13], नवउ[14], चितउर[15], भूलउ[16]।

१. अख० २४।५ २ प० ५।१ ३ प० ६।८ ४ प० २१।६
५ प० ६४०।६ ६ म० बा० ३।३ ७ अख० ५३।६ ८ आखि० ८।६
९. अख० १४।६ १० अख० २४।७ ११ प० १०।२ १२ प० ५।९
१३ प० ६।९ १४ प० १३।४ १५ प० ६३६।२ १६ म०बा० २।१३

अए — बएस[१]।
अए — गए[२], भए[३], मेरए[४], ओनए[५], नए[६]।
अओ — छओ[७]।
आइ — उताइल[८], समाइ[९], भाइ[१०], लाइ[११], लजाइ[१२], आइ[१३]।
आई — नाई[१४], सबाई[१५], बड़ाई[१६], लाई[१७], निअराई[१८]।
आउ — पाउब[१९], बाउर[२०], भाउ[२१], चाउ[२२], बधाउ[२३]।
आऊ — काऊ[२४], आऊ[२५], जुझाऊ[२६], अघाऊ[२७], घाऊ[२८]।
आए — आएसु[२९], साएर[३०], रमाएन[३१], गाएनि[३२], नराएन[३३]।
आए — बरसाए[३४], आए[३५], छिटकाए[३६], बनाए[३७], पाए[३८]।
आऐ — आऐ[३९]।
इअ — अमिअ[४०], पिअना[४१], तुरिअ[४२], बरिअ[४३], सिअर[४४], बोलिअ[४५]।
इआ — गिआनू[४६], तिआगी[४७], पिआस[४८], छिरिआवै[४९], धनिआ[५०]।
इउ — घिउ[१], चारिउ[५२], गिउ[५३] जिउ[५४], पिउ[५५]।
इऊ — पिऊ[५६]।
इए — किएहु[५७]।
इअै(ऐ) — भैंटिअै[५८], सराहिअै[५९], दीजिअै[६०], कहिअै[६१], जिअै[६२]।

---

१ प० ५८६।४   २ अख० १३।१०   ३ आखि० २४।६   ४ प० २०।६
५ प० ४२५।३   ६ प० ५३६।२   ७ अख० ६।७   ८ अख० १२।२
९ अख० २२।११   १० म० बा० १३।४   ११ प० १०३।४   १२ प० ६१६।८
१३ प० ६४३।५   १४ प० १६।६   १५ प० १६।७   १६ प० ६३७।७
१७ प० ६४२।१   १८ म० बा० १३।१   १९ आखि० १३।४   २० प० १०।७
२१ प० १११।३   २२ प० ६२७।७   २३ प० ६३८।९   २४ प० १४।४
२५ प० ४२।६   २६ प० ५१२।३   २७ प० ५१९।१   २८ प० ६३६।३
२९ आखि० १६।१   ३० प० २१३।६   ३१ प० ३९१।४   ३२ प० ५२८।५
३३ प० ५७६।४   ३४ आखि० १६।१   ३५ प० २५।८   ३६ प० ५०७।४
३७ प० ५१२।८   ३८ प० ५१९।३   ३९ प० ५७९।१   ४० प० ४।३
४१ प० ५।६   ४२ प० ६३७।७   ४३ पा० ६४१।२   ४४ म० बा० ३।९
४५ म० बा० ७।५   ४६ प० ८।१   ४७ प० १७।२   ४८ प० ३१।९
४९ प० ६३३।६   ५० म० बा १३।१०   ५१ अख० ३१।८   ५२ प० २२।६
५३ प० १११।२   ५४ म० बा० ५।१२   ५५ म० बा० १९।७   ५६ प० ३१५।२
५७ प० २९७।२   ५८ प० १७५।८   ५९ प० ३५५।९   ६० प० ४५९।८
६१ प० ५५६।७   ६२ म० बा० १७।१४

ईअ — पीअहि[1] ।

ईउ — घीउ[2], गीउ[3], सीउ[4], जीउ[5], पीउ[6] ।

ईऊ — सीऊ[7], जीऊ[8], पीऊ[9], घीऊ[10] ।

ईए — कीए[11] ।

ईऔ — कीऔ[12] ।

उअ — उअ[13], सुअटा[14], भुअगिनी[15], गरुअ[16] ।

उआ — दुआरू[17], सुआ[18], उआ[19], कुरुआरा[20], भुआरा[21], करुआने ।[22]

उइ — आपुइ[23], छुइ[24], दुइ[25], दुइज[26], गरुइ[27] ।

उई — कढुई[28], छुई[29], लुचुई[30], अरुई[31], चुई[32] ।

उए — मुएहु[33] ।

उए — उए[34], चुए[35], छुए[36], मुए[37], करुए[38] ।

उअै (ए) — उअै[39], सुअै[40], छुअै[41] ।

उऔ — दुऔ[42] ।

ऊई — रूई[43] ।

ऊऔ — डूऔ ।[44]

एइ — जेइ[45], देइ[46], बेइ[47], लेइ[48], एइ[49] ।

---

१ प० ५०६।४ २ अख० १५।८ ३ आखि० ४६।६ ४ प० १।७
५ म० बा० १।१।६ ६ म० बा० १४।५ ७ प० ५६५।४ ८ प० ६०१।५
९ प० ६०३।५ १० प० ६०५।१ ११ म०बा०२२।१० १२ म०बा० ४।१०
१३ अख० ४६।३ १४ प० ६८।६ १५ प० ३२१।५ १६ प० ५०३।८
१७ प० ४२।१ १८ प० ७१।१ १९ प० १०५।२ २० प० ४२७।६
२१ प० ६११।४ २२ प० ६२०।२ २३ अख० ३८।६ २४ प० ४८०।६
२५ प० ५०७।४ २६ प० ६१२।८ २७ प० ६४०।६ २८ अख० ३१।५
२९ प० ५२०।६ ३० प० ५४३।६ ३१ प० ५४८।३ ३२ प० ६२०।४
३३ प० ३११।६ ३४ प० ३३।२ ३५ प० ६७।६ ३६ प० १६४।६
३७ प० ४०८।५ ३८ प० ५४७।२ ३९. प० १००।६ ४०. प० ५१६।८
४१. प० ५६३।४ ४२. प० १६।४ ४३. प० ४५५।७ ४४. प० ५१६।७

४५. परै खरी तेहि चूक मुहमद जेइ जाना नहीं । अख० ४३ । ११

४६. दुइ हुँत चलै न राज न रैयत । तब बेइ सीख जौ होइ मग अैयत । अख ४६।७

४७. मन मुर्री देइ सब अंग मारै । तन सों बिनै दोउ कर जारै । अख० ४३।६

४८. जौं रे मुवा लेइ गया न हाड़ो अस होइ परा पहार । प० ३६५।६

४९. वह सो पदारथ एइ सब मोती । कहँ वह दीप पतँग जेहि जोती । प० ५६१।३

एउ — भागेउ[1], बैठेउ[2], लागेउ[3], कीन्हेउ[4], राखेउ[5], गएउ[6] ।

एऊ — अहेऊ[7], कहेऊ[8] ।

एइ — लेइहि[9], देइ[10], खेइ[11], भेइ[12] ।

एई — लेई[13], खेई[14], करेई[15], देई[16] ।

एउ — केउ[17], सेउ[18], तेउ[19] ।

एऊ — भेऊ[20], सेऊ[21], हरेऊ[22], केऊ[23], जगदेऊ[24] ।

ऐअ — दैअहि[25] ।

ऐआ — टैआ[26] ।

ऐउ — दैउ[27] ।

ओइ — दोइ[28], होइ[29] ।

ओउ — कोउ[30], होउ[31] ।

ओइ — ओइ[32], कोइलि[33], सोइ[34], होइ[35], गोइ[36], होइहि[37] ।

---

१. काम धनुक सर दै भै ठाढ़ी । भागेउ बिरह रही जिसु डाढी । प० ४२३।७

२. चांद छत्र दै बैठेउ आई । चहुँ दिसि नखत दीन्ह छिटकाई । प० ५२३।२

३. मन लागेउ तेहि कंवल की डडी । भावै नहि एकौ कठहंडी । प० ५६३।५

४. जाइ केदार दाग तन कीन्हेउ, तह न मिला तन आकि । प० ६०३।८

५. राखेउ छात चवर औ ढारा । राखेउ छुद्रघट झनकारा । प० ६४१।६

६. गएउ केवट को नाव चलावै, को लागेउ गहराई रे । म० बा० १।२

७-८. अस जो भाइ मोर तुम अहेऊ । एक बात मोहि कारन कहेऊ । आखि० ३४।४

९. अख० ३७।११ १०. प० ५।६ ११. प० १५०।३ १२. प० ५४६।६

१३. आखि० १५।१ १४ प० २०२।२ १५. प० ५२६।२ १६. प० ५३४।३

१७. आखि० १५।३ १८. प० १७।७ १९ प० ५४६।४ २०. प० ८१।५

२१. प० ५३३।६ २२. प० ६०४।५ २३. प० ६११।३ २४. प० ५७७।३

२५. प० ९२।६ २६. प० ५१२।८ २७. आखि० ३२।७

२८. दीन्हेसि सबै रापूरन काया । दीन्हेसि दोइ चलने का पाया । आखि. २।७

२९. अति जौं सिंघ बरिअ होइ आई । सारदूर से कवनि बडाई । प० ६२७।७

३०. दुइ दिन लहि कोउ सुधि न संवारै । बिनु सुधि रहै ना नैन उघारै । आखि० ५२।१

३१. बरत बजागिनि होउ पिउ छाहां । आइ बुझाउ अंगारन्ह माहा । प० ३५४।३

३२. प० १८।८ ३३. प० ४४०।४ ३४. प० ५१८।८ ३५. प० ६१०।९

३६. प० ६२४।४ ३७. म० बा० ४।६

ओई — ढोई[1], बोई[2], सोई[3], रोई[4], होई[5], कोई[6] ।
ओउ — दोउ[7], होउ[8], सजोउ[9], कोउ[10], बिछोउ[11] ।
ओऊ — कोऊ[12], दोऊ[13], बिछोऊ[14], होऊ[15], सजोऊ[16] ।
ओए — पोए[17], धोए[18], सोए[19] ।
औआ — लौआ[20] ।

उक्त रूपो मे 'आइ' तथा 'पिऊ' (इऊ) लिपिकार की कृपा का परिणाम है और 'पीअहि', 'कीए', 'कीओ', 'रूई' तथा 'दूओ' मे प्रथम स्वर का दीर्घरूप छन्दोऽनुरोध के कारण है ।

जायसी-काव्य मे दो स्वरो के ऐसे सयोग भी प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होते है जहाँ उनमे से कोई एक स्वर सानुनासिक होता है । इस प्रकार के प्राप्त रूपो मे अधिकाशत परवर्ती स्वर ही सानुनासिक मिलता है । पूर्ववर्ती स्वर की सानुनासिकता अपेक्षाकृत कम स्थलो मे दिखाई पडती है । यहाँ पहले दो स्वरो के उन सयोगो को प्रस्तुत किया जा रहा है जिनमे परवर्ती स्वर अनुनासिक है

अइँ — दोसरइँ[21], दसइँ[22], भइँ[23], गइँ[24] ।
अईं — उपसईं[25], तरईं[26], गईं[27], भईं[28] ।
अउँ — जउँन[29], बिरउँजी[30], देखउँ[31] ।
अऊँ — करऊँ[32], डरऊँ[33], धरऊँ[34], भरऊँ[35] ।
अएँ — दसएँ[36], छठएँ[37], सतएँ[38], नएँ[39], गएँ[40], भएँ[41] ।
आइँ — साइँ[42], गोसाइँ[43] ।
आईं — गोसाईं[44], ताईं[45], पहिराईं[46], सिधाईं[47], तराईं[48] ।
आऊँ — नाऊँ[49], कुमाऊँ[50], ठाऊँ[51], पाऊँ[52], जाऊँ[53] ।

---

१. प० ५२६।१ २ प० ५३१।३ ३ प० ६०६।५ ४. प० ६०८।२
५. प० ६४२।५ ६. म० बा० १०।७ ७. अख० ४३।६ ८ प० २५६।६
९. प० ५१२।२ १०. प० ५३५।६ ११. प० ५६५।८ १२ आखि० २२।३
१३. प० १७।३ १४ प० ४२८।३ १५ प० ४३६।७ १६ प० ५१२।२
१७. प० २८४।२ १८. प० ५४७।१ १९ प० ५७०।६ २० प० ५४८।२
२१. प० ११।५ २२ प० ११६।७ २३ प० ४८४।४ २४. ६५०।६
२५. प० २६२।६ २६ प० ३३२।४ २७ प० ४८४।४ २८. प० ६५१।१
२९. प० १५।६ ३०. प० ३४।६ ३१. प० ३२५।३ ३२ प० २१०।५
३३. प० २५१।७ ३४. प० ३६६।७ ३५. प० ४०८।६ ३६. प० १६३।५
३७. प० २०६।२ ३८. प० ३१२।४ ३९. प० ३३२।३ ४०. प० ५३५।६
४१. प० ६३१।८ ४२. अख० ४१।६ ४३. प० ६६।६ ४४. प० ८।२
४५. प० १०।६ ४६. प० ५१४।४ ४७. प० ५१८।७ ४८. प० ६३६।२
४९. प० ८।७ ५०. प० ४६८।७ ५१. प० ५०२।७ ५२. प० ५६७।५
५३. प० ६३६।७

आएं — आएँ[१], पाएँ[२], पराएँ[३], चढ़ाएँ[४], उठाएँ[५], पछताएँ[६]।
इअँ — जिअँ[७]।
इआँ — सगुनिआँ[८]।
इउँ — पूनिउँ[९], निउँजी[१०], पछिउँ[११], जारिउँ[१२], फिरिउँ[१३]।
इऊँ — पूनिऊँ[१४]।
इएँ — हिएँ[१५], किएँ[१६]।
इअैं(ऐं)— रोगिअैं[१७], जिअैं[१८]।
इऔं — जिऔं[१९]।
उअँ — कुअँहि , कुअँर[२१]।
उआँ — कुआँ[२२], धुआँ[२३]।
उइँ — भुइँ[२४], मिसुइँ[२५], तुइँ[२६]।
उईं — कुईं[२७], उईं[२८]।
उएँ — उएँ[२९], छुएँ[३०], मुएँ[३१]।
उअैं(एँ)— सुअैं[३२]।
उऔं — दुऔं[३३], छुऔं[३४]।
एइँ — पहिलेइँ[३५] जेइँ[३६], एइँ[३७], केइँ[३८], तेइँ[३९]।
एउँ — चलेउँ[४०], जेउँ[४१], देखेउँ[४२], हेरेउँ[४३], मारेउँ[४४], आनेउँ[४५]।
एऊँ — करेऊँ[४६]।
एइँ — केइँ[४७]।

---

१. प० ८७।१ २ प० १२६।६ ३ प० २२६।१ ४. प० ५१३।८
५. प० ५२०।७ ६ प० ६४३।६ ७. प० ११६।७ ८. प० १३५।१
९. प० ११।१ १०. प० ३४।६ ११. प० ५३२।५ १२. प० ६०३।६
१३. प० ६०३।६ १४ प० १६।३ १५ प० ८४।६ १६ प० १५३।६
१७. प० २५२।१ १८ प० ४६१।१ १९. प० १४०।६ २०. प० ३४।८
२१. प० २७६।२ २२ प० ३०।१ २३. प० ५०८।६ २४. प० ६६।२
२५. प० २३२।५ २६. प० ५६६।७ २७. प० ६२।७ २८. प० ६२।७
२९. प० ४४१।१ ३०. प० ४४१।१ ३१. प० ६३२।४ ३२. प० ६६।१
३३. प० ४८३।३ ३४ प० ५६०।४

३५. हुत पहिलेइँ औ अब है सोई। पुनि सो रहहि रहिहि नहि कोई। प० ७।६
३६ दस असुमेध जग्गि जेइँ कीन्हा। दान पुन्नि सरि सेउ न दीन्हा। प० १७।७
३७ एइँ धरती अस केतन लीले। तस पेट गाढ बहुरि नहि ढीले। प० ६८।७
३८. धाह मेलि कै राजा रोवा। केइ चितउर कर राज बिछोवा। प० ४०४।५
३९. छैंका गढ जोरा अस कीन्हा। खसिया मगर सुरंग तेइ दीन्हा। प० ५२५।१
४०. प० ५७।७ ४१. प० ६३।८ ४२. प० ५७२।१ ४३. प० ६०४।३
४४. प० ६४४।६ ४५. म०बा० १।७ ४६. प० ६४०।२ ४७. प० ४७५।७

एई — जेई[१], भई[२]।

एउँ — करेउ[३], देउ[४], लेउ[५]।

एऊँ — देऊँ[६], लेऊँ[७]।

ओइ̮ँ — ओइ̮ँ[८]।

ओइँ — रुसोइँ[९]।

ओईँ — कोई[१०], धोई[११], बिछोई[१२], रमोई[१३]।

ओउँ — होउ[१४]।

ओएँ — रोए[१५]।

उपर्युक्त विवरण को निम्न चार्ट द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है—

	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए̮	ए	ऐ	ओ̮	ओ	औ
अ			✓	✓	✓	✓		✓				
आ			✓	✓		✓		✓				
इ	✓	✓			✓	✓		✓	✓			✓
ई												
उ	✓	✓	✓	✓				✓	✓			✓
ऊ												
ए̮			✓		✓	✓						
ए			✓	✓	✓	✓						
ऐ												
ओ̮			✓									
ओ			✓	✓	✓			✓				
औ												

१. प० १२३।२ २. प० ५४३।६ ३. प० ६४८।८ ४. प० ६४८।९
५. प० ५९०।५ ६. प० ३१९।२ ७. प० ५३४।७ ८. प० ५८४।२
९. प० ५११।१ १०. प० १२३।२ ११. प० ३९८।६ १२. प० ३९९।३
१३. प० ५४६।९ १४. प० १२६।९ १५. प० ६२०।८

दो स्वरो के सयोग मे पूर्ववर्त्ती सानुनासिक स्वर वाले निम्नलिखित रूप जायसी के काव्य मे उपलब्ध होते है

आँइ — बिसाँइधि[1] ।

आँई — ठाँई[2] ।

आँउ — ठाँउ[3], दाँउ[4] ।

आँऊ — ठाँऊ[5] ।

एँइ — जेँईं[6] ।

एँउ — जेँउ[7] ।

एँई — रेँईं[8] ।

दो स्वरो के उपर्युक्त सयोगो के अतिरिक्त जायसी के काव्य मे तीन स्वरो के सयोग के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं

अइअ — दइअ[9] ।

अइउ — कइउ[10] ।

अएउ — गएउ[11], भएउ[12] ।

अएऊ — भएऊ[13], गएऊ[14], तएऊ[15] ।

आइअ — आइअ[16], पाइअ[17], छपाइअ[18], लगाइअ[19], लाइअ[20] ।

आइउ — चढाइउ[21] ।

आइए — पाइए[22] ।

आएउ — देखराएउ[23], गवाएउ[24], पाएउ[25] ।

---

१. प० ४४१।४ २ प० ५५७।६ ३ प० ६०१।७ ४. प० ५५६।६

५. प० ६०४।२ ६ प० ६०५।५ ७. प० ५०४।८ ८ प० ३६६।४

६. प० १६।२ १० आखि० ६।६

११. अब सब गएउ जनम दुख धोई । जो चाहिय हठि पावा सोई । आखि० ५२।५

१२ ना अस भएउ न होइहि, ना कोइ देइ अस दान । प० १७।६

१३-१४ कचन बरिस सोर जग भएऊ । दारिद भागि देसतर गएऊ । प० १७।५

१५ मोरे पेम पेम तोहि भएऊ । रगता हेम अगिनि जो तएऊ । प० ३१८।५

१६. प० ४०।१ १७ प० ६८।१ १८. प० ७६।५ १६. प० ५१३।०

२०. प० ५३१।४ २१ म० बा० १६।८ २२ अख० १२।११

२३. कर गहि धरम पथ देखराएउ । गा भुलाइ तेहि मारग लाएउ । आखि० ६।६

२४. रोइ गवाएउ बारह मासा । सहस सहस दुख एक एक सासा । प० ३५७।१

२५. इसकदर नहि पाएउ जौ रे समुद धँसि लीन्ह । प० ४८७।६

इअइ -- जिअइ[1], कमिअइ[2]।

इआउ -- निआउ।

इएउ -- किएउ[4]।

उअइ -- छुअइ[5]।

उआई -- गरुआई।

उआए -- पड़ुआए[6]।

उएउ -- मुएउ[8]।

उअउ -- दूअउ।

एइअ -- सेइअ[9]।

ओइअ -- रोइअ[10], मोइअ[11]।

तीन स्वरों के संयोग में भी सानुनासिकता के रूप मिलते हैं

अइउँ -- भइउँ[12], गइउँ[13]।

अएउँ -- भएउँ[14], अगएउँ[15]।

आइउँ -- आइउँ[16], पिआइउँ[17], पाइउँ[18]।

आएउँ -- पाएउँ[19], मिलाएउँ[20], रानेउँ[21], आएउँ[22], बुझाएउँ[23], मनुझाएउँ[24]।

आएऊँ -- आएऊँ[25], पाएऊँ[26], उठाएऊँ[27]।

इआई -- दुनिआई[28]।

इएउँ -- किएउँ[29]।

उइउँ -- मुइउँ[30]।

एएउँ -- सेएउँ[31]।

ओएउँ -- खोएउँ[32]।

---

१. प० ८।२ २. प० ४४८।२ ३. प० १५।७

४. पितैं निछोह किएउ हिय माहा। तहा को हमहिं राखि गहि बाहाँ। प० ३७९।५

५. प० १५।८ ६. प० ३०१।२ ७. प० ३२६।२

८. अमिअ बचन औ माया को न मुएउ रस भीजि। प० ५७८।८

९. प० १५।५ १०. प० १६३।५ ११. प० १७५।५ १२. प० ४३६।७

१३. प० ६४३।५ १४. प० ६४३।६ १५. प० ३०५।१ १६. प० ३०५।४

१७. प० ६४।३ १८. प० ५८७।७ १९. म० बा० १४।१ २०. प० ९३।७

२१. प० १७८।६ २२. प० ३०७।८ २३. प० ३१३।७ २४. प० ३७०।८

२५. प० ६४४।७ २६. प० १८।५ २७. आखि० २२।८ २८. प० २६८।७

२९. प० १५।३ ३०. प० ३१३।७ ३१. प० ६४३।४ ३२. प० ३०७।५

३३. प० ४०४।६

दो स्वरो के सानुनासिक प्रयोग के सम्बध मे एक अन्य उल्लेखनीय तत्व भी जायसी-काव्य मे प्राप्त होता है और वह यह कि उसमे दो सानुनासिक स्वरो का भी पास-पास (सयुक्त या सन्धि-रूप मे नही) प्रयोग हुआ है । कतिपय उदाहरण इस प्रकार है

नाँवँ[१], जहँवाँ[२], तहँवाँ[३], माँघँ[४], माँहाँ[५], छाँहाँ[६], कहँवाँ[७], निसँठें[८], बाँधाँ[९], नाँउँ[१०], दवाँवाँ[११], खूँटी[१२], पाँचो[१३], पूछौं[१४], बाँहाँ[१५] आदि ।

प्रसगवश यहाँ यह उल्लेख करना भी अप्रासगिक न होगा कि कुछ प्रयोगो मे निरनुनासिकता भी दिखाई पडती है **बीस[१६] ∠ विंशति, तीस[१७] ∠ त्रिंशति ।**

प्रा० भा० आ० भा० की अनुनासिक ध्वनि का लोप अपभ्रश काल से ही प्राप्त होने लगता है[१८] और जायसी की भाषा मे यह परम्परा स्पष्ट है ।

व्यंजन ध्वनियाँ

जायसी - काव्य मे **क्, ख्, ग्, घ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, त्, थ्, द्, ध्, प्, फ्, ब्, भ् (स्पर्श), च्, छ्, ज्, झ् (स्पर्श - सघर्षी) ; न्, म् (नासिक्य) , ल् (पार्श्विक) , र् (लुण्ठित) ; स्, ह् (सघर्षी)** और **य्, व् (अर्ध - स्वर)** पद के आदि तथा मध्य मे प्रयुक्त हुए है । इनके जायसीकृत प्रयोग हिन्दी और उसकी बोलियो मे प्राप्त प्रयोगो के समान ही है और इनमे कोई उल्लेखनीय विशेषता नही है अत यहाँ अवशिष्ट ध्वनियो के महत्वपूर्ण प्रयोगो की ही चर्चा की जा रही है ।

नासिक्य व्यजन : उपर्युक्त **'न्'** तथा **'म्'** के अतिरिक्त अवधी के अन्य अनुनासिक व्यजन (ङ्), (ञ्), (ण्), न्ह् तथा म्ह् है । ये सभी व्यजन सर्वत्र पद के मध्य मे ही आए है । 'ङ्', 'ञ्' तथा 'ण्' के लिए जायसी-काव्य मे सर्वत्र अनुस्वार प्रयुक्त है, यथा

ङ् **लक[१९], कलकी[२०], पख[२१], तुरंगम[२२], चग[२३] ।**
ञ् **कचन[२४], इछा[२५], मछ[२६], खजन[२७], अजन[२८] ।**
ण् **कठ[२९], कुडर[३०], मुड[३१], पिड[३२], गडा[३३] ।**

---

१. अख० १३।१० २ अख० ११।५ ३. अख० ११।५ ४. प० ४७।४
५. प० २८५।४ ६ प० २८८।४ ७. प० २७२।४ ८. प० ४२०।६
९. प० ४२२।७ १०. प० ४२४।३ ११. प० ४२७।१ १२. प० ४७९।७
१३. प० ४८७।८ १४. प० ६०२।८ १५. प० ६४८।५ १६. प० ३८३।६
१७. प० ३८३।५ 18 Tagare Historical Grammar of Apabhramsa, P 64
१९ प० ३२५।६ २०. प० ३३२।७ २१ प० ३५०।९ २२. प० ४१९।७
२३ आखि० ११।५ २४. प० ३२५।५ २५ आखि० ४७।५ २६. प० ३९०।१
२७. म० बा० १२।३ २८. प० ३३८।७ २९. प० ७७।६ ३०. प० ११४।७
३१. प० ३९०।३ ३२. प० ४१७।७ ३३. प० ४२५।९

जायसी की भाषा में 'ह्' के पूर्व भाग में उच्चरित नासिक्य-व्यंजन ध्वनि से युक्त शब्दों का अभाव है। हिन्दी के **सिंहासन, सिंहनाद, सिंहल, सिंहिनी** तथा **सिंहेला** आदि शब्द क्रमशः **सिंघासन,**[1] **सिंघनाद,**[2] **सिंघल,**[3] **सिंघिनी**[4] तथा **सिंघेला**[5] रूप में प्रयुक्त हैं। ऐसे प्रयोग तत्कालीन उच्चारण की ओर संकेत करते हैं। **'न्ह्'** तथा **'म्ह्'** ध्वनियाँ क्रमशः न् और म् का महाप्राण रूप हैं।[6] जायसी ने **'न्ह्'** का प्रयोग **'म्ह्'** की अपेक्षा अधिक किया है। इन ध्वनियों के उदाहरण इस प्रकार हैं

न्ह् — **कीन्हेसि,**[7] **बसिठन्ह,**[8] **बातन्ह,**[9] **नखतन्ह,**[10] **बहुदिन्ह**[11]।
म्ह् — **तुम्हं**[12], **बरम्हाऊ**[13], **कुम्हार**[14]।

पार्श्विक 'ल्' की महाप्राण ध्वनि 'ल्ह्' का प्रयोग जायसी ने केवल पद-मध्य में किया है, यथा **कुल्हाडी**[15], **कोल्हू**[16], **काल्हि**[17], **चाल्ह**[18], **चील्ह**[19]।

लुण्ठित 'र्' के महाप्राण रूप **'र्ह'** का प्रयोग जायसी ने नहीं किया है।

उत्क्षिप्त **'ड़्'** तथा **'ढ़'** ध्वनियाँ क्रमशः अल्पप्राण तथा महाप्राण हैं। ये दोनों ध्वनियाँ केवल पद-मध्य में प्रयुक्त हैं, जैसे -

ड़् — **सड़सी**[20], **खाँड़ा**[21], **बड़ाई**[22], **बड़हर**[23], **अड़ा**[24], **कौड़िया**[25], **बुड़हा**[26], **डाँड़**[27], **राँड़**[28]।
ढ़् — **कढ़नो**[29], **अढ़नायक**[30], **रीढ़**[31], **चढ़हिं**[32], **सीढ़ी**[33], **मूढ़**[34]।

संघर्षी 'श्' ध्वनि के स्थान पर वर्त्स्य 'स्' का प्रयोग अवधी तथा ब्रज दोनों की विशेषता है। जायसी-काव्य में केवल 'आखिरी कलाम' में एक स्थान पर **'शराब'** शब्द के अन्तर्गत इस ध्वनि का प्रयोग मिलता है जो निश्चय ही पाठ-दोष है। अन्य सभी स्थलों पर 'श्' के स्थान पर 'स्' का ही व्यवहार पद के आदि तथा मध्य में हुआ है। 'कैलाश', 'आरिफ', 'शनिश्चर' तथा 'शेष' आदि व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ भी इसी ध्वनि-परिवर्तन के

---

१ प० ११५।६ २ प० १३६।१ ३ प० २५।१ ४ प० ४६२।८
५ प० ६१४।३
६ डॉ० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल बुन्देली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन, पृ० ५६-५७।
७ प० ११२ ८ प० २२७।१ ९. प० २२७।३ १० प० २९९।१
११ प० ४७१।५ १२. प० २७१।५ १३ प० २६३।५ १४. प० ३९४।७
१५. अख० २८।४ १६. अख० २८।५ १७ प० १३६।२ १८ प० १४७।५
१९ प० ५१९।५ २० अख० ३९।५ २१. अख० ४७।१२ २२. प० ६।५
२३. प० २८।२ २४ प० ७१।४ २५. म० बा० ५।३ २६ म० बा० २।५
२७. म० बा० ३।९ २८. म० बा० १६।५ २९. अख० ४४।१ ३०. अख०५।३
३१. आखि० ८।६ ३२. प० ३१।४ ३३. प० ३१।४ ३४. म० बा० ३।१३

कारण क्रमश **'कैलास'**[१], **'असरफ'**[२], **'सनीचर'**[३] और **'सेस'**[४] हो गई है। कही-कही 'श्' के स्थान पर 'ह्' ध्वनि भी मिलती है, यथा—**निश्चय>निहचय**[५]।

उच्चारण की दृष्टि से हिन्दी मे 'ष्' ध्वनि का अभाव है। बोलियो मे इसके स्थान पर 'ख्' तथा 'स्' का व्यवहार मिलता है। जायसी-काव्य मे इस ध्वनि का लिपिचिह्न तो बहुत स्थानो पर प्रयुक्त है किन्तु उच्चरित रूप 'ख्' अथवा 'स्' ही है। प्राप्त प्रयोगो की दृष्टि से जायसी की रचनाओ मे इस ध्वनि के चार रूप उपलब्ध होते है—

(क) जहाँ लिखित रूप 'ष्' है किन्तु उच्चरित रूप 'ख्' है—

(अ) नैन नाहिं पै सब किछु देखा। कवन भाँति अस जाइ बिसेखा[६]।
(आ) धरम निआउ चलइ सत भाखा। दूबर बरिअ दुनहुँ सम राखा[७]।
(इ) अही जनमपत्री सो लिखी। दे असीस बहुरे जोतिषी[८]।

(ख) जहाँ 'ष्' के लिए लिपि मे 'ख्' प्रयुक्त है—

सुषुम्ना>सुखमना[९], **औषधि>ओखद**[१०], **वर्षा>बरखा**[११], **दोष>दोख**[१२]।

(ग) जहाँ लिखित रूप 'ष्' है किन्तु उच्चरित रूप 'स्' है

चला कटक जोगिन्ह कर कै गेरुआ सब भेषु।
कोस बीस चारिहुँ दिसि जानहुँ फूला टेसु[१३] ।।

(घ) जहाँ 'ष्' के लिए लिपि मे 'स्' प्रयुक्त है—

विषधर>बिसहर[१४], **मुष्टिक>मुस्टिक**[१५], **दृष्टि>दिस्टि**[१६]।

'ष्' ध्वनि की निस्सारता मध्यकाल मे ही स्पष्ट हो चुकी थी, अत उसके स्थान पर 'स्' तथा 'ख्' का आ जाना स्वाभाविक था। कही-कही उक्त ध्वनि का उच्चारण 'ख्' होते हुए भी तथा तुकान्त की दृष्टि से 'ख्' का प्रयोग सर्वथा उपयुक्त होते हुए भी लिखित रूप मे 'ष्' प्राप्त होता है। ऐसे स्थलो के सम्बन्ध मे यह सम्भावना की जा सकती है कि प्रतिलिपिकारो ने 'ख्' के 'रव' रूप मे भ्रान्ति होने के भय से 'ष्' वर्ण का प्रयोग किया होगा।

कही-कही 'ष्' के स्थान पर 'ह्' ध्वनि मिलती है, यथा **पुष्प>पुहुप**[१७]।

---

१. आखि० ५३।५	२. प० १८।१	३. अख० १७।२	४. आखि० १९।७
५. अख० १९।३	६. प० ८।५	७. प० १५।७	८. प० ५३।१
९. अख० ३६।७	१०. अख० २३।३	११. अख० ६।६	१२. आखि० ४०।४
१३. प० १३४।८-९	१४. प० ६९।३	१५. प० ६११।३	१६. ३६२।५
१७. अख० १८।५			

व्यंजन-संयोग

जायसी-काव्य मे व्यजन-सयोग की प्रवृत्ति अत्यल्प है। पद के आदि स्थान की अपेक्षा ध्य स्थान मे व्यजन-सयोग अधिक उपलब्ध होते है। पदान्त मे व्यजन-सयोग नही मिलता। मान्य प्रवृत्ति दो व्यजनो की सयुक्तता है। तीन व्यजनो का सयोग विरल है।

द्वि-व्यजनात्मक संयोग

आदिस्थानीय--प्रमुख व्यजन-सयोग इस प्रकार है

क्र, क्व, ख्व, ग्य, ग्र, ज्व, त्र, न्य, प्र, ब्य, ब्र, भ्र, स्र, स्य, स्र, स्व, ह्व।

इनमे से पाँच व्यजन-सयोग सस्कृत के तत्सम रूप मे प्रयुक्त है, यथा

क्र क्रोध[1], ग्र ग्रंथ[2], ज्व · ज्वाला[3], प्र · प्रीति[4]; स्व : स्वाद[5]।

'क्र', 'ग्र', 'प्र' तथा 'स्व' तत्सम रूप मे प्रयुक्त होने के अतिरिक्त ध्वनि-परिवर्तन के फलस्वरूप भी प्रयुक्त है, यथा--

क्र ∠ कृ किस्न[6] ∠ कृष्ण।
ग्र ∠ गृ · ग्रिहँ[7] ∠ गृह।
प्र ∠ पृ प्रिथिमी[8] ∠ पृथिवी।

स्व ∠ श्व · स्वासाँ[9] ∠ श्वास।

अन्य व्यजन-सयोग भी ध्वनि-परिवर्तन के कारण उपलब्ध होते है, यथा --

क्व इस व्यजन-सयोग से सम्बद्ध केवल एक ही शब्द '**क्वाउ**'[10] जायसी-काव्य मे मिलता है जो अनिश्चयवाचक सर्वनाम है तथा जिसका विकास स० कोऽपि से हुआ है। सामान्यतया यह शब्द 'काई', 'काउ' अथवा 'कोऊ' रूपो मे विकसित हुआ है किन्तु अवधी मे इसका उच्चरित रूप 'क्वाउ' ('व्' श्रुति) मिलता है अतएव जायसी ने उच्चारण का ध्यान रखते हुए इसका व्यवहार किया है।

ख्व ∠ ख्व (फारसी) · ख्वाज[11] > ख्वाजा।
ग्य ∠ ज्ञ (वर्ण) ग्यान[12] ∠ ज्ञान।
त्र ∠ तृ त्रिस्ना[13] ∠ तृष्णा।
द्र ∠ दृ द्रिस्टि[14] ∠ दृष्टि।

---

१. प० १२४।५ २ प० ४७६।८ ३ प० २००।४ ४. अख० ३।२
५ अख० २०।६ ६ प० ५६३।८ ७ प० ६११।८ ८. प० १५।१
९. प० ५।७ १० आखि ४३।४ ११. प० ३०।५ १२. प० ४४६।५
१३ म०ब्रा० १५।१० १४ प० ४२२।६

ल्य ∠ ल्+य् (श्रुति) ल्यौंजी[1] ∠* लकुच् ।

ब्य ∠ व्य ब्याधि[2] ∠ व्याधि ।

ब्र ∠ बृ ब्रिहस्पति[3] ∠ बृहस्पति ।

जायसी-ग्रथावली मे एक स्थान पर 'ब्रज्र'[4] शब्द प्राप्त होता है जिसमे 'रेफ' का आगम मुद्रणसम्बन्धी त्रुटि है क्योकि पदमावत के पुनर्सम्पादित सस्करण (सन् १९६३ ई०) मे डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने 'बज्र' पाठ दिया है।[5]

भ्र ∠ भृ भ्रिगि[6] ∠ भृग ।

म्र ∠ मृ म्रिदंग[7] ∠ मृदंग ।

स्य ∠ श्य : स्यामा[8] ∠ श्यामा ।

एक स्थल पर 'स्य' ध्वनि 'स्व' का परिवर्तित रूप है स्यामि[9] ∠ स्वामी ।

स्र ∠ श्र स्रवन[10] ∠ श्रवण ।

ह्व—प्रयुक्त पद 'ह्वाव'[11] है जिसका रूप 'होहु' भी सम्भव है। इसका विकास सस्कृत धातु √ भू से हुआ है तथा यह वर्तमान आज्ञार्थ मे मध्यम पुरुष एकवचन के साथ प्रयुक्त है। इस व्यजन-सयोग मे भी 'क्वाउ' की भाँति उच्चरित रूप को यथासम्भव सुरक्षित रखने की चेष्टा स्पष्ट है।

उपर्युक्त व्यजन-सयोगो पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमे व्यजन-क्रम दो प्रकार का है (अ) स्पर्श+अन्तस्थ और (आ) संघर्षी+अन्तस्थ । 'र' ध्वनि के योग के उदाहरण प्रचुर मात्रा मे है, 'य्' तथा 'व्' विशेष रूप से 'श्रुति' रूप मे विकसित है।

मध्यस्थानीय निम्नाकित प्रमुख व्यजन-सयोग उपलब्ध होते है

क्ख्, क्र्, ख्य्, ग्य्, ग्र्, च्छ् छ्य्, ज्य्, ज्र्, ट्ठ्, त्य्, त्र्, द्ध्, द्य्, द्र्, ध्य्, न्य्, प्त्, प्र्, ब्ज्, र्ख्, र्छ्, र्ज्, र्त्, र्थ्, र्द्, र्ब्, र्भ्, र्म् र्स्, ल्य्, ष्ट्, स्च्, स्ट्, स्त्, स्थ्, स्न्, स्प्, स्म्, स्र्, ह्म् ।

इनमे से क्र्, ग्र्, च्छ्, ज्र्, त्य्, त्र्, द्ध्, द्य्, द्र्, ध्य्, न्य्, प्त्, प्र्, ब्ज्, र्छ्, र्ज्, र्त्, र्थ्, र्द्, र्भ्, र्म्, ल्य् ष्ट्, स्त्, स्थ्, स्प्, स्म्, स्र् तथा ह्म्

प्रा० भा० आ० भा० के व्यजन-सयोग के रूप मे प्रयुक्त हुए है

क्र चक्र > चक्र[12]; ग्र सग्राम > संग्राम्[13] ।

---

१. प०१८७।२ २ प० ४३।९ ३ अख० १७।३ ४. प० ५०७।८
५ पृष्ठ ४२१ ६ प० ४८४।१ ७. प० ३३२।८ ८. प० २।६
९. प० २३६।८ १०. प० ८।४ ११. आखि० ४६।९ १२. प० १०१।८
१३. प० २६६।१

मध्यस्थानीय द्वि-व्यंजन-संयोग

	क्	ख्	ग्	घ्	ङ्	च्	छ्	ज्	झ्	ञ्	ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्	त्	थ्	द्	ध्	न्	प्	फ्	ब्	भ्	म्	य्	र्	ल्	व्	ड़्	ढ़्	श्	ष्	स्	ह्
क्	✓	✓																									✓								
ख्																										✓									
ग्			✓																							✓	✓								
घ्																																			
ङ्	✓	✓	✓	✓																															
च्							✓																												
छ्																										✓									
ज्								✓																		✓	✓								
झ्																																			
ञ्						✓	✓	✓	✓																										
ट्												✓																							
ठ्																																			
ड्																																			
ढ्																																			
ण्											✓	✓	✓																						
त्																✓										✓	✓								
थ्																	✓																		

च्छ् इच्छा>इच्छा[1]; ज्र् वज्र>बज्र[2] ।
त्य् हत्या>हत्या[3]; त्र् चित्रसेन>चित्रसेन[4] ।
द्ध् : बुद्धि>बुद्धि[5]; द्य् : विद्या>बिद्या[6] ।
द्र् : सामुद्रिक>सामुद्रिक[7], ध्य् : अयोध्या>अजोध्या[8] ।
न्य् : संन्यासी>सँन्यासी[9]; प्त् · सप्त>सप्त[10] ।
प्र् : विप्र>विप्र[11]; ब्ज् कुब्जा>कुब्जा[12] ।
र्छ् : मूर्छा>मुर्छि[13]; र्ज् . अर्जुन>अर्जुन[14] ।
र्त् : दक्षिणावर्त>दहिनावर्त[15]; र्थ् : तीर्थ>तिर्थ[16] ।
र्द् : चतुर्दश>चतुर्दस[17]; र्भ् . चतुर्भुज>चतुर्भुज[18] ।
र्म् : धर्म>धर्म[19]; ल्य् : कल्याण>कल्यान्[20] ।
ष्ट् : चेष्टा>चेष्टा[21]; स्त् : नास्ति>नास्ति[22] ।
स्थ् : अवस्था>अवस्था[23]; स्प् : बृहस्पति>ब्रिहस्पति[24] ।
स्म् : भस्म>भस्म[25], स्र : सहस्र>सहस्र[26] ।
ह्म . ब्रह्म>ब्रह्मा[27] ।

उक्त सयुक्त व्यजनो मे से कुछ सयुक्त व्यजन प्रा० भा० आ० भा० के तत्सम सयुक्त व्यजन के रूप मे प्रयुक्त होने के अतिरिक्त किमी अन्य व्यञ्जन का विकसित रूप है। ये सोदाहरण इस प्रकार है

ग्र : जगन्नाथ>जग्रनाथ[28] । उल्लेखनीय है कि मध्यकाल मे 'जगन्नाथ' के लिए

'जगरनाथ' शब्द का भी प्रचलन था। उक्त पद मे **'न्'** के लिए **'र्'** और तदुपरान्त **'ग्'+'र्'** का सयुक्त प्रयोग हुआ है। (तुलना कीजिए, **जन्म>जरम**[29])। जायसी ने सम्भवत 'जगरनाथ' के शुद्ध रूप के भ्रम मे 'जग्रनाथ' का व्यवहार किया है।

च्छ् ∠क्ष् . अक्षर > अच्छर[30]; **∠त्स्य् : मत्स्य>मच्छ**[31]; **∠श्च् : पश्चिम> पच्छिम**[32]; **∠क्ष्म् . लक्ष्मी>लच्छि**[33] ।

द्ध् ∠ध् **निधि>निद्धि**[34] । व्यजन-सयोग का कारण छन्दोऽनुरोध है।

द्र ∠द : कालिन्दी>कालिन्द्री[35] । 'रेफ' का आगम स्पष्ट है।

---

१ आखि० ६।७ २. प० २२०।५ ३. प० ७८।२ ४. प० ७३।१
५ प० ७०।८ ६ प० ४८६।६ ७ प० ७३।३ ८ प० ४०।४
९ प० ८०।३ १० प० ४०।४ ११ प० ८०।९ १२ म० बा० २१।८
१३. प० १९०।७ १४ प० ३१६।४ १५ प० १३८।९ १६ प० ६०४।२
१७. प० ४४६।९ १८ प० ६२९।५ १९ प० ४४६।५ २०. प० ३८७।२
२१. प० १२०।३ २२. प० ६।८ २३. प० ११९।७ २४ अख० १७।३
२५ प० ३६१।४ २६ प० १५६।६ २७ प० ४०८।३ २८ प० ४१९।९
२९ प० ११।७ ३० प० २२५।७ ३१. प० १३५।१ ३२. म० बा० १९।५
३३ प० १२९।२ ३४. प० ३७।१ ३५ प० ११४।६

भी चर्चा की जा सकती है। ढ्, फ्, र् ल्, व्, श्, ष् तथा ह् को छोड कर अन्य सभी व्यञ्जनो मे इस प्रकार की सयुक्तता मिलती है, यथा—

कलकं[1], ढख[2], रग[3], सिंघ[4], कचनगिरि[5], मछ[6], अंजीरा[7], बिझ[8], घंट[9], कंठ[10], धन्य[11] मडप[12], चिता[13], पथ[14], चदन[15], अंध[16], चपा[17], बिब[18], खभ[19], हसगामिनी[20]।

उल्लेखनीय है कि जायसी ने प्राय सभी नासिक्य व्यञ्जनो के लिए (द्वित्व को छोडकर) व्यजन-सयोग मे अनुस्वार लिपि-चिह्न का प्रयोग किया है।

जायसी द्वारा प्रयुक्त मध्यस्थानीय व्यजन-सयोगो मे व्यञ्जन-क्रम इस प्रकार मिलता है (अ) **वर्गीय नासिक्य+स्पर्श व्यजन,** (आ) **स्पर्श+अन्तस्थ,** (इ) **संघर्षी+स्पर्श,** (ई) **स्पर्श+लुंठित।**

प्रा० भा० आ० भा० मे सयुक्त व्यञ्जनो के लिए भिन्न वर्ण केवल तीन ही—'**क्ष**', '**त्र**' तथा '**ज्ञ**'—मिलते है। जायसी ने 'क्ष' और 'ज्ञ' का प्रयोग लिपि मे नही किया है। क्ष' वर्ण मे निहित व्यजन-सयोग ध्वनि-परिवर्तन के कारण विभिन्न रूपो मे प्रयुक्त मिलता है, यथा

क्ष (क्ष्) >ख् खन[21] ∠क्षण; > क्ख् : लक्खन[22] ∠लक्षण; > च्छ् अच्छर[23] ∠ अक्षर, >छ् छार[24] ∠क्षार, > झ् झीनी[25] ∠क्षीण, >क् राकस[26] ∠राक्षस।

'ज्ञ' वर्ण का लिखित रूप 'ग्य' है, यथा—**अग्या[27] ∠आज्ञा।**

'त्र' वर्ण तत्सम तथा अर्धतत्सम शब्दो मे प्रयुक्त है, यथा

चित्रसेन[28] (तत्सम), **त्रिस्ना[29]** (अर्धतत्सम)।

द्वि-व्यजनात्मक सयोग के अन्तर्गत **द्वित्व-व्यजन** भी आते है। जायसी-काव्य मे विभिन्न व्यजनो के द्वित्व रूप सोदाहरण इस प्रकार है

---

१. प. २१।७ २. प. १०४।८ ३. प. ९।३ ४. प. १२।५
५. प. २१।६ ६ प. २।२ ७. प. ३४।२ ८. प. ३७१।६
९. प. १६४।७ १०. प. ७९।५ ११ प ४८९।२ १२. प० १६४।८
१३. प० ३।६ १४ प० ११।४ १५ प० १३०।३ १६. प० ८।६
१७. प० ३५।२ १८. प० १०६।१ १९. प० २०।९ २०. प० ३२।३
२१. म० बा० १९।२ २२. प० ४९।८ २३. प० २२५।७ २४. म० बा० १।८
२५ आखि० २७।५ २६. प० ३९१।१ २७ प० ६०७।९ २८. प० ७३।१
२९. म० बा० १५।१०

क्क — चक्कवै[1], दरक्कि[2], झरक्क[3], बुक्का[4], धक्कि[5], बरक्कत[6] ।
ग्ग — जग्गि[7], उग्गवइ[8], सुग्गा[9] ।
ज्ज — बज्जर[10], बिज्जु[11], उज्जर[12] ।
त्त — चित्त[13], उत्तिम[14], सत्त[15], दत्त[16], चित्तरसारी[17], नित्तु[18], छत्तिस[19] ।
त्थ — कत्था[20], अकत्थ[21] ।
द्द — सिद्दीक[22] ।
न्न — सुन्न[23], सरवन्न[24], पुन्नि[25], पन्नग[26], धन्नि[27] ।
प्प — झॉप्पि[28], छप्पन[29], कलप्प[30], खप्पर[31] ।
ब्ब — पब्बै[32], दिब्ब[33] ।
म्म — उम्मर[34], अम्मर[35], घुम्मरहि[36] ।
र्र — मुर्री[37], गर्र[38] ।
ल्ल — बुल्ला[39], पल्लौ[40], ढिल्ली[41] ।
ष्ष — लष्षन[42] ।
स्स — सहस्सर[43] ।
च्च — कच्चे[44] ।
ट्ट — खट्टा[45] ।

इन द्वित्व-व्यजनो की रचना के कई कारण है—

क—अधिकाश द्वित्व-व्यजन किसी सयुक्ताक्षर के समीकृतरूप है जो या तो आर्यभाषाओ से होते हुए अवधी मे आए है अथवा मध्यकालीन आर्यभाषाओ के ही प्रयुक्त रूप है। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत पुन्नि∠पुण्ण∠पुण्य, जग्गि∠जग्ग∠यज्ञ, सुन्न∠सुण्ण∠शून्य आदि तथा द्वितीय वर्ग मे पब्बै∠पब्बय∠पर्वत, दिब्ब∠दिब्ब∠दिव्य, बिज्जु∠बिज्जु∠विद्युत् आदि आते है।

---

१ प० २६।८   २. प० १०७।९   ३. प० ३३७।८   ४ प० १८९।६
५. प०३७८।१   ६. म० बा०१०।८   ७. प० १७।७   ८. प० १७५।९
९. प० ४३५।७   १०. प० २०६।७   ११ प० ४४३।४   १२. प० ५३९।६
१३ प० २२।८   १४. प० २५।९   १५. प० ९२।६   १६ प० १४६।१
१७. प० २८२।२   १८. प० ३३५।८   १९. प० ६१३।४   २०. प० २४।५
२१. प० २२३।८   २२. प० १२।२   २३. अख०१।१४   २४. अख० ३५।१०
२५ प० १७।७   २६ प० ११५।८   २७ प० २७८।७   २८. आखि० ५।६
२९. प० २६।३   ३० प० १२३।९   ३१. प० १२६।७   ३२. प० ४५।६
३३ प० २३०।१   ३४ प० १५।३   ३५ प० १५।९   ३६. प० ६१३।६
३७ प० ४३।६   ३८. प० ४६।३   ३९. अख० ३५।८   ४०. प० ९।४
४१. प० १३।१   ४२ प० १२०।४   ४३. प० १०२।५   ४४. प० ३१२।२
४५. प० ५९६।२

ख—कुछ शब्दो मे द्वित्व की रूप-रचना केवल मात्रा-पूर्त्यर्थ हुई है, यथा

(अ) अवल कीन्ह उम्मर की नाई[1] ।

(आ) गांग जउँन जौ लहि जल तौ लहि अम्मर माथ[2] ।

(इ) दीन्ह रतन विधि चारि, नैन बैन सरवन्न मुख[3] ।

ग—तुकान्त की सगति के लिए भी व्यजनो का द्वित्व रूप प्रयुक्त हुआ है

(च) मुहमद चारिउ मीत मिलि भए जो एकइ चित्त ।
एहि जग साथ जो निबहा, ओहि जग बिछुरन कित्त[4] ।

(छ) बिहँसत हँसत दसन तस चमके, पाहन उठे झरक्कि ।
दारिवँ सरि जो न के सका, फाटेउ हिया दरक्कि[5] ।।

घ—कुछ शब्दो के मूलरूप मे वर्तमान द्वित्व-ध्वनि को जायसी ने भी अपना लिया, जैसे पल्लौ∠पल्लव, मिद्दीक∠मिद्दीक, पन्नग∠पन्नग, उत्तिम∠उत्तम आदि ।

द्वित्व सम्बन्धी प्रयोगो के अन्तर्गत कतिपय शब्द ऐसे भी प्राप्त होते है जिनमे समीकरण तथा स्वरभक्ति का एक साथ प्रयोग हुआ है। चित्तरसारी∠चित्रशाला, बज्जर∠ वज्र तथा सहस्सर∠सहस्र ऐसे ही प्रयोगो के उदाहरण है। ऐसे प्रयोग भी मात्रा-पूर्ति के हेतु ही किए गए है

```
    | |   S S    S    S | | S S
(ज) जहँ   सोने   कै    चित्तरसारी ।

    S | |  S |  | | |  | |  S S
(झ) बज्जर  अंग  जरत  उठि  भागा[7] ।।

    S S    | S       | S | | S S
(ट) मारा   ओही      सहस्सरबाहू[8] ।
```

महाप्राण ध्वनि 'थ्' का द्वित्व-रूप 'थ्थ' कई स्थानो पर प्रयुक्त है जो चिन्त्य है क्योकि सामान्यतया महाप्राण व्यजनो की द्वित्वता मे प्रथम अवयव अल्पप्राण होता है ।

त्रि-**व्यजनात्मक सयोग** प्रयोग अत्यल्प है। प्राप्त होने वाले व्यजन-क्रम इस प्रकार है (अ) वर्गीय नासिक्य+स्पर्श+अन्त स्थ (आ) सघर्षी+स्पर्श+अन्त स्थ, यथा—

इंद्र[9], मंत्र[10], अम्रित[11], गध्रप[12], इस्त्री[13] ।

---

१. प०१५।३   २ प० १५।६   ३ अख० ३५।१०   ४ प० २२।८-९
५ प० १०७।८-९   ६ प० २८२।२   ७. प० २०६।७   ८ प० १०२।५
९. प० ३६।२   १० अख० ३३।५   ११. प० २८।७   १२. प० २६३।६
१३. प० ४८४।६

ध्वनि-परिवर्तन

यह सर्वमान्य तथ्य है कि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ प्रा० भा० आ० भा० तथा म० भा० आ० भा० का विकसित रूप है। अवधी का विकास भी इसी प्रकार हुआ है। विकास की इस प्रक्रिया मे पदो की ध्वनियो के स्वरूप मे विविध परिवर्तन हुए जिनके मूल मे विपर्यय, समीकरण, ध्वनिलोप आदि अनेक कारण थे। भाषा के स्वरूप-परिवर्तन की दृष्टि से जायसी द्वारा प्रयुक्त ध्वनियो का भी अध्ययन किया जाना आवश्यक है क्योकि वह प्रा० भा० आ० भा० के विकास को समझने मे महत्वपूर्ण योग प्रदान कर सकती है। यहाँ इतना और कह देना आवश्यक है कि यद्यपि अवधी का प्रत्यक्ष सम्बन्ध म० भा० आ० भा० से ही है, और इसलिए उचित तो यह है कि म० भा० आ० भा० की विविध ध्वनियो से उसके ध्वनि-समूह की तुलना की जाय, किन्तु एक ओर तो अभी तक म० भा० आ० भा० का सम्यक् अध्ययन सम्भव नही हो सका है जिसके कारण इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन मे त्रुटियो की अधिक सम्भावना है, दूसरी ओर प्रयुक्त शब्द के मूलरूप से भी परिचित होना आवश्यक है, अतएव अगले पृष्ठो मे सस्कृत की ध्वनियो से ही जायसी द्वारा प्रयुक्त ध्वनियो की तुलना करना तथा उनके परिवर्तित स्वरूप की ओर सकेत करना अभीष्ट रहा है। जहाँ सम्भव हो सका है, म० भा० आ० भा० के रूपो का भी निर्देश किया गया है। ध्वनि-परिवर्तन के अन्तर्गत पहले स्वर-परिवर्तन को प्रस्तुत किया गया है।

स्वर-परिवर्तन

स० अ · जायसी द्वारा प्रयुक्त परिवर्तित रूप आ, इ, उ, ऊ, ए̮, ए, ऐ, ओ।

आ : (सवृत्ताक्षर)—कर्पट>कप्पड>कापर[1], भक्त>भत्त>भात[2]।

इ · ललाट>लिलाट[3]; उत्तम>उत्तिम[4]।

उ : (व् श्रुति को लेकर), घृत>घिउ[5], शीत>सीउ[6]।

ऊ · व्यवसाय>बेबसाऊ[7]।

ए̮ : कपाट>केवारा[8]; तत्क्षण>तेतखन[9]।

ए कदली>केला[10] (य् श्रुति को लेकर), कंचुकी>केचुकी[11]।

ऐ (ज्=य्, ज्=य्̐), रजनी>रैनि[12], सचान>सैचान[13]।

ओ : बनवास>बनोबास[14]।

---

१ प० २७६।१ २ प० १३२।७ ३. प० १०१।३ ४. प० १४६।६
५ प० ५५०।३ ६ प० ३४०।१ ७ प० ५८६।४ ८ अख० ५।७
९ प० ३९६।३ १०. प० ५७।९ ११ प० ११३।३ १२ प० २९५।१
१३. प० ३५०।७ १४ प० ५७।२

स० आ : जायसी द्वारा प्रयुक्त परिवर्तित रूप **अ, इ, ए।**

अ : आन्दोलन>अदोरा[1], तृषा>तिस[2]; आनन्द>अनद[3]।

इ : अप्सरा>आछरि[4]; धन्या>धनि[5]।

ए : पारावत>परेवा[6]।

विदेशी शब्दो मे भी 'आ' के स्थान पर 'ए' का प्रयोग मिलता है

हातिम>हेतिम[7]।

स० इ : जायसी द्वारा प्रयुक्त परिवर्तित रूप अ, ई, उ, ऊ, ए̮, ए ।

अ · **विभूति>भभूति;[8] इतीयत्>अते[9]।**

ई : **(सवृत्ताक्षर में), विद्युत्>बीजु,[10] इष्टका>ईंट[11]।**

उ : **विन्दु>बुंद[12]।**

ऊ : **इक्षु>ऊखि[13]।** ध्वनि-विपर्यय है ।

ए̮ . **विलम्ब>बेलँब[14]; विलास>बिलास>बिरास, बेरासू[15]।**

ए · **हिम>हेम>हेवँ[16], विघटित>बेहर[17]।**

स० ई जायसी द्वारा प्रयुक्त परिवर्तित रूप **अ, इ, ए̮, ए।**

अ . **गम्भीर>गहरा[18]।**

इ **दीप>दिया[19], जीवन>जिअन[20]।**

ए̮ **दीपावलि>देवारी[21], नीपावली>नेवारी[22]।**

ए **ऋषीश्वर>रिखेस्वर[23]।**

स० उ : जायसी द्वारा प्रयुक्त परिवर्तित रूप **अ, इ, ऊ, ओ।**

अ **गुरुक>गरुव[24]।** विषमीकरण है ।

इ : **तरुवर>तरिवर[25]; हनुमत्>हनिवँत[26]।**

ऊ : **(सवृत्ताक्षर मे) उच्च>ऊँच[27]; उत्तर>ऊतर[28]।**

ओ : **उदर>ओदर[29], कुमुद>कमोद[30]।**

स० ऊ : जायसी द्वारा प्रयुक्त परिवर्तित रूप **उ, ओ, औ।**

उ : **भूमि>भुइँ[31]; कूप>कुँव[32]।**

---

१ प० ४२२।२ २ प० ४८६।६ ३ आखि० ६०।६ ४. प० २१०।१
५. प० २५।३ ६ प० २६।३ ७ प० १७।२ ८ प० ६०।१४
९. प० ५१।४ १० प० ३४४।२ ११ प० ४८।३ १२ प० ३३७।५
१३ प० ४।४ १४ प० २०८।७ १५ प० ३।३ १६. प० २।१
१७ प० ४८।६ १८ म० बा० १६।३ १९ प० २५।५ २०. प० ४।३
२१ प० १६०।७ २२ प० ३५।४ २३. प० ३०।४ २४. प० ५८०।६
२५. प० २।४ २६ प० २०६।१ २७ आखि० १६।४ २८ अख० ३४।७
२९ प० ५०।५ ३०. प० ५६।८ ३१ प० १३।२ ३२. प० ४३०।६

ओ ताम्बूल>तबोल[१]।

औ : भूकम्प>भौंकप[२]।

स० ऋ जायसी द्वारा प्रयुक्त परिवर्तित रूप अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, इरि, रि, रु।

अ वृत>बड़[३], मृष्ट>मस्ट[४], भर्तृहरि>भर्तहरि[५]।

आ नृत्य>णच्च>नाच[६]; कृष्ण>कण्ह>कान्ह[७]।

इ : अमृत>अमिअ[८]; हृदय>हिय[९]।

ई वृश्चिक>बिच्छिअ>बीछी[१०]; पृष्ठ>पिट्ठ>पीठी[११]।

उ : मृत>मुअ[१२]; पृथिवी>पुहुमी[१३]।

ऊ : वृद्ध>बुड्ढ>बूढ[१४]; पृच्छ>पूँछ[१५]।

इरि : वृक्ष>बिरिछ[१६], मृग>मिरिग[१७]।

रि : ऋषीश्वर>रिखेस्वर[१८]; ऋतु>रितु[१९]।

रू : वृक्ष>रुक्ख>रूख[२०]।

ए : जायसी द्वारा प्रयुक्त परिवर्तित रूप अ, इ, ऐ।

अ : नारिकेल>नरिअर[२१]।

इ : लेखनी>लिखनी[२२]; म्लेच्छ>मलिछ[२३]।

ऐ : रथसेना>रथसैना[२४]।

स० ऐ . जायसी द्वारा प्रयुक्त परिवर्तित रूप ए।

ए : कैवर्त>केवट[२५], तैल>तेल[२६]।

स० ओ · जायसी द्वारा प्रयुक्त परिवर्तित रूप औ।

औ मालकोश>मालकौस[२७]।

स० औ : जायसी द्वारा प्रयुक्त परिवर्तित रूप आ, उ, ऊ, ओ।

आ : गौरव>गारौ[२८]।

उ : द्रौपदी>दुरपदी[२९]; क्रौञ्च>कुंज[३०]।

ऊ : पौष>पूस[३१]; क्रौञ्च>कूँज[३२]।

---

१ आखि० ५४।४ २ प० ५०६।६ ३ प० ७२।६ ४. प० ७२।६
५. प० २०८।३ ६ प० ५५७।५ ७. प० २१६।२ ८. प० १०६।१
९. प० ३५१।२ १० प० ५८०।४ ११. प० २६५।६ १२. प० ३४७।६
१३ अख० २१।७ १४ प० ६५३।८ १५. आखि० २९।२ १६. अख० ३।५
१७. प० ३८।३ १८. प० ३०।४ १९. प० २७।९ २०. अख० ११।१०
२१ प० २८।४ २२ प० १०।५ २३. प० २०२।१ २४. प० ५१५।३
२५ प० १४८।१ २६ प० ५४७।२ २७. प० ५२८।२ २८ प० ३४४।८
२९. प० ४३।१ ३०. प० ३५९।४ ३१. प० ३५०।१ ३२. प० १११।१

ओ : मोक्तिक>मोती[१], यौवन>जोबन ।[२]

कुछ प्रयोगो मे कवि ने कतिपय अन्य सस्कृत ध्वनियो के स्थान पर स्वरो का व्यवहार किया है, यथा

सं० अः >आ · गत >गदो, गओ>गा[३] ।
स० य > इ : त्यागी > तिआगी[४] ।
स० व > उ . (त्वक्) त्वचा > तुचा,[५] अश्वमेध > असुमेध[६] ।
स० य > ए · रामायण > रमाएन[७], व्यवहार > बेबहारू[८] ।
स० अय > ऐ जयमाला > जैमार[९], अजयगिरि > अजैगिरि[१०] ।
स० अय > औ · विनय>बिनौ[११], प्रलय>परलौ[१२], सशय>ससौ[१३], उदय>उदौ[१४]; विस्मय > बिसमौ[१५] ।
स० आय > ऐ कायस्थिनि > कैथिनि[१६] ।
स० अव > ऐ · नव>नै[१७]; अवगुण > अैगुन[१८] ।
स० अव > औ पवन > पौनु[१९]; अवतार > औतार[२०] ।

उक्त परिवर्तनो के अतिरिक्त स्वरसम्बन्धी कुछ अन्य विशेष परिवर्तन भी जायसी की भाषा मे द्रष्टव्य है । इनमे स्वर-लोप, स्वरागम तथा स्वर-विपर्यय प्रमुख है ।

स्वर-लोप—आदि स्वर-लोप के ही इने-गिने प्रयोग मिलते है .

अरघट्ट>रहँट[१], अवसृष्ट>बसीठ[२] ।

स्वरागम : सयुक्त-ध्वनियो के उच्चारण मे कठिनाई का अनुभव होने के कारण उच्चारण-सौकर्य के लिए स्वरागम होता है । यह प्रवृत्ति आर्यभाषा के प्राचीनतम स्वरूप तक मे दिखाई देती है । म० भा० आ० भा० काल मे यह प्रवृत्ति और बढी एव हिन्दी के प्रारभिक रूप मे इसका खूब प्रचलन रहा । इसके तीन भेद है आदि-स्वरागम, मध्य-स्वरागम तथा अन्त्य-स्वरागम । जायसी की भाषा मे तीनो प्रकार के उदाहरण प्राप्त होते है ।

---

१. म० बा० १२।८ २ प० ११३।४ ३. प० ३४६।५ ४. प० १७।२
५. प० ६५३।३ ६ प० १७।७ ७. प० ३९१।४ ८ प० ७५।६
९ प० २७८।६ १० प० ५००।५ ११. प० १२०।६ १२. प० १५५।७
१३. प० १९१।२ १४. प० १९७।४ १५. प० २४४।३ १६. प० १८५।६
१७. प० २३७।१ १८ आखि० २२।६ १९ प० ६४।६ २० प० ६४।६
२१ प० ४२।८ २२ प० २१७।९

आदि-स्वरागम 'अ', 'इ' का आगम मिलता है, यथा, अ **स्तुति > अस्तुति**[१]; **स्नान > अस्नान**[२]; **स्थान > अस्थान्**[३]; **स्थिर > अस्थिर**[४]; **स्थूल > अस्थूल**[५]। **इ : स्त्री > इस्त्री**[६]। विदेशी शब्दो मे भी यह प्रवृत्ति लक्षित की जा सकती है, यथा—**सवार > असवार**[७]। इस प्रयोग को अपनिहिति (Epenthesis) के अन्तर्गत भी रखा जा सकता है।

मध्य-स्वरागम 'अ', 'इ', 'ई', 'उ' तथा 'ए' का आगम मिलता है, यथा —
अ **पदार्थ > पदारथ**[८]; **पार्वती > पारबती**[९], **कर्ण > करन**[१०], **प्राप्ति > परापति**[११], **समाप्ति > समापति**[१२], **प्रसन्न > परसन्न**[१३]। इ **क्रीड़ा > किरीरा**[१४]; **कालिन्दी>कालिन्दिरी**,[१५] **खिज्र>खिजिर**[१६]। ई **प्रियतम पिरीतम**[१७]। उ **पद्मावती> पदुमावती**[१८], **कृष्ण > किरसुन**[१९], **मूर्छा > मुरुछा**[२०], **शत्रु > सतुरु**[२१], **मुग्धावती > मुगुधावति**[२२]; **पुष्प > पुहुप**[२३], **द्वादश > दुआदस**[२४], **मूर्ख > मुरुख**[२५]।
ए **स्वाति > सेवाती**[२६]

अन्त्य-स्वरागम **गम्भीर > गहरा**।[२७]

स्वर-विपर्यय अनेक स्थलो पर यह प्रवृत्ति भी लक्षित की जा सकती है, यथा—**इक्षु > ऊखि**[२८], **गगा > गाँग**[२९], **कपाल > कापर**[३०], **मालति > मालित**[३१], **बिन्दु > बुद**[३२] आदि।

कुछ स्थलो पर एक ही शब्द के अन्तर्गत **आदि स्वरागम** तथा **मध्यस्वरागम** मिलते है, यथा **मूर्ख > अमुरुख**[३३], **स्त्री > इस्तिरी**[३४], **स्थिर > अहथिर**[३५] आदि।

स्वर-अनुरूपता यत्र-तत्र सादृश्य के आधार पर भी परिवर्तन मिलता है, यथा अ इ—**किरण > किरिनि**[३६]। अ उ—**सूर्य > सुरुज**[३७], **धनुष > धनुकु**[३८]।

क्षतिपूरक दीर्घीकरण यदि ह्रस्व आदि अथवा मध्य स्वर के बाद सयुक्त व्यजन रहते है तो उनमे से एक व्यजन लुप्त हो जाता है तथा क्षति-पूर्ति के रूप मे ह्रस्व आदि या मध्यम स्वर दीर्घ हो जाते है। जायसी-काव्य मे यह प्रवृत्ति भी लक्षित की जा सकती है, यथा **पल्लव > पालौ**[३९], **अक्षर > आखर**[४०], **उज्ज्वल>ऊजर**[४१], **अन्य >आन**[४२]।

---

१ प० १६।९   २ प० २७६।४   ३. प० २३।१   ४. प० ६।९
५ अख० २०।४   ६. प० ४८४।६   ७ प० २७६।९   ८. प० २१३।४
९ प० २०७।५   १०. प० १४५।७   ११. प० १९५।४   १२ प० १८२।९
१३ प० २०।६   १४. प० ५२।५   १५. प० ५९३।६   १६. प० २०।५
१७. प० २३७।८   १८. प० २६२।३   १९ प० १०२।३   २०. प० २८०।९
२१. प० ५६।३   २२. प० २३३।४   २३. प० २८।५   २४. प० ९३।४
२५. प० ८।९   २६ प० १३९।९   २७. म०बा० १९।३   २८ प० ४।४
२९. प० १००।६   ३० प० ५८६।२   ३१. प० ४१८।५   ३२ प० ३३७।५
३३. प० ४०७।६   ३४ प० ६५१।८   ३५ अख० ३८।१०   ३६ प० ९६।५
३७. प० ९६।३   ३८ प० १०२।१   ३९. प० १९३।७   ४० प० २००।२
४१. प० २८४।२   ४२. प० ५६।१

स्वर-परिवर्तन की चर्चा समाप्त करने के पूर्व इतना और कह देना आवश्यक है कि शब्दो के आदि मे स्वर प्राय सुरक्षित रहे है । स्वर-परिवर्तन जितनी तीव्रता से पद के मध्य मे हुए है, उतनी तीव्रता से अन्यत्र नही । पदान्त्य स्वरो का परिवर्तन मात्रा-पूर्ति तथा तुकान्त की दृष्टि से भी हुआ है ।

व्यंजन-परिवर्तन

आदि-व्यजन. जायसी की भाषा मे अधिकाश आदि असयुक्त व्यजनो मे साधारणत कोई परिवर्तन नही मिलता । हिन्दी की बोलियो की प्रवृत्ति के अनुसार 'य्', 'व्' तथा 'श्' अधिकतर क्रमश 'ज्', 'ब्' तथा 'स्' मे परिवर्तित हो गए हैं, यथा

य्>ज् . यज्ञ>जग्गि[१], यजु.>जजु[२], यात्रा>जातरा[३], युग>जुग[४], यादव>जादौं[५], युक्ति>जुगुति[६]; यजमान>जजमान[७]; यमुना>जउँन[८]; यूथ>जूह[९]; यौवन>जोबन[१०]; यम>जम[११] ।

व्>ब् वासुकि>बासुकि[१२]; वज्र>बज्जर[१३], वन>बन[१४]; वाण>बान[१५]; वनस्पति>बनफती[१६], विन्ध्य>विझ[१७], वाणिज्य>बनिज[१८], वलय>बलय[१९], वदन>बदन[२०], वदर>बइरि[२१] ।

श्>स् शखासुर>संखासुर[२२], शतरज>सँतरँज[२३], श्वापद>साउज[२४], शक्ति>सकति[२५], शकुन>सगुन[२६], शशिवाहन>ससिबाहन[२७], शखद्राव>सखदराउ[२८], शत्रु>सतुरु[३०], शीतल>सिअर[३१], शर>सर[३२] ।

इनके अतिरिक्त आदि-व्यजन-परिवर्तन सम्बन्धी अन्य महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ सोदाहरण इस प्रकार है

(अ) **अल्पप्राणीकरण** विदेशी शब्दो मे यत्र-तत्र यह प्रवृत्ति मिलती है
फौलाद>पोलाद[३२], पलीता[३३]>फतील ।

(आ) **महाप्राणीकरण** . कतिपय पदो के आदि अल्पप्राण व्यजन महाप्राण हो गए है, यथा

---

१ प० १७।७ २ प० १०८।५ ३ प० १६४।८ ४ प० ३१३।६
५ प० ६१४।६ ६ प० २१८।६ ७ प० ७७।२ ८ प० १५।९
९ प० ५११।२ १० प० ३३९।६ ११ प० १६१।२ १२ प० १४।५
१३ प० २०६।७ १४ प० २४।८ १५ प० ४४४।७ १६ प० १२८।५
१७ प० १३७।४ १८ प० ७४।१ १९ प० २८०।४ २० प० २७५।७
२१ प० ४३६।२ २२ प० ५७६।६ २३ प० ५६७।१ २४ प० २।५
२५ प० ४३७।२ २६ प० १३५।१ २७ प० १६८।५ २८ प० ४३४।४
२९ प० ३७५।३ ३० प० १९५।२ ३१ प० २०४।७ ३२ प० ६३१।३
३३ आखि० १२।३

कर्प्पर>खप्पर[१], **किष्किन्धा>खिखिन्द**[२], **जालगवाक्ष>झरोखा**[३], **जर्जर>झाँझर**[४]; **विभीषण>भभीखन**[५], **विभूति>भभूति**[६]।

(इ) **मूर्धन्यीकरण :** कुछ आदि दन्त्य व्यजन मूर्धन्य रूप मे प्रयुक्त मिलते है

त्>ट् : त>टट्ट[७]।
द्>ड् : दडवत>डँडवत[८], **दण्ड>डँड**[९], **दर्भ>डाभ**[१०]।
द्>ढ् : दिल्ली>ढिल्ली[११]।
ध्>ढ् : धृष्ट>ढीठ[१२]।

(ई) एक शब्द मे दन्त्य सघोष अल्पप्राण ध्वनि 'द्' के स्थान पर स्पर्श-सघर्षी सघोष अल्पप्राण ध्वनि 'ज्' व्यवहृत है **दुर्योधन>जुरजोधन**[१३]। यहाँ समीकरण-प्रवृत्ति स्पष्ट है।

(उ) कुछ स्थानो पर वत्स्र्य नासिक्य अल्पप्राण 'न्' वत्स्र्य पार्श्विक अल्पप्राण 'ल' के रूप मे प्रयुक्त है, यथा **नवनीत>लैनू**[१४], **नील>लील**[१५]।

मध्य-व्यंजन जायसी की भाषा मे शब्द के मध्य मे आने वाले व्यजनो मे परिवर्तन अधिक मिलता है। इस प्रकार की कतिपय महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ सोदाहरण निम्नलिखित है

(क) **घोषीकरण** अघोष अल्पप्राण स्पर्श व्यजन अपने वर्ग के सघोष अल्पप्राण व्यजन मे परिवर्तित हो गया है **शोक>सोग**[१६], **प्रकाश>परगास**[१७], **काक>काग**[१८], **अनेक>अनेग**[१९]; **मेचक>मेंजा**[२०], **प्राकार>पगार**[२१]।

(ख) **अघोषीकरण** घोष व्यजन का अघोष व्यजन मे परिवर्तन भी जायसी-काव्य मे प्राप्त होता है जो हिन्दी मे सामान्यतया दुर्लभ है **मदद>मदति**[२२], **पादशाह>पातसाहि**[२३], **गन्धर्वसेन>गध्रपसेन**[२४], **ऐरावत>ऐरापति**[२५]।

(ग) **महाप्राणीकरण** मध्यवर्त्ती अल्पप्राण व्यजन को महाप्राण कर देने की प्रवृत्ति दिखाई पडती है

क्>ख् किष्किन्धा>खिखिंद[२६], **बैरक>बैरख**[२७]।
ज्>झ् : खर्ज>खज्ज>खाझ[२८]।

---

१ प० १२६।७ २ प० २।१ ३ प० ४५१।१ ४ प० ४७३।७
५ प० ३८४।५ ६ प० २७६।४ ७ प० ३६६।६ ८ प० ५७७।६
९ प० ३६०।६ १० प० २१।४ ११ प० १३।१ १२ प० २१७।८
१३ प० ६१४।६ १४. प० ५४३।४ १५ प० ४६।२ १६ प० ६६।८
१७. प० १।२ १८ प० ३४९।८ १९ प० ४८८।८ २०. प० १४८।१
२१. प० ४८३।७ २२. प० ६३५।२ २३ प० १४।९ २४ प० २६।१
२५. प० २६।५ २६ प० २।१ २७. प० ५०५।५ २८. प० ४३६।९

ट्>ठ् मुष्टि>मूँठि[1], रुष्ट>रूठा[2], धृष्ट>ढीठ[3] ।
त्>थ् भर्तृहरि>भरथरि[4] ।
प्>फ् वनस्पति>बनफती[5], बृहस्पति>बिहफै[6] ।

(घ) **अल्पप्राणीकरण** यह विरल प्रवृत्ति भी जायसी-काव्य मे कुछ स्थानो पर दिखाई पडती है

थ्>त् गृहस्थ>गिरहस्त[7], वानप्रस्थी>बानपरस्ती[8], शपथ>सपत[9] ।
ध्>द् किष्किन्धा>खिखिंद[10], औषधि>ओषद[11] ।

(च) **मूर्धन्यीकरण** अनेक स्थलो पर दन्त्य ध्वनियाँ मूर्धन्य रूप मे प्रयुक्त है यथा— वितण्डा>बिटड[12], भुजदण्ड>भुजडड[13], हिन्दोल>हिडोल[14], सदशिका>सँडसी[15] ।

(छ) **लुठितीकरण** मूर्धन्य अल्पप्राण 'ट्' या 'ड्' के स्थान पर 'र्' का प्रयोग अनेक स्थलो पर मिलता है

ट्>र् पुटकिनी>पुरइनि[16], निकट>निअर[17], ललाट>लिलार[18], आखेट>अहेर[19], कटु>करुअ[20], चेटिका>चेरी[21], स्फुट>फुर[22] ।

ड्>र खड्ग>खरग[23], गरुड>गरुर[24], क्रोड>कोरा[25] ।

कही-कही वर्त्स्य नासिक्य अल्पप्राण 'न्' 'र' मे परिवर्तित हो गया है

न्>र् जन्म>जरम[26], जगन्नाथ>जगरनाथ[27] ।

पार्श्विक 'ल्' के स्थान पर 'र्' का प्रयोग तो प्रचुर मात्रा मे मिलता है

ल्>र् विकराल>बिकरारा[28], मडल>मडर[29], शार्दूल>सदूर[30], पलाश>परास[31], तल>तर[32], कला>करा[33], कवल>कवर[34], कोलाहल>कोराहर[35] ;

---

१ प० ६३।७ २ प० ८६।३ ३ प० २१७।८ ४. प० १३२।४
५. प० २२८।५ ६ प० ३८२।१ ७ प० ३३१।६ ८ प० ३०।७
९ प० ३१३।१ १० प० २।१ ११ प० १२०।३ १२ प० २६७।५
१३ प० २६६।२ १४. प० ७१।१ १५. प० ५८०।५ १६ प० १५८।२
१७ प० २४।७ १८ प० ३८८।७ १९ प० ३८।४ २० प० ४।४
२१ प० ६१।७ २२ प० ४१२।१ २३ प० १३।५ २४ प० २६४।९
२५ प० २९८।४ २६ प० १७।६ २७ प० ४२०।१ २८ प० २४९।७
२९ प० २८८।३ ३० प० ३४७।९ ३१ प० १३८।२ ३२. प० १५०।६
३३ प० १६।५ ३४ प० २८४।९ ३५ प० २९।७

उज्ज्वल>ऊजर[१], आन्दोलन>अँदोर[२], मेघावली>मेघावरि[३], मगल>मंगर[४], पाताल> पतार[५], दुर्बल>दूबर[६]।

एक स्थल पर विदेशी ध्वनि 'ज' के स्थान पर 'र्' प्रयुक्त है **कागज>कागर[७]।**

(ज) कुछ स्थलो पर 'र्' के स्थान पर 'ल्' भी प्रयुक्त है

मार्कण्डेय>मालकँडेऊ[८], मन्दिर>मदिल[९]।

(**झ) मध्यग–म्–की स्थिति :** मध्यवर्ती 'म्' ध्वनि कभी अन्त स्थ 'व्' मे परिवर्तित हो गई है और कभी उसने और अधिक बढकर 'उ' का रूप धारण कर लिया है। ऐसे स्थानो पर कभी पूर्ववर्ती ध्वनि सानुनासिक हो गई है और कभी 'व्' अथवा 'उ' मे ही अनुनासिकता आ गई है, यथा

कामरूप>कांवरू[१०], कोमल>कोवर[११], कमल>कँवल[१२], भीम>भीवँ[१३], रोम>रोवँ[१४], दाडिम>दारिवँ[१५], डोम>डोवँ[१६]; नाम>नाउँ[१७], यमुना> जउँन[१८], ग्राम>गाउँ[१९]।

प्रयुक्त विदेगी शब्दान्तर्गत 'म्' मे भी यह प्रवृत्ति लक्षित की जा मकती है

दमाम.>दवाँवाँ[२०]।

कुछ स्थानो पर निरनुनासिक 'व्' भी मिलता है

गमन>गवन[२१], प्रमाण>परवान[२२], अजरामर>अजरावर[२३]।

एक स्थान पर 'म्' का परिवर्तित रूप 'उ' वृद्धिरूप 'औ' मे बदल गया है.

कमल>कवँल>कौल, कौला[२४]।

(ट) **मध्यग महाप्राण स्पर्श-व्यंजन** कुछ स्थानो पर शब्दान्तर्गत स्वरमध्यवर्त्ती महाप्राण ध्वनियो का महाप्राणत्व ('ह्') ही शेष रह गया है। यह प्रवृत्ति प्राकृत तथा अपभ्रंश मे भी पाई जाती है। जायसी-काव्य मे 'ख्', 'घ्', 'थ्', 'ध्', 'फ्' तथा 'भ्' मे यत्र-तत्र यह परिवर्तन मिलता है। उदाहरण इस प्रकार है

---

१ प० ५४३।४ २ प० १३३।७ ३ प० ३२।५ ४ प० ३८२।२
५. प० १४।५ ६ प० १५।७ ७ प० १०।२ ८ प० ६११।६
९ प० १४५।६ १० प० ३६६।३ ११. प० २८४।३ १२ प० १५८।८
१३ प० १०।३ १४ प० १५८।८ १५ प० ५६।९ १६ प० ४४१।६
१७ प० १।८ १८ प० १५।९ १९ प० १३४।६ २० प० ४२७।१
२१ प० ११८।१ २२ प० १२।७ २३ प० ५२५।९ २४. प० २४।६

ख् सम्मुख > सँमुह[1] ।

घ् लघु>लहु[2], विघटित>बेहर[3] ।

थ् मथनारम्भ>महनारंभ[4], यूथ>जूह[5] ।

ध् विषधर>बिसहर[6], बधिर>बहिर[7], क्रोध>कोह[8] ।

फ : मुक्ताफल>मुकुताहल[9] ।

भ् लाभ>लाहा[10], करभ>करह[11], सौभाग्य>सोहाग[12] ।

'छ्', 'झ्', 'ठ्' तथा 'ढ्' के सम्बन्ध मे इस प्रकार का परिवर्तन नही प्राप्त होता ।

(ठ) यत्र-तत्र सस्कृत की ऊष्म ध्वनियाँ भी 'ह्' के रूप मे प्रयुक्त मिलती है

स्>ह् केसरी>केहरि[13] ।

श्>ह् · दश>दह[14] ।

ष्>ह् पुष्प>पुहुप[15] ।

(ड) मध्यवर्त्ती 'य्', 'व्' तथा 'श्' ध्वनियो के स्थान पर प्राय क्रमश 'ज्', 'ब्' तथा 'स्' का प्रयोग मिलता है किन्तु कही-कही 'व्' के स्थान पर 'य्' (श्रुतिरूप मे) प्रयुक्त है, यथा **विवाह>बियाह[16], दैव>दैयँ[17], ग्रीवा>गियँ[18] ।**

(ढ) **अन्य मध्यवर्त्ती व्यजनो की स्थिति** · प्राकृत-अपभ्रश की भाँति जायसी की भाषा मे भी 'क्', 'ग्', 'च्', 'ज्', 'त्', 'द्' तथा 'प्' अल्पप्राण स्पर्श व्यजनो का लोप कतिपय शब्दो मे उपलब्ध होता है । ऐसे स्थलो पर यत्र-तत्र 'य्' अथवा 'व्' श्रुति रूप मे मिलता है । इस प्रकार के शब्दो मे म० भा० आ० भा० का प्रभाव स्पष्टतया लक्षित किया जा सकता है । उदाहरण इस प्रकार है

क् · दिनकर>दिनअर[19], ग् राक्षसगंध>रकसाइँधि[20] ।

च् लोचन>लोयन[21], ज् गजेन्द्र>गयद[22] ।

त् पतंग>पनिग[23], कातर>कायर[24], द् : भेद>भेउ[25], निदान>निआन[26] ।

प् भूपाल>भुआरा[27], राजपुत्र>राउत[28] ।

अर्धस्वर 'य्' तथा 'व्' का लोप भी यत्र-तत्र मिलता है

य् वायु>वाउ[29], व् उपवास>उपास[30] ।

---

१ प० ३३४।२   २. प० ४६६।५   ३. प० ८।८   ४ प० १५५।५

५. प० ५११।२   ६ प० १११।८   ७ प० ८०।६   ८. प० २१८।८

९ प० १५८।६   १० प० १४५।३   ११. प० १०३।७   १२ प० ८९।१

१३. प० १७२।५   १४ प० १६।५   १५ प० २८।५   १६. प० २६९।६

१७. प० १४४।९   १८ प० ७१।९   १९. प० १।६   २० प० ३९२।७

२१. प० ४४२।२   २२ प० ४२९।७   २३. प० ५०२।५   २४. प० १५०।१

२५. प० ८१।५   २६. प० १३०।२   २७. प० ६११।४   २८. प० ५५८।१

२९ प० ३८९।१   ३० प० २०३।९

(त) **व्यजन-विपर्यय** कतिपय रोचक प्रयोग प्राप्त होते है

कौतुक>कौकुत[१], मुकुट>मटुक[२], वाराणसी>बनारसि[३] ।

प्रसगवश उल्लेखनीय है कि सयुक्त-व्यजनयुक्त एक शब्द मे रेफ-विपर्यय मिलता है ·

गन्धर्व>गध्रप[४] ।

(थ) **व्यंजनागम** दो-एक स्थलो पर हकार का आगम मिलता है

चिकुर>चिउर>चिहुर[५], छाया>छाँह[६] ।

आदि-व्यजन मे भी यह प्रवृत्ति लक्षित की जा सकती है

इच्छा>हिंछा[७], उल्लस्>हुलस[८] ।

सयुक्त-व्यजनयुक्त शब्दो मे व्यजनागम अपेक्षाकृत अधिक मिलता है

पद्म>पदुम[९], ब्रह्मा>बरह्मा[१०], कालिन्दी>कालिन्द्री[११], समुद्र>समुंद्र[१२] ।

(द) व्यजन-परिवर्तन का एक रोचक उदाहरण **सम्बन्ध>समंध>सनमध[१३]** है । यहाँ पहले समीकरण-प्रवृत्ति के अनुसार 'ब्' का 'म्', तदुपरान्त विषमीकरण के अनुसार पूर्ववर्त्ती 'म्' का 'न्' मे परिवर्तन हुआ है । स्वरभक्ति भी स्पष्ट है ।

सयुक्त व्यजनो की चर्चा पिछले पृष्ठो मे की जा चुकी है । यहाँ तत्सम्बन्धी ध्वनि-परिवर्तन की कतिपय विशेषताओ का सकेत कर देना उपयुक्त होगा । जायसी ने सयुक्त-व्यजनो का व्यवहार बहुत कम किया है । कही सस्कृत के सयुक्त-व्यजन मे से एक का लोप हो गया है **स्थाल>थार[१४], प्रेम>पेम[१५], द्वार>बार[१६], प्रयाग>पयाग[१७], निश्चिन्त>निचित[१८], निष्कलक>निकलक[१९]**, और कही स्वरागम, क्षतिपूरक दीर्घीकरण अथवा स्वरभक्ति के द्वारा सयुक्तता को समाप्त कर दिया गया है ।

फारसी व्यजनो मे ध्वनि-परिवर्तन क़्, ख़्, ग़्, ज़्, फ़् तथा श् के स्थान पर क्रमश क्, ख्, ग्, ज्, फ् तथा स् का प्रयोग मिलता है

क़्>क् हक़ीक़त>हकीकत[२०], ख़्>ख् ख़िताब>खिताब[२१] ।

ग़्>ग् काग़ज़>कागज[२२], ज़्>ज् हमज़ >हमजा[२३] ।

फ़्>फ् फ़ातिम >फातिमा[२४] । श्>स् शरीयत>सरीयत[२५] ।

'ज़्' के स्थान पर कही 'र्' और कही 'द्' भी प्रयुक्त है

ज़्>र् काग़ज़>कागर[२६], ज़्>द् काग़ज़>कागद[२७] ।

---

१. प० ५७।१ २. प० २७६।७ ३. प० ६०३।६ ४ प० २६३।६
५. प० ६७।७ ६ प० ५०।१ ७. प० १६४।६ ८ प० ५५।६
९. प० ३२।२ १०. प० ५४।९ ११. प० ११४।६ १२ प० १३८।९
१३. प० ४७५।८ १४. प० ११३।१ १५. प० ६३।७ १६. प० ७५।६
१७. प० ११४।६ १८ प० ९।८ १९ प० ३३२।६ २०. अख २६।५
२१ प० १२।३ २२. आखि ४३।५ २३ आखि ८।४ २४ आखि ४०।१
२५. अख० २६।२ २६. प० १०।२ २७. अख० १८।८

कुछ विदेशी शब्दो मे प्रयुक्त व्यजन निम्नलिखित ध्वनि-परिवर्तनो से प्रभावित है
स्वरभक्ति . खिज्र>खिजिर[1] , मुर्शिद>मुरसिद[2] , तुर्क>तुरुक[3] , तख्त>तखत[4]।
व्यजन-द्वित्व उमर> उम्मर[5] , बरकत>बरक्कत[6] ।

छन्दोऽनुरोध से ध्वनि-परिवर्तन कभी-कभी छन्द के अनुरोध से भी कवि ध्वनि के स्वरूप मे आवश्यक परिवर्तन करने को विवश हो जाते है। यदि ऐसे परिवर्तन के मूल कारण की ओर ध्यान न दिया जाय तो भाषा के क्रमिक विकास का अध्ययन करने मे कठिनाई हो सकती है। जायसी-काव्य मे भी छन्दोऽनुरोध के कारण कही ह्रस्व अक्षर को दीर्घ और कही दीर्घ अक्षर को ह्रस्व बनाया गया है। ह्रस्व अक्षर को दीर्घ बनाने के लिए जायसी ने प्राय तीन उपायो से काम लिया है –

(क) **स्वर का दीर्घीकरण** : सबही>सबाई[7] , रुई>रूई[8] , पाति>पाती[9] ।

(ख) **व्यजन-द्वित्व** (अ) मात्रा-पूर्त्यर्थ –

S I I I I I I S I S I S I I I S I I I
दीन्ह रतन विधि चारि, नैन बैन सरबन्न मुख।[10]

(अ) तुकान्त की गगनि के लिए –

मुहमद चारिउ मीत मिलि भए जो एकइ चित्त ।
एहि जग साथ जो निबहा ओहि जग बिछुरन कित्त[11] ।।

(ग) **अनुस्वार-योग** मिलहिं जो बिछुरै साजना गहि गहि भेट गहत ।
तपनि मिरगिसिरा जे सहहिं अद्रा ते पलुहत[12] ।।

गुरु अक्षर को लघु बनाने के लिए भी मुख्यत तीन उपाय प्रयुक्त हु

(च) **ह्रस्वीकरण** काया>कया[13] , माता>मत।[14] , धरती>धरति[15] ।

(छ) **द्वित्व-व्यजन का क्षतिपूर्तिरहित-सरलीकरण** उत्तर>उतर[16] ।

(ज) **अनुस्वार का अनुनासिकीकरण** पडित>पँडित[17] , सयोग>सँजोग[18] ।

छन्दोऽनुरोधकृत परिवर्तनो मे लघु को गुरु बनाने की प्रवृत्ति गुरु से लघु बनाने की अपेक्षा अधिक पाई जाती है। यह प्रवृत्ति मध्यकालीन अन्य हिन्दी काव्यो मे भी मिलती है।

---

१ अख० २७।७ २ अख० १०।५ ३ प० ४६६।२ ४ आखि० ५६।४
५ प० १५।३ ६ म०बा० १०।८ ७ प० ८।२ ८ प० ४२५।७
९ प० १।६ १० अख० ३५।१० ११ प० २२।८-९ १२ प० ३४३।८-९
१३. प० २१४।४ १४. प० १३३।१ १५ प० ६७।९ १६ प० ७२।१
१७ प० ५४।५ १८ प० ५४।१

लिपि-शैली ध्वनियो की विवेचना मे यत्र-तत्र उनके लिखित रूप की ओर भी सकेत किया जाता रहा है, अत यहाँ सक्षेप मे कतिपय ध्वनियो की लिपि-शैली का उल्लेख करना ही अभीष्ट है।

(अ) 'ए' तथा 'ओ' के लिए पृथक् लिपि-चिह्न नही व्यवहृत हुए है। छन्दगत-प्रयोग के उच्चारण तथा मात्रा-गणना मे ही इनके अस्तित्व का ज्ञान होता है, यथा

S I I I I I I S I S S I I I S I S I
दारिवँ सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरक्कि।[१]

उक्त पक्ति मे 'जो' तथा फाटेउ' मे क्रमश 'ओ' एव 'ए' का व्यवहार हुआ है। 'ओ' तथा 'ए' का अस्तित्व मानने से दो मात्राएँ बढ जाती है।

(आ) अधिकाशत व्यजनहीन स्वतत्र 'ऐ' के स्थान पर 'अै' लिपि-चिह्न का प्रयोग हुआ है, यथा **अैस**[२], **अैगुन**[३]। कही-कही 'ऐ' ध्वनि को 'अइ' मान कर भी लिखा गया है, यथा **लै~लइ**[४], **कै~कइ**[५], **इहै~इहइ**[६]।

(इ) 'औ' ध्वनि को भी 'अउ' रूप मे यत्र-तत्र लिखा गया है

और~अउर[७], **औ~अउ**[८]।

(ई) स्वरो की अनुनासिकता को प्राय चन्द्रविन्दु और कही-कही अनुस्वार से व्यक्त किया गया है, यथा **नाॅच**[९], **गॅगन**[१०] **माॅथे**[११]।

(उ) स्वरहीन स्वतत्र नासिक्य-व्यजनो को–ङ्, ञ्, ण्, न्, म् को–अनुस्वार से व्यक्त किया गया है, यथा—

लंक[१२], **कंचन**[१३] **पिड**[१४], **दिस्टिवत**[१५], **खभ**[१६]।

---

१ प० १०७।९ २. आखि० १२।७ ३ आखि० २२।६ ४. प० १।९
५ प० ५।७ ६ प० ५।६ ७ प० ५।९ ८ प० ६।९
९ प० १३३।९ १०. प० ४०७।३ ११. प० ११८।५ १२. प० ३२५।६
१३. प० ३२५।५ १४. प० ३३४।३ १५. प० ८।९ १६ प० ३६।५

३

शब्द-समूह

प्रत्येक भाषा शब्द-समूह की दृष्टि से मिश्रित होती है। भाषा एकाधिक व्यक्तियों अथवा समुदायो के परस्पर विचार-विनिमय का साधन है और विचारो तथा भावो के पारस्परिक आदान-प्रदान मे एक की भाषा का प्रभाव दूसरे की भाषा पर पडना अवश्यम्भावी है। जब दो भिन्न भाषा-भाषी क्षेत्र, प्रान्त या राष्ट्र के निवासी परस्पर सम्पर्क मे आते है तो एक दूसरे से थोडे-बहुत शब्द प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ग्रहण कर लेते है, इसीलिए प्रत्येक भाषा मे इस प्रकार की मिश्रित शब्दावली सर्वथा स्वाभाविक रूप से प्राप्त होती है।

जन-बोली के लिए तो इस प्रकार का शब्द-विनिमय विशेष महत्व का है। किसी भी जन-बोली मे जब साहित्य-सर्जन आरम्भ होता है, तब उस बोली की अभिव्यजना-शक्ति को सब प्रकार से बढा कर अभीप्ट स्तर तक ले जाने के लिए साहित्यकारो को पूर्ववर्ती तथा समकालीन देशी एव विदेशी भाषाओ और विभाषाओ से समुचित सहायता लेनी पडती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि एक बोली अथवा भाषा मे दूसरी बोली अथवा भाषा के शब्दो का आगमन अनायास तथा परोक्ष रूप से अधिक होता है। साहित्यकार तो अपनी-अपनी भाषा के शब्द-भडार को बढाकर उसे समृद्ध करने का प्रयास करते ही है, जन-सम्पर्क से भी शब्दावली प्रभावित होती है और इस प्रकार बोली-विशेष का शब्द-भडार धीरे-धीरे समृद्ध होता चलता है और व्यजनाशक्ति अधिकाधिक सबल। हिन्दी की बोलियो को ही लीजिए। अवधी और ब्रज तेरहवी-चौदहवी शती से प्राकृत तथा अपभ्रश के प्रभाव से मुक्त होने तथा साहित्यिक क्षेत्र पर आधिपत्य स्थापित करने का सक्रिय प्रयत्न करती जान पडने लगी। विकास की इस आरम्भिक स्थिति मे इन बोलियो के समर्थको के सम्मुख एक समस्या यह थी कि वे परम्परागत सम्पत्ति के रूप मे प्राप्त ठेठ शब्दकोश के सहारे सीमित परिधि मे ही भावो की अभिव्यक्ति करके सन्तुष्ट रहे, अथवा पूर्ववर्त्तिनी तथा समकालीन

अन्य भाषाओ एवं विभाषाओ की सहायता से अपनी बोलियो की अभिव्यजना-शक्ति का विकास कर उसका क्षेत्र विस्तृत करे। जन-बोलियो के समर्थको ने दूसरे मार्ग को ही अधिक श्रेयस्कर समझा, फलत उक्त बोलियो के शब्द-भडार को समृद्ध एव सम्पन्न करने के लिए विविध भाषाओ की ओर भी दृष्टिपात किया गया। जायसी के पूर्ववर्ती अवधी-कवियो ने यथाशक्य अवधी के शब्द-कोश को सम्पन्न बनाने मे योग दिया और इस दृष्टि से उन सभी कवियो का प्रयास महत्वपूर्ण है, किन्तु जायसी ही ऐसे प्रथम कवि है जिन्होने अवधी की भावाभिव्यजिका–शक्ति को प्राणवान् रूप प्रदान किया। वे अवधी की प्रकृति से पूर्णतया परिचित थे, अतएव उन्होने पूर्ववर्ती तथा समकालीन देशी और विदेशी भाषाओ तथा बोलियो के शब्दो एव प्रयोगो को यथावश्यक रूप मे अपनाया किन्तु उनसे ठेठ अवधी के 'ठाठ' मे किसी प्रकार की कमी न आने दी।

जायसी-काव्य मे प्रयुक्त शब्द-समूह हिन्दी के अन्य कवियो के द्वारा व्यवहृत शब्द-समूह के समान ही मिश्रित है। उसमे तत्सम, अर्द्धतत्सम, तद्भव, देशज तथा विदेशी आदि सभी वर्गो के शब्दो का समावेश है किन्तु तद्भव तथा ग्राम्य-शब्दो का अनुपात अन्य सभी वर्गो के अन्तर्गत आने वाले शब्दो की अपेक्षा अधिक है। इसका कारण स्पष्ट है। जायसी की वृत्ति परिनिष्ठित तथा परिमार्जित किन्तु कृत्रिम साहित्यिक भाषा की अपेक्षा नैसर्गिक तथा स्वाभाविक किन्तु अनगढ लोकभाषा मे अधिक रमी है। यह सत्य है कि कुशल कवि अपने भावो को अभिव्यक्ति प्रदान करते समय समकालीन समाज की अभिरुचि, बौद्धिक स्थिति तथा प्रचलित काव्य-परम्पराओ का भी ध्यान रखते है क्योकि काव्य-रचना तभी सफल समझी जाती है जब वह पाठको तथा श्रोताओ मे समादृत और लोकप्रिय हो। यह भी ठीक है कि साधारणत प्रत्येक कवि सामान्य जन की अपेक्षा भावक या आलोचक के द्वारा अपने काव्य की प्रशसा चाहता है[1], इसीलिए तो विद्यापति का पाठक 'नाअर'[2] (नागर) और तुलसी के प्रबध का आदर करने वाला 'बुध'[3] है। जायसी ने भी अध्येता

---

१. लोकोक्ति भी है सरस कविन के चित्त को बेधत द्वै सो कौन।
असमझबार सराहिबो समझबार की मौन॥

२. बालचन्द विज्जावइ भासा। दुहु नहिं लग्गइ दुज्जन हासा॥
ओ परमेसर हर सिर सोहइ। ई णिच्चइ नाअर मन मोहइ॥
—विद्यापति कीर्तिलता, प्रथम पल्लव।

३. जे प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं। सो स्रम बादि बालकवि करहीं॥
—रामचरितमानस, बालकांड।

तथा श्रोता की कल्पना करते समय 'पडित'[1] का स्मरण किया है, किन्तु साथ ही उन्होने अपने वचनो को श्रीहर्ष[2] की भाति इने-गिने लोगो तक ही सीमित रखने की अपेक्षा सर्व-जनग्राह्य रूप प्रदान करना अधिक श्रेयस्कर समझा है और 'भाषा'[3] मे काव्य-प्रणयन किया है। काव्याभिव्यक्ति के माध्यम के रूप मे 'भाषा' की प्रतिष्ठा तेरहवीं-चौदहवी शताब्दी मे ही होने लगी थी। खुसरो ने व्यावहारिक प्रयोगों के अतिरिक्त मनोरजन एव मनोविनोद के लिए 'भाषा' को ही उपयुक्त समझा[4]। विद्यापति ने भी 'भाषा' को अपनाया[5]। कबीर आदि निर्गुण-पथी सतो एव सूर तथा तुलसी आदि सगुण-भक्तो को भी जन-भाषा मे ही काव्य-रचना अभीष्ट रही। जायसी ने काव्य-भाषा के सम्बन्ध मे किसी तर्क को तो प्रस्तुत नही किया है, किन्तु उनके काव्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्यिक परम्पराओं से परिचित रहते हुए तथा पडितो से प्रशसा-प्राप्ति की कामना[6] करते हुए भी उन्होने अपनी कविता जन-साधारण के लिए की है। उनका दृष्टिकोण यही जान पडता है कि 'भाषा' या 'जनबोली' ही अपनी बोधगम्यता तथा सरलता के कारण रस-चर्वणा मे सर्वाधिक सहायक है और कवि के मुख मे स्वाभाविक रूप से निस्सृत होने वाली भाषा ही काव्य-भाषा का सर्वाधिक मान्य स्वरूप है। अपनी इसी धारणा के कारण उन्होंने अवधी के ठेठ बोलचाल के रूप का ही अधिकाशत प्रयोग किया है और उनकी प्रेम-पीर की अभिव्यजना इस भाषा मे बडी ही सुन्दर बन पडी है।

यहाँ 'अवधी के 'ठेठ बोलचाल के रूप' से यह अभिप्राय नही है कि जायसी की भाषा मे किसी भी अन्य भाषा, विभाषा अथवा बोली का पुट लेशमात्र नहीं है और वह

---

१ औ बिनती पँडितन्ह सो भजा। टूट सँवारेहु मेरएहु सजा।। प० २३।२

२ ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासिप्रयत्नान्मया
प्राज्ञमन्यमना हठेन पठिति मास्मिन्खल खेलतु।
श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थि समासादय-
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जन सज्जन। नैषधीयचरितम्, २२।१५२।

'अर्थात् पडित होने का दर्प करने वाला कोई दु शील मनुष्य इस काव्य के मर्म को हठ-पूर्वक जानने का चापल्य न कर सके, इसीलिए मैंने जानबूझ कर इस ग्रन्थ में कही-कही ग्रन्थियाँ लगा दी हैं। जो सज्जन श्रद्धाभक्ति-पूर्वक गुरु को प्रसन्न करके इन गूढ़ ग्रन्थियो को सुलझा लेंगे, वे ही इस काव्य के रस की लहरो में हिलोरें ले सकेंगे।'

३ लिखि भाषा चौपाई कहे। प० २४।५

४ प० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५५।

५. देसिल वअना सब जन मिठ्ठा। त तैसन जम्पओ अवहट्ठा।
—कीर्तिलता स० डॉ० बाबूराम सक्सेना, प्रथम पल्लव, पृ० ६।

६. जो यह पढ़ै कहानी हम सवरै दुइ बोल। प० ६५२।६

शतप्रतिशत अवधी है। जायसी सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश आदि पूर्ववर्त्ती भारतीय भाषाओ एव ब्रज, बुदेली, भोजपुरी आदि विविध समकालीन बोलियो के शब्दो तथा प्रयोगो से सामान्य रूप से परिचित थे। उन्होने स्वय अन्य भाषा-भाषी क्षेत्रो की यात्राये नही की थी और उनका लगभग समस्त जीवन अवधी-प्रदेश मे ही व्यतीत हुआ था, किन्तु यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि समय-समय पर ऐसे व्यक्तियो से उनका सम्पर्क अवश्य होता रहा होगा जिनकी मातृभाषा उक्त बोलियो या विभाषाओ मे से ही कोई एक थी। जायसी ने उनके सम्पर्क से अवश्य ही कुछ शब्द ग्रहण किए होगे। इसके अतिरिक्त उन बोलियो के कुछ शब्द जायसी के पहले से ही अवधी मे प्रचलित रहे होगे जिन्हे जायसी ने अपना लिया।

अरबी-फारसी तथा तुर्की आदि विदेशी भाषाओ के शब्द ग्यारहवी-बारहवी शती से ही इस देश के पश्चिमोत्तर प्रदेश मे प्रचलित हो चले थे और इस देश की काव्य-भाषा पर भी उनका प्रभाव पडने लगा था। खुसरो की मिली-जुली भाषा की स्फुट रचनाएँ जन-साधारण मे प्रचलित हो चुकी थी और अनेक साधारण कवियो ने भी उनका अनुकरण करने की चेष्टा की थी। जनता की बोली मे बहुत से विदेशी शब्द घुलमिल गए थे। जायसी ने विदेशी शब्दो तथा प्रयोगो को उसी रूप मे अपनाया जिस रूप मे उनका प्रचलन सर्वसाधारण मे था। इस दिशा मे उनका महत्वपूर्ण कार्य यह भी कहा जा सकता है कि उन्होने फारसी के शब्दो का प्रयोग, मूल रूप मे न कर, अवधी की प्रकृति, ध्वनि-परम्परा तथा व्याकरणिक व्यवस्था के अनुरूप ही किया। इस प्रकार नवीन आगत शब्दो से अवधी की व्यजनाशक्ति का प्रचुर विकास हुआ और उसमे एक विशेष सामर्थ्य आ गई।

जायसी की भाषा मूलत. अवधी है जिसे उन्होने पूर्ववर्त्ती और समकालीन देशी-विदेशी भाषाओ, विभाषाओ तथा बोलियो के शब्दो और प्रयोगो से समुचित मात्रा मे सम्पन्न कर विशिष्ट गरिमा प्रदान की। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द-समूह का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है

१ – प्रा० भा० आ० भा० की शब्दावली

(अ) सस्कृत तत्सम शब्द।

(आ) अर्द्धतत्सम शब्द।

२ – म० भा० आ० भा० से तत्सम रूप मे गृहीत शब्दावली।

३ – पूर्वजा भाषाओ से विकसित जन-साधारण मे प्रचलित तद्भव-शब्दावली।

४ – विदेशी भाषाओ – अरबी, फारसी तथा तुर्की की शब्दावली।

५ – समकालीन समीपस्थ-क्षेत्रीय-बोलियो की शब्दावली।

६ – देशज और अनुकरणात्मक शब्दावली।

१ – प्रा० भा० आ० भा० की शब्दावली :

(अ) **संस्कृत तत्सम शब्द** जायसी ने संस्कृत तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग नहीं किया है। 'पदमावत' में इस प्रकार के शब्दों का अनुपात लगभग पन्द्रह प्रतिशत है। अखरावट, आखिरी कलाम तथा महरी बाईसी में यह अनुपात और भी कम है। इसके दो कारण है। सर्वप्रथम तो यह कि जायसी को अन्य मुसलमान सूफी कवियों के समान ही संस्कृत का केवल श्रुत ज्ञान ही था और वह भी बहुत कम। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इस सम्बन्ध में जायसी के पर्यायवाची शब्दों के सीमित ज्ञान तथा संस्कृत व्याकरण के अज्ञान के उदाहरण देते हुए यही पुष्ट किया है[1]। संस्कृत-भाषा का ज्ञान न होने के कारण जायसी द्वारा संस्कृत तत्सम-शब्दों का परिमित मात्रा में प्रयोग सर्वथा स्वाभाविक ही था।

दूसरे, जैसा पहले ही कहा जा चुका है कि जायसी जन-भाषा में कविता करना चाहते थे। अपभ्रंश-काव्य तथा इतर-हिन्दी-काव्य के प्रवाह में काव्य-भाषा के रूप में संस्कृत भाषा का प्रयोग लगभग समाप्त हो चला था और कवि तथा जनता दोनों की दृष्टि में वह दुर्बोध थी। जायसी को अपने मत का प्रचार करना था संस्कृत अथवा अरबी भाषा का नहीं, अतएव उन्होंने वह 'भाषा' अपनाई जो लोक-प्रचलित थी। उनकी भाषा में तुलसी की भाषा के समान संस्कृतनिष्ठता नहीं है। उसमें ग्राम्य-भाषा की स्वाभाविक तथा नैसर्गिक मिठास है और इसी में उसकी हृदयग्राहिता है।

जायसी की भाषा में प्रयुक्त संस्कृत तत्सम शब्द अधिकतर आकार में लघु तथा संयुक्ताक्षर-रहित है, ऐसे शब्द उच्चारण में सरल होने के कारण हिन्दी की विविध बोलियों में सहज रूप में इस प्रकार घुल-मिल गए है कि वे सामान्य प्रचलित-भाषा के शब्दों से भिन्न नहीं जान पड़ते, यथा

अखिल[2], अधर[3], अधिक[4], अमर[5], अवधि[6], अलि[7], आसन[8], उपमा[9], कला[10], कुच[11], कटक[12], कठिन[13], कथा[14], काया[15], गज[16], गति[17], गीत[18], चीर[19], जल[20], जगत[21], दिनकर[22], दिवस[23], नदी[24], नर[25], बल[26], भव[27], भूमि[28], मन[29], मोह[30], माया[31], माला[32],

---

१ पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली, भूमिका. पृ० १७४।

२ म०बा० १५।६ ३. अख० ८।३ ४ म०बा० २१।१० ५ प० १०८।७

६. आखि० २५।२ ७. प० १०३।२ ८. आखि० २।६ ९ म०बा० १२।३

१०. म०बा० १८।११ ११ म०बा० १२।१० १२ प० २६।३ १३ प० ७०।७

१४ प० ११९ १५ प० ३०४।६ १६ म०बा० १२।८ १७ म०बा० २२।३

१८ म०बा० ८।७ १९ म०बा० १२।१ २० प० ११३ २१. प० ११।३

२२. प० ६३८।८ २३. म०बा० ९।२ २४ आखि० ५७।६ २५. अख० १।२

२६. आखि० २।१ २७ अख० २५।८ २८ अख० २८।४ २९. म०बा० १।५

३० म०बा० ३।१४ ३१. आखि० १८।१ ३२ म०बा० १२।१०

मधु[१] तथा **मधुकर**[२] आदि । इस प्रकार के शब्दो के साथ-साथ यत्र-तत्र सयुक्ताक्षर-युक्त तत्सम शब्द भी मिलते है, यथा **अस्त**[३], **अवस्था**[४], **उत्तर**[५], **चरित्र**[६], **चित्र**[७], **चेष्टा**[८], **धन्य**[९], **नेत्र**[१०], **प्रथम**[११], **पत्र**[१२], **प्रभुता**[१३], **प्रीति**[१४], **ब्रह्म**[१५], **रुद्र**[१६], **सप्त**[१७], **सिद्धि**[१८], **सहस्र**[१९] तथा **संग्राम**[२०] **आदि** । ऐसे प्रयोग इने-गिने ही है तथा ये भी लोकप्रचलित तथा सहजगम्य है ।

एक-दो स्थलो पर **'अस्तु अस्तु'**[२१], **'नास्ति'**[२२], तथा **'सोऽहं'**[२३] आदि सस्कृत के व्याकरणसम्मत विशुद्ध प्रयोग भी मिलते हे किन्तु इनके आधार पर कवि की भाषा को सस्कृतनिष्ठ कहना भारी भ्रम होगा । मध्यकालीन समाज के धार्मिक वातावरण मे यह पद सामान्य रूप मे प्रचलित थे और किसी भी धर्मानुरागी भारतीय का इनसे परिचित होना सर्वथा स्वाभाविक था ।

सन्धियुक्त तत्सम शब्दो तथा तत्सम सामासिक पदो का व्यवहार भी जायसी ने बहुत कम किया है । अधिकाश सन्धियाँ स्वरो की हे और सरल है, यथा **कंसासुर**[२४], **पत्रावलि**[२५], **इन्द्रासन**[२६] आदि । सामासिक पद भी दो तीन शब्दो से ही बने है, जैसे **अंधकूप**[२७], गजगामिनि[२८], गिरिजापति[२९], **छत्रपति**[३०], **पत्रनबध**[३१], **कनकपत्र**[३२], राजसभा[३३], **रुडमाल**[३४], **हसगामिनी**[३५], **कुंभस्थल**[३६], **इंद्रसभा**[३७], **कनकलता**[३८], **दिगबर**[३९] आदि । इस प्रकार के सधि-प्रयोगो तथा सामासिक पदो से जायसी की भाषा के प्रसाद-गुण मे किसी प्रकार का व्याघात नही पहुँचा है और अर्थ-बोध मे कोई कठिनाई नही होती ।

जायसी-काव्य मे तत्सम-शब्द किसी स्थल-विशेष पर ही प्रधान रूप से प्रयुक्त नही हुए है, प्रत्युत् वे सम्पूर्ण काव्य मे बिखरे पडे है । साधारण विषयो के प्रसग मे वे यत्र-तत्र प्रयुक्त हुए है और भावपूर्ण या रुचिकर स्थलो पर, जहाँ कवि ने पाठको की बोध-वृत्ति को विशेषरूप से उद्बुद्ध करने के उद्देश्य से तथा विषय मे काव्यात्मकता लाने के हेतु रूपक, उत्प्रेक्षादि अलकारो का समावेश किया है, उनकी सख्या कुछ अधिक हो गई है,

---

१ म०बा० २२।८   २. प० १०६।६   ३ प० ४६२।२   ४ प० २५५।६
५ प० २३१।२   ६ म०बा० ६।३   ७ प० ४६८।६   ८ प० १२०।३
९ प० ४८१।२   १० प० ३२६।१   ११ प० ३३५।१   १२. प० ४०९।४
१३ प० ३४०।९   १४ प० २३१।२   १५ प० ३६६।४   १६ प० ३६६।४
१७ प० ४९२।२   १८. प० १८२।९   १९ प० १५६।६   २० ५०३।७
२१. प० १५८।४   २२. प० २२१।५   २३. अख० १३।४   २४. प० १०२।४
२५. प० २९७।३   २६ प० २८।४   २७. अख० १।२   २८. प० २५०।५
२९. प० २१५।५   ३० आखि० ८।१   ३१. प० १७३।६   ३२. प० ४०४।३
३३. प० ३७६।१   ३४. प० २०७।२   ३५ प० ३२।३   ३६. प० ५७२।२
३७ प० ४७।१   ३८. प० ४०२।९   ३९. प० ३०।५

किन्तु ऐसे स्थलो पर भी वह अवधी के सहज रूप के लिए भारस्वरूप सिद्ध नही होते। उन प्रयोगो मे कृत्रिमता तथा आडम्बर का लेशमात्र भी दृष्टिगोचर नही होता, वरन् वे विषय तथा माध्यम दोनो को ही अपने सहयोग से गौरव प्रदान करते है। पाडित्य-प्रदर्शन के लिए तत्सम शब्दो को अपनाने की प्रवृत्ति कवि मे लक्षित नही होती, फलत सस्कृत के तत्सम शब्दो से भाषा के स्वाभाविक विकास मे बाधा नही पहुँची है और भाषा का स्वाभाविक तथा सहज रूप सुरक्षित रहा है।

(आ) **अर्धतत्सम शब्द** प्रा० भा० आ० भा० के अर्द्धतत्सम शब्द, सस्कृत तत्सम शब्दो के किंचित् परिवर्तित रूप है। यह स्मरणीय है कि अर्धतत्सम शब्दो मे पाया जाने वाला उक्त ध्वन्यात्मक परिवर्तन उस परिवर्तन से भिन्न है जो विकास-क्रम के अनुसार सस्कृत से प्राकृत तथा प्राकृत से नव्य भारतीय आर्यभाषाओ मे विकसित शब्दो मे पाया जाता है और जिससे तद्भव शब्दो की रचना हुई है। जायसी के काव्य मे प्रा० भा० आ० भा० के शब्दो का प्रयोग तत्सम रूप के अतिरिक्त अर्द्धतत्सम रूप मे भी हुआ है। इस प्रकार के अधिकाश शब्द तत्सम शब्दो मे उच्चारण-सौकर्य के कारण किए जाने वाले स्वरागम, स्वरभक्ति, स्वर-विपर्यय, व्यजनागम तथा अल्पप्राणीकरण आदि विविध ध्वन्यात्मक परिवर्तनो का प्रतिफल है, यथा

स्तुति > अस्तुति[१], स्थूल > अस्थूल[२]; स्थिर > अस्थिर[३], स्त्री > इस्त्री[४], निर्मल > निरमल, दरिद्र > दलिद्र[६], समाप्ति > समापति[७], अत्यन्त > अतियन्त[८]; त्राहि > तराहिं[९], चमत्कार > चमतकार[१०]; प्रियतम > प्रीतम[११]; प्रकार > परकार[१२], मालति > मालित[१३], ब्रह्माण्ड > ब्रह्मडा[१४], मुद्रा > मुद्रा[१५], अस्त्र > अत्र[१६], काया > कया[१७], त्वचा > तुचा[१८], द्वारिका > दुवारिका[१९], मृणाल > त्रिनाल[२०], निषिद्ध < निखिद्ध[२१], कृपा > किरिपा[२२], पुण्य > पुन्य[२३], ब्रह्मचर्य > ब्रह्मचर्ज[२४], तीर्थ > तिर्थ[२५], भर्तृहरि > भर्तहरि[२६], निश्चल > निस्चल[२७], श्री > स्त्री[२८], कष्ट > कस्ट[२९], कृष्ण > क्रिस्न[३०], अष्ट > अस्ट[३१], कृष्ण > किस्न[३२], दृष्टि > द्रिस्टि[३३], तृष्णा > त्रिस्ना[३४], नपुसक > निपुसिक[३५],

---

१. प० १६।६ २. अख० ६।१० ३. प० १२५।५ ४. प० ४८४।६
५. अख० ३६।८ ६. आखि० ५२।८ ७. प० १८२।६ ८. प० ४१८।४
९. प० १९९।६ १० प० ४७७।२ ११. अख० ३३।१ १२. अख० २८।६
१३. प० ४१८।५ १४ प० ९।५ १५. प० २७६।६ १६. प० १०१।६
१७. प० १२६।८ १८. प० ६५३।३ १९. प० ६०३।७ २०. प० ४१४।४
२१. प० ६४३।८ २२. प० ४८८।८ २१. प० ३८७।२ २४. प० ३०।५
२५. प० ६०४।२ २६. प० २०८।३ २७. प० ५३३।८ २८. प० ३९३।२
२९. प० ६०७।८ ३०. प० ५९३।८ ३१. आखि० १७।६ ३२. प० ११५।५
३३. प० ३६।६ ३४. म०बा० १६।१० ३५. प० ५३५।७

मृदग>म्रिदग[1], गृहस्थ>गिरहस्त[2], लज्जा>लज्या[3], श्रवण>स्रवन[4], निश्चय>निस्चै[5], वस्तु>बस्तु[6], बृहस्पति>ब्रिहस्पति[7] आदि।

कही-कही मात्रा-पूर्त्यर्थ भी तत्सम शब्दो को विकृत करना पड़ा है यथा

प्राप्ति>परापति[8], अंकुर>अकूर[9], द्वादश>दुवादस[10], अनुपम>अनूपम[11] आदि।

उक्त अर्द्धतत्सम रूपो को देखने से यह स्पष्ट है कि उनके प्रयोगो मे कवि ने जहाँ अवधी की प्रकृति का ध्यान रखा है, वही उसकी दृष्टि उच्चारण-सौकर्य पर भी रही है। प्रयुक्त अर्द्धतत्सम शब्दो का अनुपात लगभग सात प्रतिशत है।

२ – म०भा०आ०भा० से तत्सम-रूप मे गृहीत शब्दावली :

प्रा० भा० आ० भा० से तत्सम तथा अर्द्धतत्सम रूप मे व्यवहृत शब्दावली के अतिरिक्त जायसी के काव्य मे म० भा० आ० भा० के शब्द भी प्राप्त होते है। इनका अनुपात लगभग एक प्रतिशत है। इस स्थल पर एक तथ्य की ओर सकेत कर देना आवश्यक है। म०भा०आ०भा० के प्रयुक्त शब्दो को दो वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वे शब्द आते है जो आ० भा० आ० भा० मे आकर भी अपने मध्यकालीन स्वरूप मे ही सुरक्षित रहे है, यथा **अमिअ[12]∠**अमिअ∠अमृत, **केहरि[13] केहरि∠ केसरी, हेवँ[14]∠हेवँ∠हिम तथा जस[15]∠जस∠यश** आदि। इस प्रकार के शब्दो को तद्भव की कोटि मे रखना ही अधिक उचित है। द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत वे शब्द आते है जो आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ के वर्तमान प्राप्त स्वरूप मे भिन्न है तथा जिनका प्रचलन विशेषरूप से मध्यकालीन भाषाओ मे रहा हो। इस स्थल पर इसी वर्ग के अन्तर्गत आने वाले शब्दो का विवेचन अभीष्ट है। जायसी-काव्य मे इस प्रकार के बहुत मे शब्द प्रयुक्त है, यथा **अग्गि[16]∠अग्नि, अम्रित[17]∠अमृत,** अकथ्थ[18]∠अकथ्य **अनित्त[19]∠अनित्य, अहुठ[20]∠अध्युष्ठ, उज्जर[21]∠उज्ज्वल, जग्गि[22]∠यज्ञ,** तिक्ख[23]∠**तीक्ष्ण, दिब्ब[24]∠दिव्य,**

---

१. प० ३३२।८ २. प० ३३१।६ ३. प० १४४।२ ४. प० ४१६।४
५. प० १४६।३ ६. अख० ५।४ ७. अख० १७।३
८ **बार आइ तब गा तैं सोई। कैसें भुगति परापति होई।** प० १६५।४
९. **तब भा पुनि अकूर सिरजा दीपक निरमला।** अख० २।१०
१०. **तिलक दुवादस मस्तक कीन्हें। हाथ कनक बैसाखी लीन्हें।** प० ८०६।३
११ **तेहि महँ जोति अनूपम भाँती। दीपक एक बरै दुइ बाती।** अख० ३।५
१२. प० ५७४।८ १३. प० १७२।५ १४. प० २।१ १५ प० ६५२।८
१६. प० ३४१।६ १७. प० ५५०।२ १८. प० २२३।८ १९. आखि० ६०।७
२०. प० १२१।८ २१. प० ५३६।६ २२. प० १७।७ २३ प० ४६७।२
२४. प० २३१।२

दह[1] ∠ **दश**, **मुक्ख**[2] ∠ **मुख्य**, **बिज्जु**[3] ∠ **विद्युत्**, **लच्छन**[4] ∠ **लक्ष्मण**, **सायर**[5] ∠ **सागर** तथा **हत्थ**[6] ∠ **हस्त** आदि ।

इन शब्दो के अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्द भी जायसी-काव्य मे प्राप्त होते है जो प्राकृत शब्दकोशो मे उपलब्ध न होते हुए भी म० भा० आ० भा० की ध्वनि-प्रवृत्तियो से युक्त है, यथा **अहथिर**[7] ∠ **स्थिर**, **चिहुर**[8] ∠ **चिकुर** आदि । ऐसे शब्दो को **'प्राकृताभासी'** शब्द कहना अधिक उपयुक्त होगा । कुछ शब्दो मे प्राकृत के प्रभाव के अतिरिक्त किंचिन् भिन्न-प्रवृत्ति भी आ गई है, यथा **पब्बै**[9] ∠ **पव्वइ** ∠ **पर्वत** । कही-कही मात्रा या तुक की आवश्यकना के अनुसार **'इ'** का योग हो गया है, यथा **खड्ग>खग्ग>खग्गि**[10] । इन विविध प्रकार के प्रयोगो की पृष्ठभूमि मे कवि का कोई विशेष दृष्टिकोण नही जान पडता । अपभ्रंश भाषा मे साहित्य-रचना तेरहवी-चौदहवी शती तक होती रही है । जायसी का समय इससे दो-तीन शताब्दी बाद का है, अत यह सम्भावना सहज ही की जा सकती है कि अपभ्रंश मे साहित्य-सर्जन रुक जाने के उपरान्त तथा साधारण बोल-चाल की भाषा मे जनता द्वारा व्यवहृत न होने पर उसके कतिपय शब्दो का प्रचलन लोक-काव्य मे आंशिक रूप से रहा हो । जायसीकालीन अवधी ने अपभ्रंश के निकट होने के कारण इस प्रकार के बहुत से शब्दो को दायरवरूप प्राप्त किया हो, और उन्ही मे से कुछ शब्द जायसी ने भी अपना लिए हो जो उक्त रूपो मे प्राप्त होते है ।

३. **तद्भव शब्दावली** प्रत्येक भाषा अथवा विभाषा की सम्पत्ति तद्भव शब्दावली ही है क्योंकि इसी मे उसका स्वाभाविक रूप झलकता है तथा यही उस भाषा की प्रकृति का सच्चा द्योतन कराती है । जायसी ने यथासम्भव तद्भव शब्दो का प्रयोग करने की ही चेष्टा की है, अतएव उनकी भाषा मे इन शब्दो का प्राचुर्य है । जायसी-काव्य मे तद्भव शब्दावली का अनुपात लगभग अडसठ प्रतिशत है । यहाँ उदाहरणार्थ कतिपय प्रयुक्त तद्भव शब्द व्युत्पत्तिसहित सकलित है

आम्राराम>अम्बाराम>अँबराउँ[11], **अक्षवाट>अक्खआड>अखार**[12], **अभिवाद्य>अहिवाद्द>अहिवाद>अहिवात**[13], **आखेट>आहेड>अहेड>अहेर**[14]+**ई**, **आख्यान>आहाण>अहान**[15], **अक्षर>अक्खर>आखर**[16], **अम्लिका>अबिलिआ>अँबिलि**[17], **अवघाटक>अउहाडअ>अउहारअ>ओहारअ>ओहार**[18], **कर्णधार>कण्णहार>कँडहार**[19]+**आ**; **कल्यपाल>कल्लवाल>कलवार**[20]+**इ**; **कर्णिक>कण्णिअ>कड्डिअ>कडिअ>करिअ**[21],

---

१. प० १६।५   २. प० ४६३।७   ३. प० ४४३।४   ४. प० १२०।४
५. प० ६०६।५   ६. प० २२३।६   ७. प० ४२।५   ८. प० ६७।७
९. प० ५१०।७   १०. प० ३४१।८   ११ प० २७।२   १२. प० ५५७।४
१३. प० १३१।६   १४. प० ३८।४   १५. प० १५।३   १६ प० २२३।६
१७. प० १८७।५   १८. प० ३३६।५   १९. प० १८।६   २० प० १८५।५
२१ प० १९।९

कबन्ध>कउँध>कौंध>कौंधा[1], कटिभाग>कडिहाअ>कडिहाउ > करिहाउँ[2], कूट> कूड > कूर, कूरा[3], कर्दम>कद्दवँ>कद्दउँ>कादौं[4], क्षेपक>खवअ>खेवा[5], क्षपणक> खवणअ>खवड़ा, खइवडा>खेवडा>खेवरा[6], क्षोद्य>खोज्ज>खोज,खोजू[7], गुह्यक> गुज्झअ>गूझा, गोझा[8], ग्रहणक>गहणअ>गहना[9], गौरव>गारौ[10], गुरुक>गुरुव> गरुअ>गरुव[11], चर्चरी>चच्चरि>चाँचरि[12], चक्रव्यूह>चक्कबूह>चकाबूह[13], छादन> छायण, छायणि>छाइनि>छानि, छान्हि[14], युद्धकारक>जुज्झआरअ>जुझारा जुझारू[15], युवती>जुअइ>जोई[16], जाड्य>जड्ड>जाड[17], योगपट्ट>जोगवट्ट> जोगउट्ट>जोगौटा[18], जम्बु>जबु>जाँबु[19], तारागण>तारायग>ताराइन>तराई[20], तुच्छ>छुच्छ>छूछ> छूँछ[21], शावक>छावअ>छावा[22], दीपावली>दीवाअली>दिवारी, देवारी[23], दायाद्य> दायज्ज>दायज, दाइज[24], धवलगृह>धउलहर>धौरहर>धौराहर[25], ज्ञातिगृह> णाइहर>नैहर[26], नापित>णाविद>न्हाविअ>नाई, नाऊ[27], निकर>णिगर>णिगड> निगड़[28], पादुका > पाउआ > पाऊँ[29], प्रतिज्ञा > पइज्जा > पैज[30], पेटिका > पेडिआ > पेडी[31], प्रस्वेद > पस्सेउ > पसेउ[32], दर्भ > दब्भ, डब्भ > डाभ[33], दृष्टिकार > दिठियार > डिठिआर[34], प्राघूर्ण > पाहुण्ण > पाहुण > पाहुन[35]; पुटकिनी>पुडइनी>पुरइनि[36], प्रतोली>पओली>पँवरि[37], वृश्चिक>बिच्छिअ> बीछी[38], बरयात्रा>वरआत>बरात[39], बलकारी>बरआरि, बरयारि>बरियार[40]; विघटित>बिहडिअ>बिहरा, बेहर[41], वेध्य>बेज्झ>बेझ[42], वज्राग्नि>बज्जागि> बजागि[43], विटप<विडव>बिरउ>बीरौ[44], वर्त्म>वट्ट>बाट[45], विषधारक> बिसहारअ>बिसहारा>बिसारा[46], विनिशा>बिनिसा>भिनसा>भिनसार, भिनुसार[47], ववण्डर>वउडर>बौंडर, बौंडरा[48], भाण्डागारिक>भडाआरिअ>भडारिअ>भँडारी[49], भिक्षाचारिन्>भिक्खआरिअ>भिखारी[50], मडप>मडव>मडउ>माँडौ[51], मौक्तिक>

---

१. प० ११०।२ २. प० ४१४।५ ३. प० १९६।६ ४. प० १४।७
५ प० १४।७ ६. प० ३०।८ ७. प० ११७।३ ८. प० १९२।४
९. प० ११०।९ १०. प० ३४४।८ ११. प० १५७।३ १२. प० ३३५।६
१३. प० २९४।१ १४ प० ३५६।९ १५. प० १२।५ १६. प० ५८४।३
१७. प० ३५०।१ १८. प० १२६।४ १९. प० १५।९ २०. प० १०।५
२१. प० २२५।८ २२. प० २०७।६ २३. प० ३४८।५ २४. प० ३८७।१
२५. प० २८८।१ २६ म०बा० १४।४ २७. प० ५२९।७ २८. प० ८९।८
२९. प० ४०९।५ ३०. प० ३३३।५ ३१. प० ३०९।२ ३२. प० २२५।२
३३ प० २१।४ ३४. प० ५७५।२ ३५. प० ३८०।६ ३६. प० २५२।५
३७ प० ३६।२ ३८. प० ५८०।४ ३९ प० २७५।९ ४०. प० २।८
४१ प० ४८।९ ४२ प० ४६३।९ ४३ प० ३४५।२ ४४. प० ३७६।१
४५. प० ३४५।६ ४६. प० ४७०।४ ४७ प० १५८।३ ४८ प० ११७।२
४९. प० ६७।२ ५० प० ७४।२ ५१. प० २७५।५

मोत्तिअ>मोती[1], माघवृष्टि>माहवट्टि>माहउट्टि>माहुट, मॉहुट[2], माणिक्य>माणिक्क >मानिक[3], राक्षस>रक्खस > राकस[4], राजपुत्र>राअउत्त>राउत्त>राउत[5], रन्ध्र>रन्ध>राँध[6] सदृश>सरिस>रीस>रीसी[7], लवण>लउण>लोण>लोन[8], श्रद्धा>सद्धा>साध[9] शीतकाल>सीतकाल>सियाला[10], शीत>सीअ>सीउ[11], सहकार>सहआर>सहार[12], सम्मुख>सउँह>सौहँ[13], सस्था>सठा, साँठ, साँठि[14], सक्षोभ>सखोह>साँखौ[15], स्थातृ>ठाट, ठाट+ई=ठाटी[16], लघुक>हलुअ>हरुअ, (स्त्रीलिग) हरुई।[17]

जायसी-काव्य मे कुछ शब्दो के अर्द्धतत्सम तथा तद्भव दोनो रूप भी प्रयुक्त हुए है, यथा—स० अग्नि, अर्द्ध० अगिनि[18], तद्० आगि[19], स० अष्ट, अर्द्ध० अस्ट[20], तद्० आठ[21], सं० आज्ञा, अर्द्ध० अग्या[22] तद्० आन[23], स० कदली, अर्द्ध० केदली[24], तद्० केरा[25], स० कृष्ण, अर्द्ध० क्रिस्न[26] तद्० कान्ह[27], सं० क्रोध, अर्द्ध० किरोध[28], तद्० कोह[29], सं० अमृत, अर्द्ध० अम्रित[30], तद्० अमिअ[31], स० दृष्टि, अर्द्ध० दिस्टि[32], तद्० डीठी[33], स० द्वार, अर्द्ध० दुवार[34], तद्० बार[35], स० सम्मुख, अर्द्ध० सनमुख[36], तद्० सामुहँ[37]। इस प्रकार के दुहरे रूप वाले शब्द अन्यल्प है।

४ **विदेशी भाषाओ की शब्दावली :** मुसलमान होने के कारण जायसी हिन्दू कवियो की अपेक्षा अरबी-फारसी के वातावरण मे अधिक रहे थे और उन भाषाओ से अधिक परिचित थे, किन्तु उनकी रचनाओ मे विदेशी शब्दावली का अनुपात केवल तीन प्रतिशत के लगभग ही है। जायसी ने उन्ही स्थलो पर विदेशी शब्दो का प्रयोग अधिक किया है जहाँ उनके व्यवहार से अभीष्ट वातावरण की सृष्टि सम्भव थी, यथा—

> अबाबकर सिद्दीक सयाने। पहिलइँ सिदिक दीन ओइँ आने।
> पुनि जो उमर खिताब सुहाए। भा जग अदल दीन जौ आए।[38]

ऐसे स्थल अत्यन्त सीमित है। फल-फूल, घोडे, वाद्य-यन्त्र आदि की तालिकाओ मे भी पूर्णता

---

१. प० ४१०।५ २ प० ३५१।५ ३. प० ३८५।५ ४. प० ४।७
५ प० ५५८।१ ६ प० २४०।१ ७ प० १११।१ ८. प० ५४५।४
९. प० १२३।८ १० प० ३४०।१ ११ प० १।७ १२ प० ३३६।८
१३. प० १६।६ १४ प० ४२०।२ १५. प० ३७२।३ १६. प० १४७।१
१७ प० ३५१।८ १८ प० ३५४।३ १९. प० ३६२।९ २० प० ५०९।३
२१. प० ३१२।३ २२ अख० ५१।१० २३. प० ८३।८ २४. प० ३०२।७
२५ प० ३४।५ २६. आखि० १४।५ २७ म०बा० २१।७ २८ प० ५२०।६
२९. प० ६१०।२ ३०. प० २३५।९ ३१. प० ५७४।८ ३२ प० ५५७।१
३३ प० ५५७।२ ३४ प० २१६।१ ३५ प० २१९।३ ३६ प० ६१३।३
३७ प० ६१९।२ ३८. प० १२।२–३

लाने की दृष्टि से कवि ने अरबी-फारसी शब्दावली का व्यवहार किया है किन्तु ये स्थल भी इने-गिने है। जायसी की भाषा मे प्रयुक्त विदेशी शब्द **मूल** तथा **परिवर्तित** दो वर्गो मे रखे जा सकते है। यहाँ तत्सम्बन्धी प्रमुख शब्द उदाहरणार्थ प्रस्तुत है —

(क) अरबी के मूल शब्द :—अली,[१] आदम,[२] आदिल,[३] आमिल,[४] आयत,[५] इमाम,[६] कौसर,[७] दीन,[८] नबी,[९] नूर,[१०] नूह,[११] बुर्ज,[१२] मीम,[१३] मीर,[१४] मुरीद,[१५] रसूल,[१६] शराब,[१७] सुराही,[१८] हसद[१९] आदि।

(ख) अरबी के परिवर्तित शब्द : अदल[२०] ∠ अद्ल; अबलक[२१] ∠ अब्लक;

अलिफ[२२] ∠ अलिफ;	**अबरस[२३] ∠ अब्रश,**	**असरफ[२४] ∠ अश्रफ;**
अल्ला[२५] ∠ अल्लाह;	**इबलीस[२६] ∠ इब्लीस;**	**इसलाम[२७] ∠ इस्लाम;**
उमत[२८] ∠ उम्मत,	**कागद[२९] ∠ कागज;**	**कागर[३०] ∠ काग़ज;**
कागज[३१] ∠ कागज,	**खिजिर[३२] ∠ खिज्र,**	**खिताब[३३] ∠ खिताब;**
तुरँज[३४] ∠ तुरंज;	**दुनिया[३५] ∠ दुन्या;**	**डफ[३६] ∠ दफ;**
पलीता[३७] ∠ फतील ,	**फातिमा[३८] ∠ फातिम ;**	**फिकिर[३९] ∠ फिक्र;**
बरक्कत[४०] ∠ बरकत,	**बिदाई[४१] ∠ विदाअ;**	**माँत[४२] ∠ मात;**
मोहदी[४३] ∠ महदी,	**मखदूम[४४] ∠ मखदूम;**	**मुरसिद[४५] ∠ मुर्शिद;**
मारफत[४६] ∠ मारिफत,	**सिदिक[४७] ∠ सिद्क,**	**सिद्दीक[४८] ∠ सिद्दीक,**
सदाद[४९] ∠ शद्दाद;	**सरीयत[५०] ∠ शरीयत,**	**सुलतान[५१] ∠ सुल्तान,**
सेख[५२] ∠ शैख,	**सैयद[५३] ∠ सैयिद,**	**सुहेला[५४] ∠ सुहैल,**
हमजा[५५] ∠ हमजः,	**हकीकत[५६] ∠ हकीकत,**	**हजरत[५७] ∠ हज्रत।**

---

१ आखि० ८।३ २ अख० ५।२ ३ प० १५।२ ४. अख० ४७।५
५ प० १२।४ ६ अख० १०।६ ७ आखि० २२।७ ८ अख० ४०।३
९ आखि० ४४।७ १० अख० १।२ ११ आखि० ३६।७ १२. प० ५२५।७
१३ अख० ४०।४ १४ प० ६३५।२ १५ आखि० ९।५ १६ आखि० २६।१
१७ आखि० ४८।१ १८. प० ४८१।४ १९. म०बा० १०।८ २०. प० १२।३
२१ प० ४९६।४ २२. अख० ४०।३ २३ प० ४९६।४ २४. प० १८।१
२५ अख० ४०।३ २६ अख० ३।९ २७. प० ६५१।९ २८. आखि० २५।१
२९. प० १८।८ ३० प० १०।२ ३१. आखि० ४३।५ ३२. प० २७।७
३३ प० १२।३ ३४ प० ४३६।८ ३५. अख० ४०।३ ३६. प० १८९।३
३७. आखि० १२।३ ३८. आखि० ४०।१ ३९. अख० ३९।१० ४०. म०बा १०।८
४१. प० ५८।५ ४२. प० ५६९।५ ४३. अख० २७।१ ४४ प० १८।९
४५. अख० १०।५ ४६. अख० २६।५ ४७ प० १२।२ ४८. प० १२।२
४९ आखि० ६।७ ५०. अख० २६।२ ५१. प० १७।८ ५२ अख० २७।२
५३ अख० २७।४ ५४. प० १७५।९ ५५ आखि० ८।४ ५६. अख० २६।५
५७ अख० २७।६

(ग) फारसी के मूल शब्द —कुलाह,[1] गच,[2] चादर,[3] चाल,[4] चौगान,[5] नान,[6] दम,[7] दर,[8] दरगाह,[9] दरबार,[10] दस्तगीर,[11] दानियाल,[12] दाख,[13] दीदार,[14] दुर,[15] पहलवान,[16] पीर,[17] बिस्तर,[18] मियान,[19] मैदान,[20] यार,[21] रबाब,[22] हुर,[23] हाल,[24] हिन्दू[25] आदि।

(घ) फारसी के परिवर्तित शब्द —अगाह[26] ∠आगाह, अरदास[27] ∠अर्जदाश्त, अर्स[28] ∠अर्श, कुमाइच[29] ∠कँमरचा, खग[30] ∠खिग, गिलावा[31] ∠गिलावः, गुरुज[32] ∠गुर्ज, गोइ[33] ∠गूय, चिस्ती[34] ∠चिश्ती, तखत[35] ∠तख्त, तबल[36] ∠तब्ल, ताजन[37] ∠ताजियान, तायन[38] ∠ताजियान, ताजी[39] ∠ताज़ी, दगा[40] ∠दगल, दवाँवाँ[41] ∠दमाम, दादि[42] ∠दाद, दरिया[43] ∠दर्या, दिनार[44] ∠दीनार, दोजख[45] ∠दोजख, दाग[46] ∠दाग, नमाज[47] ∠नमाज, नोकिरा[48] ∠नुक्रई, नेजा[49] ∠नैज, पानसाहि[50] ∠पादशाह, पियाला[51] ∠पियाल, पैगबर[52] ∠पैगबर, पेगह[53] ∠पाएगाह, फरजी[54] ∠फर्जी, फरमानू[55] ∠फर्मा, फिरिस्ते[56] ∠फिरिश्त, फील[57] ∠फील, बाँद[58] ∠बन्द, बुलाह[59] ∠बोल्लाह, बेकरार[60] ∠बेकरार, बकतर[61] ∠बक्तर, बिहिस्त[62] ∠बिहिश्त, बुरुद[63] ∠बुर्द, मदति[64] ∠मदद, मोहरा[65] ∠मुह्र, यजीद[66] ∠यजीद, रुख[67] ∠रुख, रोसन[68] ∠रोशन, लील[69] ∠नील, सजाब[70] ∠सिंजाब,

---

१ आखि० ५४।३   २. प० २८६।६   ३ अख० ६।११   ४ प० ४६६।४
५ प० ६२६।१   ६ आखि० ५४।३   ७. अख० ३२।७   ८ प० ४७।३
९. अख० ३३।४   १० आखि० ३७।२   ११. प० १८।७   १२ अख० २७।७
१३. प० ५०६।४   १४ आखि० ४९।४   १५ प० ४९६।३   १६ प० ६३५।२
१७ प० १८।१   १८. आखि० ४५।३   १९ अख० ४७।११   २० प० ६२६।७
२१ अख० १०।४   २२ प० ५२७।३   २३ अख० ३९।११   २४ प० ६२६।९
२५ अख० ७।९   २६ प० ८२।८   २७ प० ५३२।४   २८ आखि० ३९।७
२९. प० ५२७।३   ३० प० ४९६।३   ३१ प० ४८।३   ३२ प० ६३६।७
३३ प० ६२८।३   ३४ अख० २६।२   ३५ आखि० ५९।४   ३६. प० २३।३
३७ प० ४८८।६   ३८ प० ४९।४   ३९ प० ५९६।८   ४० आखि० ३६।५
४१ प० ४२७।१   ४२ आखि० ३९।६   ४३. आखि० ९।३   ४४. प० ४८८।३
४५ आखि० ४२।८   ४६. प० २००।२   ४७ अख० २६।१   ४८ प० ४९६।५
४९ प० ६३०।५   ५० प० १३।९   ५१ आखि० ४३।६   ५२. आखि० ३१।१
५३. प० ४९६।१   ५४. प० ५६७।६   ५५. आखि० १७।१   ५६. अख० १०।८
५७. प० ५६७।७   ५८ प० १८।९   ५९ प० ४६।४   ६० प० ६४।२
६१ प० ६३०।८   ६२. आखि० ३३।३   ६३. प० ५६७।९   ६४. प० ६३५।२
६५. प० ६५७।६   ६६. आखि० ३९।३   ६७. प० ५६७।६   ६८. प० २०।३
६९ प० ४९६।३   ७०. प० ४९६।७

सतरज ∠ शत्रज, सह[1] ∠ शह, सिरताज[3] ∠ सरताज;
सुरखरू[4] ∠ सुर्खरू, सलार[5] ∠ सालार, हौसर[6] ∠ हौसल ।

(च) तुर्की के मूल शब्द बहादुर[7], बीबी[8] ।

(छ) तुर्की के परिवर्तित शब्द —तुपुक[9] ∠ तुपक, तुरुक[10] ∠ तुर्क, बावर[11] ∠ बाबुर,
बैरख[12] ∠ बैरक, गूद[13] ∠ गूदः ।

उक्त शब्दो मे बहुत से शब्द हिन्दी-भाषा-भाषी जनता की बोलचाल मे घुल-मिल गए है, यथा–शराब, सुराही, अल्ला, इसलाम, कागज, दुनिया, फिकर, बिस्तर, नमाज आदि । कुछ कम प्रचलित अथवा अप्रचलित शब्द भी प्रयुक्त है, यथा–आमिल, नूह, इबलीस, उमत, सदाद, कुलाह, दस्तगीर, अर्स, बुरुद आदि, किन्तु स्मरणीय है कि कवि ने अभीष्ट वातावरण की सृष्टि के लिए ही इनका व्यवहार किया है अत वह इसके लिए दोषी नही ठहराया जा सकता ।

यह भी उल्लेखनीय हे कि जायसी ने विदेशी शब्दो का 'अवधीकरण' कर लिया है । यह प्रवृत्ति दो रूपो मे लक्षित की जा सकती है । ध्वन्यात्मक दृष्टि से तो विदेशी ध्वनियाँ अवधी की ध्वनियो मे परिवर्तित कर ही ली गई है, विदेशी शब्दो को भी अवधी के व्याकरणिक नियमो के अनुसार प्रयुक्त किया गया है, यथा, फरमानू, फिरिस्तन आदि । इस प्रकार जायसी ने विदेशी शब्दो का विदेशीपन यथासम्भव दूर कर दिया है ।

५ **समकालीन समीपस्थ क्षेत्रीय बोलियो की शब्दावली** –हिन्दी भाषा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अश उसकी जनपदीय शब्दावली है । हिन्दी का अपना क्षेत्र हिमालय से दक्षिण कोशल तथा राजस्थान से बिहार तक है । इस क्षेत्र की स्थानीय भाषाओ ओर बोलियो की शब्दावली का उपयोग न्यूनाधिक मात्रा मे हिन्दी साहित्य मे उपलब्ध होता है । बोलचाल की भाषा का विश्लेषण करने से भी यह ज्ञात होता है कि एक क्षेत्र मे बोला जाने वाला शब्द दूसरे क्षेत्र मे भी कभी अत्यल्प ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ और कभी सर्वथा समान रूप मे व्यवहृत हो रहा है । ऐसी दशा मे किसी शब्द को किसी एक ही बोली की एकान्त निधि कहना भ्रमपूर्ण तथा असत्य कथन हो सकता है । सच बात तो यह है कि हिन्दी शब्दो की व्युत्पत्ति का प्रश्न जितना महत्वपूर्ण है उतना ही जटिल भी है । जब तक प्राचीन साहित्य, देशी जनपदीय शब्दो, अपभ्रश के समस्त उपलब्ध साहित्य तथा अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाओ के कोशो का भली प्रकार अध्ययन नही कर लिया जाता और शब्द-

---

१. प० ५६७।१ २. प० ५६७।६ ३. प० ४६६।२ ४ प० २०।३
५. प० २२।३ ६ प० १७५।२ ७. प० ४६६।३ ८. आखि० ४२।२
९. प० ५०७।८ १०. आखि० ८।१ ११. आखि० ७।६ १२. प० ५११।५
१३. प० २६२।८

नही किया जाता तब तक व्युत्पत्ति के क्षेत्र मे उच्छृखलता और अराजकता की बहुत सम्भावना है और यह निष्पक्ष रूप से कह सकना कठिन है कि अमुक शब्द पर अमुक बोली का ही एकाधिकार है।

जायसी के काव्य मे ग्राम्य शब्दो की भरमार है और उनमे से अधिकाश अवधी-क्षेत्र मे प्रचलित है। उनकी रचनाओ मे अन्य क्षेत्रीय बोलियो तथा प्रान्तीय भाषाओ की शब्दावली अत्यधिक सीमित मात्रा मे है। इसका कारण स्पष्ट है। किसी भी कवि की भाषा पर अन्य प्रान्तीय भाषाओ की शब्दावली का प्रभाव या तो उस स्थिति मे पडता है जब वह पर्यटन-शील रहा हो और उसने अपने क्षेत्र से बाहर अन्य प्रान्तो मे कुछ समय तक निवास किया हो, या यह भी हो सकता है कि कवि का इतर भाषा-भाषी लोगो से सत्सग अथवा सम्पर्क रहा हो अथवा कवि ने इतर भाषाओ के साहित्य का अध्ययन किया हो। जायसी का प्राप्त जीवन-वृत्त इन सम्भावनाओ मे से किसी एक की भी पुष्टि नही कर पाता। अनुमान यही है कि जायसी अवधी-क्षेत्र मे ही रहे और उन्होने जन-भाषा मे कविता करने के अपने सकल्प का पूर्ण निर्वाह किया। इनकी भाषा मे ऐसे जो शब्द प्राप्त होते भी है—जिन्हे अन्य बोलियो से सम्बद्ध किया जा सकता है—वे भी जनभाषाओ मे प्रचलित रहे होगे ओर जायसी ने ऐसे ही शब्दो का व्यवहार अपने काव्य मे किया। उन्होने इन शब्दो को अपने काव्य मे भर ने की सायास चेष्टा नही की, यह कहना अनुचित न होगा। यहाँ कुछ ऐसे शब्दो की ओर सकेत किया जा रहा है जो अवधी से भिन्न हिन्दी की अन्य बोलियो मे विशेषरूप से प्रचलित है

अचाका[१], **ओहार**[२], **डेली**[३], **कचोरा**[४], **जडहन**[५], **उदसा**[६], **आदी**[७], **आगरि**[८], **बात**[९], **ठाट**,[१०] **सोहरि**[११], **गोहान**[१२], **कोरे**[१३] आदि। ये शब्द भोजपुरी प्रदेश मे अधिक प्रचलित है।

इसी प्रकार **कोपर**[१४], **लहुराई**[१५], **गेंडुवा**[१६], **खोरा**[१७], **खोरी**[१८] तथा **हूल**[१९] आदि शब्दो को बुन्देली से सम्बद्ध किया जा सकता है क्योकि उक्त शब्दो का प्रचलन भी अवधी-प्रदेश की अपेक्षा बुन्देली प्रदेश मे अधिक है।

निकटवर्ती भाषाओ की शब्दावली के अन्तर्गत कतिपय ऐसे शब्दो का उल्लेख किया जा सकता है जो अपभ्रश परम्परा के है और बँगला क्षेत्र मे विशेष रूप से प्रचलित है तथा अन्य आर्यभाषाओ मे जिनका प्रचलन अत्यधिक सीमित हो गया है, यथा

---

१ प० ५१०।१ २ प० ३३६।५ ३ प० ७०।१ ४ प० ४८३।१
५ प० ५४४।६ ६ प० ५३९।७ ७ प० १६०।१ ८ प० ३५६।२
९ प० ३५६।३ १० प० ३५६।७ ११ प० ४७०।२ १२ प० ४७०।२
१३ प० ३५६।७ १४ प० ५६२।३ १५ म०बा०१६।५ १६ प० २९१।६
१७ प० २८३।३ १८ प० २८३।३ १९ प० २१७।२

अ– बैसारी[1] (बैसना-क्रिया)।

पाँच बरिस महँ भई सो बारी। दीन्ह पुरान पढ़ै बैसारी।

आ– पारा[2] (पारना–क्रिया, 'सकना' का पर्याय)।

परी नाथ कोइ छुअइ न पारा। मारग मानुस सोन उछारा।

इ– आछै[3] (आछना–क्रिया)।

जहँ अस बरै समुँद नग दिया। तहँ किमि जीव आछै मरजिया।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने सजीवनी-व्याख्या मे यह सकेत भी किया है कि जायसी-काव्य मे प्रयुक्त **'झालर'** शब्द गुजराती का तथा **'खौंपा'** तमिल **'कोप्पु'** का रूप है।

६. देशज तथा अनुकरणात्मक शब्दावली – 'देशज' शब्दो की व्युत्पत्ति नही दी जा सकती। वे जनसाधारण की बोलचाल द्वारा देश-विशेष की उपज है। जायसी-काव्य मे इस प्रकार के शब्द सर्वत्र प्रयुक्त हुए है, यथा—

अडा[4], उलले[5], उजार[6], उसरबगेरी[7], ओहट[8], किलकिला[9], केंवा[10], कोड[11], करिल[12], करोरा[13], खस[14], खुरुक[15], खूँट[16], खेह[17], खोटा[18], खोरा[19], गलगल[20], घमोई[21], गुडरू[22], चाँटा[23], चूरा[24], जूरी[25], झाँख[26], झूठा[27], झोर[28], छूँछी[29], घुप[30], झूँक[31], झगरा[32], ठाठर[33], ठोर[34], ढख[35], ढग[36], डोर[37], तिलोरि[38], नाइत[39], धाह[40],

---

१ प० ५३।२, तुलना कीजिए √ बइस (अप०) अकर्मक (उप+विश)=बैठना, गुजराती में बसव। बइसइ (भवि०) पाइअसद्दमहण्णवो, पृ० ७७५।

२ प० १५।४, तुलना कीजिए, पार अक० √ शक्, सकना, करने में समर्थ होना। पारइ, पारेइ, हे० ४,८६ (पाअ०) पाइअसद्दमहण्णवो, पृ० ७२७।

३. प० ४१२।६, तुलना कीजिए अच्छ, अक० (आस्) बैठना। अच्छइ (हे० १,२१४) पाइअसद्दमहण्णवो, पृ० २५।

४ प० ७१।४ ५. म० बा० ६।८ ६ प० १२५।५ ७. प० ५४१।४
८. प० २५५।४ ९. प० ६४।५ १०. प० ३३।६ ११. प० ३।६
१२ प० ५४३।३ १३ प० ५६४।६ १४ प० ३९५।१ १५ प० ५८।८
१६ प० ११०।४ १७. प० १२६।३ १८. प० ३९६।४ १९ प० २८३।३
२०. प० ३४।४ २१. प० ३६८।२ २२ प० २९।४ २३. प० २२०।३
२४ प० ११८।६ २५. प० ५६२।४ २६. प० ५४१।२ २७. प० ८९।३
२८. प० ३५२।२ २९. प० ४३०।७ ३० आखि ५।६ ३१ प० ५९९।९
३२ आखि० ३५।३ ३३. प० ६३७।३ ३४ प० ५६।९ ३५ प० १०४।८
३६. प० ५६०।५ ३७ प० ३५१।७ ३८ प० ३५८।७ ३९ प० ६३१।३
४० प० ४०४।५

बेटी[११], बूक[१२], बापुरा[१३], भभूका[१४], भोथ[१५], रोझ[१६], रोटा[१७], रिस[१८], लाड़[१९], लगाना[२०], लेदो[२१], सिलारे[२२], सारि[२३]।

ध्वनि के आधार पर बने हुए अनुकरणात्मक शब्द भी जायसी-काव्य मे यत्र-तत्र मिलते है। उनमे से प्रमुख सोदाहरण इस प्रकार है –

करबराना	सारौ सुवा सो रहचह करही। गिरहिं परेवा औ **करबरही**[२४] ॥
कुहकना	**कुहकहि** मोर सोहावन लागा। होइ कोराहर बोलहि कागा[२५] ॥
कुहकुह	**कुहकुह** कोइल करि राखा। औ भिगराज बोल बहु भाखा[२६] ॥
कुरुरना	सरवर सँवरि हस चलि आए। सारस **कुरुरहि** खँजन देखाए[२७] ॥
खरभर	जस **खरभरा** चोर मत कीन्ही। तेहि विधि सेधि चाह गढ दीन्ही[२८] ॥
खुटकार-खुटकारी	खिन एक देखि चलै **खुटकारी** पुनि सब घालि समैटे[२९] रे ॥
चुहचुही	भोर होत बासहि **चुहचुही**। बोलहि पाँडुक एकै तुही[३०] ॥
झकोरना	पवन **झकोरहि** देहि हिलोरा। सरग लाइ भुइँ लाइ बहोरा[३१] ॥
झँकोर	बरिसै मघा **झँकोरि झँकोरी**। मोर दुइ नैन चुवहि जस ओरी[३२] ॥
झकोला	लगतै **झकोला** अखिल दुख बाजा भेट ना पुनि महतारी रे[३३] ॥
झनकार	चूरा चाँद सुरुज उजियारा। पायल बीच करहिं **झनकारा**[३४] ॥
झमकना	सेदुर आगि सीस उपराही। पहिया तरिवन **झमकत** जाही[३५] ॥
झाझ	बाजै ढोल डड औ भेरी। मदिर तूर **झाँझ** चहुँ फेरी[३६] ॥
झिझकार	आस पियासा जो जेहि केरा। जो **झिझकार** वाहि सो हेरा[३७] ॥
झौका	मारै मछ जाइ भरि **झोका** माँझधार होइ खाँगे रे[३८] ॥
टकोरना	पुनि धनि धनुक भौह कर फेरी। काम कटार **टकोर** सो हेरी[३९] ॥
ठमकना	आइ दुह नारग बिच भई। देखि मँजूर **ठमकि** रहि गई[४०] ॥

---

१ प० ५८।६ २ प० ४३८।५ ३ प० ४०१।६ ४. प० १६२।६
५ प० ५४१।६ ६. प० ५४२।३ ७. प० ५८२।३ ८ प० १८९।६
९. प० ६८३।१ १०. प० २६८।४ ११ प० ३९७।४ १२. प० ५६२।८
१३. प० १२३।९ १४. प० ६३३।७ १५. प० ५४२।३ १६ प० ५४१।२
१७ प० २२०।५ १८ प० ८५।४ १९. प० ३०१।७ २०. प० ४८७।३
२१ प० ३३।७ २२ प० ५४१।६ २३ प० ४९७।१ २४. प० २९।३
२५ प० २९।७ २६. प० २९।५ २७ प० ३४७।६ २८ प० २१७।४
२९ म०बा० ६।६ ३० प० २९।७ ३१ प० १०३।४ ३२. प० ३४६।५
३३ म०बा० १५।६ ३४ प० ११८।६ ३५ प० ५०७।३ ३६. प० १८९।६
३७. प० २३७।५ ३८ म०बा० ३।२ ३९. प० ३३३।३ ४० प० ११४।४

डभकना	बदन निचर जस **डभकहि** नैनाँ । परगट दुऔ पेन के बेनाँ[१] ॥
डफारना	जाइ विहगम समुँद डफारा । जरे माँछ पानी भा खारा[२] ॥
तरकना(तड़कना)	**तरकि तरकि** गौ चदन चोला[३] ॥
थरथराना	पून जाड तन **थरथर** काँपा[४] ॥
धरकना	**धरकि धरकि** डर उठै न बोला[५] ॥
धमारी	चैत बसता होइ **धमारी** । मोहि लेखे ससार उजारी[६] ॥
पिउपिउ	**पिउ पिउ** लागे करै पपीहा[७] ॥
फरहरना	छप्पन कोटि बसदर बरा । सवा लाख परबत **फरहरा**[८] ॥
फूंक	पहिले एक **फूंक** जौ जाई । ऊच नीच एक सम होइ जाई[९] ॥
भभीरा	बाट असूझ अथाह गँभीरा । जिउ बाउर भा भवै **भँभीरा**[१०] ॥
भहराना	धरती छात फाटि **भहरानी** । पुनि भइ मया जो दिस्टि दिठानी[११] ॥
रहचह	मारौ सुवा सो **रहचह** करही[१२] ॥
हहलि हहलि	पहल पहल तन रूई झापै । **हहलि हहलि** अधिकौ हिय कापै[१३] ॥
हहेहरि	तूँ हरि लक हराए केहरि । अब कस हारे करसि **हहेहरि**[१४] ॥

दृश्यात्मक शब्दावली — इस प्रकार के शब्द विरल है । यहा दो उदाहरण दिए जाते है —

झलमलाना	: चाद सुरुज दूनौ सुर चलही । सेत लिलार नखत **झलमलही**[१५] ॥
जगमगाना	. **जगमग** जल महँ दीखै जेसे । नाहि मिला नहि बेहरा तैसे[१६] ॥

इस प्रकार हम देखते है कि जायसी की भाषा सस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रश आदि पूर्वजा भाषाओ, अरबी, फारसी तथा तुर्की आदि विदेशी भाषाओं और अन्य बोलियो की शब्दावली एव देशज तथा अनुकरणात्मक शब्दो से युक्त है । जायसी ने साधारण प्रचलित शब्दो को अपनाने मे उदारता का परिचय दिया है । जिस प्रकार धर्म तथा दर्शन के सम्बन्ध मे जायसी उदार थे, उसी प्रकार वे भाषा के सम्बन्ध मे भी उदार बने रहे । उन्होने पूर्ववर्ती तथा समकालीन देशी-विदेशी भाषाओ तथा समीपवर्ती बोलियो की शब्दावली को अपनाकर अवधी को समृद्ध बनाया । इससे अवधी का स्वतन्त्र व्यक्तित्व और अधिक प्रभावशाली ढग से उभर आया ।

---

१. प० २११।४ २ प० ३६७।६ ३ प० ३२७।३ ४ प० ३५०।१
५ प० ३२७।३ ६ प० ३५३।१ ७ प० २६।४ ८ प० २६४।७
९ आखि० १६।४ १० प० ३४५।६ ११ आखि० ४।७ १२ प० २६।३
१३ प० ३५१।२ १४ प० २५०।६ १५. अख० ९।२ १६ अख० १५।३

४

रूप – विचार

सज्ञा

जायसी-काव्य मे प्रयुक्त समस्त सज्ञाये स्वरान्त है। अ, आ, इ, ई, उ तथा ऊ प्रधान अन्त्य स्वर है, उदाहरणार्थ —

अ—भिनुसार[1], अहान[2], साउज[3], बूत[4], जॉत[5]।

आ—कौंधा[6], तरुनापा[7], हिछा[8], धधा[9], गवेजा[10]।

इ—कॉथरि[11], बिपति[12], अरघानि[13], बनाफति[14], भुगुति[15]।

ई—बुड़की[16], मनई[17], घौरी[18], कॉजी[19], दई[20]।

उ—जिउ[21], सीउ[22], मीचु,[23] आएसु[24], बीजु[25]।

ऊ—गुडरू[26], उलू[27], पॅखेरू[28], रोहू[29], बटाऊ[30]।

कुछ सज्ञाओ के अन्त्य स्वर ए, ऐ तथा औ भी हे—

ए—पॉडे[31], दूबे[32]।

ऐ—पब्बै[33], मलै[34]।

औ—सारौ[35], मॉडौ[36]।

अन्त्य स्वरो का प्रयोग सर्वत्र एक-सा नही रहा है। वे प्राय छन्दोऽनुरोध से परिवर्तित होते है। कही दीर्घ-स्वरान्त सज्ञा (पानी, ऑसू, धरती) ह्रस्व-स्वरान्त (**पानि**[37], ऑसु[38], धरति[39]) हो गई है और कही ह्रस्व-स्वरान्त सज्ञा को दीर्घ-स्वरान्त कर लिया गया हे, यथा—

---

१ प० १५८।३ २ प० १८५।१ ३ प० २।५ ४ प० १४१।६
५ प० १४६।४ ६ प० ११०।२ ७ प० ६।६ ८ प० १६४।६
६. प० ७।७ १० प० १८८।१ ११ प० १४३।४ १२ प० ३।७
१३ प० ११७।६ १४ प० १८३।५ १५ प० ४।६ १६ आखि० ४४।४
१७ प० ११६।६ १८ प० १८७।७ १९ प० १५२।३ २० प० ११।६
२१ प० १।१ २२ प० १।७ २३ प० १४६।६ २४ प० १८७।६
२५ प० १।७ २६. प० २६।४ २७ प० ८७।५ २८ प० १२७।८
२९ प० १४८।२ ३० प० १३७।१ ३१ प० ४१०।१ ३२ प० ५८७।६
३३ प० २८१।४ ३४ प० १३६।३ ३५ प० ४३२।२ ३६. प० ५१६।५
३७ गउव सिघ रैंगहि एक बाटा। दूअउ पानि पिअहि एक घाटा॥ प० १५।५
३८ सुनि कै उतर ऑसु सब पोछे। कौनु पख बॉधा बुधि ओछे॥ प० ७२।१
३९ दहुँ है धरति कि सरग गा पवन न पावै तासु। प० ६७।९

(पहार) **पहारा**[१]; (पाँति) **पाँती**[२]; (नाउँ) **नाऊँ**[३]।

अन्त्य स्वर-परिवर्तन की उक्त प्रक्रिया का कुछ अनुमान इस तथ्य से भी किया जा सकता है कि पदमावत की प्रथम सौ पक्तियो मे छब्बीस ऊकारान्त सज्ञाये प्रयुक्त है जिनमे से किसी का भी मूल रूप ऊकारान्त नही है। **परगासू**[४], **ससारू**[५], **करतारू**[६], **पतारू**[७] तथा **कबिलासू**[८] आदि ऐसे ही प्रयोग है। सज्ञाओ के अन्त्य स्वरो का पारस्परिक अनुपात जानने के लिए लेखक ने 'पद्मावत' की दो सौ पक्तियो की परीक्षा की और फल इस प्रकार प्राप्त हुआ—

	परीक्षित पक्तियाँ—१०० (दो० स० १ से दो० सं० १२ की प्रथम पक्ति तक)		परीक्षित पक्तियाँ—१०० (दो० सं० ३०० से दो० स० ३१२ की प्रथम पक्ति तक)	
अन्त्य स्वर	प्रयुक्त सज्ञाओ की संख्या	प्रतिशत	प्रयुक्त सज्ञाओ की संख्या	प्रतिशत
अ	१७२	५४·९	१९६	५१·५
आ	४४	१४·५	४५	११ ८
इ	३७	११ ५	५८	१५·२
ई	२१	६·७	५०	१३ ०
उ	१३	४·१	१६	४ २
ऊ	२६	८ ३	१६	४·२
ए	—	—	—	—
ऐ	—	—	—	—
ओ	—	—	—	—
औ	—	—	—	—
योग	३१३	१०० ००	३८१	१००·००

१ कीन्हेसि हेवँ समुंद्र अपारा। कीन्हेसि मेरु खिखिद पहारा। प० २।१

२ कीन्हेसि नखत तराइन पाँती। प० १।६

३ चारि मीत जो मुहमद ठाऊँ। चहुँक दुहूँ जग निरमर नाऊँ। प० १२।१

४ प० १।२ ५. प० १।१ ६ प० १।१ ७. प० १।४ ८. प० १।२

उक्त गणना का आधार सज्ञाओ का प्रयुक्त रूप है किन्तु उनके प्रातिपदिक रूपों को आधार मानने पर यह अनुपात इस प्रकार है–

	परीक्षित पक्तिया—१०० (दो० सं० १ से दो० स० १२ की प्रथम पंक्ति तक)		परीक्षित पक्तिया—१०० (दो० सं० ३०० से दो० स० ३१२ की प्रथम पक्ति तक)	
अन्त्य स्वर	प्रयुक्त सज्ञाओ की सख्या	प्रतिशत	प्रयुक्त सज्ञाओ की सख्या	प्रतिशत
अ	२२५	७१ ८	२२२	५८ ३
आ	२५	७ ९	३६	९ ५
इ	२८	८ ९	४२	११ ०
ई	२२	७ १	६२	१६ ३
उ	१३	४ ३	१८	४ ७
ऊ	—	—	१	० २
ए	—	—	—	—
ऐ	—	—	—	—
ओ	—	—	—	—
औ	—	—	—	—
योग	३१३	१०० ००	३८१	१०० ००

प्रस्तुत तालिका से यह स्पष्ट है कि जायसी की रचनाओ मे अकारान्त सज्ञाओं का अनुपात सबसे अधिक है और ऊकारान्त संज्ञाओ का सबसे कम। –ए,–ऐ तथा –औ अन्त्य ध्वनि वाली संज्ञाएँ विरल है।

जायसी-काव्य की बहुत सी सज्ञाओ मे (जो मूलत अकारान्त है) अन्त्यस्वर ह्रस्व –'इ' अथवा –'उ' मिलता है, यथा–

इकारान्त – आँधि,[1] पूँछि,[2] पोठि,[3] लहरि,[4] बाढि[5] ।

उकारान्त – हारु,[6] डरु,[7] माँसु,[8] पापु,[9] तपु[10] ।

इसका कारण यह है कि स्वराघात के अभाव के कारण पदान्त-स्वरो का उच्चारण निर्बल होता गया और प्रा० भा० आ० भा० के पदान्त स्वर मध्य-भारतीय-आर्य-भाषा मे ह्रस्वोच्चरित होने लगे । ह्रस्व-स्वरो का उच्चारण भी निर्बल पडते-पडते अन्त मे आ० भा० आ० भा० मे इन स्वरो के लोप का कारण बना । अपभ्रश के ये पदान्त ह्रस्व-स्वर पुरानी हिन्दी मे लगभग सत्रहवी शती तक अति-लघु उच्चारण के साथ अपनी सत्ता बनाए रहे । वर्तमान अवधी तथा ब्रजभाषा मे अधिकाश अकारान्त सज्ञाएँ व्यजनान्त हो गई है, परन्तु उनका उच्चारण करते समय शब्दान्त मे ह्रस्वतर इकार अथवा उकार का सहारा लिया जाता है । जायसी द्वारा प्रयुक्त अकारान्त सज्ञाओ मे –'इ' अथवा –'उ' का योग उच्चारण-प्रवृत्ति के अनुकूल है । प्राय· –'उ' स्वर पुल्लिग सज्ञा शब्दो के अन्त मे मिलता है और –'इ' स्वर स्त्रीलिग शब्दो के अन्त मे ।

संज्ञा के रूप अवधी मे सज्ञा के दो रूप—लघु और दीर्घ– मिलते है ।[11] इनके अर्थ मे विशेष अन्तर नही होता । फैजाबाद तथा सुलतानपुर की ओर एक अन्य रूप—अति दीर्घ –का भी व्यवहार होता है ।[12] जायसी के काव्य मे अधिकतर लघु रूपो का ही प्रयोग हुआ है किन्तु इने-गिने स्थलो पर दीर्घ रूप भी प्राप्त होते है, यथा—**सुअटा,**[13] **संदेसरा,**[14] **बिटवा,**[15] **बिलाई**[16] तथा **बिधिना**[17] आदि । अतिदीर्घ रूपो का व्यवहार नही मिलता ।

लिंग –विधान : अवधी मे दो लिग होते है–पुल्लिग तथा स्त्रीलिग । जायसी द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक सज्ञा या तो पुल्लिग है या स्त्रीलिग । जड वस्तुओ की द्योतक सज्ञाएँ भी इन्ही दोनो लिगो के अन्तर्गत आ गई है, यथा–**तारा**[18] (पुल्लिग), **कूँजी**[19] (स्त्रीलिग) ।

विदेशी जड सज्ञाएँ भी इसी प्रकार पुल्लिग अथवा स्त्रीलिग है–**तबल**[20] (पुल्लिग), **तहरी**[21] (स्त्रीलिग) ।

सज्ञाओ के लिग-निर्धारण मे सामान्यत कोई विशिष्ट सिद्धान्त नही दिखाई देता । वैसे प्राय अकारान्त तथा उकारान्त सज्ञाएँ पुल्लिग है और इकारान्त तथा ईकारान्त सज्ञाएँ स्त्रीलिग, किन्तु अनेक स्थलो पर अपवाद भी मिलते है, यथा – **सासु**[22] तथा

---

१. प० ४०।३ २. प० ४६।७ ३ प० ११५।२ ४ प० १४१।५
५. प० १५५।८ ६ प० ६३।३ ७ प० ७७।८ ८ प० ७८।५
९. प० ८६।८ १० प० १११।९
११ डॉ० बाबूराम सक्सेना : एवोल्यूशन ऑफ अवधी, पृ० ११० ।
१२ वही, पृष्ठ ११० १३. प० ६८।९ १४. प० ३६३।९ १५. म० बा० ९।३
१६. आखि० १५।६ १७. अख० १२।१ १८. प० २३।४ १९. प० २३।४
२० प० २३।३ २१. प० ५५०।१ २२. प० ६०।७

वासु[1] सज्ञा-शब्द उकारान्त होते हुए भी स्त्रीलिग है। तथ्य तो यह है कि सज्ञाओ का लिग-निर्धारण उनके प्रयोग पर विचार करने से अधिक सरलता से स्पष्ट हो सकता है।

स्त्रीलिग सज्ञाएँ साथ मे प्रयुक्त होने वाले भूतकालिक कृदन्त के रूप से पहचानी जा सकती है। ये कृदन्त भी प्राय ईकारान्त अथवा इकारान्त है, यथा

नरिअर फरे **फरी** खुरहुरी।[2] **भई** रजाएसु[3]।
का मै कीन्ह जो काया **पोखी**[4]। सुनि कै बिरह चिनगि ओहि **परी**[5]।
बैठि बरात जानु फुलवारी[6]। रकत पसीज **भीजि** तन चोली[7]।

कृदन्तो के अतिरिक्त सम्बन्ध परसर्ग—**करि, की, कै, केरी, केरि**—की सहायता से भी स्त्रीलिग सज्ञाएँ स्पष्ट हो जाती है, यथा–

लागी घरी रहँट **की**[8]। धनि राजा असि **जाकरि** दसा[9]।
पिय **कै** बाँह[10]। बाँधी सिस्टि अहै सत **केरी**[11]।
पडित **केरि** जीभि[12]।

पुरुषवाचक सर्वनाम के कुछ रूपो तथा कुछ विशेषणो के प्रयोगो से भी स्त्रीलिंग सज्ञाओ को जाना जा सकता है, यथा

कोउ न आव **मोरी** उमत के ताईं[13]। अबहुँ नीद ना गई **तुम्हारी**[14]।
बन अँधियार रैन **अँधियारी**[15]। **ऊँची** पँवरी ऊँच अवासा।[16]

उक्त रूपो को देखते हुए भी लिग-निर्धारण के सम्बन्ध मे यही अनुमान किया जा सकता है कि कही शब्द की आकृति और कही प्रचलित-प्रयोग ने कवि को प्रभावित किया होगा।

वचन-विधान जायसी-काव्य मे दो वचनो का प्रयोग हुआ है – एकवचन तथा बहुवचन।

सामान्यत **–न्ह,–न्हि** अथवा **– न** जोड कर बहुवचन बनाया गया है —
परासन्ह,[17] **नागन्ह,**[18] **नैनन्हि,**[19] **पायन,**[20] **कानन**[21]।

अकारान्त स्त्रीलिग मूल रूप सज्ञा का बहुवचन बनाते समय प्राय **–ए** जोडा

---

१ प० १८२।८ २ प० २८।४ ३ प० ८०।१ ४ प० २०४।३
५ प० १७८।१ ६ प० २८२।२ ७ प० ३४२।३ ८ प० ३४।६
९ प० ३६।१ १० प० ३३८।६ ११. प० ६२।३ १२. प० ८८।४
१३ आखि० ३७।३ १४ आखि० २५।३ १५ प० १३६।६ १६ प० ३६।२
१७ प० १८३।५ १८ प० ६१।२ १९ प० १२१।९ २० म०बा० १२।११
२१. म०बा० १२।७

गया है–**बाटैं,*** **अलकै**[1] । विकारी रूप मे –न्ह,–न्हि का प्रयोग मिलता है, यथा : **साधन्ह**[2], **लहरन्हि**[3] ।

यत्र-तत्र अकारान्त सज्ञाओ का बहुवचन –ए जोड कर बना है **तारे**[4] । बहुवचन बनाने के लिए –न्ह का योग भी मिलता है– **राजन्ह**[5] ।

इकारान्त सज्ञाओ का बहुवचन भी –न्ह जोड कर बनाया गया है – कविन्ह,[6] हस्तिन्ह[7] ।

ईकारान्त संज्ञाओ की अन्तिम ध्वनि अनुनासिक कर दी गई है– **सहेलीं,**[8] **नारीं,**[9] **पनिहारीं**[10] ।

विकारी रूप मे अन्त्य 'ई' को ह्रस्व करके –न्ह अथवा –न जोडा गया है – **रानिन्ह,**[11] **पँखुरिन्ह,**[12] **ओबरिन**[13] ।

कुछ संज्ञाओ के एकवचन तथा बहुवचन रूप समान है, यथा :– **राजा**[14] (एकवचन), **राजा**[15] (बहुवचन),[16] **रोवँ** (एकवचन), **रोवँ**[17] (बहुवचन) ।

कुछ सज्ञाओ का प्रयोग प्राय केवल बहुवचन मे ही हुआ है, यथा–**अँगुरी,**[18] **आँसु,**[19] **कपोल,**[20] **कुच,**[21] **केस,**[22] **चखु,**[23] **चिहुर,**[24] **दसन,**[25] **नखत,**[26] **नैन,**[27] **पाँख**[28] तथा **स्रवन**[29] आदि ।

संज्ञा के अतिरिक्त सर्वनाम, विशेषण, परसर्ग तथा कृदन्तीय क्रिया-रूपो मे वचन के अनुसार परिवर्तन हुए है । अनेक स्थलो पर सज्ञा बिना किसी प्रत्यय के लगे ही बहुवचन मे प्रयुक्त है; ऐसे स्थलो पर इन सम्बद्ध व्याकरण-रूपो से सज्ञा के वचन को समझा जा सकता है, यथा–

> सब **अपने अपने** घर राजा ।[30]
> कीन्हेसि पान फूल **बहु** भोगू । कीन्हेसि **बहु** ओषद **बहु** रोगू ।[31]
> पदुमिनी सिघल **केरी**[32] ।
> भोर होत **बासहिं** चुहचुही ।[33]

---

१ प० ६६।७ २ प० १२३।८ ३ प० ६६।५ ४ प० ३३।२
५ प० ५३।३ ६ प० २३।३ ७ प० ४५।६ ८ प० ५६।३
६ प० ३२।१ १० प० ३२।१ ११ प० १६०।७ १२. प० ३१।५
१३ प० १३३।६ १४ प० ६।७ १५. प० १३।२ १६. प० २२८।७
१७. प० १०४।७ १८. प० ११२।४ १६. प० ७२।१ २०. प० ४८०।१
२१. प० ११३।१ २२. प० ६६।३ २३. प० ६४।५ २४. प० ६७।७
२५. प० १०५।६ २६. प० ११६ २७. प० १०३।१ २८. प० ७२।४
२६. प० ११०।१ ३०. प० ४४।२ ३१. प० २।७ ३२. प० ३८५।३
३३. प० २६।२ * प० ८६।६

बोलहि पाँडुक एकै तुही ।[१]

सज्ञाओ का बहुत्व व्यक्त करने के लिए जायसी ने 'गन' जैसे बहुवचन-द्योतक शब्द का भी प्रयोग किया है, यथा—गन गध्रप ।[२]

कारक-विधान

जायसी-काव्य की सज्ञाओ मे कारक-रचना के तीन आधार प्राप्त होते है—

(क) सभी कारको मे निर्विभक्तिक पद-मात्र का प्रयोग ।

(ख) अपभ्रश की विभक्तियो का ध्वन्यात्मक ह्रास के साथ अथवा यथावत् प्रयोग ।

(ग) अपभ्रंश के परसर्गो का प्रयोग तथा नए परसर्गो का आगम ।

अनुपात की दृष्टि से निर्विभक्तिक पदो की सख्या सबसे अधिक है और परसर्गयुक्त पदो की सख्या सबसे कम । एकवचन मे –हि और बहुवचन मे –न्ह विभक्ति प्राय सभी कारको मे प्रयुक्त मिलती है ।

कर्त्ता कारक (अ) सामान्यत इस कारक के लिए जायसी-काव्य मे निर्विभक्तिक पदमात्र का प्रयोग हुआ है, जैसे—

दीन्ह असीस **मुहम्मद** करहु जुगहि जुग राज ।[३]
कुहू कुहू **कोइल** करि राखा । औ **भिंगराज** बोल बहु भाषा ।[४]
सुख कर मरम न जानइ **राजा** ।[५]

(आ) इ, ई, उ तथा ऊ अन्त्य स्वर वाली सज्ञाएँ भी अपने मूल रूप मे कर्त्ता कारक का अर्थ व्यक्त करती है, जैसे —

बासुकि जाइ पतारहि चॉपा ।[६]
जगत बसीठ **दई** ओइँ कीन्हे ।[७]
सब पिरथिमी असीसइ जोरि जोरि कै हाथ ।[८]
रेनु रइनि होइ रबिहि गरासा ।[९]
उलू न जान देवस कर भाऊ ।[१०]
(इ) यत्र-तत्र कर्ता कारक मे सज्ञा का रूप उकारान्त भी मिलता है—
है आगे **डरु** सोइ[११] । **सतु** न रहा ।[१२]

उकारान्त कर्त्ता कारक की प्रवृत्ति अपभ्रश के बाद पुरानी पश्चिमी-राजस्थानी,[१३]

---

१. प० २६।२ २. प० ५६।६ ३. प० १३।८ ४. प० २६।५
५. प० ६।७ ६. प० १४।५ ७. प० ११।६ ८. प० १५।८
९. प० १४।३ १०. प० ८७।५ ११ प० ७७।७ १२. प० ३६३।८
१३. तेसितोरी पुरानी राजस्थानी, ५७ (१)

पुरानी ब्रजभाषा तथा मध्य-प्रदेश की कुछ बोलियो मे भी मिलती है जिसे डॉ० चटर्जी ने पुरानी ब्रजभाषा का प्रभाव माना है।

(ई) आकारान्त सज्ञाओ मे यत्र-तत्र –एँ, –ऐ प्रत्ययो का योग मिलता है–

कहि कै **सुअैं** छोडि दई पाती।[१]

राजैं कहा कीन्ह सो पेमा।[२]

एइँ बिख **चारैं** सब बुधि ठगी।[३]

गौरैं हँसि महेस सों कहा।[४]

उक्त –एँ तथा –ऐ प्रत्यय – हिं तथा –हि प्रत्ययो के ही परवर्ती रूप है। एक स्थान पर छन्दोऽनुरोध के कारण –ईं प्रत्यय का योग मिलता है–

ते विष बान लिखौ कहँ ताईं। रकत जो चुवा भीजि **दुनियाईं**।[५]

(उ) कर्त्ता कारक बहुवचन के रूप भी निर्विभक्तिक है, यथा–

सब **राजा** भुइँ धरहि लिलाटू।[६]

कुहर्कहि **मोर** सोहावन लागा।[७]

कइ सिगार तहँ बैठी **बेसा**।[८]

सारौ सुवा सो रहचह करही। गिरहि **परेवा** औ करबरही।[९]

बरुनी का बरनौ इमि बनी। साँधे बान जानु दुइ **अनी**।[१०]

(ऊ) यत्र-तत्र आकारात सज्ञाओ मे –ए प्रत्यय का योग हुआ है –

फूले कुमुद केत उजिआरे। जानहुँ उए गगन महँ **तारे**।[११]

रोवँहि रोवँ लागे जनु **चाँटे**।[१२]

(ए) अकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओ मे यत्र-तत्र –एँ प्रत्यय जुडा है –

भौंहैं स्याम धनुकु जनु ताना।[१३]

घुँघुरवारि **अलकैं** बिखभरी। सिकरी पेम चहहिं गियँ परी।[१४]

(ऐ) ईकारान्त स्त्रीलिग सज्ञाओ के अन्त्य स्वर को कही-कही अनुनासिक कर दिया गया है, जैसे–

पदुमावति सौ कहहिं **सहेलीं**।[१५] पानि भरइ आवहिं **पनिहारीं**।[१६]

(ओ) कर्त्ता कारक बहुवचन मे ध्वनि के अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति अकारान्त पुल्लिग मे भी मिलती है, यथा

---

१ प० २३०।१ २. प० १४९।१ ३. प० ७०।५ ४ प० २११।१
५ प० २२५।१ ६. प० १३।२ ७. प० २९।७ ८. प० ३८।१
९. प० २९।३ १०. प० १०४।१ ११. प० ३३।२ १२. प० १७४।३
१३. प० १०२।१ १४ प० ९९।७ १५. प० ६०।२ १६. प० ३२।१

और जो नखत कहसि चहुँ पासाँ । सब रानिन्ह के आहिं **अवासाँ** ।[१]
बदन पियर जल डभकहि नैनाँ । परगट दुऔ पेम के **बैनाँ** ।[२]
उक्त ध्वनि-परिवर्तन का कारण छन्दोऽनुरोध है ।

(औ) **–अ,–आ,–ई** स्वरान्त सज्ञाओ मे **–न्ह** प्रत्यय का **योग** हुआ है ·

नागन्ह झाँपि लीन्ह अरघानी ।[३]
चहुँ दिसि आन **सोंटिअन्ह** फेरी ।[४]
सखिन्ह कहा भोरी कोकिला ।[५]
यत्र-तत्र **–न** प्रत्यय भी जुडा है फिरी आन रितु **बाजन** बाजे ।[६]

कर्म कारक –(क)कर्त्ता की भाँति ही कर्मकारक मे भी सामान्यत सज्ञा का निर्विभक्तिक रूप प्रयुक्त हुआ है, यथा –

कीन्हेसि **मानुस** दिहिस **बड़ाई** ।[७]
सरवर तीर पदुमिनी आई । **खौंपा** छोरि केस मोकराई ।[८]
कीन्हेसि **धूप सीउ** औ छाहाँ । कीन्हेसि मेघ **बीजु** तेहि माहाँ ।[९]
टारहिं **पूँछ** पसारहि **जीहा** ।[१०]
पहिलेहि तेहिक नाउँ लइ **कथा** कहौ अवगाहु ।[११]

(ख) यत्र-तत्र अन्त्य स्वर का **अनुनासिकीकरण** हुआ है–

पदुमावति तेहि जोग सँजोगाँ । परी पेम बस गहे **वियोगाँ** ।[१२]
पाती लिखी सँवरि तुम्ह **नामाँ** । रकत लिखे आखर भे स्यामाँ ।[१३]

(ग) **–हि** तथा **–हिं** प्रत्यय का योग भी कही-कही मिलता है–

औ **चाँदहि** पुनि राहु गरासा ।[१४] **चाँटिहि** करइ हस्ति कर जोगू ।[१५]
रेनु रइनि होइ **रबिहि** गरासा ।[१६] **जोगिहि** आइ जनु अछरिन्ह **घेरा** ।[१७]
जोगी **मनहिं** ओहि रिस मारहि ।[१८] ओहि के बार **जीवनहिं** वारौ ।[१९]

(घ) कही-कही **–इँ** विभक्ति भी मिलती है जो सम्भवत **–हिं** का प्राणत्वरहित रूप है–
रचे हँथोडा **रूपइँ** ढारी ।[२०]

(च) बहुवचन के रूप भी निर्विभक्तिक है–

कीन्हेसि **साउज** आरन रहही । कीन्हेसि **पखि** उडहि जहँ चहही ।[२१]
आनि धरी आगे बहु **साखा** ।[२२]

---

१. प० १६०।७ २. प० २११।४ ३. प० ६१।२ ४. प० १२८।१
५. प० ६४।६ ६ प० १८४।१ ७. प० ३।१ ८ प० ६१।१
९. प० १।७ १०. प० ४१।६ ११. प० १।९ १२. प० १६८।१
१३. प० २२५।६ १४ प० १०१।४ १५. प० ६।४ १६ प० १४।३
१७. प० १९४।२ १८. प० १५१।४ १९ प० २१०।६ २०. प० ३७।३

पै यह पेट भयउ बिसवासी । जेहि नाए सब **तपा सन्यासी** ।[१]
औ दीन्ही सग **सखी सहेली** । जो सँग करहि रहस रस केली ।[२]

(छ) कर्मकारक बहुवचन की सर्वाधिक प्रयुक्त विभक्ति **–न्ह** है—

मुयो मुयो अहनिसि चिल्लाई । ओहि रोस **नागन्ह** धरि खाई ।[३]
परिहँस पिअर भए तेहि बसा । लीन्हे लक **लोगन्ह** कहँ डसा ।[४]
जौ न होत अस परमँसखाधू । कत **पंखिन्ह** कहँ धरत बिआधू ।[५]
कही-कही **–न** भी जुडा है–
भा निरमर तेन्ह **पायन** परसे ।[६]

(ज) **–ए** प्रत्यय का योग भी द्रष्टव्य है —

सती कि बौरी पूँछै पॉडे । औ घर पैठि समेटै **भॉडे** ।[७]

(झ) अकारान्त स्त्रीलिग सज्ञाओ मे यत्र-तत्र **–ऐ** का योग हुआ है–

पाय छुवै मकु पावौ तेहि मिसु **लहरे** देइ ।[८]
करहि **कुरेरै** सुरग रॅगीली ।[९]

(ट) **–हि** प्रत्यय का योग भी कही-कही मिलता है–

खिन खिन जीव **हिलोरहिं** लेई ।[१०]

करण-कारक (अ) एकवचन मे प्राय निर्विभक्तिक रूप प्रयुक्त है–

उहॉ त **खरग** नरिन्दन्ह मारौ । इहॉ त बिरह तुम्हार सघारौ ।[११]
पदुम **गंध** बेधा जग बासा ।[१२]
धवलसिरी पोतहि घरबारा ।[१३]
केहि **विधि** मिलौ होउँ केहि छाया ।[१४]

(आ) कही-कही **–हिं** तथा **–हि** प्रत्यययुक्त रूप भी मिलते है, यथा :–

अंचल देहि **सुभावहिं** ढारी ।[१५]
उठै लहरि नहि जाइ सॅभारी । **भागहिं** कोइ निबहै बैपारी ।[१६]
कँवलहि चहौ भँवर होइ मिला ।[१७]

(इ) एक-दो स्थलो पर **–इँ** प्रत्यय जुडा है :–

---

१ प० ८०।३ २. प० ५४।३ ३. प० ९७।६ ४. प० ११६।३
५ प० ७८।६ ६. प० ६५।२ ७. प० १२७।५ ८. प० ६१।९
९. प० १८४।७ १० प० ११९।४ ११ प० ३३४।४ १२. प० ५१।७
१३ प० ३७।५ १४ प० २२३।३ १५. प० ३८।६ १६ प० १४१।५
१७ प० ९४।५

उन्ह बर रतन एक निरमरा । हाजी सेख **सभागईं** भरा ।[१]
खेल **मिसुईं** मै चढन धाला ।

(ई) **–ए,–ऐ** अथवा **–ऐ** का योग भी यत्र-तत्र मिलता है–
कनक पखि पैरहि अति लाने । जानहु चित्र सँवारे **सोने** ।[३]
सब क धौरहर **सोनै** साजा ।[४]
जग सीतल हौ **बिरहै** जारी ।[५]

(उ) **–न्ह** प्रत्यय का योग एकवचन मे भी मिलता है .–
चहूँ खड के बर जो ओनाही । **गरबन्ह** राजा बोलै नाही ।[६]
गगन धनुक जो ऊगवै **लाजन्ह** सो छपि जाइ ।[७]

(ऊ) अकारान्त स्त्रीलिग सज्ञा मे अन्त्य ध्वनि कही-कही अनुनासिक हो गई है
आए उदधि समुद अपारॉ । धरती सरग जरै तेहि **झारॉ** ।[८]
पाहन **सेवॉ** काह पसीजा ।[९]

(ए) बहुवचन मे सर्वाधिक प्रयुक्त प्रत्यय **–न्ह** है .–
उन्ह **बानन्ह** अस को को न मारा ।[१०] नदेगिनि **ठवँकन्ह** पगु ढारा ।[११]
रकत के **आँसुन्ह** भा गुग राता ।[१२] सासु नेनद **बोलिन्ह** जिउ लेही ।[१३]

(ऐ) यत्र-तत्र **–न्हि** प्रत्यय का योग हुआ है –
बिरहा सुभर समुद असँभारा । भेंवर मेलि जिउ **लहरन्हि** मारा ।[१४]
खिनहि बेझ के **बानन्हि** मारा ।[१५]

(ओ) कही-कही अन्त्य स्वर सानुनासिक मिलता है .–
सहस करॉ जो सुरुज दिपाई । देखि लिलाट सोउ छपि जाई ।[१६]
जौ जिउ घटिहि काल के **हाथॉ** । घटन नीक पै जीव निसाथॉ ।[१७]

सम्प्रदान कारक–निर्विभक्तिक तथा सविभक्तिक, दोनो प्रकार के प्रयोग मिलते है । एकवचन मे **–हि** तथा बहुवचन मे **–न्ह** का योग हुआ है :–

(क) निर्विभक्तिक प्रयोग—बारह बरिस मॉह भइ रानी । राजै सुना **सँजोग** सयानी ।[१८]
चितउर गढ क एक बनिजारा । सिघल दीप चला **बैपारा** ।[१९]

---

१ प० १९।१   २ प० २३२।५   ३ प० ३१।७   ४ प० ४४।२
५. प० ३४८।१   ६. प० ६५।७   ७. प० १०२।६   ८ प० १५३।१
९ प० २०२।५   १० प० १०४।४   ११ प० १८५।४   १२ प० २३०।५
१३ प० ६०।७   १४ प० १७२।३   १५. प० २४६।७   १६ प० १०१।२
१७ प० १२१।७   १८ प० ५४।१   १९ प० ७४।१

को जोगी अस नगरी मोरी । जो दे संधि चढ़ै गढ **चोरी** ।[१]

(ख) सविभक्तिक प्रयोग–एकवचन :—कचन करी न **कॉचहि** लोभा ।[२]
दैय दीन्ह **पखिहि** असि जोती ।[३] **पानिहि** काह खरग कै धारा ।[४]

(ग) बहुवचन —दहुँ का कहँ असि बेनी कीन्ही । चदन बास **भुजगन्ह** कीन्ही ।[५]
अडा लाइ **पखिन्ह** कहँ धरा ।[६]

(घ) अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति इस कारक मे भी प्राप्त होती है—

सिद्ध डरहि नहि अपने **जीवाँ** । खरग देखि कै नावहि गीवाँ ।[७]

अपादान कारक—निर्विभक्तिक और सविभक्तिक दोनो प्रकार के प्रयोग प्राप्त होते है ।
एकवचन मे **–हि** तथा बहुवचन मे **–न्ह,–न्हि** का योग मिलता है ।

(च) निर्विभक्तिक प्रयोग—का सरबरि तेहि देउँ **मयंकू** । चाद कलकी वह निकलकू ।[८]
घरी एक सुठि भएउ अँदोरा । पुनि पाछै बीता होइ रोरा ।[९]
तोहि **सेवा** बिछुरन नहि आखौ । पीजर हिए घालि तोहि राखौ ।[१०]
राते स्याम कठ दुइ गीवाँ । तिन्ह दुइ **फाँद** डरौ सुठि जीवाँ ।[११]
किगरी हाथ गहे बैरागी । पाँच **ततु** धुनि उठै लागी ।[१२]

(छ) सविभक्तिक प्रयोग–एकवचन-
ओहिक खड जस परबत मेरू । **मेरुहि** लागि होइ अति फेरू ।[१३]
–ऐ का योग भी मिलता है—**खाँडै** चाहि पनि पैनाई । बार चाहि पातरि पनराई ।[१४]

(ज) बहुवचन—**नैनन्ह** ढरहि मोति औ मूँगा ।[१५]
नैनन्हि जानहु निअरे कर पहुँचत अवगाह ।[१६]

(झ) अन्त्य स्वर मे अनुनासिकता भी यत्र-तत्र मिलती है:—

कत खेलै आइउँ एहि साथाँ । हार गँवाइ चलिउँ सै हाथाँ ।[१७]

सम्बन्ध कारक—(क) **निर्विभक्तिक रूप.**—सम्बन्ध कारक के निर्विभक्तिक रूपो के उल्लेख मे सबसे बडी कठिनाई यह है कि ऐसे स्थलो पर प्राय तत्पुरुष समास की सम्भावना दिखाई पडती है—

पेम घाव[१८], **जोबन मरम**[१९], **ससुबेरा**[२०], **सुआ कठ**[२१], **रबिनाउँ**[२२], **धरमी मुख**[२३], **कथा अरंभ**[२४],

---

१ प० २६५।२ २ प० १७६।५ ३ प० ५४।६ ४ प० २४३।६
५ प० ११५।४ ६ प० ७१।४ ७ प० २४०।३ ८ प० १०१।३
९ प० १३३।७ १० प० ५८।३ ११ प० ७७।६ १२ प० १३९।४
१३ प० १६२।४ १४ प० १५६।७ १५ प० १२५।२ १६ प० १२१।८
१७ प० ६४।३ १८ प० ११८।२ १९ प० ८।६ २० प० १८२।७
२१ प० ८७।७ २२ प० ८६।१ २३ प० १४५।३ २४ प० २४।१

बसा लक[१], **जोति परगासू**[२], **प्रीतिभार**[३], **ससि रेखा**[४] तथा **ढिल्ली सुलतानू**[५] आदि ।

(ख) **सविभक्तिक** –हि प्रत्यय का योग प्रायः मिलता है–

तेहि सेवक के **करमहि दोसू** । सेव करत ठाकुर होइ रोसू ।[६]
पुनि सिगार करि अरसि नेवारी । कदम सेवती **पियहि पियारी** ।[७]
मोतिहि जौ मलीन होइ करा । पुनि सो पानि कहाँ निरमरा ।[८]
कहौ लिलाट दुइजि के जोती । **दुइजिहि** जोति कहाँ जग ओती ।[९]
जोगिहि जाति कौन हो राजा ।[१०]

(ग) एक स्थान पर –हँ प्रत्यय का योग मिलता हे–

कीरति गई **समुद्रहँ** पारा ।[११]

(घ) सम्बन्ध बहुवचन मे **–न्ह**,–न्हि तथा **–न** का योग मिलता है–

देव अनद **दैतन्ह सिर** दूखा ।[१२] जब भेटा **जरमन्ह दुख** भेटा ।[१३]
सउजन्ह तन सब रोवाँ पखिन्ह तन सब पख ।[१४]
देखि अमिअ रस **अधरन्हि** भएउ नासिका कीर ।[१५]
जनहुँ चढी **भँवरन्हि** के पाँती ।[१६] कीन्हेसि नखत **तराइन** पाँती ।[१७]
तुम्ह ससि होहु **तराइन साखी** ।[१८]

अधिकरण कारक–(क) निर्विभक्तिक रूप एकवचन तथा बहुवचन दोनो मे मिलता है –

मुख तँबोर **तन** चीर कुसुभी ।[१९] **मस्तक** टीका **काँध** जनेऊ ।[२०]
चेटक लाइ हरहि मन जौ लहि गथ **है फेट** ।[२१]
जेइँ न **हाट** एहि लीन्ह बेसाहा ।[२२]
निसि बिछुरहि औ दिनहि मिलाही ।[२३] चूरि पाँख धरि मेलेसि **डेली** ।[२४]
कीन्हेसि साउज **आरन** रहही ।[२५] धरती सात **समुँद** मसि भरई ।[२६]
ओठधि सभापति बैठे **सभा** ।[२७]

(ख) सविभक्तिक . एकवचन मे –इ,–इँ,–ई,–हि,–हिं,–ए तथा –एँ प्रत्ययो का योग मिलता है –

---

१ प० ११६।२   २ प० १।२   ३ प० ५८।६   ४ प० ६५।६
५ प० १।३   ६ प० २७२।२   ७ प० ३२६।७   ८ प० ५७।३
९. प० १०१।१   १० प० २७४।४   ११. प० १७।४   १२. प० २७४।४
१३ प० ९८।७   १४. प० १०४।६   १५ प० १०४।९   १६. प० ११४।५
१७. प० १।६   १८. प० ६३।२   १९. प० ३८।२   २०. प० ७९।७
२१. प० ३८।८   २२. प० ३७।७   २३ प० ३३।५   २४. प० ७०।१
२५. प० २।५   २६ प० १०।२   २७. प० ३६।५

जाँवत सिघल **दीपइ** सबै बखानइ रूप ।[१] ओछे **पारइ** दैय है जीतपत्र **जो** देइ ।[२]
चारिउ एक **मतइँ** एक बाता ।[३] भइ अहान सिगरी **दुनियाइँ** ।[४]
कीन्हेसि नाग **मुखहि** विष बसा ।[५] चाहै **सोनहि** मिला सोहागू ।[६]
मानहुँ **मनहिं** भएउ कछु फोरा ।[७] दहु कस होइ देव **अस्थाने** ।[८]
पुनि बिसरा भा सँवरना जनु **सपने** भई भेट ।[९]
सुधि न रही ओहि एक **पियालें** ।[१०]

(ग) अन्त्य-स्वर के **अनुनासिकीकरण** की प्रवृत्ति भी मिलती है:—
जौ **जियँ** सत कायर पुनि सूरा ।[११]
को होइ पार कठ ओहि लागै केइँ तपु साधा **जीवँ** ।[१२]
पथी **पथाँ** जे चलहि ते का रहन ओनाहि ।[१३]
गोपिचद तूँ जीता **जोगाँ** । औ भरथरी न पूज **वियोगाँ** ।[१४]
लाभ जानि आएउँ एहि **हाटाँ** । मूर गँवाइ चलेउँ तेहि **बाटाँ** ।[१५]
सबै पदुमिनी देखहि चढी । सिघल दीप गई उठि **मढ़ी** ।[१६]

(घ) बहुवचन मे **न्ह,–न्हि,–न,–हुँ** तथा **–ए** प्रत्ययो का योग हुआ है:—
नग अमोल तेन्ह **तालन्ह** दिनहि बरहि जनु दीप ।[१७]
कानन्ह कनक जराऊ खुभी ।[१८]
मिला आइ कै **साथिन्ह** भा चितउर के पथ ।[१९]
कया न रकत न **नयनन्हि** आँसू ।[२०] बिरह **सरागन्हि** भूजै माँसू ।[२१]
लीन्ह समेटि **ओबरिन** होइगा दुख कर नाँच ।[२२]
परे आइ अब बनखँड माहाँ । डडक आरन बीझ **बनाहाँ** ।[२३]
मनि कुडल **चमकहि** अति लोने । जनु कौधा लौकहिं दुहुँ **कोने** ।[२४]

(च) कही-कही **–हि** तथा **–हिं** का योग भी मिलता है :—
पानी देहिं खँडवानी **कुअँहि** खाँड बहु मेलि ।[२५] हिन्दू **तुरुकहिं** भई लराई ।[२६]

(छ) यत्र-तत्र अन्त्य स्वर अनुनासिक कर दिया गया है :—
नैन जो चक्र फिरै चहुँ ओराँ । चरचै धाइ समाइ न **कोराँ** ।[२७]
कित आवन पुनि अपने **हाथाँ** ।[२८]

---

१. प० ४९।९ २ प० २६६।९ ३. प० १२।५ ४ प० १५।३
५. प० ४।२ ६. प० १७७।५ ७ प० १६९।७ ८. प० २०५।१
९ प० ६६।९ १०. प० १९४।५ ११. प० १५०।१ १२. प० १११।९
१३. प० १३६।९ १४. प० १६०।२ १५ प० ७५।२ १६. प० २१७।३
१७. प० ३३।८ १८. प० ३८।२ १९. प० ७८।९ २०. प० १२७।३
२१. प० १५४।७ २२ प० १३३।९ २३. प० १३७।४ २४. प० ११०।१
२५. प० ३४।८ २६. प० २४।४ २७. प० १७३।१ २८. प० ६०।६

सम्बोधन–अकारान्त सज्ञाओ के अतिरिक्त अन्य सभी सज्ञाएँ निर्विभक्तिक रूप मे प्रयुक्त हुई हे ।

चकई बिछुरि पुकारै कहाँ मिलहु हो **नाँह** ।[1] **पडित** फेरि इहै कहु बाता ।[2]
आस निरासा हौं फिरौ तूँ **बिधि** देहि अधार ।[3]
कहौ बात अब होइ उपदेसी, लागु पथ भूले **परदेसी** ।[4]
पूँछा राजै कहु **गुरु** सुवा ।[5] का निचित सोवहि रे **बटाऊ** ।[6]
मै जो कहा रिसि करहु न **बाला** ।[7] **रानी** तुम्ह जुग-जुग सुख आऊ ।[8]
उडि वह सुअटा कहँ बसा खोजहु सखी सो बासु ।[9]

आकारान्त सज्ञाओ मे कही-कही-ए का योग हुआ है —

कहु परबते जो गुन तोहि पाहाँ ।[10]

और यत्र-तत्र सज्ञा का मूल रूप भी प्रयुक्त है —

राजै कहा सत्त कहु **सुआ** ।[11] पेम सुनत मन भूलु न **राजा** ।[12]

परसर्ग

परसर्गो का प्रयोग कारको का अर्थ प्रकट करने के लिए होता है। कर्ता के कुछ रूपो को छोड कर शेष कारको के अर्थ, सज्ञा तथा सज्ञा, सज्ञा तथा सर्वनाम, सज्ञा तथा क्रिया तथा क्रियाविशेषण ओर क्रिया आदि के बीच विभिन्न परसर्गो द्वारा व्यक्त किए जाते हे। ये परसर्ग सज्ञा अथवा सर्वनाम के साथ जुड कर कारको के अर्थ स्पष्ट करते है।

जायसी ने अपनी रचनाओं मे परसर्गो का प्रयोग अल्पमात्रा मे किया है। अधिकतर सज्ञा अथवा सर्वनाम-पद या तो अपने मूल रूप मे ही प्रयुक्त हो गए हे या विभिन्न कारको मे उनका अर्थ-बोध कराने के लिए उनके साथ विभक्ति-सूचक प्रत्यय लगाए गये है। इस सबन्ध मे डॉ० बाबूराम सक्सेना की उस गणना का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा जिसके अनुसार जायसी ने पद्मावत की प्रथम दो सौ पक्तियो के अन्तर्गत प्रयुक्त ६१ सज्ञाओ मे से केवल २४ सज्ञाओ के साथ परसर्ग का व्यवहार किया है।[13] सर्वनामो के साथ परसर्गो का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। डॉ० सक्सेना ने गणना के द्वारा इसकी पुष्टि की है।[14]

---

१. प० ६२।८ २ प० ६६।१ ३. प० ७५।६ ४ प० २१४।५
५. प० १५६।१ ६. प० ४२।६ ७ प० ६०।२ ८. प० ५७।२
६ प० ६७।८ १०. प० ७६।५ ११ प० ६२।१ १२. प० ६७।१
१३. **सक्सेना एवोल्यूशन आफ अवधी, पृष्ठ २१३।** १४ वही, पृ० २१३।

जायसी-काव्य मे विभिन्न कारको के अन्तर्गत प्रयुक्त होनेवाले परसर्ग निम्न लिखित है —

कर्म—का, कहँ ।

करण—भे~भै, सन, से~सै, सेति~सेती~सेंती,
सो~सौ, हुत~हुति~हुते~हुतें ।

सम्प्रदान—कहँ~काँ, का, काहि, हुते ।

अपादान—चाहि, त~ते~तें, से, सो~सौ,
हते~हुँत~हुति~हुँति~हुते~हुतें ।

सम्बन्ध—क~का, कइ~कै, कर~करि, करे~करै,
कि~की, के, कें, केरि, केरी, केरीं, केरे, केरें ।

अधिकरण—ऊपर, पर, पहँ, पहाँ, पाँहँ, पाहाँ, पाही, पै, मँझ, माँझ, माँझा,
मह, मँह, माँ, माहँ, माहाँ, माहि, माही, माँझे, माहे,
मँझिआरा, म, मे, मो ।

इनके उदाहरण इस प्रकार है —

कर्म—**का** – तीनहुन **का** मारै अजराईलू ।[1]

कहँ – अजराइल **कहँ** बेगि बुलाए ।*

इनमे **कहँ** के प्रयोग का प्रतिशत अधिक है ।

करण—**भे** – आछहि सदा सुगन्ध **भे** जनु बसत औ फागु ।[2]

भै – तर **भै** तुरुक कमानै खाँचहि ।[3]

सन – मुए पिड कस फूलै चेला गुरू **सन** पूँछ ।[4]

से – जाइ दैउ **से** करहु बिनाती ।[5]

सै – जाइ दैउ **सै** बिनवौ रोई ।[6]

सेति – बरुनिन्ह **सेति** चरन रज झारौ ।[7]

सेती – करवट आइ बनी भुइँ **सेती** ।[8]

सेंती – जो सिर **सेंती** खेल मुहमद खेल सो प्रेम रस ।[9]

सो – पेम पहार कठिन विधि गढा । सो पै चढै सीस **सो** चढा ।[10]

सौं – सिर **सौ** चढौ पाय का कहना ।[11]

हुत – उहै धनुक **हुत** बंधा राहू ।[12]

---

१ आखि० २०।३ २ प० ३५।६ ३ प० ५२८।६ ४ अख० १३।६

५. आखि० १७।४ ६. आखि० ३२।७ ७ प० ६४०।४ ८. प० १३६।२

६. अख० ४।११ १०. प० १२४।३ ११ प० १६३।२ १२ प० १०२।५

* आखि० २०।१

हुति – उन्ह हुति देखइ पावौ दरस गोसाईं केर ।[1]

हुते – बधिक हुते हस्ती गा बाँधा ।[2]

हुतें – पडित हुते परै नहि धोखा ।[3]

उक्त विभिन्न परमर्गो मे मे 'सौ' का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है । 'सेति' तथा 'सेती' के प्रयोग अल्प है ।

सम्प्रदान—**कहँ** – पारधि जैस अहेर **कहँ** लाग रहै सर साधि ।[4]

काँ – जो दुख सहै होइ सुख ओ**काँ** ।[5]

का – बाबर साह छत्रपति राजा । राजपाट उन**का** विधि साजा ।[6]

काँहि – अगिलहि **काँहि** पानि खर बाँटा । पछिलेहि **काँहि** न कादहुँ आँटा ।[7]

हुतै – मिनती किहेउ मोर **हुतै** सीस नाइ कर जोरि ।[8]

इनमे से '**कहँ**' का प्रयोग अन्य परसर्गो की अपेक्षा अधिक हुआ है । '**काँ**' तथा '**काँहि**' का प्रयोग अल्प है ।

अपादान — इस कारक के परसर्ग अधिकाश मे करण-कारक के परसर्गो के समान ही है । अर्थ – वेभिन्य के द्वारा ही दोनो का अन्तर स्पष्ट होता हे ।

चाहि – खाँडे **चाहि** पैनि पैनाई । बार **चाहि** पातरि पतराई ।[9]

त – दरब **त** गरब लोभ बिखमूरी ।[10]

तै – पूँछब कटक जहाँ **तै** आवा ।[11]

तें – जानहुँ इद्रलोक **ते** काटी ।[12]

से – अत कहा धरि जान **से** मारै ।[13]

सौं – कवन देस **सो** आई ।[14]

सौ – पेम अदिस्ट गगन **सौ** ऊँचा ।[15]

हतें – हौ सत लै निसरा एहि पते । सिघल दीप राजघर **हतें** ।[16]

हुँत – जब पिजर **हुँत** छूट परेवा ।[17]

हुति – रायमुनी पिजर **हुति** छूटी ।[18]

हुँति – कर **हुँति** कन्त जाइ जेहि लाजा ।[19]

हुतै – दरब **हुतै** मन झुरवै अकेला कोई तेहि निरबाहै रे ।[20]

---

१. प० २०।६   २ प० ६२।४   ३ प० ८८।३   ४ अख० ३६।६
५. प० २१४।३   ६. आखि० ८।१   ७. प० १४।७   ८ आखि० ३४।८
९ प० १५६।७   १०. प० ३८६।३   ११. आखि० २९।२   १२. प० ५६०।७
१३. आखि० ४२।५   १४. प० ६०२।१   १५ प० १२२।६   १६ प० ६३।२
१७. प० ७७।१   १८ प० ५६०।३   १९ प० ६१७।२   २०. म०बा० २।१२

हुतें – तेहिं बँदि **हुतें** जौ छूटै पावा ।[१]

उल्लिखित परसर्गो मे से 'सो' तथा 'सौं' का प्रयोग अधिक हुआ है ।

सम्बन्ध – क – पेम **क** गहन ।[२] कया **क** रूप ।[३]

का – देह **का** रोवाँ ।[४] कवि जो प्रेम **का** ।[५]

कइ – पँवरी नवौ बज्र **कइ** साजी ।[६]

कै – हिय **कै** हरद बदन **कै** लोहू ।[७]

कर – सुख **कर** मरम ।[८]

करि – ता**करि** दिस्टि ।[९]

करे – जे**करे** हाथ होइ वह कूँजी ।[१०]

करैं – उहै नावँ करता **करैं** लेऊ ।[११]

कि – सूर **कि** दिस्टि ।[१२]

करु – सरि पहुँचाइ जोग **करु** साथा ।[१३]

की – सिंघल **की** हाटा ।[१४] केरन्ह **की** घउरी ।[१५]

के – गाढे **के** साथी ।[१६] केरा **के** बन ।[१७]

कें – जो हिछा मन जेहि**कें** ।[१८]

केर – कबिन्ह **केर** पछिलगा ।[१९]

केरा – बड पथ मुहम्मद **केरा** ।[२०]

केरि – सुलेमा **केरि** अँगूठी ।[२१]

केरी – घामै उमत दुखी जेहि **केरी** ।[२२]

केरी – सबै पदुमिनी सिंघल **केरीं** ।[२३]

केरे – आदम **केरे** पासा ।[२४]

केरें – आगि परी चित उर धनि **केरें** ।[२५]

उक्त परसर्गो मे से 'क' और 'के' का प्रयोग उल्लेखनीय मात्रा मे मिलता है । 'कर' का व्यवहार भी अधिक हुआ है । स्त्रीलिग सज्ञाओ के साथ 'की' तथा 'कै' परसर्गो का प्रयोग बहुलता से हुआ है । 'कइ' परसर्ग 'कै' का ही रूपान्तर है जो

---

१. प० ६८।३ २. प० ८२।७ ३ प० ६।८ ४ आखि० ४४।१
५. प० २३।८ ६ प० ४१।२ ७ प० ६०८।५ ८ प० ६।७
९. प० ५।३ १० अख० ३३।७ ११ आखि० १२।३ १२. प० ५६१।५
१३. प० २२१।३ १४ प० ३७।१ १५ प० ३४।५ १६. प० १८।७
१७ प० ७२।२ १८ प० १६४।९ १९ प० २३।३ २० अख० २५।५
२१. प० १३।६ २२. आखि० ३१।३ २३. प० ३८५।३ २४ आखि० ३२।१
२५ प० ६२०।१

उच्चारण-सुविधा अथवा अनुलेखन-पद्धति के फलस्वरूप प्रयुक्त है । कुछ परसर्गो के रूप छन्द की आवश्यकता के अनुसार दीर्घ-स्वरान्त हो गए है । 'केरा' तथा 'केरी' रूप ऐसे है । 'के' परसर्ग सबध कारक के परसर्ग 'क' के बहुवचन पुल्लिग रूप मे प्रयुक्त हुआ है । यत्र-तत्र एकवचन सज्ञा-पद के आगे कोई अन्य विभक्ति, सम्बन्धसूचक अव्यय अथवा इसी प्रकार का कोई अन्य शब्द जोडने के लिए भी सम्बन्धकारकीय चिह्न के रूप मे व्यवहृत है । ऊपर दोनो प्रकार के उदाहरण दिए जा चुके है ।

'के' तथा 'केरे' परसर्गो के प्रयोगो मे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनमे सम्बद्ध शब्द की विभक्ति भी सयुक्त है अर्थात् सम्बद्ध शब्द के पश्चात् स्वतत्र परसर्ग का प्रयोग कवि ने नही किया है ।

अधिकरण – ऊपर— तेहि **ऊपर** जस ससि परगासू ।[1]
पर — तेहि **पर** पूरि धरे जौ मोती ।[2]
पहँ — उहै धनुक किरसुन **पहँ** अहा ।[3]
पहाँ — जौ रे मिरिग कस्तूरी **पहाँ** ।[4]
पाहँ — जीउ बसत तेहि **पाहँ** ।[5]
पाहाँ — चतुर बेद मति सब ओहि **पाहाँ** ।[6]
पाहीं — सौहँ न निरखि जाइ ओहि **पाही** ।[7]
पै — ओहि क सिगार ओहि **पै** साजा ।[8]
मँझ — लागी केलि करै **मँझ** नीरा ।[9]
माँझ — जमुना **माँझ** गाँग कै सोती ।[10]
माँझा — जागत दिन निसि सोवत **माँझा** ।[11]
मह — परा अगिनि **मह** जानहुँ घीऊ ।[12]
मँह — जनु घन **मँह** दामिनि परगसी ।[13]
माँ — मौन लाइ सोधै अस्तर **माँ** ।[14]
माहँ — गरब कीन्ह जिय **माहँ** ।[15]
माहाँ — तुम्ह न कत गवनहु रन **माहाँ** ।[16]
माँहि — औ सब दीप **माँहि** उजिआरी ।[17]
माहीं — मसि क बुद जो नैनन्ह **माहीं** ।[18]
माँझे — उत्तर **माँझे** गढा खटगा ।[19]

१. प० १५६।३ २ प० १००।६ ३. प० १०२।४ ४. आखि० ३।६
५ प० ४०४।८ ६ प० १०८।५ ७ प० ५६८।५ ८ प० ६६।१
९. प० ६३।१ १० प० १००।६ ११. अख० ६।४ १२ प० ६०५।१
१३ प० १००।३ १४ अख० १६।३ १५ प० ८६।८ १६. प० ६१७।७
१७ प० ६५।६ १८. प० २६।२ १९. प० १३८।६

माहे – अपने नैहर **माहे** रे ;[१]
मँझिआरा – नव सैधे ओहि घर **मँझिआरा** ।[२]
म – तब अकम दै गोरा मिला ।[३]
में – कहै मुहम्मद रहो सम्हारे पाँव पानि **में** घाले रे ।[४]
मों – जनु कचन **मों** मिला सोहागू ।[५]

उक्त परसर्गों मे से अधिकाशत **'महँ'** तथा **'माहँ'** का प्रयोग हुआ है । छन्दोऽनुरोध से कुछ परसर्ग दीर्घस्वरान्त भी हो गए है । **'पाहाँ'**, **'माँझा'**, **'माहाँ'** तथा **'माही'** परसर्ग क्रमशः **पाहँ'**, **'माँझ'**, **'माँह'** तथा **'माँहि'** का दीर्घस्वरान्त रूप है ।

'पर' खडी बोली का परसर्ग है । जायसी ने इसका प्रयोग अनेक स्थलो पर किया है । **'मो'** परसर्ग का प्रयोग विरल है । **'म'** परसर्ग **'महँ'** का सक्षिप्त रूप है ।

परसर्गो के समान प्रयुक्त शब्द

उल्लिखित परसर्गो के अतिरिक्त कुछ अन्य शब्द भी परसर्गो के समान प्रयुक्त हैं । ऐसे प्रमुख शब्दो की सूची सोदाहरण प्रस्तुत है —

आगे – ओहि **आगे** थिर रहै न कोऊ ।[६]
कारन – तोहि **कारन** वह जोगी भसम कीन्ह तन डाहि ।[७]
तइँ – दानियाल **तइँ** परगट कीन्हा ।[८]
ताइँ – जग की **ताइँ** ।[९]
निति – तोहि **निति** मँडप गइउँ परदेसी ।[१०]
नाइँ – बीजु की **नाइँ** ।[११]
बाजु – अब तेहि **बाजु** राँग भा डोलौ ।[१२]
बिनु – तुम **बिनु** अबहुँ न परगट कीन्हेउँ ।[१३]
बिहूना – नौजि होइ घर पुरुख **बिहूना** ।[१४]
भरि – जिन **भरि** जनम बहुत हिय जारा ।[१५]
भीतर – हिरदै **भीतर** पिउ बसै ।[१६]
लहि – बरिस बीस **लहि** खाँग न होई ।[१७]

---

१. म०बा०१८।४ २. प० १२४।७ ३ प० ६२७।१ ४. म०बा० १।१३
५ प० ३१६।१ ६. प० १०१।७ ७ प० २३०।८ ८ अख० २७।७
९ प० १९।५ १० प० ३१४।३ ११. प० ३२।५ १२. प० २९४।६
१३ आखि०५०।३ १४. प० ३६९।२ १५ आखि० ५४।७ १६. प० ६०२।८
१७ प० ५०४।१

लागि – तुम्हरे दरसन लागि बियोगी ।[१]
लागी – सुदैबच्छ मुगुधावति लागी । ककनपूरि होइगा बैरागी ।[२]
लेखें – मोहि लेखें ससार उजारी ।[३]
लै – औ नग लाइ सरग लै लावा ।[४]
सँग – जेहि सँग ।[५]
सम – तुम्ह अगंद हनिवत सम दोऊ ।[६]
सरिस – अगद सरिस पाउ रन कोपा ।[७]
सों – जा सों वै हेरहिं चख नारी ।[८]

सर्वनाम

उत्तम पुरुष सर्वनामो के निम्नलिखित रूप प्रयुक्त हैं—

	एकवचन	बहुवचन
मूल रूप—	मै, हौं	हम
विकारीरूप—	मो, मोहि, मोंहि, मोही, मोहीं	हम, हमहिं

सम्बन्ध—मोर, (मम) मोरा, हमार, (हमारा), (हमारी), हमरे मोरि, मोरी, मोरे, मोरें ।

मूल रूप एकवचन के रूपो का प्रयोग एकवचन की क्रिया के कर्त्ता की भाँति हुआ है । 'मै' का प्रयोग प्राय. भूतकालिक कृदन्तीय क्रिया अथवा भविष्यकालिक क्रियाओ के कर्त्ता रूप मे हुआ है, यथा—

'मै' तुम्ह राज बहुत सुख देखा ।[९] कत 'मै' आइ कीन्हि तोरि सेवा ।[१०]
सिघल दीप जाब मै माता मोर अदेस ।[११] घर कैसे पैठब मै छूँछै ।[१२]

यत्र-तत्र वर्तमानकालिक क्रिया के साथ भी उसका प्रयोग मिलता है—

कौनी जीभि मै करौ बडाई ।[१३]
सुनो बिनति मै किरति बखानौ महरा जस महराई रे ।[१४]

'हौं' लगभग समान रूप से प्रयुक्त है—

---

१ प० २२७।६ २ प० २३३।४ ३. प० ३५३।१ ४. प० ४८।३
५. प० १६।८ ६ प० ६११।२ ७ प० ६३१।७ ८. प० ३२।७
६. प० ५७।६ १०. प० २०२।२ ११. प० १३०।६ १२. प० ७५।७
१३. आखि० ६।१ १४. म०बा० १।१

हौं कोहाँर कर माटी जो चाहै सो होइ ।[१] **हौं** अपने दुख बाउर रहौ ।[२]
ओइ मखदूम जगत के **हौं** उन्ह के घर बाँद ।[३]

उत्तम पुरुष एकवचन सर्वनाम के विकारी रूप '**मो**', '**मोहि**', '**मोहिं**', '**मोही**' तथा '**मोहीं**' है । '**मो**' का प्रयोग सदैव किसी न किसी परसर्ग के साथ हुआ है —

सब रस लीन्ह रसोई अब **मो कहँ** को पूँछ ।[४]
जस एइँ समुँद दीन्ह दुख **मोकाँ** ।[५] तूँ **मोसौं** का सरबरि करसी ।[६]

'**मोहि**', '**मोहिं**', '**मोही**' तथा '**मोहीं**' प्राय परसर्गरहित रूप मे प्रयुक्त है—

बरजहु **मोहि** मुहम्मद अधिक उठै दुख दाइ ।[७]
बर सँजोग **मोहि** मेरवहु कलस जाति हौं मानि ।[८]
जो **मोहिं** परसै सब सुख बिरसै कहा गौन जिमि ब्याहू रे ।[९]
मोहिं नहिं देखहु मैं तुम्ह देखी ।[१०]
सो **मोहिं** लिहैं मँगावै लावै भूख पिआस ।[११]
कुवाँ परी धरि काढहु **मोही** ।[१२] छाँडि गएहु सरवर महँ **मोही** ।[१३]

अपवादस्वरूप कुछ स्थलो पर सम्प्रदान कारक मे '**मोहि**' के साथ '**लागी**' तथा '**लेखें**' का योग प्राप्त होता है —

जौ तुम्ह तप साधा **मोहि लागी** ।[१४] **मोहि लेखें** ससार उजारी ।[१५]

मूल रूप बहुवचन '**हम**' का प्रयोग बहुवचन मे प्रयुक्त क्रिया के कर्त्ता की भाँति हुआ है—

पुनि सासुर **हम** गौनब काली ।[१६]
हम तौ बुद्धि गँवाई बिख चारा अस खाइ ।[१७]
अब का कहँ **हम** करब सिगारू ।[१८] तब **हम** कहब पुरुष भल सोई ।[१९]

कही-कही उत्तम पुरुष एकवचन के लिए भी '**हम**' का प्रयोग हुआ है —

भल **हम** आइ मनावा देवा ।[२०]

---

१. अख० ३७।६ २. आखि० ३५।१ ३ प० १८।६ ४. प० ५४६।६
५ प० ४१२।७ ६. प० ४३७।७ ७. आखि० ३६।६ ८ प० १६१।८
९ म०बा० १८।१० १० अख० ४१।५ ११ प० ८०।८ १२ प० ५८१।७
१३. प० ६४३।२ १४ प० ३३१।३ १५. प० ३५३।१ १६. प० ६०।५
१७. प० ७०।८ १८. प० १३३।४ १९. प० १३६।३ २० प० १९२।६

जौ सो बोलावहि पाउ सो **हम** तहँ चलहिं लिलाट ।[1]
की **हम** की तुम और न कोई ।[2]

विकारी रूप के बहुवचन मे '**हम**' का प्रयोग परसर्गसहित तथा परसर्गरहित दोनो रूपो मे मिलता है —

जौ **हम कहँ** आनत न नरेसू ।[3] जेइ **हम कहँ** यह भुम्मि देखाई ।[4]
हम तें कोइ न आगरि रूपा ।[5] एहि बन रहत गई **हम** **आऊ** ।[6]
अब '**हम**' फिरि बाँधा चह बाला ।[7]

यत्र-तत्र विकारी रूप एकवचन मे भी '**हम**' का प्रयौग मिलता है—

जो यह पढै कहानी '**हम**' सँवरै दुइ बोल ।[8]

विकारी रूप बहुवचन '**हमहिं**' का प्रयोग परसर्गरहित हुआ है--

'**हमहि**' लोभ ओइँ मेला चारा ।[9] '**हमहिं**' गरब वह चाहै मारा ।[10]
अब को '**हमहिं**' करिहि भोगिनी ।[11] नाहि त '**हमहिं**' देहि हँसि बीरा ।[12]

उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाममूलक सम्बन्धवाची विशेषणो मे मुख्य रूप '**मोर**' (एकवचन) तथा '**हमार**' (बहुवचन) है। लिग, वचन तथा कारक-भेद से इन सर्वनामो के अनेक रूप जायसी-काव्य मे प्रयुक्त है, यथा-एकवचन मे '**मोर**', '**मोरा**', '**मोरि**', '**मोरी**', '**मोरे**' तथा '**मोरें**' आदि, बहुवचन मे '**हमार**', '**हमारा**', '**हमारी**' तथा '**हमरे**' आदि। प्रयुक्त रूपो के उदाहरण इस प्रकार है —

एकवचन—पिय '**मोर**' महरा गुन '**मोर**' गहरा जिउ मोहि दीन्ह गोसाइँ रे ।[13]
सुवा क सेवर तूँ भा '**मोरा**' ।[14] उमत '**मोरि**' गाढे है परी ।[15]
कोउ न आव '**मोरी**' उमत के ताइँ ।[16] आइ रहै '**मोरे** द्वार रे ।[17]
है कोई एहि जगत महँ '**मोरें**' रूप समान ।[18]

एक स्थल पर सस्कृत सर्वनाम '**मम**' प्रयुक्त है—

तन सराय '**मम**' जानहु दीया ।[19]

---

१. प० २३७।६ २. आखि० २०।७ ३ प० ३३०।४ ४. प० ३३०।३
५. प० १३१।६ ६ २० प० ६६।४ ७. प० ६७।७ ८ प० ६५२।६
९ प० ७२।६ १०. प० ७२।६ ११ प० १३१।२ १२ प० ५०२।६
१३. म०बा० १६।३ १४. प० २०२।३ १५. आखि० ३७।३ १६ म०बा०१८।१३
१७. प० ८३।६ १८. अख०१३।५ १९. प० ३३।६

बहुवचन—जिअन '**हमार**' मुअहि एक पासा ।[१] सुनहु गजपती उतरु **हमारा** ।[२]
जो हँसि बैठै सब दुख मेटै तौ पै कुसल **हमारी** रे ।[३] अहै कुँवर **हमरे** अस चारू ।[४]

यत्र-तत्र उत्तम पुरुष सर्वनाम के बलात्मक रूप भी प्राप्त होते है । एकवचन मे '**महूँ**' तथा '**हहूँ**' और बहुवचन मे '**हमहु**' तथा '**हमहूँ**' ऐसे ही रूप है, यथा—

सेन सिगार '**महूँ**' है सजा ।[५] '**हहूँ**' अैसि हौ तो सो सकसि तौ प्रीति निबाहु ।[६]
भूले **हमहु** गरब तेहि माहाँ ।[७] सुअै कहा **हमहूँ** अस भूले ।[८]

मध्यम पुरुष सर्वनाम

निम्नलिखित रूप प्रयुक्त है—

	एकवचन	बहुवचन
मूलरूप—	**तू, तूँ, तुइँ, तैं**	**तुम, तुम्ह**
विकारीरूप—	**तो, तोहि, तोही, तोंहि, तोहीं, तुंहि, तुइ, (तुह)**	**तुम, तुम्ह, तुमहि, तुम्हहि, तुम्हहिं, (तुम्हे)**
सम्बन्ध—	**तोर (तेरे), (तेरें), (तिहारे), (तुव)**	**तुम्हार**

मूलरूप एकवचन सर्वनामो का प्रयोग एकवचन की क्रिया के कर्त्ता की भाँति हुआ है। 'तुइँ' रूप अधिकतर भूतकालिक कृदन्तीय क्रिया रूपो के कर्त्ता रूप मे प्रयुक्त है। यहाँ उक्त विविध रूपो के उदाहरण दिए जाते हैं—

दूरि गौन साँभर जहँ ताईं **तू** बुडहा भा डोलै रे ।[९] ऐ गोसाइँ तू अैस विधाता ।[१०]
तूँ सुअटा पडित हता **तूँ** कत फाँदा आइ ।[११] हीरामनि **तूँ** प्रान परेवा ।[१२]
जहँ तोहि सँवर दीन्ह **तुइँ** चारा ।[१३] **तुहँ** सुरग मूरति वह कही ।[१४]
तैं सब जानसि एक गोसाईं ।[१५] चैन नाही आए ढिगा वासौ **तैं** बैठो सुस्ताई रे ।[१६]

विकारी रूप एकवचन मध्यम पुरुष सर्वनाम का प्रयोग कर्त्ता को छोडकर अन्य सभी कारको मे हुआ है । '**तो**' का प्रयोग सर्वत्र परसर्गसहित है—

तब हौ **तो** कहँ इद्र पठाई ।[१७] औ बाँधि रूप दीन्ह है **तोकाँ** ।[१८]

'**तोहि**' का प्रयोग परसर्गरहित है किन्तु सम्प्रदान कारक मे उसके साथ यत्र-त

---

१. प० ३३।६ २. प० १४०।५ ३. म०बा०१६।१२ ४. प० २६२।२
५. प० ३३३।६ ६. प० २३४।६ ७ प० ७१।७ ८ प० ७१।१
९. म०बा० २।५ १० प० ६६।६ ११. प० ७०।९ १२ प० ५८।२
१३. प० ६६।७ १४. प० ६६।२ १५ आखि० ३७।३ १६. म०बा०४।२
१७ प० २०९।६ १८ प० २०९।५

'**लागि**' , '**कारन**' तथा '**निति**' आदि परसर्गवत् प्रयुक्त शब्दो का व्यवहार किया गया है यथा–

यह मन **तोहि** अस लावा नारी । दिन **तोहि** पास और निसि सारी ।[१]
मोरे पेम पेम **तोहि** भएऊ ।[२] ओई **तोहि लागि** कया असि जारी ।[३]
तोहि कारन वह जोगी भसम कीन्ह तन डाहि ।[४]
तोहि निति मँडप गइउँ परदेसी ।[५]

अन्य रूप – '**तोही**' , '**तोहिं**' , **तोही**' , '**तुहिं**' तथा '**तुइ**' परसगरहित है ।

जब लगि पीउ मिलै **तोहिं** साधु पेम कै पीर ।[६]
सत औ धरम देउँ सब **तोही** ।[७] करु दीदार देखौ मै **तोही** ।[८]
भुगुति देइ कहँ मैं **तुहिं** डीठा ।[९] मै **तुइ** पाए आपन जीऊ ।[१०]

एक स्थान पर '**तुह**' का परसर्गयुक्त प्रयोग मिलता है–

तुम अस **तुहसे** बात का कोई ।[११]

उक्त रूपो मे से '**तुहिं**' , '**तुइ**' तथा '**तुह**' का प्रयोग कवि ने केवल एक-एक स्थान पर किया है । '**तोही**' तथा '**तोहीं**' रूप भी छन्दोऽनुरोध का परिणाम है तथा अत्यल्प स्थानो पर प्रयुक्त हैं । '**तोहिं**' का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है । '**तोहि**' रूप सर्वाधिक प्रयुक्त है ।

मूल रूप बहुवचन '**तुम्ह**' तथा '**तुम**' का प्रयोग बहुवचन क्रिया के कर्त्ता की भाँति हुआ है–

'**तुम्ह**' अबही जेइँ घरपोइँ ।[१२] **तुम्ह** राजा चाहहु सुख पावा ।[१३]
बात सुनहु **तुम्ह** सखी सहेली सत बोलौ तुम आगे रे ।[१४]
ऐसे तौ **तुम** हौ नहिं चीते ।[१५] **तुम** कस तपौ बजर अस माहाँ ।[१६]
तुम्ह सँवारि कै जानौ बाता ।[१७]

विकारी रूप '**तुम्ह**' तथा '**तुम**' का प्रयोग परसर्गरहित तथा परसर्गसहित दोनो रूपो मे हुआ है–

मै **तुम्ह** राज बहुत सुख देखा ।[१८] हम **तम्ह** देखि आपु कहँ झँखी । [१९]

---

१ प० ३१३।२   २ प० ३१५।५   ३ प० २३०।७   ४ प० २३०।८
५ प० ३१४।३   ६ प० १७१।८   ७. प० ६०५।५   ८ आखि० ४६।४
९. प० ३१४।६   १०. प० ३११।६   ११ आखि० ३४।५   १२ प० १२३।२
१३ प० १२३।७   १४ म० बा० ८।५   १५. आखि० २५।४   १६. आखि० ४१।३
१७. आखि० ३४।७   १८. प० ५७।६   १९. प० ३८०।१

हौं **तुम्ह** नेहुँ पियर भा पानू ।[1] **तुम्ह तें** चढेउँ राज औ कुरी ।[2]
तुम्ह सों कोइ न जीता हारे बररुचि भोज ।[3]
घरी जो भरै घटै **तुम** आऊ ।[4] **तुम का** बिधिनै आयसु दीन्हा ।[5]

अन्य विकारी रूप – **तुमहि**, **तुम्हहि**, **तुम्हहिं** तथा **तुम्हे** – परसर्गरहित हैं –

तुमहि छाँडि कासौ चित बाँधै ।[6]
जो भावै सो होइ मोहि **तुम्हहि** पै चहौ अनद ।[7]
आव काल **तुम्हहिं** तहँ देखै बहुरै कै आदेस ।[8] सोवत **तुम्हें** कइउ जुग बीते ।[9]

उक्त सभी रूपो के प्रयोग इने-गिने हैं । '**तुम्हें**' प्रयोग तो केवल एक स्थान पर ही हुआ है ।

मध्यम पुरुष सर्वनाममूलक सम्बन्धवाची विशेषणो में मुख्यरूप '**तोर**' (एकवचन) तथा '**तुम्हार**' (बहुवचन) हैं । लिग, वचन तथा कारक – भेद के कारण इनके अनेक रूप जायसी-काव्य मे प्रयुक्त है । बहुवचन मे अनेक स्थलो पर 'तुम्हर' के विविध रूप भी प्राप्त होते है । एकवचन मे प्रयुक्त रूप '**तोर**', '**तोरा**', '**तोरि**', '**तोरी**', **तोरे**', '**तोरें**', '**तेरे**', '**तिहारे**' तथा '**तुव**' है । '**तेरे**' तथा '**तेरें**' रूपो पर पश्चिमी हिन्दी और '**तुव**' पर सस्कृत का प्रभाव स्पष्ट है । बहुवचन मे '**तुम्हरा**', '**तुम्हरी**', '**तुम्हरे**', '**तुम्हरें**', '**तुम्हार**', '**तुम्हारा**', '**तुम्हारि**', '**तुम्हारी**', '**तुम्हारे**' तथा **तुम्हारें**' रूप प्रयुक्त है । दोनों वचनो के उक्त सभी रूपो के उदाहरण इस प्रकार है—

एकवचन—आजु गवन तोर आवै मदिल मानु सुख भोग ।[10]
सुफल लागि पग टेकेउ **तोरा** ।[11] कत मै आइ कीन्ह **तोरि** सेवा ।[12]
को तोर आगु आगु तोर पछुआ को आहै दिसि **तोरी** रे ।[13]
एक दीप का आवउँ **तोरे** । सब ससार पाव तर मोरे ।[14]
तोरे घटहिं माँह दस पथा ।[15] पग पग **तेरे** आवै देरी बेगि करहु सिगारा रे ।[16]
भूंजत **तेरें** उर भा हेरे राखहि सीर गोसाई रे ।[17]
बार भए जो पथ **तिहारे** अहै पार जेहि जाना रे ।[18]
सरग जो चाँद बसै **तुव** हियरे ।[19]
बहुवचन—जो लै **तुम्हरा** दरस न पाई ।[20] **तुम्हरी** सरन राम रन जीता ।[21]

---

१. प० ३०९।२ २. प० ३७४।७ ३. प० ६९।८ ४. प० ४२।६
५. आखि० ३४।२ ६. आखि० ३२।४ ७. प० ३१९।९ ८. प० २५८।८
९. आखि० २५।४ १० प० ६१३।६ ११ प० २०२।३ १२ प० २०२।१
१३ म० बा० १८।७ १४ प० ३६७।६ १५ प० १२४।५ १६ म०बा० ११।१०
१७ म० बा० १६।७ १८ म०बा० २।१ १९ प० ५८४।६ २० आखि० ४९।३
२१ प० २११।६

तुम्हरे कोह सबहि जो मरै ।[१] **तुम्हरें** गरब गुरुइ हो चेरी ।[२]
पुरवहु आइ तुम्हार बडाई ।[३] पहिले आपु जो खोवै करै **तुम्हारा** खोज ।[४]
पिता तुम्हारि बहुत मोहि आसा ।[५] अबहुँ नीद ना गई **तुम्हारी** ।[६]
आस **तुम्हारे** मिलन की रहा जीव तब पेट ।[७]
नव अवतार होइ नइ काया दरस **तुम्हारें** भेटि ।।[८]

मध्यम पुरुष सर्वनाम के कतिपय बलात्मक रूप भी प्रयुक्त है । इन रूपो मे से प्रमुख **'तहूँ', 'तुहूँ,' 'तुँहीं,' 'तुहीं,' 'तुमहूँ,' तुम्हहिं, तुम्हहीं, तुम्हरे** तथा **तुम्हारें** है । उदाहरण निम्नलिखित है—

तहूँ जोगि तस भूला भै राजा के रूप ।[९] जस हौ **तुहूँ** समुँद्र के बारी ।[१०]
तुँहीं बिछोवसि करसि मेराऊ ।[११] मोहिं अस **तुहीं** लाग करतारा ।[१२]
तुमहूँ देव जिवाइहि नाही ।[१३] अैस बसत **तुम्हहिं** पै खेलहु ।[१४]
मैं **तुम्हहीं** जिउ लावा दै नैनन्ह महँ बास ।[१५] अहै सँतति मुख **तुम्हरै** हेरा ।[१६]
हिया सो मँदिल **तुम्हारें** नाहाँ ।[१७]

अनुलेखन – विभिन्नता के कारण एक स्थल पर **तुम्हारइ** रूप भी मिलता है—

सबै आइ सिर नावहिं जहाँ **तुम्हारइ** पाट ।[१८]

अन्य पुरुष, निश्चयवाचक (दूरवर्ती) तथा नित्य संबधी सर्वनाम–

उक्त तीनो प्रकार के सर्वनामो के रूप इतने अधिक समान है कि उनका पृथक्-पृथक् विश्लेषण कर सकना अत्यन्त कठिन है, अत यहाँ तीनो के रूप एक साथ प्रस्तुत हैं । प्राप्त प्रमुख रूप निम्नलिखित हैं–

एकवचन	बहुवचन
मूलरूप–वह, सो	**उन्ह, ओन्ह, तिन्ह, तेन्ह, ते, वै**
विकारीरूप–ओ, ओइ,ओइ, (ओह), ता, (ताऊ), तासू, ताहि तेइ, तेहि, तेहिं	**(उन), उन्ह, (तिन), ओन, तिन्ह, उन्हहि, तिन्हैं**

मूल रूप एकवचन मे **'वह'** तथा **'सो'** कर्ता अथवा अप्राणिवाचक कर्म की भाँति प्रयुक्त हैं । जायसी ने प्राय **'वह'** सर्वनाम का प्रयोग अन्य पुरुष तथा निश्चयवाचक (दूरवर्ती)

---

१ आखि० ४१।६ २ प० ६४०।६ ३. प० ५०१।६ ४ प० ६१।६
५. आखि० ३२।१ ६ आखि० २५।३ ७ प० ६४२।८ ८ प० ५८२।६
९ प० ३०६।६ १० प० ४०३।२ ११ प० ४०८।१ १२ आखि० ३७।६
१३. आखि० २१।१ १४ प० २२९।१ १५ प० ३७३।८ १६ प० ३२।५
१७ प० ६४०।५ १८ प० ३७४।६

के अर्थ मे किया है और '**सो**' का प्रयोग नित्यसम्बन्धी के अर्थ मे। इन दोनो **सर्वनामो** के कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

(अ) **कर्ता की भाँति**—जहँ **वह** सुनै लेइ धँसि का पानी का आगि।[१]
रूपवत मनि माथे चन्द्र घाटि **वह** बाढ़ि।[२]
जबहि घरी पूजी **वह** मारा।[३] जेइँ देखा **सो** रहा सिर नाई।[४]
दूध पानि **सो** करइ निरारा।[५] तब **सो** छिताई अब केहि धरा।[६]
(आ) **कर्म की भाँति**—जो मरजिआ होइ तहँ सो पावइ **वह** सीप।[७]

प्रयोग विशेषणवत् है।

जो ओइँ चहा **सो** कीन्हेसि करइ जो चाहइ कीन्ह।[८]
चितउर महँ जो पदुमिनि रानी। कर बर छर **सो** देहि मोहि आनी।[९]

कवि ने बलात्मक प्रयोगो मे यत्र-तत्र '**वह**' का रूप '**उह**' कर दिया है—

धनपति **उहइ** जेहिक ससारू।[१०] तेहि की आगि **उहौ** पुनि जरा।[११]
नैनन्ह माँह तौ **उहै** समाना।[१२]

विकारी रूप एकवचन मे प्रचुर रूप उपलब्ध होते है। इनमे से **ओ** तथा **ता** रूप सर्वत्र परसर्ग सहित प्रयुक्त है

जो दुख सहै होइ सुख **ओकाँ**।[१३] देव पूजि पुनि **ओपहँ** आई।[१४]
ताकहँ आन हाट कित लाहा।[१५] सो राजा यह **ताकर** देसू।[१६]
ताकरि अस्तुति कीन्ह न जाई।[१७] **ता पर** चौदह भुवन दसारे।[१८]

'**ओइँ**', '**ताहि**' तथा '**तेहिं**' परसर्गो के बिना प्रयुक्त है, यथा—

जना न काहु न कोइ **ओइँ** जना।[१९]
जगत बसीठ दई **ओइँ** कीन्हे। दोउ जग तरा नाउँ ओहि लीन्हे।[२०]
जेइँ जिउ दीन्ह **ताहि** जिउ दीजै।[२१] औ जेहि चहइ राज **तेहिं** देई।[२२]

'**तासू**' सम्बन्ध कारक के अर्थ मे परसर्गरहित रूप मे प्रयुक्त है—

जस औधान पूर होइ **तासू**।[२३]

इसी अर्थ मे कवि ने एक स्थल पर **ताऊ** का प्रयोग किया है—

---

१ प० २३१।६	२ प० १६।८	३ प० ४२।३	४ प० १६।६
५ प० १५।६	६ प० ५००।७	७ प० ३३।६	८ प० ७।८
९ प० ५८४।७	१० प० ५।१	११. प० २०६।३	१२. प० ३२५।३
१३. प० २१४।३	१४ प० २२७।७	१५ प० ३७।७	१६ प० २६।१
१७. आखि० ६।१	१८ आखि० ७।४	१९ प० ७।४	२० प० ११।६
२१ प० ३००।२	२२ प० ६।२	२३ प० ५०।२	

नागमती नागिन बुधि **ताऊ** ।[१]

'ओहि' तथा **'तेहि'** अन्य रूपो की अपेक्षा अधिक व्यवहृत है तथा प्राय परसर्गसहित प्रयुक्त है[२]—

ओहि कहँ देहुँ हिए महँ पाटू ।[३] ना **ओहि** की वै रूप सहाई ।[४]
ओहि के बार जीवनहि वारौ ।[५]
नाउँ महापातर मोहि **तेहिक** भिखारी ढीठ ।[६]
तेहि की झार गहन अस गही ।[७] **तेहि महँ** दरस देखावै पिया ।[८]

किन्तु कभी-कभी उनका प्रयोग परसर्गरहित भी हुआ है—

जो ओहि माँग न औरहि माँगा ।[९] टेक देहि **ओहि** टेकौं पाऊँ ।[१०]
मुहमद मद जो परेम का किएँ दोष **तेहि** राख ।[११] **तेहि** बोलाइ पूँछहिं वह देसू ।[१२]

एक स्थान पर जायसी ने **'ओह'** का परसर्गरहित प्रयोग किया है जो **'ओहि'** का परिवर्तित रूप है—

ओह न काउ कै आस निरासा ।[१३]

मूल रूप बहुवचन प्राय बहुवचन की क्रिया के साथ अथवा भूतकालिक कृदन्तीय एकवचन क्रिया के साथ प्रयुक्त है —

औ **उन्ह** आनि बार मुख खोला ।[१४]
ओन्ह बिनउव आगे होइ करब जगत कर मोख ।[१५]
तिन्ह झाँपी रोमावलि कारी ।[१६] प्रथम राग भैरो **तेन्ह** कीन्हा ।[१७]
जिन्ह जिन्ह के घर खेह हेराने हेरत फिरहि **ते** खेह ।[१८]
सौ सौ मन पीअहि **वै** दारू ।[१९]

बहुवचन के अर्थ मे **'सो'** सर्वनाम भी प्रयुक्त है—

माँती रहहि रथन्ह पर परी । सतुरुन्ह कहँ **सो** होहिं उठि खरी ।[२०]

विकारी रूप बहुवचन मे **'उन्ह'** तथा **'तिन्ह'** रूप प्रमुख है । इन सर्वनामो का प्रयोग परसर्गसहित तथा परसर्गरहित दोनों रूपो मे मिलता है, यथा—

---

१. प० ८६।५ २ प० २४६।३ ३ प० २४६।३ ४. प० १९९।३
५ प० २१०।६ ६ प० २६८।८ ७ प० ३२८।५ ८ प० ४०१।२
९. प० ३६८।६ १० प० २६२।६ ११. प० १५४।८ १२. प० २६९।४
१३ प० ५।७ १४ अख० ११९ १५ प० ११।५ १६ प० २९९।३
१७. प० ५२८।२ १८ प० ५१०।८ १९ प० ५०६।४ २०. प० ५०६।५

परसर्गसहित— **उन्ह महँ** ओहि विहगम अहा ।[१] गिरिवर टरहि सो **उन्ह के** टारे ।[२]
बड बड गुनी औ तिन्ह के सगी ।[३] **तिन्ह महँ** चुनि काढी चौराती ।[४]

परसर्गरहित— **उन्ह घर** रतन एक निरमरा ।[५] औ **उन्ह नावँ** सीखि जौ पावा ।[६]
कीन्हेसि हस्ति घोर **तिन्ह** साजू ।[७] **तिन्ह** घर दुइ दीपक उजिआरे ।[८]

यत्र-तत्र कुछ अन्य सर्वनाम भी विकारी रूप बहुवचन मे प्रयुक्त है, यथा **'उन'**, **'उन्हहि'**, **'तिन'** तथा **'तिन्हे'** । इनमे से **'उन्हहि'** तथा **'तिन्हे'** रूप परसर्गरहित है—

कहि करतूति **उन्हहि** धै बधेउँ ।[९] औरु जो जरहिं **तिन्हे** को सँवरा ।[१०]

'उन' सर्वनाम का प्रयोग परसर्गसहित है—

राज पाट **उनका** बिधि साजा ।[११]

अनुलेखन—विभिन्नता से 'ओन' रूप भी मिलता है—ठाव न कतहूँ **ओन** के रूठे ।[१२]

'तिन' परसर्गसहित तथा परसर्ग रहित दोनो रूपो मे प्रयुक्त है—

परसर्गसहित – सो अस दानि मुहम्मद **तिनकै** हौ बलिहार ।[१३]
परसर्गरहित – **तिन** घर हौ मुरीद सो पीरू ।[१४]

अनुलेखन – विभिन्नता के कारण कुछ स्थलो पर 'तेन्ह' रूप भी मिलता है, यथा—

सूझइ वारपार **तेन्ह** नाही ।[१५] **तेन्ह** महँ दीपक बारहबानी ।[१६]

बलात्मक रूपो के अन्तर्गत **'ओही'**, **'ओहीं'**, **'ओहु'**, **'ताही'**, **'तिनहु'**, **'तिनहूँ'**, **'सोइ'**, **'सोई'**, **'सोउ'** तथा **'सेउ'** का उल्लेख किया जा सकता है, यथा –

गएउ समुँद **ओही** धँसि लेई ।[१७] मारा **ओहीं** सहस्सरबाहू ।[१८]
पीर तुम्हार सुनत भा छोहू । दैय मनाव होउ अब **ओहू** ।[१९]
दाहिन हाथ उठाएउँ **ताही** ।[२०]
जो जम आनि जिउ लेत है सकर **तिनहू कर** जिउ लेब ।[२१]
लौटि काल **तिनहूँ** कर होवै ।[२२] कटहर बडहर **तेउ** सँवारे ।[२३]
सोइ बिमोहा जेइँ कवि सुनी ।[२४] गरब करइ मन बाउर **सोई** ।[२५]
सोउ मिलहि मन सँवरि बिछोऊ ।[२६]
दस असुमेध जग्गि जेइँ कीन्हा । दान पुन्नि सरि **सेउ** न दीन्हा ।[२७]

---

१ प० ३६४।५ २ प० ५१४।५ ३ प० ५२५।३ ४ प० ५६०।१
५ प० १६।१ ६ अख० ४१।१ ७ प० ३।२ ८ प० १६।२
९. आखि० ५०।६ १० प० ५०८।६ ११. आखि० ८।१ १२. आखि० ६।४
१३ आखि० २।६ १४. आखि० ६।५ १५. प० ३३।१ १६. प० ४६।७
१७ प० २३८।१ १८ प० १०२।५ १९ प० २६५।५ २० प० २६८।७
२१ आखि० २०।८ २२. आखि० २१।७ २३. प० ५४६।४ २४ प० २१।१
२५. प० १०।७ २६. प० ४२८।३ २७. प० १७।७

अन्य पुरुष सर्वनाम के मूल रूप तथा विकारी रूप के अधिकाश रूप सार्वनामिक विशेषणो की भाँति भी प्रयुक्त है।

निश्चयवाचक (निकटवर्ती) सर्वनाम

प्राप्त प्रमुख रूप निम्नलिखित है–

	एकवचन	बहुवचन
मूलरूप –	यह, यहु, (एइँ)	(एइ), ये
विकारी रूप –	एहि, एहिं, (ए)	इन्ह, (एन्ह)

मूल रूप एकवचन के उदाहरण इस प्रकार है–

निस्चै **यह** ओहि कारन तपा।[१] दहुँ **यह** बीच कि पेमहि पूजा।[२]
यह ओहि लागि जरम एहि सीझा।[३] रतनसेनि **यहु** ताकर बेटा।[४]
का **एइँ** सँवरा दाउ।[५]

बलात्मक प्रयोगो मे **'यह'** के स्थान पर **'इह'** रूप मिलता है–

ताकर **इहइ** सो खाना पियना।[६] **इहाँ** किस्न बलिबार जस कीन्ह चाह छर बाँध।[७]

विकारी रूप एकवचन मे **'एहिं'** सर्वनाम परसर्गरहित है–

है कोई **एहिं** राख बिधाता।[८]

'एहि' रूप परसर्गसहित तथा परसर्गरहित दोनो रूपो मे प्रयुक्त है–

परसर्गसहित – का मै **एहिक** नसावा का एइँ सँवरा दाउ।[९]
परसर्गरहित – तुइँ रे भाट यह जोगी तोहि **एहि** कहाँ क सग।[१०]

एक स्थान पर **'ए'** सर्वनाम का परसर्गयुक्त रूप मिलता है–

जाइ सरग पर होइहि **एकर** मोर नियाउ।[११]

बलात्मक रूपो मे कही **'इह'** का प्रयोग मिलता है–

जोगिन्ह **इहै** जानि मन मारा।[१२]

और कही-कही **'एहु'** तथा **'एहू'** रूप प्राप्त होते है–

तीसरि लेहु **एहु** के माथे जौ रे लेइ कै साध।[१३] **एहू** कहँ तसि मया करेहू।[१४]

मूल रूप बहुवचन मे **'ये'** रूप मुख्यतया प्रयुक्त है–

---

१ प० २११।५ २ प० २०६।२ ३ प० २११।५ ४. प० २६८।४
५. प० ४१२।८ ६ प० ५।६ ७. प० ५५८।८ ८ प० २०५।७
९. प० ४१२।८ १० प० २६७।८ ११ प० ४१२।९ १२ प० ४२२।६
१३. प० २११।९ १४ प० २११।७

जस **ये** चारिउ धरति बिलाही ।[१]
जस भँडार **ये** मूँसहि चढहि रैनि दै सैंधि ।[२]
जोगी औ मन पौन परावा । कत **ये** रहे जौ चित्त उँचावा ।[३]
कही-कही **'एइ'** रूप भी मिलता है–
दत्त सत्त **एइ** दूनौ भाई ।[४]

विकारी रूप बहुवचन मे मुख्य रूप 'इन्ह' है जो परसर्गसहित तथा परसर्गरहित दोनो रूपो मे प्रयुक्त है, यथा –

परसर्गसहित – **इन्ह महँ** कौनु सो जोगी अहा ।[५]
परसर्गरहित – जौं जिय काढि देइ **इन्ह** कोई ।[६]

यत्र-तत्र **'एन्ह'** रूप भी मिलता है–

तस चाही पुनि **एन्ह** कहँ मारहु सूरी बेधि ।[७]

इस वर्ग के मूल रूप तथा समस्त विकारी रूप सार्वनामिक विशेषण की भाँति प्रयुक्त है ।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

इस वर्ग के अन्तर्गत प्रमुख रूप से **'और'**, **'कोई'**, **'सब'** तथा **'किछु'** आदि सर्वनाम आते है, गौणत **'आन'** तथा **'पर'** का भी उल्लेख किया जा सकता है। इनके प्राप्त प्रयुक्त रूप निम्नलिखित है–

(अ)–

	एकवचन	बहुवचन
मूलरूप	– **अउर, औरु, (आन), (आना)**	**अउर, औरु**
विकारी रूप	– **औरहि, आन, पर**	**औरन्ह**
विशेषण विकारी रूप	– **पराएँ (पु०), पराई (स्त्री०)**	

उल्लिखित रूपो के उदाहरण इस प्रकार है

मूल रूप एकवचन –
अउर जो होइ सो बाउर अधा ।[८] जम पियार पिउ **औरु** न कोई ।[९]
मानुस चित **आन** कछु निता ।[१०]

---

१. अख० १४।५ २. प० २३६।८ ३ प० ३७३।४ ४. प० ३८६।४
५. प० २७८।२ ६. प० ३७३।५ ७ प० २३६।६ ८ प० ७।७
९. प० ३२४।३ १०. प० २८७।२

चितउर मॉह न सुमिरेउँ **आना** ।[१]

विकारी रूप एकवचन - छाज न औरहि ओहि पै छाजै ।[२]

मो तजि **आन** फूल कत जाई ।[३]

रकत पियासे जे हुहि का जानहि **पर** पीर ।[४]

विशेषण विकारीरूप एकवचन——(पुल्लिग)—औ सुपुरुष होइ देस **पराएँ**।[५]

(स्त्रीलिग)—बिनु जोबन भौ आस **पराई** ।[६]

मूलरूप बहुवचन——अउर जो देहि जगत महँ सो सब ताकर दीन्ह ।[७]

अउर जो भूले आवत ते सुनि लागत तेहि पथ ।[८] **औरु** बराति सग सब कोई ।[९]

विकारी रूप बहुवचन——औरन्ह का आगे निति लेखा ।[१०]

(आ)

एकवचन	बहुवचन
मूलरूप—कोइ, कोई, कोउ, कोऊ, केउ, केऊ, केहु, (क्वाउ)	**कोइ, कोई**
विकारीरूप—काउ, काऊ, काहु, काहू, काहुँ, (क्वाउ), काहूँ, केहु	

प्रयुक्त रूपो के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

मूलरूप एकवचन—जनि **कोइ** होइ प्रेम कर राता ।[११]

है **कोई** एहि राख बिधाता ।[१२]

पेम के फॉद **कोउ** जनि परई ।[१३] केहि आपन भए कहै सो **कोऊ** ।[१४]

जियत न रहा जगत **केउ** ठाढा ।[१५]

ऐसन सेउ न जाने **केऊ** ।[१६]

केहु नहि लागिहि साथ जब गौनब कैलास महँ ।[१७] **क्वाउ** न क्वाउ क धरहरि करी ।[१८]

विकारी रूप एकवचन—देवता मरहि कलपि सिर आपुहि दोख न लावहि **काउ** ।[१९]

सो का **काहु** कै धरहरि करई ।[२०]

अदिन आइ जौ पहुँचै **काऊ** ।[२१] नागरि नारि **काहुँ** बस परा ।[२२]

काहू हाथ चँदन कै खोरी ।[२३] कोउ **काहूँ** कर नाहिं नियाना ।[२४]

---

१ प० ३०५।२ २ प० ३००।१ ३ प० ३१९।७ ४ प० ३०६।६

५ प० २७८।७ ६ प० ३६२।४ ७ प० ५।६ ८ प० १३।६

९ प० २७९।५ १० आखि० ५०।७ ११ प० २२७।५ १२ प० २०५।७

१३ प० २१३।७ १४ प० ३१०।५ १५ आखि० १७।२ १६ अख० ३५।६

१७ अख० १८।१० १८ आखि० ४३।४ १९ प० ३२१।८ २० प० ३८८।३

२१ प० ३८८।३ २२ प० ३४१।२ २३ प० २८०।३ २४ प० ३८४।७

क्वाउ न **क्वाउ क** धरहरि करी ।[१] जौं निरास दिढ आसन कत गवनै **केहु** पास ।[२]

मूलरूप बहुवचन—कोइ लोटा कोपर लै आई ।[३] **कोइ** आगे पनवार बिछावहि ।[४]

कोई भात परोसहि पूरी ।[५] **कोई** लै लै आवहि थारा ।[६]

विकारी रूप बहुवचन के प्रयोग सयुक्त सर्वनाम मे मिलते है । उक्त रूपो की चर्चा आगे की गई है ।

अप्राणिबोधक अनिश्चयवाचक के अन्तर्गत '**कछु**' तथा '**किछु**' का उल्लेख किया जा सकता है, यथा—

बाप बाप कै जो **कछु** खाँगै ।[७]

अब कौन भरोसै **किछु** कहौ जीउ पराएं हाथ ।[८]

(इ) एकवचन	**बहुवचन**
मूलरूप–सब	**सब, (सभन्ह), सबन्ह**
विकारीरूप– ×	**सब, सबहि, सबहिं, सबन्हि, (सबाई)**

उदाहरण इस प्रकार है –

मूलरूप एकवचन – पान फूल सेदुर **सब** राता ।[९]

कीन्ह सिंगार अहा **सब** लूटा ।[१०] कह **सब** जाउ न जाउ पियाई ।[११]

मूलरूप बहुवचन – सुनहु सखी **सब** कहहि बियाहू ।[१२]

पाँति पाँति **सब** बैठे भाँति भाँति जेवनार ।[१३]

बिहँसत **सबन्ह** बीज बर ताके ।[१४] कीन्ह पयान **सभन्ह** रथ हाँका ।[१५]

विकारीरूप बहुवचन – सब कहँ चाँद मोहिं होइ राहू ।[१६]

जगत बराबर दै **सब** चाँपा ।[१७]

सब क धौरहर सोनै साजा ।[१८] हस्ति घोर औ कापर **सबहि** दीन्ह नौ साजु ।[१९]

सबहिं विचार परा अस भा गवने कर साज ।[२०]

सीस **सबन्हि** के सेदुर पूरा ।[२१] कर नाही पै करइ **सबाई** ।[२२]

उक्त उदाहरणो पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट है कि '**सब**' का प्रयोग परसर्ग सहित तथा परसर्गरहित दोनो रूपो मे मिलता है । **सबाई**=(**सब**+**ही**), उपधा स्वर मे दीर्घता छन्दोऽनुरोध का परिणाम है ।

---

१. आखि० ४३।४ २ प० २१८।८ ३ प० ५६२।२ ४ प० ५६२।३
५ प० ५६२।४ ६ प० ५६२।५ ७ आखि० ३२।४ ८ प० २३२।८
९. प० २८२।१ १०. प० ३१८।२ ११ प० ३२०।५ १२ प० २८१।३
१३. प० २८३।८ १४. प० २७३।४ १५ प० १९६।१ १६. प० ३४८।३
१७ प० ३३२।२ १८. प० ३३१।७ १९. प० ३३१।८ २०. प० ३७६।८
२१ प० ३३२।२ २२ प० ८।२

मूलरूप तथा विकारी रूप वाले अधिकाश अनिश्चयवाचक सर्वनाम सार्वनामिक विशेषणो की भाँति भी व्यवहृत है।

सम्बधवाचक तथा नित्यसम्बधी सर्वनाम

	एकवचन	**बहुवचन**
मूलरूप	**जो, जेइ, जेइँ, जेहि, जेही, जेंहि**	**जो, जे, (जिन), जिन्ह, (जेन्ह)**
विकारीरूप	**जा, (जाही), जासू, (जिसु), (जे), जेइ, जेहि, जेंहि**	**(जिन), जिन्ह, जिन्हहि, (जिन्हें)**

उक्त रूपो के उदाहरण निम्नलिखित है –

मूलरूप एकवचन – कथा **जो** आइ कहै पिय केरी।[१] **जेइ** हम कहँ यह भुम्मि देखाई।[२]
मोर मोर **जेइँ** कीन्ह सो बुडा।[३] सोई पुरुष दरब **जेहि** सेती।[४]
रहै न वाँधाँ बाँधा **जेही**।[५] निलज भिखारि लाज **जेंहि** खोई।[६]

उक्त रूपो मे से **'जो'** सर्वनाम कर्त्ता अथवा अप्राणिवाचक कर्म की भाँति प्रयुक्त है। **'जेइ'** (**जेइँ, जेहि**) का प्रयोग प्राय सकर्मक कृदन्तीय क्रिया के कर्त्ता की भाँति हुआ है।

विकारी रूप एकवचन -- **'जा'** रूप सर्वत्र परसर्ग सहित प्रयुक्त है –

जासो पाव सोहाग सो नारी।[७]
जा कहँ सीस नाइ कै दीजै।[८] जो अस **जाकर** आसामुखी।[९]

'जे' रूप भी परसर्ग सहित प्रयुक्त है –

जेकरे हाथ होइ वह कूँजी।[१०]
जेकर पास अनफाँस कहु हिय फिकिर सँभारि कै।[११]

किन्तु प्रयोगो की सख्या अत्यन्त सीमित है। **'जाही'** तथा **'जेंहि'** परसर्गरहित रूप मे प्रयुक्त है, यथा –

और को अस बरम्हावउँ **जाही**।[१२] औ **जेंहि** चहइ राज तेहि देई।[१३]

'जासू' सम्बन्धकारक के अर्थ मे परसर्गो के बिना प्रयुक्त है, यथा –

बरम्हा डरै चतुर मुख **जासू**।[१४]

---

१ प० ३६१।५ २ प० ३३०।३ ३. प० ३८९।७ ४ प० ३८८।२
५ प० ४२२।७ ६ प० २६१।३ ७. प० ३५७।३ ८. प० २४३।२
९. प० २२४।६ १० अख० ३३।७ ११ अख० ३९।१० १२. प० २६८।७
१३ प० ६।२ १४. प० २६५।४

करण कारक मे **'जिसु'** का प्रयोग भी परसर्गरहित है—

भागेउ बिरह रही **जिसु** डाढी ।[१]

'जेइ' तथा **'जेहि'** सर्वनामो का प्रयोग परसर्गसहित तथा परसर्गरहित दोनो रूपो मे हुआ है, यथा—

परसर्गसहित—**जेइ से** कहौ सो चुप होइ रहई ।[२] **जेहि ते** होइ रूप औ सोना ।[३]
परसर्गरहित—नेबू रस नहि **जेइ** होइ छारा ।[४] कहेन्हि सँवरु **जेहि** चाहसि सँवरा ।[५]

विकारी एकवचन के उक्त सभी रूपो मे से **'जा'** तथा **'जेहि'** रूपो का प्रयोग जायसी-काव्य मे अन्य रूपो की अपेक्षा अधिक हुआ है।

मूलरूप बहुवचन—उदाहरण निम्नलिखित है—

निकसि **जो** भागे भए करमुहाँ ।[६] रकत पियासे **जे** हहि का जानहि पर पीर ।[७]
भजन गढन सँवारन **जिन** खेला सब खेल ।[८]
सिघ तरेडा **जिन्ह गहा** पार भए तेहि साथ ।[९] **जेन्ह** जस माँसू भखा परावा ।[१०]

विकारी रूप बहुवचन—

उललै रहसि बरिस **जिन** घर बिनु मत हाथ भुकि घोरसि रे ।[११]

'जिन्हहि' तथा **'जिन्है'** का प्रयोग परसर्ग रहित है, यथा—

गए जो बाजन बाजते **जिन्हहि** मारन रन माहँ ।[१२]
तिन्ह सीतल को राखै **जिन्है** आगि महँ मीच ।[१३]

'जिन्ह' सर्वनाम का प्रयोग परसर्गसहित तथा परसर्गरहित दोनो रूपो मे है यथा—

परसर्गरहित—जिन्ह के गोट जाहि उपराही ।[१४]
चलै उताइल **जिन्ह** कर खेवा ।[१५]

परसर्गसहित—चली कमाने **जिन्ह** मुख गोला ।[१६]
जिन्ह भुइँ माँथ गँगन तिन्ह लागा ।[१७]

---

१. प० ४२३।७ २ आखि० ३७।४ ३ प० २६३।५ ४ प० २५६।३
५ प० २६२।१ ६ प० २०६।६ ७ प० ३०६।६ ८ आखि० २१।८
६. प० २०२।८ १० प० ५१६।७ ११ म० बा० ६।८ १२ प० २७४।८
१३ प० ५०२।६ १४ प० ५२५।४ १५ प० २०।१ १६ प० ५०६।१
१७ प० ५३२।६

सम्बन्धवाचक सर्वनाम के उल्लिखित रूपो मे से अधिकांश रूप सार्वनामिक विशेषण की भाँति प्रयुक्त हुए है।

निजवाचक सर्वनाम

प्राप्त प्रमुख रूप निम्नलिखित है—

मूलरूप– **आप, आपु, अपुना, आपुन,**
आपुहि, आपुहि।
विकारी रूप– **आपु, आपुहि, आपुहि।**
सम्बन्ध– **अपन, आपन।**

उदाहरण इस प्रकार है —

मूल रूप—बड परताप **आप** तप साधे।[१] सबहि खियावइ **आपु** न खाई।[२]
सबही तारि रहा थिर **अपुना** सौह बोल बहु साँचो रे।[३]
दुइ हुइ लाइ जगत सब जोरा **आपुन** रहा अकेला रे।[४]

'आपुहि' तथा **'आपुहिं'** रूप बलात्मक है—

आपुन दरसन **आपुहि** देखा।[५]
मारै आहि अर्स जरि जाई। तेहि पाछे **आपुहि** पछिताई।[६]

विकारीरूप—**'आपु'** रूप परसर्गसहित तथा परसर्गरहित दोनो रूपो मे प्रयुक्त है तथा **'आपुहि'** और **'आपुहिं'** परसर्गरहित रूप मे व्यवहृत है, यथा—

धरति **आपु कहँ** काँपै सरग **आपु कहँ** काँप।[७]
पहिले **आपु** जो खोवै करै तुम्हारा खोज।[८]
रिसि **आपुहि** बुधि औरहि खाई।[९]
हाथ चढौ सो तेहि के प्रथम जो **आपुहिं** नास।[१०]

निजवाचक सर्वनाममूलक सम्बन्धवाची विशेषणो मे मुख्य रूप **'अपन'** तथा **'आपन'** है जो लिग, वचन, कारक तथा बलातमकता के कारण अनेक रूपो मे प्रयुक्त मिलते है। ऐसे प्रयुक्त प्रमुख रूप **'अपनी'**, **'अपने'**, **'अपनिहि'**, **'अपाना'**, **'अपने'**, **'अपुने'**, **'आपन'**, **'आपनि'** तथा **'आपुन'** है। इनके उदाहरण इस प्रकार है—

---

१ आखि० ८।६ २ प० ५।५ ३ म० बा० ५।१४ ४ म०बा० ८।४
५. आखि० १०।७ ६ आखि० ४०।२ ७ प० ५०५।८ ८ प० ८१।८
९. प० ८०।१ १० प० २३३।८

रतनसेनि गौ **अपनी** सभा ।[१]

बूझि बिचारि देखु मन **अपने** भए जनम कर लाहा रे ।[२]

ठा—ठाकुर बड आप गुसाई । जेइ सिरजा जग **अपनिहि** नाई ।[३]

कौनु बिआधहि दोख **अपाना** ।[४] जौं पहिले **अपुने** सिर परई ।[५]

अपने अलकार ओहि भावा ।[६]

जहाँ मान **आपन** नहि देखै लाखन छाँड पराई रे ।[७]

सब निबहिहि तहँ **आपनि** साँठी ।[८] **आपुन** रस आपुहि पै लेई ।[९]

जायसी ने निजवाचक के अर्थ मे **'निजु'** तथा **'सँ'** (स्वय) का प्रयोग भी किया है, यथा—

निति पूछौ सब जोगी जगम । कोइ **निजु** बात न कहै बिहगम ।[१०]

बिसुकर्मँ **सँ** हाथ सँवारी ।[११]

आदरवाचक सर्वनाम का प्रयोग जायसी-काव्य मे नही मिलता ।

प्रश्नवाचक सर्वनाम

प्रश्नवाचक सर्वनामो के दो प्रकार होते है—प्राणिवाचक तथा अप्राणिवाचक ।

प्राणिवाचक वर्ग के प्रमुख प्रयुक्त रूप निम्नलिखित है—

मूलरूप—को, केइ,केइँ

विकारी—रूप का, केहि

उदाहरण इस प्रकार है—

मूलरूप—

विरह दवा अस **को** रे बुझावा । को प्रीतम सँ करै मेरावा ।[१२]

केइ हरि लीन्हि कीन्हि अँधियारी ।[१३]

केइँ यह बसत बसत उजारा ।[१४]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि **'को'** सर्वनाम का प्रयोग सभी कालो की क्रियाओ के साथ हुआ है किन्तु **'केइँ'** तथा **'केइ'** केवल भूतकालिक कृदन्तीय क्रियाओ के साथ ही प्रयुक्त है ।

विकारी रूप – **'का'** सर्वत्र परसर्गसहित प्रयुक्त है, यथा–

का कहँ दैय अैसि जै दीन्हा ।[१५] को सरि मोसों पावै **का सों** करौ बरोक ।[१६]

'केहि' का प्रयोग परसर्गयुक्त तथा परसर्गरहित दोनो रूपो मे मिलता है, यथा –

केहि आपन भए कहै सो कोऊ ।[१७]

---

१. प० ३३०।१ २ म०बा० ८।१२ ३ अख० १८।१ ४. प० ७२।७,
५ प० २०३।२ ६ प० ४६४।४ ७. म० बा० ६।१४ ८ प० १२८।४
९ प० ३२५।४ १० प० ३६०।७ ११ प० २८९।३ १२ प० १९९।७
१३ प० २५०।४ १४ प० १६६।५ १५. प० २७८।६ १६. प० ५३।६
१७. प० ३१०।५

तूँ जोगी **केहि माँह** अकेला ।[१] **केहिक** सिगार को पहिर पटोरा ।[२]

सार्वनामिक विशेषण के रूप मे **'कवन'**, **'कौन'** तथा **'कौनु'** आदि प्रयोग मिलते है, यथा –

कवन भाँति अस जाइ बिसेषा ।[३]
देखि वार जिउ खिन खिन कपै **कौन** भरोसे बोलै रे ।[४]
कौन उतर देबेउँ तिन्ह पूँछे ।[५]
केहि बिधि पावौ भँवर होइ **कौनु** सो गुरु उपदेस ।[६]

अप्राणिबोधक प्रश्नवाचक सर्वनाम **'क्या'** का अर्थ व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त है। इसके मूल रूप मे **'का'**, **'कहा'** तथा 'काह' रूप प्रयुक्त है–

का हम कहब उतर का देबा ।[७]
कत बाँह धरि पूँछै बैना **कहा** कहब तेहि ठाँई रे ।[८]
न जनौ **काह** होइ कबिलासाँ ।[९]

विकारी रूप प्राणिवाचक विकारी रूपो से भिन्न नही है ।

सार्वनामिक विशेषण

पिछले पृष्ठो मे इस बात का सकेत किया जा चुका है कि जायसी-काव्य मे सर्वनाम विशेषणवत् प्रयुक्त है । कथन की पुष्टि के लिए यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत है –

अन्य पुरुषवाचक तथा निश्चयवाचक (दूरवर्ती) रूप – सो देस,[१०] **वह** सुअटा,[११] **बै** चेला,[१२] **तेन्ह** तालन्ह ।[१३]

सम्बन्धवाचक रूप – जो हिछा,[१४] **जेहि** दिन ,[१५] **जे** गुन ।[१६]
निश्चयवाचक (निकटवर्ती) रूप – **यह** अचरज ।[१७] **एहि** रस ।[१८] **एही** समुद ।[१९]
अनिश्चयवाचक रूप – कोइ जोगी ।[२०] **कौनिउँ** तिथि ।[२१] **किछु** काज ।[२२]
प्रश्नवाचक रूप – कौनी जीभि ।[२३] **का** गुन ।[२४] **कवनि** मति ।[२५] **को** राजा ।[२६]

सर्वनामो से प्रकारवाचक तथा परिमाणवाचक विशेषण भी बने है, यथा –

---

१. प० २८६।५ २. प० ३५१।७ ३ प० ८।५ ४. म० बा० ३।६
५. प० ७५।७ ६. प० २००।६ ७ आखि० २६।७ ८. म० बा० ८।८
९ प० २१०।४ १०. प० ५१।६ ११. प० ६७।८ १२. अख० २७।४
१३. प० ३३।८ १४ प० १६४।६ १५. प० १०७।४ १६ प० ७६।४
१७. अख० ७।१० १८. अख० २१।३ १९. प० १५६।१ २०. प० १९३।२
२१ प० ५९।१ २२. आखि० ८।६ २३. आखि० ६।१ २४ म० बा० १८।४
२५. प० १२०।६ २६. प० ९४।४

प्रकारवाचक – अस दिया ।[१] **ऐसी** बिथा ।[२] **अैस** बोल ।[३] **अइस** साज ।[४]
परिमाणवाचक – सोच **ओता** ।[५] छार **जेत** ।[६] दुख **एता** ।[७]

संयुक्त सर्वनाम

सयुक्त सर्वनामो के भी उदाहरण मिलते है । ये प्राय 'और', 'जो', 'सब', 'कोऊ' तथा 'कछु' आदि के संयोग से बने है । कुछ प्रयोग उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं –

अउर जो – **अउर जो** देहि जगत महँ सो सब ताकर दीन्ह ।[८]
और-कोई – **और** न आवै दिस्टि तर **कोई** ।[९]
औरु को – केहि सरि देउँ **औरु को** पूजा ।[१०]
और सब – साँचा सोइ **और सब** झूठे ।[११]
जो कोई – जस जस पाँव धरै **जो कोई** ।[१२]
जो किछु – **जो किछु** है सो ठहरा सोई ।[१३]
जो कोउ – **जो कोउ** आव देखे नैन उघारी ।[१४]
सब काहू – सीझा चाम **सब काहू** भावा ।[१५]
सब किछु – वै **सब किछु** करता किछु नाही ।[१६]
सब कोउ – सखी सहेली सुनहु सोहागिनि **सब कोउ** अइसि बियाही रे ।[१७]

सयुक्त सर्वनाम के प्रयोगो मे एक रूप अनिश्चयात्मक है और अधिकाशत दोनो सर्वनामो मे से एक का प्रयोग विशेषण के समान किया गया है ।

विशेषण

सज्ञाओ के समान ही विशेषण भी मुख्यत अकारान्त है । गौण रूप से **आ, इ, ई, उ,** तथा **ऊ** अन्त्य-स्वरयुक्त विशेषण भी उपलब्ध होते है । इनमे से अधिकाश अन्त्य-स्वर विशेषणो के विकारी रूपो मे प्राप्त होते है । भिन्न-स्वरान्त विशेषणो के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

अकारान्त- **खार** समुद्र,[१८] **निरमल** हिया,[१९] **घन** तार,[२०] **हरियर** भुइँ ।[२१]
आकारान्त- **थोरा** दान,[२२] सुख **सारा**[२३], पथ **उजिआरा** ।[२४]

---

१ प० ५०।३   २. प० १६८।६   ३. प० ९८।१   ४ प० ६।८
५ प० १४९।३   ६ प० १६६।७   ७ प० ४५६।१   ८ प० ५।९
९. आखि० १०।५   १०. प० ४६०।७   ११. आखि० ६।४   १२. अख० ५२।४
१३. अख० ४८।२   १४. आखि० ३८।७   १५. अख० ४८।७   १६. अख०१।१०
१७. म० बा० ९।१   १८ प० १८।८   १९ प० १८।२   २० प० २८।९
२१ प० ६०८।६   २२ प० ३९३।६   २३ प० ६।७   २४ प० १८।१

इतर-स्वरान्त विशेषणो मे लिंग-भेद के कारण कोई परिवर्तन नही हुआ है। विशेषणो के लिंग तथा वचन सम्बद्ध विशेष्य के अनुसार है। वाक्य मे उनका प्रयोग उद्देश्यात्मक तथा विधेयात्मक दोनो रूपो मे हुआ है।

अवधी मे सज्ञा पदो की भाँति विशेषण के भी तीन रूप मिलते है। लघु, दीर्घ तथा अति-दीर्घ। जायसी ने प्राय लघु रूप का ही प्रयोग किया है।

विशेषण का वर्गीकरण विशेषणो के तीन मुख्य भेद किए जा सकते है—**अ—सार्वनामिक, आ— गुणवाचक** और **इ—सख्यावाचक**। सार्वनामिक विशेषणो की चर्चा सर्वनामो के साथ की गई है। अत यहाँ अन्य दो भेद विवेचित है।

गुणवाचक विशेषण — जायसी-काव्य मे गुणवाचक विशेषण प्रचुर सख्या मे प्रयुक्त है, यथा—

अ—कालवाचक — **आदि** पिता।[1] **नवल** रितु।[2] **पाछिल** बैर।[3]
आ—स्थानवाचक — **बाईं** दिसि।[4] **ऊँचे** ठाँव।[5]
इ—आकारवाचक — **खीन** पेट।[6] **टेढ** बदन।[7] गियँ **छोटी**।[8]
ई—रंगसूचक — **केसरि** बरन।[9] **करिल** केस।[10] **सेत** धुजा।[11]
उ—स्थितिसूचक — **सून** पिरथिमी।[12] **अगम** पंथ।[13] ध्रुव **अचल**।[14]
ऊ—गुणसूचक — **गुनवर** ससुर।[15] **सुभर** कपोल।[16] **निरमल** बानी।[17]
ए—अवगुणसूचक — **दारुन** ससुर।[18] **खोट** रतन।[19] नाँव **असाधु**।[20]
ऐ—अवस्थासूचक — **बिरिध** बएस।[21]

सख्यावाचक विशेषण · सख्यावाचक विशेषणो के तीन भेद है—**क—निश्चित संख्यावाचक, ख— अनिश्चित सख्यावाचक** और **ग—परिमाणबोधक**।

क—निश्चित संख्यावाचक विशेषण—उक्त तीनो भेदो मे से निश्चित संख्यावाचको का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। इनके पाँच भेद है—**अ—गणनावाचक, आ—क्रमवाचक, इ—आवृत्तिवाचक, ई—समुदायवाचक** तथा **ऊ—प्रत्येकबोधक**। अ—गणनावाचक विशेषणो के दो भेद है—च— पूर्णाक बोधक तथा छ—अपूर्णाकबोधक। जायसी-काव्य मे उक्त दोनो प्रकार के सख्यावाचक विशेषण उपलब्ध होते है।

---

१. प० ३८०।३ २ प० ३३५।१ ३. प० ५८४।२ ४ प० ३६७।८
५ प० ४३१।८ ६ प० ४६७।६ ७. आखि १२।८ ८. प० ४६३।२
९ प० ६१२।४ १० प० ६२।४ ११. प० ३४४।२ १२ आखि० १७।८
१३. प० ३७९।४ १४ प० ३६८।१ १५ म० बा० ८।१२ १६ प० ४६७।७
१७ अख० १५।७ १८ प० ६०।७ १९. प० ४४९।५ २०. आखि० ११।२
२१. प० ६५३।१

च—पूर्णांकबोधक— **एक**,[१] **दुइ**,[२] **तीनि**[३] (कहीं—कहीं **तीन**),[४] **चारि**[५] (कहीं—कहीं **चतुर**)[६], **पाँच**[७], **छ**[८] (कहीं-कहीं **छः**)[९], **सात**[१०] (कहीं-कहीं **सप्त**[११] या **सपत**)[१२], **आठ**[१३] (कहीं-कहीं **अष्ट**)[१४], **नौ**[१५] (कहीं-कहीं **नव**)[१६], **दस**[१७] (कहीं-कहीं **दह**)[१८], **इग्यारह**[१९] (कहीं-कहीं **एगारह**)[२०], **बारह**[२१] (कहीं-कहीं **दुआदस**[२२] या **दुवादस**)[२३], **तेरह**[२४], **चौदह**[२५] (कहीं-कहीं **चतुर्दस**)[२६], **पन्द्रहा**[२७], **सोरह**[२८], **सत्रह**[२९] (कहीं-कहीं **सतरह**)[३०], **अठारह**[३१], **ओनइस**[३२], **बीस**[३३], **एकइस**[३४], **बाइस**[३५], **तेइस**[३६], **चौबिस**[३७], **पचीस**[३८], **छबिस**[३९], **सताइस**[४०], **अठाइस**[४१], **ओनतिस**[४२], **तीस**[४३], **बतिस**[४४], **तैतिस**[४५], **छत्तीस**[४६] (कहीं-कहीं **छतीस**[४७]), **चालिस**[४८], **सैंतालिस**[४९], **पचास**[५०], **बावन**[५१], **छप्पन**[५२], **साठि**[५३], **चौंसठि**[५४], **सत्तर**[५५] (कहीं-कहीं **सत्तरि**)[५६], **चौरासी**[५७], **नबे**[५८], **छयानवे**[५९], **सौ**[६०] (कहीं-कहीं **सै**)[६१], **एकोत्तर सै**[६२], **सहस**[६३] (कहीं-कहीं **सहस्र**[६४]), **लाख**[६५], **करोरि**[६६] (कहीं-कहीं **कोटि**)[६७], **अरबुद**[६८], **खरबुद**[६९], **नील**[७०], **संख**[७१] तथा **पदुम** ।[७२]

उल्लिखित पूर्णांकबोधको पर दृष्टिपात करने से यह सहज ही लक्षित किया जा सकता है कि जायसी ने संस्कृत के कुछ संख्यावाचक विशेषणों का (यथा—**सप्त, अष्ट, नव** तथा **कोटि का**) और म० भा० आ० भा० से प्रभावित संख्याओं का (यथा **दह**,

---

१. प० १५।५ २. प० १६।२ ३. प० ६७।८ ४. प० ५०२।८
५. प० १२।१ ६. प० ८१।८ ७. प० ४१।३ ८. अख० ७।५
९. आखि० २९।५ १०. प० ११५ ११. प० ४०।४ १२. प० २७२।५
१३ प० ३१३।३ १४. प० १४।४ १५. प० २१५।३ १६. प० ४१।८
१७. प० १७।७ १८. प० १६।५ १९. प० ३१२।४ २०. प० ३८३।३
२१. प० ५४।१ २२. प० ९३।४ २३. प० ४६८।१ २४. प० ३८३।६
२५. प० २६९।२ २६. प० ४४६।९ २७. प० ३८३।५ २८. प० २६।४
२९. प० ३८३।४ ३०. प० ३१२।३ ३१. प० ४।८ ३२. प० ३८३।१
३३. प० ३८३।६ ३४. प० ३८३।८ ३५. प० ३८३।७ ३६. प० ३८३।५
३७. प० ३८३।२ ३८. प० ३८३।४ ३९. प० ३८३।३ ४०. प० ३८३।१
४१. प० ३८३।६ ४२. प० ३८३।७ ४३. प० ३८३।५ ४४. प० ६२२।९
४५. प० २६४।६ ४६. प० ५२८।५ ४७. आखि० २७।४ ४८. प० ३८७।८
४९. प० २४।१ ५०. अख० ४२।१० ५१. प० २८४।४ ५२. प० २४१।३
५३. अख० ३८।३ ५४. प० ५१९।४ ५५. आखि० ४७।४ ५६. प० ५४९।९
५७. प० २६४।८ ५८. प० ५०५।२ ५९. प० २६४।६ ६०. प० २८३।३
६१. प० ३८५।७ ६२ प० २८४।५ ६३ प० ४९।२ ६४ प० १५६।६
६५ प० ८२।१ ६६ प० ३८५।९ ६७ प० २६४।६ ६८ प० ३८५।९
६९ प० ३८५।९ ७० प० ३६५।९ ७१. प० ३८५।९ ७२ प० ३८५।९

एगारह, इग्यारह आदि का) प्रयोग भी यत्र-तत्र किया है। अन्य प्रयुक्त सख्यावाचक विशेषण आ० भा० आ० भा० मे भी इन्ही रूपो मे प्रचलित है।

पूर्णाकबोधक विशेषणो के प्रयोग के सम्बन्ध मे एक अन्य उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यत्र-तत्र इनका प्रयोग प्रतीकात्मक अर्थ मे भी हुआ है,[1] जैसे—**दो** (इडा-पिगला, वायु-विन्दु, प्राण-रेत), **तीन** (इडा, पिगला तथा सुषुम्ना), **चार** (मन, बुद्धि, चित्त तथा अहकार), **सात** (सप्त प्राण, सप्तचक्र), **आठ** (आठ चक्र, योग के अष्टाग), **नौ** (नौ चक्र, नौ इन्द्रिय-द्वार), **दस** (दस इन्द्रियाँ), **ग्यारह** (दस इद्रियाँ और मन), **बारह** (आठ योगाग और अन्त करण चतुष्टय), **सोलह** (दस इन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रा तथा मन), **सत्रह** (दस इन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रा, मन और बुद्धि), **अठारह** (अट्ठारह सासारिक द्वन्द्व) आदि।

सयुक्त सख्याओ मे पूर्णाकबोधक विशेषणो का रूप किंचित् परिवर्तित हो गया है, यथा—एक>इक, एकु। जैसे—इग्यारह, एकुइस।

जायसी ने '**एकुइस**' (इक्कीस नही) का प्रयोग किया है जो अवधी की उच्चारण-प्रवृत्ति के अधिक निकट है। गुणवाचक विशेषण मे '**एक**' के स्थान पर '**अक**' का प्रयोग मिलता है—अकेल।[2]

दुइ>बा, ब, जैसे—बारह, बतिस। समासो मे '**दु**', '**दू**' तथा '**दो**' रूप भी मिलते है, यथा—**दुतिया**,[3] **दून**,[4] **दोसरि**[5]।

तीनि>ते, तें, जैसे—**तेरह, तेंतिस**। समास मे '**तिरि**' रूप भी मिलता है—**तिरिरेखा**।[6]

चारि> चौ,चौं,चौर, जैसे — **चौदह, चौंसठि , चौरासी**। समासो मे '**चौ**' रूप अधिक मिलता है — **चौगुन**,[7] **चौमुख**।[8]

पाँच>पन, पच, जैसे—**पन्द्रहा, पचीस**। समास मे '**पँच**' रूप भी मिलता है — **पँचतूरा**।[9]

छः> सो, स, छ, छया, जैसे — **सोरह, साठि, छतीस, छयानवे**। समासो मे '**छ**' '**षट**' तथा '**खट**' रूप भी मिलते है — **छपद**,[10] **षटखंड**,[11] **खटखंडा**।[12]

सात>सत, से, जैसे — सतरह, सैतालिस। समासो मे भी '**सत**' रूप मिलता है — **सतफेर**।[13]

आठ>अठ, जैसे — **अठारह, अठाइस**। समासो मे भी '**अठ**' रूप का प्रयोग हुआ है जैसे — **अठखंभा**।[14]

नौ — सयुक्त सख्याओ मे '**ओन**' (स० ऊन) जुडा है — **ओनइस, ओनतिस**।

अवशिष्ट सख्याओ के सम्बन्ध मे कोई उल्लेखनीय तथ्य नही मिलता है।

---

१. प०३१२।३१३ २ प० ६३२।८ ३ प० ३१२।६ ४ प० ३५२।३
५. प० ३०५।६ ६ प० १११।६ ७ प० ३५२।१ ८ प० १६४।५
९. प० ६३८।४ १० म०बा० २२।१० ११. प० १४।४ १२. प० ५०८।३
१३. प० २८६।७ १४. प० ३३०।१

नाप–तौल के वाचक विशेषणो मे **'टॉक'**[१] (वर्तमान पच्चीस सेर के लगभग) , **मन**[२] (चालीस सेर), **'रती'**[३] , **'तोला'**[४] तथा **'मॉसु'**[५] (माशा) का उल्लेख मिलता है ।

अपूर्णांकबोधक – आध,[६] **सवा,**[७] **अहुठ** ।[८]

आ– क्रमवाचक – पहिल,[९] **पहिलि,**[१०] **प्रथम,**[११] **दोसर,**[१२] **दोसरि,**[१३] **दूसर,**[१४] **तीसर,**[१५] **तीसरी,**[१६] **चौथ,**[१७] **पाँचवें,**[१८] **छठएँ,**[१९] **सतएँ,**[२०] **दसएँ,**[२१] **दसइँ**[२२] तथा **दसवँ** ।[२३]

तिथि – गणना के लिए कवि ने दो० ३८३ मे विविध सख्याओ – एक, दुइ आदि – का व्यवहार किया है । यत्र-तत्र 'दुइज', 'तीजि', 'पचमि' तथा 'चौदसि' उल्लिखित है ।

इ– आवृत्तिवाचक – दून,[२४] **दूना,**[२५] **चौगुन,**[२६] **चौगुना**[२७] , **सवाई** ।[२८] – न, – ना, –गुन, –गुना तथा –ई प्रत्यय स्पष्ट है ।

ई– **समुदायवाचक –** इस प्रकार के अधिकाश विशेषण पूर्णांकबोधको से ही बनाए गये है। रूप-रचना की दृष्टि से इनको तीन वर्गो मे रखा जा सकता है– (क) **'–उ'** या **'–ऊ'** युक्तरूप, ख –**'औ'** या –**'औं'** युक्त रूप तथा ग –**'हुँ'** या –**'हूँ'** युक्त रूप ।

(क)—**'उ'** या –**'ऊ'** युक्त रूप – **चारिउ,**[२९] **दोउ,**[३०] **दोऊ** ।[३१]

(ख) – **'औं'** या – **'औं'** युक्त रूप – **तीनौ,**[३२] **सातौ,**[३३] **आठौ,**[३४] **नवौ,**[३५] **बरहौं,**[३६] **चतुरदसौ,**[३७] **तीसौ,**[३८] **दूनौं,**[३९] **सातौं,**[४०] **नवौ,**[४१] **दसौं**[४२] तथा **बतीसौं** ।[४३]

(ग) **'हुँ'** या **'हूँ'** युक्त रूप – **दुहुँ,**[४४] **चारिहुँ,**[४५] **चहुँ,**[४६] **दुहूँ,**[४७] **चहूँ,**[४८] **छहूँ** ।[४९]

समूहवाची सख्याओ को व्यक्त करने के लिए जायसी ने कुछ विशिष्ट शब्दो का भी

---

१ प० ५२४।६ २. प० १३३।८ ३. प० ३५७।६ ४ प० ३८४।८
५. प० ३८४।८ ६ प० ६१६।८ ७. प० २६४।७ ८. प० १२१।७
९ अख० १७।२ १०. प० ६३०।७ ११. प० ५६०।४ १२. प० २५५।२
१३. प० ३०५।६ १४. अख० १।४ १५. अख० १७।४ १६. आखि० २१।२
१७. अख० १७।५ १८. अख० १७।६ १९. अख० १७।७ २०. प० १५८।१
२१. प० १९३।५ २२. प० २५५।६ २३. प० १९३।५ २४. प० ३५२।३
२५. प० १७५।५ २६. प० ३५२।१ २७. प० १०८।६ २८. प० १६।७
२९. प० १३।१ ३०. प० ११।६ ३१ प० १७।३ ३२. प० २०५।४
३३. प० २८६।७ ३४. प० ३८२।९ ३५. प० ३७।१ ३६. प० ९१।३
३७. प० २२।६ ३८. प० ३८२।९ ३९. प० ४४५।६ ४०. प० २५।८
४१. प० ४२।१ ४२. प० ४२।१ ४३. प० ४९।८ ४४. प० १९।४
४५. प० २९१।२ ४६. प० ३१।४ ४७. प० २३६।३ ४८. प० ३१।८
४९. प० ३३४।९

व्यवहार किया है। ऐसे प्रमुख शब्द इस प्रकार है – **जुग,**[1] **जोरा,**[2] **जोरी,**[3] **चौक,**[4] **गंडा**[5] तथा **सैकरा**[6] आदि।

संख्यावाची समास - सम्बन्धी शब्द : जायसी ने समास-रचना के लिए **'बेर'** शब्द का प्रयोग किया है, जैसे –

नइ नइ करै जोहार, मुहमद निति उठि पाँच **बेर**।[7]

उ – **प्रत्येकबोधक** – इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले विशेषणो के प्रयोग जायसी-काव्य मे अत्यल्प है। 'प्रति' से बनने वाले रूपो का प्रयोग नही मिलता है। 'एक' से बनने वाले रूपो का एक उदाहरण प्रस्तुत है –

एक एक बोल अरथ चौगुना।[8]

ख– **अनिश्चित सख्यावाचक विशेषण** – इस वर्ग मे कुछ विशेषण तो अनिश्चित सख्या के द्योतक है और कुछ निश्चित संख्यावाचक होते हुए भी अनिश्चित रूप मे प्रयुक्त हुए है।

अ– **अनिश्चित सख्याद्योतक** – प्रमुख प्रयुक्त रूप इस प्रकार है –

अनबन – सीझा **अनबन** भाँति गरासू।[9]
अनेग – औ अस गुनी सँवारइ जो गुन करइ **अनेग**।[10]
और – **और** खजहजा आव न नाऊँ।[11]
औरु – वै तौ उडे **औरु** बन ताका।[12]
नाना – बिरिछ एक लागी दुइ डारा। एकहि ते **नाना** परकारा।[13]
बहु – कीन्हेसि **बहु** ओषद बहु रोगू।[14]
बहुत – **बहुत** फूल फूली घनबेली।[15]
बहुतइ – कीन्हेसि **बहुतइ** नग निरमरे।[16]
बहुते – **बहुते** दिनन्ह बार भै पूजी।[17]
बहुल – तहवाँ **बहुल** पखि खरबरही।[18]
सब – हहिं गजमोति भरी **सब** सीपी।[19]
सबै – तरिवर **सबै** मलैगिरि लाए।[20]
सकल – **सकल** देवता देखै लागे।[21]

---

१. प० ३८।६ २. प० १०३।६ ३. प० ११२।२ ४. प० १०७।१
५. प० ४२५।८ ६. अख० ४३।२ ७. अख० २५।११ ८. प० १०८।६
९. प० ४४५।२ १०. प० १०।९ ११. प० २८।६ १२. प० ६९।६
१३. अख० १४।२ १४. प० २।७ १५. प० ३५।२ १६. प० २।३
१७. प० ३९१।२ १८. प० ७०।२ १९. प० ७९।३ २०. प० २७।३
२१. प० १९०।२

आ– **अनिश्चयवत् प्रयुक्त निश्चित सख्यावाचक रूप–** इस प्रकार के विशेषण तीन वर्गो मे विभाजित किए जा सकते है –

क – अनिश्चयबोधक सामान्य पूर्णाक, ख – अनिश्चयबोधक 'एक' युक्त पूर्णाक तथा **ग– अनिश्चयबोधक दोहरे पूर्णांक ।**

क – अनिश्चयबोधक सामान्य पूर्णांक –

एक – सबइ कीन्ह पल **एक** ।[1]

चारि – अउर जो होइ सो बाउर अधा । दिन दुइ **चारि** मरइ करि धधा ।[2]

चारी – ऐ रानी मन देखु बिचारी । एहि नैहर रहना दिन **चारी** ।[3]

दस – मुख कह आन पेट बस आना । तेहि औगुन **दस** हाट बिकाना ।[4]

लाख – मानुस साज **लाख** मन साजा । साजा बिधि सोई पै बाजा ।[5]

कोटि – जब लगि गुरु मै अहा न चीन्हा । **कोटि** अँतरपट बिच हुत दीन्हा ।[6]

ख – अनिश्चयबोधक 'एक' युक्त पूर्णाक – लाख **चारि एक** भरे पेटारे ।[7]

कही–कही कवि ने 'एक' के स्थान पर केवल 'क' का प्रयोग किया है –

हम तुम्ह **घरिक** करहि बिसरामू ।[8]

यत्र–तत्र 'एक' का सधियुक्त प्रयोग भी मिलता है, जैसे—

देवसेक आइ हाथ पै मेला ।[9] **मासेक** लाग चलत तेहि बाटा ।[10]

ग– अनिश्चयबोधक दोहरे पूर्णाक – ऐसे प्रयोग अत्यल्प है –

दिन **दस पाँच** तहाँ जो भए । राजा कतहुँ अहेरे गए ।[11]

परिमाणबोधक विशेषण – व्युत्पत्ति की दृष्टि से ये दो प्रकार के है – १– **सर्वनाम से निर्मित** २– **अन्य शब्दो से निर्मित ।** प्रथम प्रकार के प्रयोग सार्वनामिक विशेषणो के अन्तर्गत विवेचित ह, यहाँ अन्य शब्दो से निर्मित परिमाणबोधक विशेषणो के जायसी-कृत प्रमुख प्रयोग सकलित है –

अखिल – लगतै झकोला **अखिल** दुख बाजा, भेट न पुनि महतारी रे ।[12]

अगाह – तेहि सो **अगाह** बिथा तुम्ह पूरी ।[13]

अधिक – पुनि महु चुवै सो **अधिक** मिठासू ।[14]

अपारा – परा सो पेम समुद **अपारा** ।[15]

अलप – खीर खाँड किछु **अलप** अहारू ।[16]

---

१. प० २।८   २. प० ७।७   ३. प० ६०।३   ४. प० ८५।६
५. प० २७४।७   ६. प० २४५।१   ७. प० ३८५।४   ८. प० ५६७।२
९ प० १७६।५   १० प० १४०।१   ११ प० ८३।१   १२ म० बा० १५।६
१३. प० २५६।६   १४. प० २८।५   १५. प० ११९।३   १६. प० ४६५।६

धनी – कीन्हेसि सपति बिपति पुनि **धनी** ।[१]
थोर – गाँठ साँठि सुठि **थोर** ।[२]
थोरा – **थोरा** दान बहुत पुनि किया ।[३]
थोरइ थोरा – चाखि पियहु मधु **थोरइ थोरा** ।[४]
बहु – **बहु** आरति **बहु** चोप ।[५]
बहुत – **बहुत** दुख पावा ।[६]
बहुतेरा – दीन्हेसि रहस कोड **बहुतेरा** ।[७]
भारी – कठिन पेम बिरहा दुख **भारी** ।[८]
सकल – **सकल** समुँद जानहुँ भा ठाढा ।[९]
सगरौ – भा अनद **सगरौ** कबिलासा ।[१०]
सिगरी – भइ जहान **सिगरी** दुनिआई ।[११]
समूँचे – छागर बहुत **समूँचे** धरे सरागिन्ह भूँजि ।[१२]

विशेषण का निर्धारणार्थक प्रयोग : अवधी मे तुलना का भाव प्रकट करने के लिए विशेषणो का कोई विशेष रूप प्रचलित नही है । जायसी ने दो वस्तुओ, व्यक्तियो या भावो की तुलना करने समय तुलनीय सज्ञा अथवा सर्वनाम-पद के पश्चात् अपादान के कारक-चिह्न '**तें**', '**सो**, '**सौं**' अथवा '**चाहि**' का प्रयोग किया है । कही-कही '**तें अधिक**' अथवा '**चाहि अधिक**' का प्रयोग भी उपलब्ध होता है, यथा –

तै – धुव **ते** ऊँच पेम धुव उवा ।[१३]
सो~सौं – मन **सो** अधिक गँगन सौ ऊँचा ।[१४]
चाहि – गाजहि **चाहि** गरुव दुख, दुखी जान जेहि बाज ।[१५]
तें अधिक – जग महँ कठिन खरग कै धारा । तेहि **तें अधिक** बिरह कै झारा ।[१६]
चाहि अधिक – लैनू **चाहि अधिक** कोवरी ।[१७]

अनेक वस्तुओ, व्यक्तियो या भावो की तुलना के लिए कवि ने '**अति**', '**परम**' तथा '**महा**' आदि विशेषणो का प्रयोग किया है ।

विशेषणो के विशिष्ट प्रयोग – इस वर्ग के अन्तर्गत ऐसे प्रयोगो का उल्लेख है जिनमे विशेषण का प्रयोग या तो सज्ञावत् हुआ है या सर्वनामवत् । उदाहरणो से यह स्पष्ट हो सकेगा –

---

१. प० ३।७ २ प० ७४।६ ३ प० ३६३।६ ४ प० ३१६।३
५ प० २०१।८ ६ प० २०८।७ ७. आखि० २।५ ८ प० १७८।२
९. प० १५५।२ १०. प० २७५।२ ११ प० १५।३ १२. प० ५४५।८
१३. प० १२१।७ १४. प० ५५२।३ १५. प० ५८०।९ १६. प० १५३।५
१७. प० ५४३।४

सज्ञावत् प्रयोग – क– जोबन मरम जान पै **बूढा** ।[1]

ख– कया क मरम जान पै **रोगी, भोगी** रहइ निचित ।[2]

ग– अउर जो दीन्हेसि रतन अमोला । ताकर मरम न जानइ **भोला** ।[3]

घ– अबहूँ जागु **अयाने,** होत आव निसु भोर ।[4]

उक्त पक्तियो मे 'बूढा', 'रोगी', 'भोला' तथा 'अयाने' शब्द विशेषण होते हुए भी सज्ञा के समान प्रयुक्त है ।

सर्वनामवत् प्रयोग – च– **दूनौं** मिली रहहु एक सगा ।[5]

छ– **सातौं** गढि काढी दे टाँकी ।[6]

ज– **चारिउ** एक मतइँ एक बाता ।[7] झ– एक कहत **सहसक** दस धाए ।[8]

उल्लिखित पक्तियो मे 'चारिउ' तथा 'सहसक' सख्यावाचक विशेषणो का प्रयोग सर्वनामवत् हुआ है ।

क्रिया

धातु क्रिया के रूप की दृष्टि से जायसी द्वारा प्रयुक्त क्रियाओ के मूल रूप मे कोई नवीनता नही है । अर्थ की दृष्टि से मूल रूप या तो कर्तृवाच्य है या कर्मवाच्य । कर्मवाच्य रूप अकर्मक है तथा कर्तृवाच्य सकर्मक और अकर्मक दोनो प्रकार के है । क्रियाओ के मूल रूप साधारण तथा प्रेरणार्थक दो प्रकार के है । उद्गम की दृष्टि से जायसी-काव्य मे उपलब्ध क्रिया-पदो को निम्नलिखित वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है **(क) सस्कृत से प्रभावित रूप,** (ख) **अपभ्रश से प्रभावित रूप,** (ग) **जनभाषा से प्रभावित रूप तथा** (घ) **अरबी-फारसी से प्रभावित रूप ।**

(क) **सस्कृत से प्रभावित रूप :** जायसी-काव्य मे सस्कृत क्रियाओ के मूल रूप से मिलते-जुलते अनेक क्रियापद प्रयुक्त है, जैसे –

सबइ **नास्ति** वह अस्थिर अइस साज जेहि केर ।[9]

आदम हौवा कहँ **सृजा** लेइ घाला कैलास ।[10]

उल्लिखित पक्तियो मे **'नास्ति'** (न+अस्ति) तथा **'सृजा'** के धातु-रूप सम्बद्ध सस्कृत क्रियाओ के मूल रूपो के समान है । इस प्रकार के प्रयोग अत्यल्प है ।

(ख) **अपभ्रश से प्रभावित रूप :** अपभ्रश के द्वित्व-वर्ण के प्रयोग की प्रवृत्ति कतिपय क्रियापदो मे मिलती है, यथा —

बीस सहस **घुम्मरहिं** निसाना ।[11] सोई जानहि बापुरे जो सिर करहि **कलप्प** ।[12]

---

१. प० ६।६ २. प० ६।८ ३. प० ६।१ ४. प० १२४।८
५. प० ४४५।६ ६. प० ५५२।५ ७. प० १२।६ ८. प० २७०।३
९. प० ६।८ १०. अख० ६।८ ११. प० ५०५।४ १२. प० १२३।६

सुक्ख सुहेला **उग्गवइ** दुक्ख झरै जेउँ मेहु ।[१]

उक्त 'घुम्मरहिं', 'कलप्प' तथा 'उग्गवइ' क्रियापदो मे कोई सजीवता नही है । ऐसे प्रयोग भी अत्यन्त सीमित है ।

(ग) जनभाषा से प्रभावित रूप · जनभाषा से **शब्दचयन** करने मे जायसी अन्य कवियो की अपेक्षा अधिक उदार रहे है, अत इस वर्ग के क्रियापद भी उनकी कविता मे **उल्लेखनीय** मात्रा मे प्रयुक्त मिलते है, जैसे निम्नलिखित पक्तियो मे 'परहेलिउँ', 'झौकारे', 'थेघा', 'फेरा' तथा'निचोवा' आदि क्रियापद –

तेहि रिसि हौ **परहेलिउँ** निगड रोस किअ नाहँ ।[२] औ बन मिरिग रोझ **झौंकारे** ।[३]
गगन स्याम भै भार न **थेंघा** ।[४] सैति बिरोरि छाछि कै **फेरा** ।[५]
कोई मुख अम्रित आनि **निचोवा** ।[६]

(घ) अरबी-फारसी से प्रभावित रूप – कुछ क्रियापदो पर अरबी-फारसी की धातुओ का प्रभाव स्पष्ट है, यथा निम्नलिखित पक्तियो मे 'नराजी', 'मुस्ताई', 'तलफै', 'फरमाए' तथा फरियाउब' क्रियापद –

उठी हिलोर जो चारह **नराजी** ।[७] पथिक कहाँ कहाँ **सुस्ताई** ।[८]
भइउँ मीन तन **तलफै** लागा ।[९] पुनि ईसराफील **फरमाए** ।[१०]
धरम पाप **फरियाउब** गुन औगुन सब दोख ।[११]

नामधातु – जायसी-काव्य मे प्राप्त इस प्रकार के रूप सज्ञा अथवा विशेषण से बने है, यथा– **सज्ञा से बने रूप** – अरथाए,[१२] अँकूरा,[१३] काँधा,[१४] उपकरई,[१५] गरबाना,[१६] बिरोधा,[१७] सँकाना,[१८] थहाए,[१९] दुखवइ,[२०] लजाना[२१] तथा कोहाने[२२] आदि ।

विशेषण से बने रूप – पिअराई,[२३] उँचावा,[२४] करुआने[२५] तथा बुढाइ[२६] आदि ।

अनुकरणात्मक धातु – अनुकरणवाची शब्दो से बनी कुछ क्रियाएँ भी प्राप्त होती है, यथा – कुहकहि,[२७] करबरही,[२८] खरभरही,[२९] घहराही,[३०] छौके,[३१] धरामसा,[३२] दलमलहि,[३३] कलमले[३४] तथा हुमुकि[३५] आदि ।

---

१. प० १७५।६ २. प० ८६।६ ३. प० ५०८।३ ४. प० ५०८।६
५. प० ४५६।४ ६. प० २४६।३ ७. प० १४७।५ ८. प० ५७४।३
९. प० ६४३।५ १०. आखि० १६।१ ११ आखि० २६।८ १२. प० ५२।२
१३. प० ७०।३ १४. प० ४६१।५ १५. प० ४२१।३ १६. प० ३८६।१
१७. प० २६६।१ १८. प० ४६५।२ १९. प० ५१३।३ २०. प० १५।१
२१. प० ३०२।२ २२. प० ६१०।२ २३. प० ८०।६ २४. प० ३७३।४
२५. प० ६२०।२ २६. प० ५८६।५ २७. प० २६।७ २८. प० २६।३
२९. प० ७०।२ ३०. प० ५१६।७ ३१ प० ५४६।८ ३२. प० ४६७।६
३३. प० ६१३।८ ३४. प० ६२६।१ ३५. प० ६३५।७

प्रेरणार्थक – हिन्दी मे सामान्यत प्रेरणार्थक क्रियाओ की रचना मूल धातु मे –आ और – वा प्रत्ययो के योग से की जाती है। अकर्मक धातु मे – आ जोडने पर धातु सकर्मक बनती है, फिर इस सकर्मक धातु मे – वा जोडने से प्रेरणार्थक रूप बनता है। सकर्मक धातु मे प्राय सीधे ही – वा जोडने पर प्रेरणार्थक धातु बनती है। जायसी ने प्रेरणार्थक की रूप-रचना मे अधिकाशत इसी पद्धति का सहारा लिया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है – दौराए,[1] जगावहिं,[2] जमावसि,[3] पहुँचावहि[4] तथा सुनावहु[5] आदि।

प्रेरणार्थक रूप बनाने के लिए क्रिया के मूल रूप के प्रथम स्वर को, यदि वह दीर्घ हो, (विशेषत आ, ई तथा ऊ) प्राय ह्रस्व कर दिया गया है – यथा – मँगावै,[6] पिआइउँ[7] तथा छुवावहिं[8] आदि। किन्तु 'ए' तथा 'ओ' स्वर प्राय सुरक्षित रहे है, जैसे –

मेरावै,[9] देखराए,[10] धोवाई[11] तथा बोलावा[12] आदि। ऐसे स्थलो पर उच्चरित रूप ह्रस्व **'ए'** तथा ह्रस्व **'ओ'** है किन्तु लिखित रूप 'ए' तथा 'ओ' है। कही-कही प्रेरणार्थक बनाने के लिए – आर, – रा या–राव प्रत्यय का भी योग किया गया है, यथा – बैसारा,[13] देखराई,[14] देखरावहि[15] आदि।

'खा' धातु का प्रेरणार्थक उक्त रूपो से भिन्न है – सबहि **खियावइ** आपु न खाई।[16]

उल्लिखित विविध प्रकार की धातुओ के रूप तीनो कालो, दोनो वचनो तथा दोनो लिंगो मे मिलते है।

काल-रचना

जायसी-काव्य मे दो प्रकार की काल-रचना मिलती है – तिडन्तीयकाल तथा कृदन्तीयकाल। तिडन्त रूपो से तीन मूल काल बने है – वर्तमान निश्चयार्थ, भविष्य निश्चयार्थ और आज्ञार्थ। काल-रचना मे प्रयुक्त होने वाले कृदन्तीय रूप है – वर्तमान कालिक कृदन्त, भूतकालिक कृदन्त और भूत सभावनार्थ। कृदन्ती रूप विशेषण के समान भी प्रयुक्त है।

मूल काल

वर्तमान निश्चयार्थ–जायसी-काव्य मे प्राप्त रूपो मे निम्नलिखित प्रत्यय मुख्यतया प्रयुक्त है –

---

१. प० ८०।१ २. प० ३०३।७ ३. प० ४०८।३ ४. प० ४६।६
५. प० ७६।७ ६. प० ८०।८ ७. प० ५८७।७ ८ प० ५८०।४
९. प० ४०६।३ १०. प० ५७६।१ ११. प० ५६२।३ १२. प० ४६०।१
१३. प० ४७२।७ १४. प० ३०३।२ १५. प० ५६२।६ १६. प० ५।५

एकवचन	बहुवचन
उ० पु० – उँ,–ऊँ,–एउँ,–औं,–हुँ	–हिं
म० पु० – इ, –ए, –ऐ, –सि, –सी, –हि	–हु
अ० पु० – इ, –ई, –उ, –एई, –ऐ, –ए, –हि	–इँ, –ऐं, –हिं,–हीं

प्रत्येक से सम्बद्ध प्रयोग उदाहरणार्थ प्रस्तुत है –

उत्तम पुरुष . एकवचन – प्रमुख रूप से –उँ तथा – **औं** का प्रयोग मिलता है। अन्य रूप विरल है –

– **उँ** – **देखउँ** जहाँ न देखउँ आना।[१]

–**ऊँ**– (छन्दोऽनुरोध से – **उँ** का दीर्घ रूप) – पिउ आएसु माँथे पर **लेऊँ**।[२]

–**एउँ**– (छन्दोऽनुरोध से – **उँ** का परिवर्तित रूप)–

ओहि न मोरि कछु आसा हो ओहि आस **करेउँ**।[३]

–**औं**–(अनुलेखन–पद्धति के कारण धातु के अन्त्य स्वर **अ**+**उँ** का लिपिगत रूप)–

सँवरौं आदि एक करतारू।[४]

–**हुँ** –जो तुम्ह चाहहु सो करहु नहि **जानहुँ** भल मद।[५]

बहुवचन – **हि** – राजा कर भल **मार्नाहि** भाई। जेइ हम कहँ यह भुम्मि देखाई।[६]

मध्यम पुरुष : एकवचन – सर्वाधिक प्रयुक्त प्रत्यय – **सि** है। अन्य प्रत्ययो का प्रयोग सीमित है। –**इ** तथा –**ए** के प्रयोग विरल है।

–**इ**– (अन्त्य स्वर – सकोच के कारण निर्मित) –

मोहि तजि **सँवरि** जो ओहि सरसि कौन लाभु तोहि होइ।[७]

–**ए**–(छन्दोऽनुरोध से –**ऐ** का परिवर्तित रूप)–

तूँ जल ऊपर धरती राखे। जगत भार लै भार न **भाखे**।[८]

–**ऐ**– दूरि गौन साँभर जहँ ताई तू बुडहा भा **डोलै** रे।[९]

–**सि**– नैन सो **देखसि पूँछसि** काहा।[१०]

–**सी**– (छन्दोऽनुरोध से –**सि** का दीर्घ रूप)–

काह अवनि पाएँ अस परसी। करमि बिटड भरम नहि **करसी**।[११]

---

१. प० ३२५।३ २. प० ३१६।२ ३. प० २१०।८ ४. प० १।१
५. प० ३१६।८ ६. प० ३३०।३ ७. प० २०६।६ ८. प० ४०७।२
९. म० बा० २।५ १०. प० २१०।२ ११. प० २६७।५

–हि– **कहहि** सो दीप पतँग कै मारे[१] । यहाँ कर्त्ता 'तूँ' लुप्त है ।

आखिरी कलाम मे एक स्थान पर **–रि** प्रत्यय का योग मिलता है, जो निश्चय ही पाठ की अशुद्धि है । शुद्ध रूप **–इ** अथवा **–सि** हो सकता है–

जो दुख **चहरि** उमत का दीन्हा । सो सब मै अपने सिर लीन्हा ।[२]

बहुवचन– –हु– तुम्ह **जानहु** आवै पिय साजा ।[३]

उक्त रूप आदरार्थ एकवचन के साथ भी प्रयुक्त है –

अैस बसत तुम्हहि पै **खेलहु** । रकत पराएँ सेदुर मेलहु ।[४]

अन्य पुरुष : एकवचन– अधिकतर –इ तथा –हि प्रत्ययों का योग हुआ है –

–इ– सबहि **देइ** नित घट न भँडारू ।[५]

–ई– (छन्दोऽनुरोध से **–इ** का दीर्घ रूप)–

भोग भुगुति बहु भाँति उपाई । सबहि खियावइ आपु न **खाई** ।[६]

–एई– (छन्दोऽनुरोध से **–इ** के स्थान पर प्रयुक्त)–

पुनि अजन दुहुँ नैन **करेई** । पुनि कानन्ह कुडल **पहिरेई** ।[७]

–ऐ–(अनुलेखन-पद्धति के कारण अ+इ का लिपिगत रूप) –

मलै समीर सोहाई छाहाँ । जेठ जाड लागै तेहि माहाँ ।[८]

– ए – (छन्दोऽनुरोध से–**ऐ** के स्थान पर प्रयुक्त)–

गढपति उतरि लरै नहि **धाए** । हाथ धरे गढ हाथ पराए ।[९]

– उ – भँवर न **देखु** केतु महँ काँटा ।[१०]

– हि – फेरि फेरि नित **पहिरहि** जैस जैस मन भाउ ।[११]

बहुवचन – अधिक प्रयुक्त प्रत्यय – **ऐ** तथा – **हि** है—

– इँ – मरि **गँधाइ** साँस नहि आवै ।[१२]

– ऐं – (अनुलेखन–पद्धति के कारण धातु के अन्त्य स्वर– **अइँ** का योग)—

धरती सरग **जरे** तेहि झारा ।[१३]

– हिं – अउर जो **देहि** जगत महँ सो सब ताकर दीन्ह ।[१४]

---

१. प० ६४।२ २. आखि० ३७।७ ३. प० २८१।४ ४. प० २२६।१
५. प० ५।१ ६. प० ५।५ ७. प० २९६।३ ८. प० २७।४
९. प० ५२१।५ १०. प० २३४।२ ११. प० ३२६।६ १२. आखि० १७।३
१३. प० ३६६।१ १४. प० ५।६

– ही – (छन्दोऽनुरोध से **–हि** के स्थान मे प्रयुक्त)—

कीन्हेसि साउज आरन **रहही** । कीन्हेसि पखि उडहि जहँ **चहही** ।[१]

एक स्थान पर – **हि** प्रत्यय का योग मिलता है—

काढे अधर डाभ सौ चीरी । रुहिर चुवै जौ **खडहि** बीरी ।[२]

– हिं प्रत्यय का चन्द्रबिन्दु मुद्रण की असावधानी से रह गया है । डॉ० गुप्त द्वारा 'पदमावत' के पुनर्सम्पादित सस्करण (सन् १९६३ ई०) मे चन्द्रबिन्दु प्रयुक्त है ।

वर्तमान निश्चयार्थ को व्यक्त करने के लिए उपर्युक्त रूपो के अतिरिक्त अन्य दो प्रकार के प्रयोग भी प्राप्त होते है—(क) धातु के मूल रूप (Root Form) का प्रयोग तथा (ख) वर्तमानकालिक कृदन्त का प्रयोग। क–धातु के मूल रूप का प्रयोग अन्य पुरुष एकवचन तथा बहुवचन मे हुआ है, यथा—

अ० पु० एकवचन– लाभ न **देख** न देखै छीजा ।[३]

कही-कही छन्दोऽनुरोध से धातु के मूल रूप का अन्त्य स्वर दीर्घ हो गया है, जैसे–

पिउ पिउ लागै करै पपीहा । तुही तुही कह गुडरू **खीहा** ।[४]

अ० पु० बहुवचन— तब वेइ **सीख** जो होइ मग अैयत ।[५]

(ख) वर्तमानकालिक कृदन्त का प्रयोग तीनो पुरुषो तथा दोनो वचनो मे हुआ है । अधिकाशत **–त** प्रत्यय का योग मिलता है । स्त्रीलिग मे यत्र-तत्र **–ति** प्रत्यय का योग भी प्राप्त होता है । विस्तृत विवेचन आगे **वर्तमानकालिक कृदन्त** के अन्तर्गत किया गया है ।

वर्तमान संभावनार्थ—वर्तमान सभावनार्थ की रचना के लिए वर्तमान निश्चयार्थ के रूपो का ही प्रयोग किया गया है । प्रत्यय–विधान की दृष्टि से यह काल वर्तमान निश्चयार्थ के समान ही है । सभावना व्यक्त करने के लिए कही-कही **'जौ'** अथवा **जौं** अव्ययो का उपयोग किया गया है—

सतुरु साल तब नेवरै सोई । **जौ** घर आव सतुरु कै जोई ।[६]
सात सरग **जौं** कागर करई ।[७] **जौं** तस करसि तोर भावता ।[८]

यत्र–तत्र अव्ययरहित प्रयोग भी है— **चढै तो परै जगत महँ दोलू** ।[९]

ऐसे स्थलो पर सभावनार्थ सकेतित है ।

---

१ प० २।५ २. प० ४७६।४ ३. प० ३२०।६ ४. प० २९।४
५. प० ४६।७ ६. प० ५८४।३ ७. प० १०।२ ८. प० ५३४।७
९ प० ४९०।४

जायसी–काव्य मे इस काल के प्रयोगो की सख्या अधिक नही है ।

भविष्य निश्चयार्थ—इसमे मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रत्यय प्रयुक्त है—

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	–इहौं,–उँ,–ऊँ – उबि, –औ,–ब,–बेउँ,–हुँ	–इब,–एब,–उब, –ब,–बा,–हिं
म० पु०	–एब,–ब,–बी,–सि,–हु	इहौ,–उब,–औ,–बेहु, -हू
अ० पु०	–इ,–ई,–इहि,–इही, –इहै,–ऐ,–ब,–हि	–ई,–ईहि,–इही,–इअहि, –इहै,–ऐं,–ऐहै,–ब,–बा,–हि,–ही ।

प्रत्येक से सम्बद्ध प्रयोग उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

उत्तम पुरुष : एकवचन – प्रमुख प्रयुक्त प्रत्यय–**इहौं** तथा–**ब** है—

–**इहौं** – करिहौ सेव **पखरिहौं** काया ।[1]

–**उँ** – होइ नल नील आजु हौ, **देउँ** समुंद महँ मेड ।[2]

– **ऊँ** – हौ कबिलास काह लै **करऊँ** ।[3]

– **उबि** – घर पैठत पूछब एहि हारू । कौनु उतर **पाउबि** पैसारू ।[4]

– **औं** – हौं जेहि देवस पदुमिनी **पावौ** । तोहि रावौ चितउर **बैसावौ** ।[5]

– **ब** – घर कैसे **पैठब** मै छूँछै ।[6]

– **बेउँ** – कौन उतर **देबेउँ** तिन्ह पूछे ।[7]

– **हुँ** – जीव काढि भुइँ धरौ लिलाटू । ओहि कहँ **देहुँ** हिए महँ पाटू ।[8]

– सर्वाधिक प्रयुक्त प्रत्यय – **ब** है ।

– **इब** – हमहूँ साथ **होइब** जोगिनी ।[9]

– **एब** – हरदि उतारि **चढ़ाएब** रगू ।[10]

– **उब** – पुनि हम **आउब** आनि उठाउब लै जाउब घरबारा रे ।[11]

– **ब** – पुनि सासुर हम **गौनब** काली ।[12]

– **बा** (छन्दोऽनुरोध से- ब का दीर्घ रूप)- का हम कहब उतर का **देबा** ।[13]

– **हिं** – जौ सो बोलावहि पाउ सो हम तहँ **चलहि** लिलाट ।[14]

पुरुष : एकवचन – प्रमुख प्रयुक्त प्रत्यय – **ब** है ।

– **एब** – कैसे **खाएब** कुरकुटा रूखा ।[15]

– **ब** – तूँ पुनि **मरब** होब जरि भुई ।[16]

– **बी** (छन्द-सुविधार्थ – **ब** के स्थान मे प्रयुक्त)–

---

१. प० १३।५ २. प० ६२६।८ ३. प० २११।५ ४. प० ६४।४
५. प० ४८८।४ ६ प० ७५।७ ७. प० ७५।७ ८. प० २४६।३
९. प० १३।२ १०. प० २९२।३ ११. म०बा० १७।१४ १२. प० ६०।५
१३. आखि० २६।७ १४. प० २३७।९ १५. प० १२९।७ १६. प० ४५५।७

सेवा करु जो जियनि तोहि फाबी । नाहि तौ फेरि भाँग होइ **जाबी** ।[१]

– **सि** – चलहि सूर दिन अथवै जहाँ । ससि निरमल तै **पावसि** तहाँ ।[२]

– **हु** – चकई बिछुरि पुकारै कहाँ मिलहु हो नाँह ।[३]

बहुवचन – अधिक प्रयोग नही मिलते । प्रयुक्त प्रत्ययो के उदाहरण इस प्रकार है –

– **इहौ** – टोइ टोइ भुइँ पाँव उठाओ नाहि तो **परिहौ** खाले रे ।[४]

– **उब** – मोल न **पाउब** जहाँ बेसाहा ।[५]

– **औ** – यह तौ चाल्ह न लागै कोहू । काह **कहौ** जौ देखहु रोहू ।[६]

– **बेहु** – कहाँ मीत तुम्ह भूलेहु औ **जाबेहु** केहि घाट ।[७]

– **हू** – सो कै चलहु पार जो उतरहु न त पाछे **पछिताहू** रे ।[८]

अन्य पुरुष : एकवचन – इ – सबई मारि मुहम्मद **भूँजि** अढतिया राज ।[९]

– **ई** – आप (हि) आप आइ कै **परी** । क्वाउ न क्वाउ क धरहरि **करी** ।[१०]

– **इहि** – कैसे नीद **परिहि** भुइँ माहाँ ।[११]

– **इही** – तासो प्रीति पेट भरि **करिही** जो ओहि के मन भाई रे ।[१२]

– **इहै** – अस गुनवत नाहि भल सुअटा बाउर **करिहै** काहु ।[१३]

– **ऐ**– तेहि के जरत **उठै** बज्रागी ।[१४]

– **ब** – तैसि गाँठ पिय **जोरब** जरम न होइहि छूटि ।[१५]

– **हि** – हँसि हँसि कत बात जौ **पूँछहि** रोइ रोइ उत्तर पाई रे ।[१६]

बहुवचन – **ई** – जबहि अत कर परलौ **आई** । धरमी लोग रहै न पाई ।[१७]

– **इँहि** – उठिहै पडित वेद पुराना । दत्त सत्त दोउ **करिँहि** पयाना ।[१८]

– **इहीं** – बहुतक नरक कुड माँ **पड़िही** । बहुतक रकत पी माँ **पडिहीं** ।[१९]

– **इअँहि** – धरति सरग अब होइ मेरावा । **भरिअँहि** पोखर ताल तलावा ।[२०]

– **इहैं** – ये सब ही **भरिहैं** पुनि साखी ।[२१]

– **एँ** – ओनै मेघ भरि उठिहै पानी । गरजि गरजि **बरसैं** अतिवानी ।[२२]

– **ऐहै** – नदी नार सब **जहैं** पाटी ।[२३]

– **ब** – घर पैठत **पूँछब** एहि हारू ।[२४]

– **बा** – जो पै हमसे लेखा **लेबा** ।[२५]

– **हिं** – अबहुँ कि घरी चिनगि तेहि **छूटहिं** । जरि पहार पाहन सब फूटहि ।[२६]

– **हीं** – सासु ननद बोलिन्ह जिउ **लेहीं** ।[२७]

---

१ प० ४६२।७ २. प० २२८।५ ३. प० ६२।८ ४. म० बा० ११।४
५. प० १२८।३ ६. प० १४८।२ ७ प० ३६१।८ ८. म०बा० १४।१२
९. आखि० १४।९ १०. आखि०४३।४ ११. प० १२९।५ १२. म० बा० १३।९
१३. प० ८२।६ १४ प० २०५।४ १५. प० २८१।९ १६. म० बा० १३।८
१७. आखि० १४।१ १८ आखि० १४।४ १९. आखि० २८।६ २०. प० ४२५।५
२१. प० १३०।४ २२ आखि० १८।२ २३. आखि० १९।५ २४ प० ६४।४
२५. आखि० २६।७ २६. प० २०५।५ २७ प० ६०।७

उपर्युक्त रूपो के अतिरिक्त धातु के मूल रूप का प्रयोग भी भविष्य निश्चयार्थ के अर्थ मे हुआ है। मूल रूप का प्रयोग उत्तम पुरुष एकवचन मे मिलता है, यथा——

उत्तम पुरुष : एकवचन—हौ खेला धौलागिरि गोरा। टरौ न टारा बान न **मोरा**।[१]

छन्द–सुविधार्थ 'मोर' धातु का अन्त्य स्वर दीर्घ हो गया है।

अन्य पुरुष : एकवचन —फूलन्ह भरी अैस केहि जोगू। को तेहि पौढि **मान** सुख भोगू।[२]

आज्ञार्थ इस काल के रूप अन्य पुरुष तथा मध्यमपुरुष मे मिलते है और इनमे भी प्रधानता मध्यम पुरुष के रूपो की है। अन्य पुरुष के रूपो मे वर्तमान निश्चयार्थ के ही अधिकाश प्रत्ययो का योग मिलता है और इन प्रयोगो मे कोई उल्लेखनीय विशेषता नही है। यत्र-तत्र मूल धातु के साथ–**उ** अथवा–**औ** प्रत्ययो का प्रयोग अवश्य ही महत्वपूर्ण है। उदाहरण इस प्रकार है——

–उ – जेहि भावै सो **लेउ**।[३]
–औ – पानी मूल **परेखौ** कोई।[४]

मध्यम पुरुष के रूपो के सम्बन्ध मे दो बाते विशेष रूप से उल्लेखनीय है, एक तो यह कि इनमे लिग के कारण कोई परिवर्तन नही होता और दूसरी यह कि इनके दो प्रकार के रूप मिलते है——(अ) सामान्य रूप (आ) आदरसूचक रूप।

यो तो सभी कालो मे कुछ न कुछ आदरार्थ प्रयोग मिल जाते हैं परन्तु इस काल मे उल्लेखनीय मात्रा मे उनके निजी निश्चित रूप होने के कारण उनका विशेष महत्व है। आज्ञार्थ मे प्रयुक्त प्रमुख प्रत्यय निम्नलिखित है——

	एकवचन	बहुवचन
म० पु०	**–इ,–उ,–ऊ,–सि,** **–सी, –ह,–हि,–ही।**	**–उ,–ऊ,-ओ,–औ,-हु,-हू,** **-इअ –इ,–ईजै,–जिए,–जैं।**

उदाहरण इस प्रकार हैं—

एकवचन –इ – जसि अनूप तुइँ देखी नखसिख **बरनि** सिगार।[५]
–उ – गोरख आइ ठाढ भा **उठु** रे चेला नाथ।[६]

–ऊ – (छन्दोऽनुरोध से **–उ** का परिवर्तित रूप)—

अबहुँ जगावहि चेला जागू। आवा गुरु पाय उठि **लागू**।[७]
–सि – जनि **जानसि** तूँ गाढ उपराही। ताकर सबै तोर कछु नाही।[८]

---

१. प० ६२६।२ २. प० २६१।७ ३. प० ६४७।६ ४. प० ५५१।२
५. प० ६८।८ ६. प० ३०३।६ ७. प० ३०३।७ ८. प० ४६२।४

–सी – (छन्दोऽनुरोध से **–सि** का परिवर्तित रूप)—

औ अस कहब आहि परदेसी। करु माया हत्या जनि **लेसी**।[१]

–ह – तीन एगारह छबिस अठारह। जोगिनि दक्खिन दिसा **बिचारह**।[२]

–हि – आस निरासा हौ फिरौ तूँ बिधि **देहि** अधार।[३]

–ही – (छन्दोऽनुरोध से **–हि** का परिवर्तित रूप) —

कहेउँ काग अब लै तहँ जाही। जहँवाँ पिउ देखै मोहि **खाही**।[४]

बहुवचन—उ – पुनि जाइहि जनवासे सखी रे बेगि **देखाउ**।[५]

– ऊ (छन्दोऽनुरोध से **–उ** का परिवर्तित रूप)—

भावै चारिहु मुरसिद **कहऊ**। भावै चारि किताबै **पढऊ**।[६]

–ओ – कहै मुहम्मद **रहो** सम्हारे पाव पानि मे घालै रे।[७]

–औ – अस मन जानि **बेसाहौ** सोई। मूर न घटै लाभ जेहि होई।[८]

–हु,–हू – दरब **उबारहु** अरघ **करेहू**। औ लै वारि सन्यासिहि **देहू**।[९]

–औ, – हु तथा–हू का प्रयोग एकवचन कर्त्ता के साथ **आदरार्थ** मे भी हुआ है—

–औ – **सुनौ** पूत आपन दुख कहऊँ।[१०]

–हु – जनि **जानहु** कै औगुन मदिर होइ सुख साज।[११]

–हू – (छन्दोऽनुरोध से**–हु** का परिवर्तित रूप)— पुरवहु आस कि हत्या **लेहू**।[१२]

आदरार्थ — **एहू** भी प्रयुक्त है— एहू कहँ तसि मया **करेहू**।[१३]

आदरार्थ प्रयुक्त होने वाले कुछ अन्य प्रत्यय–इए,—इअै,–इअइ, –ईजै,–जिए तथा –जै है। यह सब कर्मवाच्य मे प्रयुक्त है। (अधिक विवेचन के लिए 'वाच्य' देखिए) यहाँ इनके उदाहरण दिए जाते है

–इअइ – पँडितन्ह राजहि दीन्ह असीसा। अब **कसिअइ** कचन औ सीसा।[१४]

–ईजै – पान फूल रस रग **करीजै**।[१५]

–जिए – घरनि कसौटी **दीजिए** कनक कचोरी भीख।[१६]

–जै – बिनवहि सखी गहरु नहिं कीजै।[१७]

भविष्य आज्ञार्थ—प्रमुख प्रत्यय सोदाहरण इस प्रकार है—

---

१. प० २६५।४ २. प० ३८३।३ ३. प० ७५।६ ४ प० ६४३।७
५. प० २७८।६ ६. अख० १०।५ ७. म०बा० १।१३ ८. आखि० १३।६
९. प० ३२८।६ १० आखि० ३३।१ ११ प० ८८।८ १२. प० २११।७
१३ प० २११।७ १४. प० ४७८।३ १५ प० ३१९।७ १६ प० २६९।६
१७. प० ३००।२

एकवचन बहुवचन

म० पु० –उ,–एसु –हु,–एहू,–एउ,–एऊ,–इअहु

एकवचन –**उ**– दहिनावर्त लाइ के **उतरु** समुद्र के घाट।[१]

–**एसु**– औ मुख बचन सो **कहेसु** परेवा।[२]

बहुवचन–**एहु**– पिउ सो **कहेहु** सँदेसरा ऐ भँवरा ऐ काग।[३]

–**इअहु**– जरा बिनु प्रान पिंड है छूँछा। धरम लागि **कहिअहु जौं** पूछा।[४]

आदरार्थ–हु,– एउ,–एऊ तथा–एहु का प्रयोग हुआ है—

–**हु**– आगे पाउ ओडैसा बाँए **देहु** सो बाट।[५]

–**एउ**– तुम अस तुहसे बात का कोई। सोई **कहेउ** बात जेहि होई।[६]

–**एऊ**– अब जौ भाइ मोर तुम अहेऊ। एक बात मोहि कारन **कहेऊ**।[७]

–**एहु**– आएसु लिहे **रहेहु** निति हाथा। सेवा **करेहु** लाइ भुइँ माँथा।[८]

कृदन्तीय रूप

क्रिया की रूप-रचना मे कृदन्तो का महत्व अत्यधिक है। ये कृदन्त दो प्रकार के है– **वर्तमानकालिक कृदन्त** तथा **भूतकालिक कृदन्त**।

वर्तमानकालिक कृदन्त– दोनो वचनो तथा समस्त पुरुषो मे वर्तमानकालिक कृदन्त के मुख्य रूप –त प्रत्यय लगा कर बने है –

अबहूँ आउ **आवत** सुनि भागा।[९] सत्त **कहत** राजा जिउ जाऊ।[१०]

जिउ डेराइ **काँपत** सब अगू।[११]

सामान्यतया दोनो लिगो मे भी –त प्रत्यय प्रयुक्त है किन्तु यत्र-तत्र स्त्रीलिंग मे –ति लगाकर भी रूप बने है, यथा निम्नलिखित पक्ति मे 'जाति' प्रयोग –

दीसै पीक **जाति** हिय चली।[१२]

अथवा पद्मावती के सम्बन्ध मे कही गई इस उक्ति मे **'सोवति'** क्रिया-पद—

हिय न सँभार **सोवति** बेकरारा।[१३]

अपवाद-स्वरूप एक स्थल पर पुंल्लिग में भी –ति प्रत्यययुक्त रूप मिलता है –

कहिसि **जाति** हौं सिंघल दीपा।[१४]

'जाति हौं' क्रिया-पद का सम्बन्ध रत्नसेन से है।

१. प० १३८।६ २. प० २२४।१ ३. प० ३४८।८ ४. प० ६२१।६
५. प० १३८।८ ६. आखि० ३४।५ ७. आखि० ३४।४ ८. प० ३८१।३
९. प० ३५५।७ १० प० ६३।१ ११. प० ३२४।२ १२. प० ४८१।४
१३. प० ३२१।४ १४. प० ३६०।५

उक्त रूपों के अतिरिक्त पुल्लिग एकवचन मे **–ता,–ताँ** तथा बहुवचन मे **–ते** और **–न्त** प्रत्ययो का योग कर भी रूप-रचना हुई है, यथा—

–ता – पाकि गहे पै आस **करीता**। हौ जीतेहुँ हारा तुम्ह जीता।[1]

–ताँ – कोइ तरवार सूति अस **कहताँ** भाव भीर मन माने रे।

–ते – आछहि भीज तँबोर सो राते। जनु गुलाल दोसहि **बिहँसाते**।[3]

–न्त – तपनि मिरगिसिरा जे सहहि अद्रा ते **पलुहंत**।[4]

इन प्रत्ययो का प्रयोग बहुत कम स्थलो पर हुआ है।

यत्र-तत्र धातु के मूल रूप का व्यवहार वर्तमानकालिक कृदन्त की भाँति हुआ है, जैसे – निमिख न लाग **कर** ओहि सबइ कीन्ह पल एक।[5]

यहाँ **'कर'** का प्रयोग 'करते हुए' (करत) के अर्थ मे हुआ है। वर्तमानकालिक कृदन्त के सभी उल्लिखित रूप प्राय सहायक क्रिया के बिना ही काल-रचना मे प्रयुक्त हुए हैं किन्तु यत्र-तत्र अपवाद-स्वरूप सहायक क्रियासहित रूप भी मिल जाते है। (विस्तृत विवेचन के लिए सयुक्त-काल देखिए)।

तात्कालिक कृदन्त वर्तमानकालिक तकारान्त कृदन्तो के अन्त मे **–हि** या **–हिं** जोड कर बनाये गये है, जैसे –

मारि चली **मरतहि** मै हँसा।[6] दइउ तुहूँ न **जन्मतहि** मारी।[7]

औतहि कहेन्हि न लावहु आगी।[8]

बहुत से स्थलो पर कवि ने **'हि'** का प्रयोग नही किया हे किन्तु अर्थ की स्पष्टता के लिए उसकी कल्पना करनी पडती है, यथा –

फेरत नैन चेरि सौ छूटी।[9] उठी आगि **बाजत** सिर खाँडा।[10]

क्रिया-रूप मे प्रयुक्त होने के अतिरिक्त इस कृदन्त का प्रयोग **विशेषण** तथा **क्रियार्थक संज्ञा** की भाँति भी हुआ है। विशेषण रूप मे प्रयुक्त होने पर लिग अथवा वचन के कारण प्राय परिवर्तन नही हुआ है, जैसे—

धनि जोबन औगाह महँ दे **बूड़त** पिय टेक।[11] **(स्त्रीलिग)**, **उवत** सूर जस देखिअ चाँद छपै तेहि धूप।[12] **(पुल्लिग)**, **बिहरत** हिया करहु पिय टेका।[13] **(एकवचन)**, पथिक **चलत** बसेरे बसे।[14] **(बहुवचन)**

क्रियार्थक सज्ञा के रूप मे इसका प्रयोग सदैव पुल्लिग विकारी रूप एकवचन की भाँति हुआ है और इस पर लिंग तथा बचन का कोई प्रभाव नही पडा हे, जैसे—

---

१. प० ३१३।५ २. म० बा० ११५ ३. प० ४७६।२ ४. प० ३४३।६
५. प० २।८ ६. प० ४६६।७ ७. प० ५८८।४ ८ प० २०७।७
९. प० ५९९।६ १०. प० ६३६।४ ११. प० ३४६।९ १२. प० ६५।८
१३. प० ३५४।७ १४. प० ५१०।३

खीर समुँद का बरनौ नीरू । सेत सरूप **पियत** जस खीरू ।[१]
कहि कै सुअै छोडि दई पाती । जानहु दिब्ब **छुअत** तसि ताती ।[२]

भूतसंभावनार्थ – धातु मे निम्नलिखित प्रत्यय मुख्य रूप से जोडे गए है —

पुल्लिग	स्त्रीलिग
–त,–इत,–ता, –तेउँ,–तेउ ।	**–ति, –ती, –इअति ।**

उपर्युक्त समस्त रूप एकवचन के है। बहुवचन मे **–त** प्रत्यय का योग मिलता है। उदाहरण इस प्रकार है—

ए० व० पुल्लिग –त– राखत बारि न पिता निछोहा। कत बिआहि कै दीन्ह बिछोहा।[३]
–इत – (कर्मवाच्य) भोग जोरि **पाइत** वह भोगू ।
तजि सो भोग कोइ करत न जोगू ।[४]

–ता – (छन्दोऽनुरोध से **–त** का दीर्घ रूप)— कुसल होत जौ जनम न **होता** ।[५]
–तेउँ – इब्राहिम कहा कस न **कहतेउँ** । बात कहे बिन मै ना रहतेउँ ।[६]
– तेउ – धाइ सिंघ वरु **खातेउ** मारी । कै तसि रहति अही जसि बारी ।[७]

ए० व० स्त्रीलिंग –ति – जौ न **होति** चारा कै आसा ।[८]

–ती – (छन्दोऽनुरोध से –ति का दीर्घ रूप)—
ससि सूरहि जौ होति यह जोती । दिन भा रहत रैनि नहि **होती** ।[९]

–इअति – (कर्मवाच्य मे प्रयुक्त)—

जौं वह दूज कालिन्ह कै होती । आजु तीजि **देखिअति** तसि जोती ।[१०]

बहुवचन (आदरार्थ)—

–त – जौ महेस नहि आइ **बुझावत** सकल जगत हुति लागि ।[११]

भूतकालिक कृदन्त– भूतकालिक कृदन्त के रूप धातु मे निम्नलिखित प्रत्यय लगा कर बने हैं **– आ, –ए, –ई, –ईं, –आन, –आना, –आने, –आनी, –आनि, –आनीं, –एउँ, –एऊँ, –एहु, –एउ, –एऊ, –इहु, –इउ, –इया, –इस, –इसि, –एसि, –इन, –इन्हि, –एनि, –एन्हि** तथा **–न** । पुल्लिग एकवचन मे **–आ** अन्त वाले रूपो का प्रयोग सबसे अधिक मिलता है, यथा—

---

१. प० १५११ २. प० २३०११ ३. प० ३७८१७ ४. प० १२३१६
५. प० १४६१३ ६. आखि० ३६१४ ७. प० १७०११ ८ प० ७२१२
९. प० ४५४१३ १०. प० ४४८१४ ११. प० २०८१९

दिया जो मनि सिवलोक महँ **उपना** सिघल दीप।[१]
गगन अतरिख **राखा** बाज खभ बिनु टेक।[२] कीन्हेसि मीचु न कोई **रहा**।[३]

लिंग तथा वचन के कारण इस कृदन्त मे रूपान्तर हुआ है। पुल्लिग बहुवचन बनाने के लिए धातु मे **–ए** जोडा गया है—

फरे आँब अति सघन सोहाए।[४]
कुरुँम टूट फन **फाटे** तिन्ह हस्तिन्ह की चालि।[५] वे तौ **उड़े** औरु वन ताका।[६]
स्त्रीलिंग एकवचन मे **–ई** और बहुवचन मे **–ईं** का योग हुआ है—

एकवचन – नरिअर फरे **फरी** खुरहुरी।[७] एक देवस कौनिउँ तिथि **आई**।[८]
बहुवचन – खेलत मानसरोवर **गईं**।[९] **धरीं** तीर सब छीप क सारी।[१०]

–आ, –ए, –ई तथा **–ईं** प्रत्ययो से बने हुए कृदन्ती रूप विशेषण तथा क्रिया दोनो रूपो में प्रयुक्त मिलते हैं। विशेषण रूप मे **–आ** अन्त वाले रूप पुल्लिग एकवचन संज्ञा, **–ए** अन्त वाले रूप पुल्लिग बहुवचन संज्ञा, **–ई** अन्त वाले रूप स्त्रीलिंग एकवचन तथा **–ईं** अन्त वाले रूप स्त्रीलिंग बहुवचन संज्ञा की विशेषता बताते हैं, यथा—

–आ– **चूरा** नेहु जोरु रे नाहा।[११] सूखि सुपारी भा मन **मारा**।[१२]
–ए– सोन थार मनि मानिक **जरे**।[१३] झालर माँड आए घिउ **पोए**।[१४]
–ई– चाँद जैसि धनि बैठि **तरासी**।[१५] **परी** नाथ कोइ छुअइ न पारा।[१६]
–ईं– चलहिं एक मुख दारू **भरीं**।[१७] होइ परगट चाहहिं रस**भरीं**।[१८]

क्रिया-रूप मे –आ का प्रयोग पुरुष, वचन तथा लिंग से प्रभावित नही होता। वह तीनो पुरुषों, दोनों लिंगो तथा दोनो वचनो मे समान रूप से व्यवहृत मिलता है, यथा—

उ० पु० एकवचन - का मैं **बोवा** जरम ओहि भूँजी।[१९]
म० पु० बहुवचन - हम तो तोहि **देखावा** पीऊ।[२०]
उ० पु० एकवचन - तूँ **सिरिजा** यहु समुँद अपारू।[२१]
म० पु० बहुवचन - तहँ तुम्ह आइ अँतरपट **साजा**।[२२]
अ० पु० एकवचन - रतनसेन एहि कुल **औतरा**।[२३]
अ० पु० बहुवचन - तिन्ह **भावा** उत्तिम कैलासू।[२४]

---

१. प० ५०।६ २. प० २।६ ३. प० ३।५ ४. प० २८।४
५. प० ४५।६ ६. प० ६६।६ ७. प० २८।४ ८. प० ५६।१
९. प० ६०।१ १०. प० ६२।१ ११. प० ३५७।७ १२ प० ३०६।६
१३ प० २८३।२ १४. प० २८४।२ १५. प० ३२८।४ १६. प० १४।४
१७. प० ५२५।२ १८. प० ६२।३ १९. प० ७५।५ २०. प० २८१।२
२१. प० ४०७।१ २२. प० ३३०।७ २३. प० ७३।४ २४. प० ७८।५

स्त्रीलिंग का भी एक उदाहरण द्रष्टव्य है— राखा सुआ धाइ मति **साजा** ।[१]

अन्य प्रत्यय पुरुष से प्रभावित नही होते । सकर्मक धातु के साथ प्रयुक्त कृदन्त प्राय कर्म के वचन तथा लिंग के अनुसार चला है, यथा—

तब लगि रानी सुआ **छिपावा** ।[२] उन्ह सौ मैं **पाई** जब करनी ।[३]
मैं तुइ **पाए** आपन जीऊ ।[४] **धरीं** तीर सब छीप क सारी ।[५]

यत्र-तत्र इसके अपवाद भी मिल जाते हैं, यथा—

बैन सोहावनि कोकिल बोली । भएउ बसत करी मुख **खोली** ।[६]

यहाँ सकर्मक धातु का प्रयुक्त रूप '**खोली**' कर्ता के लिंग तथा वचन के अनुसार है । इसका कारण तुकान्त की सगति जान पड़ता है ।

अकर्मक धातु के साथ प्रयुक्त कृदन्त सामान्यत. कर्ता के लिंग तथा वचन के अनुसार है, यथा—

भा बिहान पडित सब **आए** ।[७]
जाइ पालि पर ठाढ़ी **भईं** ।[८]

छन्दोऽनुरोध के कारण यत्र-तत्र -ई प्रत्यय के ह्रस्व रूप -इ का प्रयोग भी मिलता है, यथा—

आइ सरद रितु अधिक पियारी ।[९]

एक स्थल पर स्त्रीलिंग सज्ञा के साथ कृदन्त के पुल्लिग रूप का व्यवहार किया गया है—

जो देखैं जनु बिसहर डसा । देखि चरित पदुमावति **हँसा** ।[१०]

इस प्रकार के प्रयोग मे तुकान्त की सगति बिठाने के प्रयास की सम्भावना की जा सकती है । डॉ० बाबूराम सक्सेना ने उक्त प्रयोग को '**भावे प्रयोग**' कहा हैं ।[११]

-ए प्रत्यय का प्रयोग पुल्लिग विकारी रूप एकवचन क्रियार्थक सज्ञा मे भी मिलता है, जैसे—

तोहि **देखे** पिउ पलुहै काया ।[१२] उए अगस्ति हस्ति घन गाजा ।[१३]

इसी अर्थ मे -ए के अनुनासिक रूप - **एँ** का प्रयोग भी मिलता है—

१. प० ८७।१ २. प० ५६।४ ३. प० २०।७ ४. प० ३१।१६
५. प० ६२।१ ६. प० ३१७।७ ७. प० ५२।२ ८. प० ६०।१
९. प० ३३८।१ १०. प० १९२।५ ११. एवोल्यूशन आफ अवधी, पृ० २४२ ।
१२. प० ३४७।२ १३. प० ३४७।३

धन्नि पुरुख अस नवै न नाएँ ।[१] जौं खरि बात **कहें** रिस लागै खरि पै कहै बसीठ ।[२]
यत्र-तत्र महाप्राण ध्वनि **-ह** -से युक्त रूप भी प्रयुक्त हैं—

किरिरा **कहें** पाव धनि मोखू ।[३] एहि दुख **लिहें** भई सुखदेऊ ।[४]

एक-दो स्थलो पर अन्य पुरुष बहुवचन के साथ **-ऐं** प्रत्यय का प्रयोग मिलता है, यथा—
पुनि चलि दुइ जन पूँछै **आऐं** ।[५]

यहाँ मूल प्रत्यय **-ए** ही है जो प्रतिलिपिकार की असावधानी के कारण **-ऐ** हो गया है।

कुछ अकर्मक क्रियाओ के पुल्लिग एकवचन मे **–आन, –आना,** बहुवचन मे **–आने,** स्त्रीलिंग एकवचन मे **–आनी, –आनि** तथा बहुवचन मे **–आनी** और **–आनीं** प्रत्ययो का योग मिलता है, यथा—

पु० ए० व०— कबहुँ न अैस **जुडान** सरीरू । [६] धुआँ उठा उठि बीच **बिलाना** ।[७]
पु० ब० व०— नैन **सिराने** भूख गइ देखि तोर मुख आजु ।[८]

स्त्रीलिंग एकवचन—
उन्ह लेखे सब सिस्टि **जुड़ानी** ।[९] भुजन **छपानि** कँवल पौनारी ।[१०]

स्त्रीलिंग बहुवचन—
आछरि रूप **छपानीं** जबहिं चली धनि साजि ।[११]
देखि चाँद असि पदुमिनि रानी । सखी कमोद सबै **बिगसानी** ।[१२]

उक्त प्रत्यय सभी पुरुषो में समान रूप से प्रयुक्त हुए हैं।

– **'एउँ'** तथा – **'इउँ'** प्रत्यय युक्त कृदन्तो का प्रयोग उत्तम पुरुष एकवचन कर्त्ता के साथ हुआ है। वस्तुत उक्त प्रत्ययो के **'ए'** तथा **'इ', 'ए'** के रूपान्तर हैं, लिंग के अनुसार प्रत्यय-भेद नही फिर भी जायसी-काव्य मे सामान्यतः – **'एउँ'** युक्त रूप पुल्लिग तथा **- इउँ** युक्त रूप स्त्रीलिंग के साथ प्रयुक्त हुए हैं, यथा -

(पुल्लिग) ब्राह्मण का कथन—

लाभ जानि **आएउँ** एहि हाटा । मूर गँवाइ **चलेउँ** तेहि बाटाँ ।[१३]

(स्त्रीलिंग) पद्मावती की सखी का कथन—
कत खेलैं **आइउँ** एहि साथाँ । हार गवाइ **चलिउँ** सै हाथाँ ।[१४]

---

१. प० २७८।७ २. प० २६८।६ ३. प० ३१७।३ ४. प० ६०४।५
५. प० ५७९।१ ६. प० १५९।३ ७. प० १६१।६ ८ प० ३३०।८
९. प० ३३९।५ १०. प० ३०२।७ ११. प० ३०२।८ १२. प० ६३८।७
१३. प० ७५।५ १४. प० ६४।३

किन्तु कही-कही –'एउँ' युक्त कृदन्त का प्रयोग स्त्रीलिंग मे भी मिलता है, जैसे पद्मावती के इस कथन मे–

कहेउँ कँवल नहिं करै अहेरा । जौ है भँवर करिहि सै फेरा ।
पाँच भूत आतमा **नेवारेउँ** । बारहिं बार फिरत मन **मारेउँ** ।
औ **समुझाएउँ** आपन हियरा । कंत न दूरि अहै सुठि नियरा ।[१]

पुल्लिग मे एक स्थल पर –'एउँ' के स्थान पर –'एऊँ' का प्रयोग भी प्राप्त होता है जो मुद्रण सम्बन्धी त्रुटि है :

दाहिन हाथ **उठाएऊँ** ताही । औरु को अस बरम्हावउँ जाही ।[२]

डॉ० गुप्त द्वारा सम्पादित 'पदमावत' (सन् १९६३ ई०) मे 'उठाएउँ' पाठ है । मध्यम पुरुष बहुवचन मे भी इसी प्रकार –'एहु' तथा -'एउ' युक्त कृदन्त पुल्लिग मे और - **'इहु'** तथा - **'इउ'** अन्त वाले कृदन्त स्त्रीलिग मे प्रयुक्त हुए है, यथा –

पुल्लिग – पार्वती का शिव से कथन - हत्या दुइ जो **चढ़ाएहु** काँधे ।[३]

अथवा अपने साथियो से रत्नसेन का कथन–

यहिक मोर पुरुषारथ **देखेहु** । गुरू चीन्ह कै जोग बिसेखेहु ।[४]

-'एउ' प्रत्यय– पद्मावती का गोरा बादल से कथन -

राखेउ छात चँवर औ ढारा । **राखेउ** छुद्रघट झनकारा ।[५]

स्त्रीलिंग - **इहु** प्रत्यय, पद्मावती से सखियो का कथन -

काल्हि जो **गइहु** देब के बारू ।[६] अथवा, पूजि **मनाइहु** बहुत बिनाती ।[७]

- **'इउ'** प्रत्यय - **भइउ** चतुरसम कस भा जीऊ ।[८]

- **'एहु'** प्रत्ययान्त कृदन्त का प्रयोग अन्य पुरुष एकवचन स्त्रीलिंग मे भी मिलता है—

कै मजन तब **किएहु** अन्हानू ।[९]

उक्त पंक्ति पद्मावती की रूप-सज्जा के सम्बन्ध मे कही गई है । - **'एउ'** प्रत्यय युक्त कृदन्तों का प्रयोग अन्य पुरुष एकवचन के साथ भी मिलता है, यथा -

जो गा तहाँ **भुलानेउ** सोई ।[१०] पहिरे चीर **गएउ** छपि भानू ।[११]

छन्दोऽनुरोध से - **'एउ'** के स्थान पर -**'एऊँ'** भी मिलता है -

जेहि उपना सो औटि मरि **गएऊ** । जरम निनार न कबहूँ **भएऊ** ।[१२]

इनके अतिरिक्त अन्य पुरुष एकवचन मे -**'इया,'** -**'इस,'** -**'इसि'** तथा -**'एसि'** प्रत्यय युक्त भूतकालिक कृदन्तों का प्रयोग मिलता है, यथा -

१. प० ६४।५-७ २. प० २६८।७ ३. प० २११।८ ४. प० ३३१।३
५. प० ६४।५ ६. प० १९८।१ ७. प० १९८।२ ८. प० ३२३।७
९. प० २९७।२ १० प० ९५।२ ११. प० २९७।२ १२. प० ३११।३

- **इया** - साजन लेइ **पठाइया** आएसु जेहि क अमेट ।[1]
- **इस** - कीन्हेसि मानुस **दिहिस** बडाई ।[2]
- **इसि** - **कहिसि** जाति हौं सिंघल दीपा ।[3]
- **एसि** - **देखेसि** परी जो तरुवर साखा ।[4]

- **इया** प्रत्यय - **वा** का छन्दोऽनुरोध से परिवर्त्तित रूप है, **पठावा>पठाइया** ।

अन्य पुरुष बहुवचन मे -**'इन,'** -**'इन्हि'**,-**'एनि'**, तथा - **'एन्हि'** प्रत्ययों का योग मिलता है, यथा—

-इन - अपने कौकुत कारन मीर **पसारिन** हाट ।[5]
-इन्हि - पुनि उठारि **बैसारिन्हि** छाहाँ ।[6]
-एनि - छवउ राग **गाएनि** भल गुनी ।[7]
-एन्हि - छाडेन्हि लोग कुटुंब घर सोऊ ।[8]

उपर्युक्त प्रत्ययो के योग से अधिकाश भूतकालिक कृदन्तो की रूप-रचना हुई है। इस प्रकार की धातुओ के रूप इनसे भिन्न तथा अनियमित है। इस प्रकार की धातुओ मे **'दे'**, **'ले'**, **'कर'**, **'हो'**, **'जा'** तथा **'मर'** आदि प्रमुख हैं। विशेषत **'दे'**, **'ले'** तथा **'कर'** के भूतकालिक कृदन्त की रचना मे 'न्ह' का योग हो जाता है, यथा - **दीन्ह, लीन्ह, कीन्ह** आदि। इन धातुओं मे 'न्ह' प्रत्यय का योग होने के पश्चात् उपरिलिखित प्रत्ययों का योग होता है और तब भूतकालिक कृदन्त बनता है, यथा —

-आ - दीन्हा,[9] लीन्हा,[10] कीन्हा ।[11]
-ई - दीन्ही,[12] लीन्ही ।[13]
-एउ - लीन्हेउ,[14] कीन्हेउ ।[15]
-एसि - कीन्हेसि[16], लीन्हेसि ।[17]

अन्य प्रत्ययों के प्रयोग भी इसी प्रकार जायसी-काव्य मे उपलब्ध होते हैं ।

अपवाद-स्वरूप एक स्थल पर केवल 'न' का योग मिलता है-

एक एक का **दीन** नेवासू ।[18]

'हो', **'जा'** तथा **'मर'** आदि धातुओ में भूतकालिक कृदन्त के रूप प्राय. **'हुत'**[19], **'भो'**[20], **'गा'**[21], **'गो'**[22], **'मुई'**[23] आदि मिलते हैं ।

---

१. प० ३०१।८ २. प० ३।१ ३. प० ३६०।५ ४. प० ३६४।४
५. आखि० १०।८ ६. प० ४५२।६ ७. प० ५२८।५ ८. प० १३४।४
९. प० २८६।४ १० प० २८६।४ ११ प० २८८।६ १२ प० २९७।१
१३. प० २९७।१ १४. प० ६११।८ १५. प० ६११।८ १६ प० ३२५।९
१७. प० ३२५।९ १८. आखि० ५३।५ १९. प० ५।७ २० प० ४४८।२
२१. प० २८८।९ २२. प० ३३०।१ २३. प० ३६८।९

कही-कही भूतकालिक कृदन्त के रूप मे धातु के मूल रूप का ही प्रयोग मिलता है, यथा निम्नलिखित पंक्तियो मे **'छूट'**, **'पसीज'**, **'थाक'**, **'टूट'** तथा **'बैठ'** आदि रूप—

चदन अंग **छूट** तस भेटी ।[१]
रकत **पसीज** भीजि तन चोली ।[२]
हस जो रहा सरीर महँ पाँख जरे तन **थाक** ।[३]
सिरै जो रतन माँग बैसारा । जानहुँ गँगन **टूट** लै तारा ।[४]
भएउ अचल ध्रुव जोगि पँखेरू । फूल **बैठ** थिर जैस सुमेरू ।[५]

यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि भूतकालिक कृदन्तो का प्रयोग विशेषण, क्रियार्थक सज्ञा तथा क्रिया रूपो मे हुआ है । ये कृदन्त नियमित रूप से भूत निश्चयार्थ मे प्रयुक्त है । संयुक्त काल-रचना मे वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ, भूत पूर्ण निश्चयार्थ तथा भविष्य पूर्ण निश्चयार्थ बनाने के लिए भी यह प्रयुक्त हैं । (देखिए, 'संयुक्त काल')

सहायक क्रिया

जायसी-काव्य मे प्रधानत **'भू'** के **'भ'** और **'हो'** रूप, अस् के **'अह'**, **'आह'** तथा **'ह'** रूप और गौणत. रह् का **'रह'** रूप तथा **'आ+क्षे'** का **'आछ'** रूप आदि सहायक क्रियाएँ प्रयुक्त मिलती है । यह उल्लेखनीय है कि यह क्रियाएँ इने-गिने स्थलो पर ही संयुक्त काल-रचना के लिए प्रयुक्त हुई है । प्रायः प्रधान क्रिया का कृदन्ती रूप ही अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति करता है । अधिकाशत इनका प्रयोग स्वतंत्र रूप में ही मिलता है ।

वर्तमान काल मे प्रयुक्त प्रमुख रूप निम्नलिखित हैं—

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	**अहौं, आहौं, हौं ।**	**आहहिं, हैं ।**
म० पु०	×	**अहहु, अहेऊ, हहु ।**
अ० पु०	**अहै, अहई, आहि, आहै, है ।**	**अहहीं, आहिं, आहीं, हहिं, होहिं ।**

प्रत्येक के उदाहरण इस प्रकार है —

उ० पु० ए० व०—अहौं - हौ पुनि **अहौं** ऐसि तोहि राती ।[६]
आहौं - कहेसि ओहि सँवरौं हर फेरा । मुएँ जिअत **आहौं** जेहि केरा ।[७]
हौ - बर सँजोग मोहि मेरवहु कलस जाति **हौं** मानि ।[८]
उ० पु० ब० व०—आहहिं - हम सेवक **आहहिं** सेवकाई ।[९]
हैं - अस जानत **हैं** होइहि जूझा ।[१०]

मध्यम पुरुष : बहुवचन - अधिकांश रूप आदरार्थ प्रयुक्त हैं—

---

१. प० ३१८।१ २. प० ३४२।३ ३. प० ३४२।६ ४. प० २६७।५
५. प० २८२।५ ६. प० २३४।१ ७. प० २६२।३ ८. प० १६१।८
९. प० २८७।३ १०. प० २४२।२

अहहु - मिलतहि महँ जनु **अहहु** निनारे ।[1]
अहेऊ - भाइ मोर **अहेऊ**।[2]
हहु - देखौ ताकि तौ **हहु** सब पाहाँ ।[3]
अ० पु० ए० व०—अहै - बाँधी सिस्टि **अहै** सत केरी ।[4]
अहई - बूड न जाइ बूड अति **अहई** ।[5]
आहि - लखिमी **आहि** सत्त की चेरी ।[6]
आहै - को तोर आगु आगु तोर पछुवा, को **आहै** दिसि तोरी रे ।[7]
है - रतन जात **है** आगे लिए पदारथ साथ ।[8]

सामान्यत. जायसी ने तत्सम रूपों का प्रयोग नही किया है किन्तु एक स्थान पर **'नास्ति'** (न+अस्ति) प्रयोग प्राप्त होता है—

सबइ **नास्ति** वह अस्थिर अइस साज जेहि केर ।[9]

पुरानी हिन्दी मे विकसित 'आथि' (सं० अस्ति>प्रा० अत्थि>पुरानी हिन्दी आथि>आहि) तथा निआथि (नास्ति>प्रा० नात्थि, णात्थि>पुरानी हिन्दी नाथि, निआथि>नाहि) रूप भी दो स्थानो पर प्रयुक्त हैं :

साथी आथि **निआथि भै** ।[10] एहि जग काहू जो आथि **निआथी** ।[11]

अ० पु० ब० व०—अहहीं - रकत क बुद कया जत **अहही** ।[12]
आहि - सातों दीप नवों खंड, आठों दिसा जो आहि ।[13]
आहि- कुभस्थल गज मैमंत **आहीं** ।[14]
हहि - हहि गज मोति भरी सब सीपी ।[15]
हैं - **हैं** सब बान ओहि के हने ।[16]
होहि - जानहुं **होहि** न जोगी केहु राजा कै पूत ।[17]

भूतकाल मे निम्नलिखित रूप प्रमुखतया उपलब्ध होते हैं—

एकवचन	बहुवचन
उ० पु० (पु०) अहा, भएउँ, भा, हुतेउँ ।	भए, हतें ।
(स्त्री०) अही,भइउँ, भै, भई ।	
म० पु० (पु०) भया, भा, हता (स्त्री०) भई।	(स्त्री०) भइउ, भई।

---

१. प० ६१।५ २. आखि० ३४।४ ३. प० ६१।६ ४. प० ६२।३
५. अख० ३६।१ ६. प० ६२।३ ७. म०बा० १८।५ ८. प० ६३३।६
९. प० ६।८ १०. प० ४०१।८ ११. प० ६५०।६ १२. प० २६२।४
१३. अख० ८।८ १४. प० ४६३।३ १५. प० ७६।३ १६. प० १०४।५
१७. प० १६३।६

अ० पु० (पु०) अहा, भा, भौ, भएउ, भएऊ, हत, हा, हुत, हुता, हुतेउ,
(स्त्री०) भै, भइ, भई, अही, हुति, हुती।

(पु०) अहे, भे, भए, हते,
(स्त्री०) अही, भईं, हुतिं।

उदाहरण इस प्रकार है—

उ० पु० ए० व०—**अहा** - हौ तो **अहा** अमरपुर जहाँ।[1]

भएउँ - अनु तुम्ह कारन पेम पियारी। राज छाँडि कै **भएउँ** भिखारी।[2]

भा - हौ राजा सोई **भा** जोगी।[3]

हुतेउ - तहाँ **हुतेउँ** जहँ हुतेउ न ठाऊँ।[4]

अही - इहै ठाउँ हौ वारति **अही**।[5]

भइउँ - पँथ जोवत **भइउँ** सीप सेवाती।[6]

भै - हौ **भै** भस्म न आइ समेटा।[7]

भई - हारिल **भई** पंथ मै सेवा।[8]

उ० पु० ब० व०—**भए** - एही दिवस कहँ हम **भए** चेला।[9]

हतें - सिघल दीप राजघर हते।[10]

म० पु० ए० व०—**भया** - अब तूँ सिद्ध **भया** सिधि पाई।[11]

भा - नैन पुहुप तूँ अलि **भा** सोभी।[12]

हता - तूँ सुअटा पडित **हता** तूँ कत फाँदा आइ।[13]

भई - रायमुनी तूँ औ्र रतमुही। अलि मुख लागि **भई** फुलचुही।[14]

बहुवचन - प्रयोग आदरार्थ हैं—

भइउ - **भइउ** चतुरसम कस भा जीऊ।[15]

भईं - तुम्ह चेला कहँ परसन **भईं**।[16]

अ० पु० ए० व०— **अहा** - जौ लहि पिजर **अहा** परेवा। अहा बाँदि कीन्हेसि निति सेवा[17]।

भा - माटी माँसु रकत **भा** नीरू।[18]

भौ - बिनु जोबन **भौ** आस पराई।[19]

भएउ - बगु अपने भख कारन **भएउ** मछ कर दास।[20]

भएऊ - जरम निनार न कबहूँ **भएऊ**।[21]

हत - काँध गुरुज हत घाव न आवा।[22]

---

१. प० १२१।३ २ प० ३०५।१ ३. प० ३६६।६ ४. आखि० ५०।२
५ प० १६५।६ ६ प० ३१५।३ ७ प० ३६१।४ ८. प० ३५८।३
९ प० २४२।३ १० प० ६३।२ ११. प० २१४।४ १२. प० ३१४।७
१३. प० ७०।६ १४. प० ३२६।५ १५. प० ३२३।७ १६. प० २५८।२
१७ प० ६८।२ १८ अख० ८।५ १९. प० ३६२।४ २०. प० ३६२।६
२१. प० ३११।३ २२. प० ६३६।७

हा - तब लगि डर हा मिला न पीऊ ।[१]

हुत - किगरी गहे जु हुत बैरागी ।[२]

हुता - हुता आपु महँ आपु समाना ।[३]

हुतेउ - तहाँ हुतेउँ जहँ हुतेउ न ठाऊँ ।[४]

अही - कै तसि रहति अही जसि बारी ।[५]

भै - एक भँवरि भै ।[६]

भइ - अते रूप भइ कन्या जेहि सरि पूज न कोइ ।[७]

भई - दीन्हेसि ग्याँन समुझि मोहि भई ।[८]

हुति - कवनि मोहिनी दहुँ हुति तोही ।[९]

हुती - गगन हुता नहिं महि हुती ।[१०]

अ० पु० ब० व०—अहे - अंध जो अहे नैन बिधि खोले ।[११]

भे - रकत लिखे आखर भे स्यामा ।[१२]

भए - भए दस मास पूरि भै घरी ।[१३]

हते - हते रखवार आगे सुलतानी ।[१४]

अहीं - अहीं जो सखी कँवल सँग कोईं ।[१५]

भईं - जाइ पालि पर ठाढी भईं ।[१६]

हुतिं - जावँत गरब गहीलि हुतिं सबै छपीं मन लाजि ।[१७]

भूतकालिक सहायक क्रिया के रूप मे यत्र-तत्र रह' का भी प्रयोग हुआ है, यथा—

रहा जो एक जल गुपुत समुदा ।[१८] राजा रहा दिस्टि किए औंधी ।[१९]

रहा न दोसर ओहि सौ काँधा ।[२०]

उक्त रूपों के अतिरिक्त आज्ञार्थ मे मध्यम पुरुष बहुवचन मे **'होऊ'**, **'होहू'** तथा **'ह्वाव'** और भविष्य काल अन्य पुरुष एकवचन मे **'होइहि'** तथा बहुवचन मे **'होइहैं'** का उल्लेख किया जा सकता है—

होउ - जरत बजागिनि होउ पिय छाँहा ।[२१]

होहू - गुरू कहा चेला सिध होहू ।[२२]

ह्वाव - दुखी न ह्वाव मुहम्मद पोखि लेहु धरि पोख ।[२३]

होइहिं - अब लगि जरि होइहि भै छारा ।[२४]

---

१. प० ३२४।४ २. प० १९४।७ ३. अख० २।६ ४. आखि० ५०।२
५ प० १७०।१ ६ प० ६५०।२ ७ प० ५१।८ ८ अख० १।८
९. प० ३१५।१ १०. अख० १।१ ११ प० १५८।४ १२ प० २२५।६
१३. प० ५१।१ १४. प० ६२३।७ १५. प० ३९९।३ १६. प० ६०।५
१७. प० ३०२।६ १८. अख० ४।२ १९. प० २६३।१ २०. प० २६६।५
२१ प० ३५४।३ २२. प० २४३।१ २३. आखि० ४६।९ २४. प० ३६५।३

होइहै - नैना **होइहै** सबके तारू ।[1]

गौण सहायक क्रियाओ मे से **'रह'** का उल्लेख ऊपर हो चुका है, **'आछ'** धातु का प्रयोग भी जायसी ने यत्र-तत्र सहायक धातु के रूप मे किया है, यथा—

पुरुष न **आछहिं** बैठि पेटारी ।[2] रुहिर भरे **आछहिं** बिहँसाते ।[3]
आछहिं भीज तँबोर सो राते ।[4] चलन देखि **आछै** मन मारे ।[5]

संयुक्त-काल सयुक्त कालो की रूप-रचना वर्तमानकालिक कृदन्त अथवा भूतकालिक कृदन्त मे सहायक क्रिया जोडने से होती है । जायसी-काव्य मे इस प्रकार के प्रयोग अत्यन्त सीमित है । सामान्यत वर्तमान निश्चयार्थ तथा भूत निश्चयार्थ के क्रिया रूपो का व्यवहार मिलता है । जहाँ कही वर्तमान निश्चयार्थ के क्रिया रूप का प्रयोग नही भी हुआ है वहाँ भी प्राय. सहायक क्रिया के बिना केवल वर्तमानकालिक कृदन्त का ही व्यवहार मिलता है ।

सयुक्त कालो मे से अपूर्ण वर्तमान निश्चयार्थ, अपूर्ण भूत निश्चयार्थ, पूर्ण वर्तमान निश्चयार्थ, पूर्ण भूत निश्चयार्थ तथा पूर्ण भविष्य निश्चयार्थ के ही प्रयोग जायसी-काव्य मे मिलते है—

वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ—इस काल की रचना मे वर्तमानकालिक कृदन्त के साथ सहायक क्रिया के वर्तमान निश्चयार्थ के रूप का योग हुआ है, यथा—

रतन **जात है** आगे लिए पदारथ साथ ।[6] **बूड़ति हौं** दुख उदधि गँभीरा ।[7]
देखहु कछु अचरिजु अनभला । तरिवर एक **आवत है** चला ।[8]
कहिसि **जाति हौं** सिघल दीपा ।[9]

अपूर्ण भूत निश्चयार्थ—क्रिया के वर्तमानकालिक कृदन्त के साथ सहायक क्रिया का भूतकालिक कृदन्त जोड़ा गया है, यथा—

लिखि कै बात सखी सौ कही । इहै ठाउँ हौ **बारति अही** ।[10]
सोवत अहा जहाँ सुख साखा । कस न तहाँ विधि सोवत राखा ।[11]
कोइल भई **पुकारत रही** ।[12]

पूर्ण वर्तमान निश्चयार्थ—धातु के भूतकालिक कृदन्त के साथ सहायक क्रिया के वर्तमान निश्चयार्थ रूप का प्रयोग करके इस काल की रचना हुई है, यथा —

बिनै करै **आई हौं** ढीली ।[13] आजु बदन तुव निरमल कहाँ **उवा है** चद ।[14]
बाँधी सिस्टि **अहै** सत केरी ।[15] जोबन रतन **हेरान है** मकु धरती महँ होइ ।[16]

---

१ आखि० २५।८ २. प० २६३।२ ३. प० १०६।७ ४. प० ४७६।२
५. प० ७६।३ ६ प० ६३३।६ ७. प० ५८३।४ ८. प० ६६।३
९. प० ३६०।५ १० प० १९५।६ ११. प० १२१।५ १२. प० ३५८।६
१३. प० ६२३।४ १४. प० ४२३।९ १५. प० ९२।३ १६ प० ५८६।९

रतनसेन **है** जौहर **साजा** ।[१]

सयुक्त कालो के प्राप्त प्रयोगों में इस काल के प्रयोग सबसे अधिक हैं।

पूर्ण भूत निश्चयार्थ—इस काल की रचना धातु के भूतकालिक कृदन्त के साथ सहायक क्रिया के भूतकालिक कृदन्त का योग करके हुई है, यथा —

जब लगि गुरु मैं **अहा न चीन्हा** । कोटि अँतरपट बिच **हुत दीन्हा** ।[२]
आएउँ मरै मीचु **हुति लिखी** ।[३] उहै धनुक **बेधा हुत** राहू ।[४]
धरती सरग **मिले हुत** दोऊ ।[५] कीन्ह सिंगार **अहा** सब **लूटा** ।[६]

पूर्ण भविष्य निश्चयार्थ - धातु के भूतकालिक कृदन्त के साथ सहायक क्रिया के भविष्य निश्चयार्थ रूप का योग कर इस काल की रचना हुई है, यथा—

अब लगि जरि **होइहि भै** छारा ।[७] अब ताईं **मुई होइहि** मुएहुँ जाइ गति देहि ।[८]
संयुक्त काल की क्रियाओ का कृदन्तीय अश लिंग के अनुसार परिवर्तित हुआ है।

अन्य कृदन्त—पिछले पृष्ठो मे काल-रचना के सम्बन्ध मे वर्तमानकालिक तथा भूतकालिक कृदन्तो की चर्चा की जा चुकी है। अत यहाँ क्रियार्थक संज्ञा, कर्तृवाचक संज्ञा तथा पूर्वकालिक कृदन्तो की चर्चा ही अभीष्ट है।

क्रियार्थक संज्ञा

क्रियार्थक सज्ञा के रूपो का निर्माण मूल धातु के रूपों को आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त तथा ऐकारान्त करके तथा धातु के मूल अथवा विकारी रूप के साथ **-न,-ना,-नि,-ने** तथा **-ब** आदि प्रत्ययो का योग करके किया गया है। कही-कही धातु ही क्रियार्थक संज्ञा के रूप मे प्रयुक्त हो गई है। इन विविध प्रयोगो के उदाहरणो से यह स्पष्ट हो सकेगा—

(अ) आकारान्त रूपो का प्रयोग– सेल साँप जनु चाहहिं **डसा** ।[९]
आजु काल्हि गढ़ चाहै **टूटा** । अबहुँ मानु जौं चाहसि **टूटा** ।

(आ) इकारान्त रूपो का प्रयोग—
साजन **लेइ** पठाइया आएसु जेहि क अमेट ।[१०]
तन मन जोबन साजि सब **देइ** चलिअ लै भेट ।[११]

(इ) ईकारान्त रूपो का प्रयोग—
जोगी तोरि तपसी कै काया । **लागी** चहै अंग मोहि छाया ।[१२]
तेहि दिन चाँचरि चाहौ **जोरी** ।[१३]

---

१. प० ५०२।४ २. प० २४५।१ ३. प० ७५।२ ४. प० १०२।५
५. प० २१३।३ ६. प० ३१८।२ ७. प० ३६५।३ ८. प० ३६८।६
९. प० ६३१।६ १० प० ३६१।८ ११. प० ३०१।६ १२. प० ३०४।६
१३. प० ५३५।६

(ई) ऐकारान्त रूपो का प्रयोग—

को बरिबड बीर अस मोहि **देखै** कर चाउ ।[१]

जस किछु दीजै **धरै** कहँ आपन लीजै सँभारि ।[२]

अनुलेखन-विभिन्नता के कारण ही कही-कही **'ऐ'** के स्थान पर **'अइ'** का प्रयोग हुआ है—

दीन्हेसि जग **देखइ** कहँ नैना । दीन्हेसि स्रवन **सुनइ** कहँ बैना ।[३]

(उ) –न प्रत्यय के योग से बने रूप—

आपन **रहन** न देखौ सखी ।[४] कित **आवन** पुनि अपने हाथाँ ।[५]

(ऊ) '-ना' (-न का दीर्घ स्वरान्त रूप) के योग से बने रूप—

ताकर इहइ सो **खाना पिअना** । सब कहँ देइ भुगुति औ जिअना ।[६]

कहेसि अंत अब भा भुइँ **परना** ।[७]

(ए) **'-नि'** प्रत्यय के योग से बने रूप - कौनु **रहनि** मकु चलौ सबेरा ।[८]

इस प्रकार की क्रियार्थक सज्ञाए अत्यन्त सीमित है ।

(ऐ) '-ने' प्रत्यय से युक्त रूप—

चलने कहँ हम औतरी औ चलन सिखा हम आइ ।[९]

इस वर्ग के प्रयोग विरल है ।

(ओ) '-ब' प्रत्यय युक्त रूप—

जूझब छाँडहु बूझहु दोऊ ।[१०] **गौनब** तहाँ बहुरि नहिं अवना ।[११]

(औ) धातु के मूल रूप का प्रयोग—

मरम **बैठ उठ** तेहि पै गुना । जो रे मिरिग कस्तूरी पहाँ ।[१२]

विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध व्यक्त करने के लिए अन्य सज्ञाओ मे लगाए गए परसर्गों की भाँति क्रियार्थक सज्ञा के विकृत रूपो मे भी कही-कही परसर्ग जोड़े गए है, यथा—

चलने कहँ हम औतरी औ चलन सिखा हम आइ ।[१३]

जहाँ ठाँव रोवै कर हँसा सो कौने भावँ ।[१४]

किन्तु अधिकाश प्रयोग परसर्गरहित है ।

कर्तृवाचक संज्ञा

कर्तृवाचक संज्ञा के रूपो का निर्माण प्राय. मूलधातु अथवा उसके विकारी रूप के साथ -आ, -ऊ, -आर, -आरा, -वार, -हार, -हारा तथा -न आदि प्रत्ययो के योग से हुआ है, जैसे—

---

१. प० २७८।६ २. प० ३२५।८ ३. प० ६।३ ४. प० २८१।६
५. प० ६०।६ ६. प० ५।६ ७ प० ६३६।१ ८. प० ४५६।३
९. प० ३८०।८ १०. प० ४४५।७ ११. प० २८१।७ १२ आखि० ३।६
१३. प० ३८०।८ १४. प० २६०।९

-आ - गँठिछोरा,[१] ढारा।[२]

-आर ~ आरा - खेलार[३], जुझार[४], जुझारा।[५]

-ऊ - खाधू।[६]

-वार - रखवार।[७]

-हार ~ हारा- चाखनहार[८], नांवलेनिहारा।[९]

-न - मंगन।[१०]

पूर्वकालिक कृदन्त : पूर्वकालिक कृदन्त के रूप प्राय मूल धातु के साथ -इ प्रत्यय का योग कर बनाए गये हैं, यथा—

दूलह आनि तहाँ बैसारा।[११] लागेउ आइ भँवर तहँ करी बेधि रस लीन्ह।[१२]

सामान्यत -'इ' प्रत्ययुक्त पूर्वकालिक कृदन्त परसर्गरहित रूप मे प्रयुक्त हुए हैं किन्तु कही-कही इन रूपो मे 'कै' अथवा 'कै' परसर्ग भी जोड दिया गया है, जैसे—

जराइ कै,[१३] लाइ कै[१४] तथा देखि कै।[१५]

छन्दोऽनुरोध से कही-कही -इ के दीर्घ रूप -ई का भी योग मिलता है, यथा—

सो पै जान पियै जो कोई। पी न अघाइ जाइ परि सोई।[१६]
भँवर मालती मिलै जौं आई। सो तजि आन फूल कत जाई।[१७]

एक स्थल पर -'रि' प्रत्यय का योग मिलता है जो विचारणीय है
पुनि उठारि बैसारिन्ह छाहाँ।[१८]

एकारान्त धातुओ मे -ए के स्थान पर - ऐ का योग करके पूर्वकालिक कृदन्त के रूप बनाए गये है, यथा— लै।[१९]

सहायक क्रिया 'हो' के पूर्वकालिक रूप की रचना मे एक स्थल पर 'व' की श्रुति भी प्राप्त होती है — मन ह्वै भँवर भँवै बैरागा।[२०]

कही-कही धातु का मूल रूप ही पूर्वकालिक कृदन्त के रूप मे व्यवहृत हुआ है, यथा—
सूरुज देख कँवल बिख भएऊ।[२१] मँते बैठ बादिल औ गोरा।[२२]

---

१. प० ३९।८ २ प० ६४१।६ ३ प० ६२६।६ ४. प० ५१६।६
५ प० ६१३।२ ६. प० ७८।६ ७ प० ६२३।७ ८ प० ३३६।९
९. आखि० १७।६ १०. प० ४६०।३ ११ प० २८२।३ १२ प० ३२२।८
१३. प० ३५१।९ १४ प० ३१८।९ १५ प० ३०२।४ १६. प० ३२०।३
१७. प० ३११।७ १८. प० ४५२।६ १९. प० ६४९।५ २० प० ४८६।५
२१. प० ५७०।३ २२. प० ६२१।१

वाच्य

जायसी-काव्य मे कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य दोनो ही के प्रयोग मिलते है। इनमे से कर्तृवाच्य के प्रयोगो का बाहुल्य है। कर्मवाच्य रूपो की सख्या बहुत कम है। यहाँ जायसी-कृत कर्मवाच्य के प्रयोगो के सम्बन्ध मे प्राप्त कतिपय महत्वपूर्ण तथ्यो की ओर सकेत किया जा रहा है।

(अ) कुछ ऐसी धातुएँ उपलब्ध होती है जो अपने दीर्घ स्वर के ह्रस्वीकरण से कर्म-वाच्य के अर्थ की अभिव्यक्ति करती हैं, यथा— कटै न काटे छुटै न छोरी।[1]

उक्त पक्ति का 'कटै' क्रिया-पद इसी प्रकार का है।

(आ) कर्तृवाच्य की कतिपय धातुए -'आ' प्रत्यय का योग होने से कर्मवाच्य मे परिवर्त्तित हो गई है, यथा निम्नलिखित पक्तियो मे 'कहावा' 'सुखाई', तथा 'कहाउ' क्रिया-पद—

जेहि सरवर महँ हस न आवा। बकुली तेहि जल हस **कहावा**।[2]
मेरु धसमसइ समुँद **सुखाई**। बनखँड टूटि खेह मिलि जाई।[3]
नाभी लाभी पुन्य की कासी कुड कहाउ।[4]

कर्मवाच्य के इस वर्ग के अन्तर्गत नामधातुएँ भी आती है, यथा—

दसन देखि छबि बीजु **लजाना**।[5]
भोग करहिं सुख राजा रानी। उन्ह लेखे सब सिस्टि **जुड़ानी**।[6]
करी बेधि जनु भँवर **भुलाना**।[7]

(इ) उक्त रूपो के अतिरिक्त कर्मवाच्य मे कुछ संयोगात्मक रूप भी मिलते है। वस्तुत कर्मवाच्य के अन्तर्गत इन्ही रूपो का विशेष महत्व है। प्रमुख रूप से **-इअ,-इए,-इअै, -इअइ,-ईजै,-जिए,- जिअै,-जै** तथा **-इअति** प्रत्ययो का प्रयोग मिलता है, यथा—

- इअ - कत न **पाइअ** किए सँवागू।[8]
चाहिअ जैस मनोहर मिला सो मनभावत।[9]

एक स्थल पर अन्त्यस्वर-सकोच के कारण **-इअ** के स्थान पर **-ई** प्रत्यय का योग मिलता है—

जस भँडार ये मूसहिं चढ़हिं रैनि वे सैधि।
तस **चाही** पुनि एन्ह कहँ मारहु सूरी बेधि॥[10]

- इए - तासो दुख **कहिए** हो बीरा। जेहि सुनि कै लागै परपीरा।[11]

---

१. प० ३०७।६   २ प० ८४।२   ३ प० १४।६   ४ प० ३२१।८
५. प० ३०३।२   ६ प० ३३६।५   ७. प० ३१६।४   ८ प० ६०६।१
९. प० २७९।८   १०. प० २३८।८-९   ११ प० ३६१।१

चलहु बेगि आएसु भा जैसे । कत बोलावै **रहिए** कैसे ।[1]

- इअै - जबुक कहँ जो **चढिअै** राजा । सिघ साज कै चढिअ तौ छाजा ।[2]
मुहमद सती **सराहिअै** जरै जो अस पिय लागि ।[3]

- इअइ - पँडितन्ह राजहि दीन्ह असीसा । अब **कसिअइ** कचन औ सीसा ।[4]

- ईजै - पान फूल रस रग **करीजै** ।[5] एहि रे दगध हुँत उत्तिम **मरीजै** ।[6]

- जिए - घालि कसौटी **दीजिए** कनक कचोरी भीख ।[7]

- जिअै - भीखि भिखारिहि **दीजिअै** का बाँभनु का भाँट ।[8]

- जै - जेहि की रिसि मरिए रस **जीजै** ।[9]

- इअति - जौं वह दूजि कालिन्ह कै होती । आज तीजि **देखिअति** तसि जोती ।[10]

उक्त कर्मवाच्य रूपो मे कुछ आज्ञार्थ तथा कुछ वर्तमान काल अथवा सभावनार्थ मे प्रयुक्त है । अतिम रूप भूत सभावनार्थ का है ।

(ई) यत्र-तत्र मूल क्रिया के भूतकालिक कृदन्त के साथ 'जा' धातु के आवश्यक रूपो का प्रयोग कर सयुक्त कर्मवाच्य का प्रयोग किया गया है, यथा—

गगन नखत जस **जाहिं न गने** ।[11]
सहि न जाइ जोबन कर भारू ।[12] जौ पीसत घुन **जाइहि पीसा** ।[13]
दाइज कहौ कहाँ लगि **लिखि न जाइ** तत दीन्ह ।[14] **मेंटि न जाइ** लिखा पुरुबिला ।[15]

सयुक्त क्रिया

जायसी द्वारा प्रयुक्त सयुक्त क्रियाओ के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि उनकी रचना प्राय मूलकाल, सहायक क्रिया, कृदन्त, सज्ञा अथवा विशेषण मे से दो तत्वो की सहायता से हुई है । संयुक्त क्रिया के प्रथम रूप-तत्व के आधार पर जायसी द्वारा प्रयुक्त सयुक्त क्रियाओ का विभाजन निम्नलिखित प्रकारों मे किया जा सकता है—

(अ) पूर्वकालिक कृदन्त के योग से बनी – इस वर्ग के रूप सख्या की दृष्टि से सबसे अधिक है । कुछ उदाहरण इस प्रकार है—छपि गा[16], जागि उठिउँ ।[17]

(आ) सज्ञा के योग से बनी - रिस लागै,[18] डरु खाए ।[19]

---

१. प० ३०१।६ २. प० २४०।६ ३. प० ३५५।८ ४ प० ४४८।३
५. प० ३१९।७ ६ प० २५३।७ ७. प० २६८।८ ८ प० ४५९।८
९. प० ६०।५ १० प० ४४८।४ ११. प० १०४।५ १२ प० २२०।१
१३. प० १७०।५ १४. प० २८६।८ १५. प० १९८।७ १६. प० २८३।५
१७. प० १९७।९ १८. प० २६८।८ १९. प० १५५।१

(इ) क्रियार्थक सज्ञा के योग से बनी – है जाना,[१] लागी चहै ।[२]
(ई) वर्तमानकालिक कृदन्त के योग से बनी - पुकारत रही,[३] घटत जाई ।[४]
(उ) भूतकालिक कृदन्त के योग से बनी - भौ ठाढा,[५] चढा आवै ।[६]
(ऊ) मूल धातु के योग से बनी - सुन पावौ ।[७]

दो प्रधान क्रियाओं का संयोग : विभिन्न अर्थो को व्यक्त करने के लिए अधिकाशत दो प्रधान क्रियाओ का संयोग जायसी - काव्य मे मुख्य रूप से उपलब्ध होता है। प्राय **'आ', 'उठ', 'चह,' 'जा', 'दे', 'पर', 'पार', 'पा', 'रह', 'राख', 'लाग', 'ले', 'फिर', 'चल', 'कर'** तथा **'सक'** धातुओं के क्रिया रूपो के सयोग से अनेक सयुक्त क्रियाओ की रचना हुई है, यथा–

आब – पहिरि जराऊ ठाढि भै **बरनि न आवै** भाउ ।[८]
उतरि आउ मोहि मिलु सहदेसी ।[९]
उठब – **जागि उठिउँ** अस देखत सखि सो कहहु बिचारि ।[१०]
बूड़ि उठे सब तरिवर पाता ।[११]
चहब – औ जुग सारि **चहसि** पुनि **छुवा** ।[१२] **चाहहि** उलथि गगन कहँ **लागा** ।[१३]
जाब – सुनि वह बैन लाजि **छपि जाहीं** ।[१४] सौह निरखि नहि **जाइ निहारा** ।[१५]
देब – दारुन ससुर न **आवै देहीं** ।[१६] बिरह **जराइ दीन्ह** जसि होरी ।[१७]
परब – **सूझि न परत** पथ अँधियारा ।[१८]
अब सो मिलन कत सखी सहेलिनि **परा** बिछोवा **छूटि** ।[१९]
पारब – ओहिक चित्र कोइ **करै न पारे** ।[२०] उहै कटक जस **जोरै पारू** ।[२१]
पाब – अति सुकुमार सेज सो साजी **छुवै न पावै** कोइ ।[२२] को **देखै पावै** वह नागू ।[२३]
रहब – **बेधि रहा** सगरौं ससारा ।[२४] आँचर ओट रही छपि रानी ।[२५]
राखब – कुहू कुहू कोइल **करि राखा** ।[२६]
लागब – **तपै लाग** अब जेठ असाढी ।[२७] **होइ लाग** जेवनार सुसारा ।[२८]
लेब – **खेलि लेहु** जौं खेलहु आजू ।[२९] जोबन अहा **लीन्ह** सो **काढ़ी** ।[३०]
फिरब – **लेत फिरौं** मालति कर खोजू ।[३१]
जिन्ह जिन्ह के घर खेह हेराने **हेरत फिरहिं** ते खेह ।[३२]

---

१. प० १२६।२ २ प० ३०४।६ ३ प० ३५८।६ ४. प० ३५४।६
५ प० ४६६।१ ६. प० २७६।६ ७. प० ४०५।२ ८. प० २६७।८
९ प० ३७१।१ १० प० १९७।९ ११. प० ३५३।३ १२. प० ३१२।५
१३ प० १०३।३ १४. प० १०८।३ १५. प० २७९।७ १६. प० ६०।७
१७ प० ३३५।६ १८. प० ११।४ १९ प० २८१।८ २० प० ४६८।६
२१. प० ४६९।१ २२ प० २९१।८ २३ प० ११५।७ २४. प० १०४।४
२५. प० ३०४।२ २६ प० २९।५ २७. प० ३५६।१ २८. प० २८३।१
२९ प० ६०।४ ३०. प० ३६२।३ ३१ प० ४१६।१ ३२. प० ५१०।८

चलब – चढ़ि सो सिघासन **झमकत चली**।[१]

देखि सिंगार अनूप बिधि बिरह **चला** तब **भागि**।[२]

करब – **फिरा करौं** चहुँ चक्र पुकारा।[३] भा हलुवा घिउ **करै निचोवा**।[४]

सकब – **थम्भ** नाहिं **उठि सकै** न थूनी।[५]

केहि जुगुति कोइ **छुइ सकै** दुइ परबत की ओट।[६]

जायसी-काव्य मे तीन क्रियाओ के सयुक्त रूप नही मिलते है।

द्वैत–क्रियापद -पौन पुन्य अथवा क्रिया की निरन्तरता का भाव प्रकट करने के लिए ि क्रयाओ के पूर्वकालिक रूपो का द्वित्व किया गया है, यथा-

कँपि कँपि[७], **कुहुकि कुहुकि**[८], **लेइ लेइ**।[९]

कई क्रियापद युग्म रूप से भी प्रयुक्त हुए है, यथा—

बाजत गाजत,[१०] **लुरै मुरै,**[११] **जाना बूझा,**[१२] **खेलि हँसि**[१३] तथा **लपई झपई**[१४]।

पिछले पृष्ठो मे जायसी-काव्य मे प्रयुक्त क्रिया रूपो का विश्लेषण अनेक दृष्टियो से किया गया है। इस अध्ययन से कतिपय महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ लक्षित की जा सकती है।

(क) विविध कालो मे प्रयुक्त क्रियापदो की सयोगात्मकता, जो संस्कृत और प्राकृत आदि भाषाओ मे थी परन्तु जो अब साहित्यिक हिन्दी मे लुप्त हो गई है।

(ख) एक ही प्रकार के प्रत्ययो के योग से बने हुए रूपो को विभिन्न कालों मे प्रयोग करने की प्रवृत्ति, जो भले ही किसी व्यापकता की ओर सकेत करती हो किन्तु कही-कही जो अर्थ की दृष्टि से अस्पष्टता का कारण है।

(ग) सक्षेप के लिए प्राय धातु के मूल रूप का प्रयोग करने की प्रवृत्ति।

अव्यय

अव्यय के चार मुख्य भेद होते है— क– क्रियाविशेषण, ख–सम्बन्धवाचक, ग–समुच्चयबोधक और घ–विस्मयादिबोधक।[१५] जायसी–काव्य मे इन सभी प्रकारो के अव्ययो के प्रयोग पर्याप्त सख्या मे मिलते है।

क – क्रियाविशेषण – अर्थ की दृष्टि से इनके चार विभाग किए गये है— अ–स्थान वाचक, अ–कालवाचक, इ–परिमाणवाचक तथा ई–रीतिवाचक।

---

१ प० ६१२।६ २. प० २९८।८ ३. प० ६०२।७ ४ प० ५५०।३
५ प० ३५६।५ ६. प० ४८०।९ ७. प० ३५०।२ ८ प० ३५९।१
९ अख० ३८।५ १०. प० २७७।३ ११. प० ३२१।६ १२. प० ४५८।१
१३. ए० ५७९।६ १४ अख० ३८।३
१५ कामताप्रसाद गुरु : हिन्दी व्याकरण, नि० २१०।

स्थानवाचक क्रियाविशेषणो को भी दो वर्गों मे विभाजित किया गया है, च– स्थिति-वाचक तथा छ– दिशावाचक। जायसी की रचनाओ मे प्रथम भेद के अन्तर्गत आने वाले रूपों की सख्या द्वितीय वर्ग के रूपो की अपेक्षा अधिक है। स्थितिवाचक क्रियाविशेषण के अन्तर्गत निम्नलिखित अव्यय प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं—

अनत[१] ~ अनतहि[२] ~ अनतै,[३] आग[४] ~ आगु[५] ~ आगू[६] ~ आगे[७] ~ आगें,[८] इहाँ,[९] उहाँ,[१०] उपर[११] ~ ऊपर[१२] ~ उपराहीं,[१३] कहँ[१४] ~ कहाँ[१५] ~ काहाँ[१६] ~ कहुँ[१७] ~ कहूँ,[१८] खालें,[१९] जहँ[२०] ~ जहाँ[२१] ~ जाहाँ[२२] ~ जहवाँ[२३] ~ जहँवाँ,[२४] ढिगा,[२५] तर[२६] ~ तरहिं[२७] ~ तराहीं[२८] ~ तरहुँड़,[२९] तहँ[३०] ~ तहाँ[३१] ~ ताहाँ[३२] ~ तहवाँ,[३३] तहँवहि[३४] ~ तहीं,[३५] निकट,[३६] निअर[३७] ~ नियर[३८] ~ निअरें[३९] ~ नियरा[४०] ~ नियरे[४१] ~ नियरें[४२] ~ नीयरे[४३] ~ नेरे,[४४] पाछू[४५] ~ पाछे[४६] ~ पाछें[४७] ~ पाछै,[४८] पास,[४९] बाहर[५०] ~ बाहिर[५१] ~ बाहेर[५२] ~ बाहिरें,[५३]

---

१ प० २१८।२ २ अख० २५।६ ३ प० ३४६।२

४ चित डोलै नहिं खूटी टरई। पल पल पेखि आग अनुसरई। अख० ४४।६

'आग' स० अग्र से सम्बद्ध है। छन्द का निर्वाह 'आगु' पाठ से भी हो सकता था। 'आग' के अन्त मे उकार का मात्रा–लोप प्रतिलिपिकार की असावधानी अथवा मुद्रण की त्रुटि से सम्भव है।

५ म० बा० १८।७ ६. प० १३७।१ ७. म० बा० ६।७ ८. म० बा० २।१३

९ प० ४६२।८ १० म०बा० ९।८ ११. म०बा० १५।५ १२. अख० ३९।७

१३ अख० ३०।६ १४. म०बा० १८।५ १५. म०बा० ३।४ १६. आखि० १५।३

१७ म०बा० ४।१० १८. म०बा० १६।१० १९. म०बा० १।१४ २०. प० ४३०।१

२१. म०बा० १८।६ २२ आखि० २४।२ २३. प० ४०४।२ २४. प० १७।२

२५. म०बा० ४।१ २६ आखि० ११।७ २७. प० ४०।२ २८. आखि० ३०।५

२९ गरब गएउ तरहुँड़ सिर नाई। प० ६५३।४। (सं० तल+हि० हुँड़)। तुलसी ने 'अगहुँड़' अव्यय का प्रयोग किया है—

भयबस अगहुँड़ परइ न पाऊ। रामचरितमानस २।२५।१

३०. म०बा० १४।७ ३१. म०बा० १६।९ ३२. आखि० २४।२ ३३ म०बा० १५।९

३४ प० ४३०।५ ३५. म०बा० ८।११ ३६ प० २५५।५ ३७. प० १२०।३

३८ प० ३९२।२ ३९ प० १२१।९ ४०. प० ६४४।७ ४१ आखि० ३०।२

४२ प० ३५०।३ ४३. अख० ४१।९ ४४ आखि० ३४।२ ४५. प० ६१८।७

४६. आखि० २१।२ ४७ प० ४६९।७ ४८. आखि० २६।१ ४९. प० २३९।१

५०. प० २४५।९ ५१ प० ३९०।५ ५२. प० ५१५।६ ५३ प० ३४४।९

बिच[1] ~ बीच,[2] भीतर,[3] राँध[4] ~ राधां,[5] सनमुख[6] ~ समुंह[7] ~ सामुंह[8] ~ सामुहां[9] ~ सामुँहा[10] ~ सहुँ[11] ~ सों[12] ~ सोह[13] ~ सौंह[14] ~ सौंहे[15] ~ सौंहं ।[16]

इ – दिशावाचक – प्रमुख रूप से निम्नलिखित क्रियाविशेषणो का प्रयोग हुआ है—

कतहुँ[17] ~ कतहूँ,[18] कित,[19] जित,[20] दाहिन[21] ~ दहिनें,[22] दूरि[23] ~ दूरी,[24] बाएँ[25] तथा बेहर[26] (∠विघटित) ।

आ—कालवाचक—इन क्रियाविशेषणो के तीन भेद किए गये है—समयवाचक, अवधि-वाचक तथा पौन पुन्यवाचक । यहा इन तीनो भेदो के प्रमुख प्रयुक्त रूप दिए जा रहे है—

*समयवाचक - अगुमन[27] ~ अगुमना,[28] अब,[29] अबहिं[30] अबहीं,[31] अबहुँ[32] अबहूँ,[33] आगू[34] ~ आगे[35],

---

१ प० ७५।८ २ अख० १७।७ ३. म० बा० १३।५

४ तेहि डर राँध न बैठौं जनि साँवरि होइ जाउँ । प० ४४०।९

'राँध' तथा 'राँधा' शब्द समीप के अर्थ मे प्रयुक्त हुए है । जायसी ने इसी अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग अन्यत्र भी किया है—

राँध जो मत्री बोले सोई । प० २४०।१

'राँध' शब्द की व्युत्पत्ति स० 'रन्ध्र' से सम्भव है । 'रंध्र' अर्थात् विवर, छिद्र । डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने बताया है कि प्राचीन तथा मध्यकाल में (आशिक रूप मे आजकल भी) बातचीत करने की सुविधा के लिए कही-कही दो समीपवर्ती घरो के बीच की दीवार मे एक छेद या खिडकी (रन्ध्र) होती थी । इसी आधार पर 'राँध पडोसी' मुहावरा भी प्रचलित हो गया जिसका अर्थ निकटस्थ पडोसी था । मूल रूप मे सज्ञा होने पर भी 'रन्ध्र' का तद्भव रूप अव्ययवत् प्रयुक्त है । पद्मावत, पृ० २३० ।

५. प० १८१।६ ६. प० ५२६।८ ७. प० ३३४।२ ८. प० ६४७।७
९ प० १०९।४ १० प० ३८३।५ ११ प० ४७३।३ १२ प० १०२।१
१३. प० २३८।३ १४ प० ३८१।९ १५ प० ४१६।९ १६ प० ५२७।२
१७. प० ६३१।२ १८. प० ३४०।३ १९. प० ६०।६ २० प० ५६०।५
२१. प० १३५।५ २२ प० १३५।४ २३ प० २५५।८ २४. प० ३०२।१
२५ प० १३५।५ २६. प० ५४९।१ २७ प० २०३।१ २८. प० ६२३।१
२९. प० ४२५।५ ३०. प० २२०।४ ३१. प० ४४३।१ ३२ प० २२२।२
३३ प० २३१।१ ३४. प० १३६।७ ३५. प० ७१।६

*समयवाचक क्रियाविशेषण के अन्तर्गत आने वाले 'आगू', 'आगे' तथा 'आगें' आदि अव्यय स्थितिवाचक क्रियाविशेषणों के अन्तर्गत आने वाले 'आगू', 'आगे' तथा 'आगें' आदि रूपो से अर्थ की दृष्टि से भिन्न हैं । एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायेगा—

आज[१] ~ आजु[२] ~ आजू[३] ~ आजुहिं,[४] कब[५] ~ कबहुँ[६] ~ कबहूँ[७], कभी,[८] काली[९] ~ काल्हि[१०] ~ कालिन्ह[११] (भूतकाल), कालि[१२] ~ काल्हि[१३] (भविष्य), जब,[१४] जौ,[१५] जबहि[१६] ~ जबहिं[१७] ~ जबहीं,[१८] जहिया,[१९] ततखन[२०] ~ तेतखन,[२१] तब[२२] ~ तबै[२३] ~ तबहिं[२४] ~ तबहीं,[२५] तबहुँ[२६] ~ तबहूँ,[२७] तहिअँ,[२८] तुरत[२९] ~ तुरित[३०] ~ तुरतै,[३१] नियान[३२] ~ निआना[३३] ~ नियाना,[३४] पहिलि[३५] ~ पहिलें,[३६] पहिलेहुँ[३७] ~ पहिलेहिं,[३८] प्रथम,[३९] ~ प्रथमहि,[४०] ~ परथमैं,[४१] पाछु[४२] ~ पाछे[४३] ~ पाछें,[४४] पुनि,[४५] फिर[४६] ~ फिरि[४७] फेरो[४८] ~ फेरि[४९] ~ फुनि[५०] (फिर+पुनः के सयोग से उत्पन्न), बहुरि[५१] तथा बहोरा[५२]।

अवधिवाचक—

अब लगि[५३], अब लहि[५४], असरारा[५५], अहनिसि[५६], आजु काल्हि[५७], कब लगि[५८], जब लगि[५९], जब लहि[६०], जौ लगि[६१], जौं लगि[६२], जौ लहि[६३], जौं लहि[६४], तब लगि[६५], तौ लहि[६६], दिन राती[६७],

---

समयवाचक – सुखी चित जोरब धन करना। यह न चित आगे है मरना। प० ७१।६

स्थितिवाचक – पलना अहै पाल चलि आगे तीर तीर कस टोवसि रे। म० बा ६।७ दोनो वर्गों के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले 'पाछू', 'पाछे' आदि अव्ययो के प्रयोग मे भी यही अन्तर है।

१ आखि० ५५।४	२ आखि० ५५।६	३ प० ४४७।३	४ प० ६३।६
५. आखि० १३।५	६ म० बा० १६।१०	७ आखि० ५१।८	८ म०बा० १३।१२
६ प० १६७।३	१०. प० ४४८।५	११ प० ४४८।४	१२ प० ४०३।६
१३ प० ४४७।३	१४ प० १३६।३	१५ प० ५०।३	१६ प० ५६७।३
१७ प० ४२७।४	१८ आखि० १४।२	१६. प० ३६३।२	२० प० ६५।५
२१ प० ३६६।३	२२ म० बा० ८।१४	२३ आखि० ४१।६	२४. प० २०५।१
२५ प० १५५।७	२६ प० ७८।४	२७ प० ६०८।८	२८ प० ६८।४
२६ आखि० २४।२	३० प० ३६३।५	३१. अख० ४४।६	३२. प० ६१०।३
३३ प० ५३६।१	३४ प० ३८४।७	३५ प० २२४।१	३६. प० २०३।२
३७ अख० ५।३	३८. प० १२२।४	३६. प० ५०।४	४० प० ६६।२
४१. प० ४२५।८	४२. प० १२८।६	४३ आखि० १६।३	४४ प० ८६।४
४५. प० २०८।४	४६. प० ३७६।२	४७ प० ६७।७	४८ प० ६।७
४६ प० ६६।१	५०. म० बा० १५।१२	५१ प० ४६०।४	५२ प० १०३।४
५३. प० ४२४।१	५४ प० २२२।२	५५. आखि० १८।५	५६ प० ६७।६
५७ प० १६८।६	५८. प० १२१।६	५६. प० ५६।४	६० प० ६४५।४
६१. प० ६४७।१	६२. प० ४०६।६	६३. अख० ३७।७	६४ प० ३७५।८
६५ प० २२६।५	६६. अख० ३७।७	६७ प० ४०७।४	

नित[१] ~ निति[२], नितहिं[३] ~ नितिहिं[४], निंत[५] ~ निंता[६], निसि दिन[७], निसि बासर[८], बराबर[९] (लगातार के अर्थ में), **राति देवस[१०], रैनि दिन[११], सदा[१२]** ।

पौनःपुन्यवाचक— इस वर्ग के अन्तर्गत वे क्रियाविशेषण आते है जिनमे समय-सूचक शब्दो की प्रत्यक्ष आवृत्ति अथवा प्रति के योग से अप्रत्यक्ष आवृत्ति हो । जायसी-काव्य मे इस प्रकार के क्रियाविशेषण अधिक नही है । प्राप्त होने वाले प्रयोगो मे भी प्रधानता प्रत्यक्ष आवृत्ति वाले क्रियाविशेषण पदो की है । प्रयुक्त प्रमुख रूप इस प्रकार है–

खिन खिन[१३], खिनहि खिन[१४], घरी घरी[१५], दिन दिन[१६], पहर पहर[१७], पहरहि पहर[१८], फिरि फिरि,[१९] बार बार[२०], बारहि बार[२१] ।

'प्रति' शब्द के विदेशी पर्यायवाची 'हर' के योग से निर्मित एकाध प्रयोग भी मिलते है, यथा–'**हर फेरा**[२२] । इस प्रकार के प्रयोगो को सामासिक क्रियाविशेषण' (अव्ययीभाव समास) के अन्तर्गत रखा जा सकता है ।

इ–परिमाणवाचक क्रियाविशेषण–जायसीकृत प्रमुख प्रयोग इस प्रकार है–

अधिक[२३], अधिकौ[२४], आदी[२५] (बिलकुल के अर्थ मे), **कछु[२६], टुक[२७], बहुत[२८]** तथा **सुठि[२९]** ।

ई–रीतिवाचक क्रियाविशेषण–विवेचन की सुविधा के लिए इन्हे तीन वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है–अ–**प्रकारवाचक,** आ–**कारणवाचक** तथा इ–**निषेधवाचक** । यहाँ उक्त सभी वर्गो के प्रमुख प्रयुक्त अव्यय सकलित है—

प्रकारवाचक–

अँबिरथा[३०], अचक[३१] ~ अचाका[३२], अस[३३] ~ असि[३४] ~ अइसि[३५] ~ अइसे[३६] ~ अैसे[३७], अैस[३८] ~ ऐसन[३९], अैसेहिं[४०], इमि[४१], उताइल[४२] (शीघ्रता से), **कस[४३], किमि[४४], कैसे[४५] ~**

---

१. प० ४३६।५	२ प० ६७।८	३ प० ८५।८	४ अख० १६।८
५ प० ३७२।८	६ प० २२५।३	७ प० ३३६।६	८ प० ४४१।३
६ अख० ३८।४	१०. प० ६५१।३	११ प० ४५८।१	१२ प० ५८७।६
१३ म०बा० १३।३	१४. प० २४६।४	१५ प० ४२।३	१६. प० ५०।६
१७ प० ४२।२	१८ प० ४२।७	१६ प० ४७४।३	२० प० ३२०।८
२१. प० ४०२।३	२२ प० ५६२।७	२३ प० २४६।६	२४ प० १६५।२
२५. प० १६०।१	२६ म०बा० १५।७	२७ प० २६६।६	२८ प० ७७।८
२६ प० ७७।६	३०. प० १५२।६	३१ प० ५१०।४	३२ प० ५१०।१
३३. प० १०५।६	३४. प० १०५।६	३५ प० २३०।७	३६. म०बा० ६।१
३७ म०बा० ८।१३	३८ प० २३३।२	३६ अख० ३८।४	४०. प० ६४।७
४१. प० १०४।१	४२ प० २०।१	४३ प० २०५।२	४४. म०बा० ४।१०
४५. आखि० २७।७			

कैसें[1] ~ कैसैं[2], कैसेहुँ[3], जस[4] ~ जसि[5], जिमि[6], जैंस[7] ~ जैंसि[8], जैसे[9] ~ जैसै[10] ~ जइसें[11], तस[12] ~ तसि[13], तिमि,[14] तैंस[15] ~ तैंसे[16], तैसें[17], द्रूत[18] (द्रुत), निधरक[19], बरियाई[20] (हठात्), बाँझ[21] (व्यर्थ >बज्झ>बाझ, बांझ), बादि[22] (व्यर्थ), बिहून[23], बेगि[24] ~ बेगी[25] तथा बेगिहि[26] ।

कारणवाचक–

कत[27], का[28], काँय[29], काह[30] ~ काहा[31], काहे[32], काहे क[33], काहे कों[34], कित[35] ~ कित्त[36] किन[37] तथा तातें[38] ।

निषेधवाचक– जनि[39] ~ जिनि,[40] न[41], ना[42], नहिं[43] ~ नाहिं[44] ~ नाही[45], नाहिन[46] तथा नातर[47] ।

रीतिवाचक क्रियाविशेषणो मे उल्लिखित प्रयोगो के अतिरिक्त ऐसे कतिपय प्रयोगो को भी स्थान दिया जा सकता है जिनमे 'एहि', 'जेहि', 'केहि' तथा 'तेहि' आदि विविध सार्वनामिक विशेषणो के साथ जुड कर 'बिधि' अथवा 'भॉति' शब्द क्रियाविशेषण के समान प्रयुक्त हुए है, यथा–

एहि बिधि,[48] एहि भाँति,[49] केहि बिधि,[50] केहि भाँति,[51] जेहि बिधि,[52] तेहि बिधि,[53] तेहि भाँति[54] तथा तेहि भाँती[55] आदि ।

जायसी ने कुछ ऐसे रीतिवाचक क्रियाविशेषणो का भी प्रयोग किया है जो तीनो प्रमुख भेदो–प्रकार, कारण तथा निषेध के अन्तर्गत नही आते । यथा—**अवसि[56]** तथा **औसि[57]** (अवश्य) । इन्हे निश्चयवाचक की सज्ञा दी जा सकती है ।

(ख) **सम्बन्धवाचक–** इस प्रकार के अव्यय बहुधा संज्ञा अथवा संज्ञा के समान प्रयोग

---

१. म०बा०३।८ २ म०बा० २।१० ३. प० ६२०।१ ४. प० २३६।६
५ प० ४२८।१ ६ प० २३४।४ ७ प० ७०।६ ८ प० ३२७।५
९ प० ४६४।४ १०. प० ३९१।५ ११ म०बा० ३।१४ १२. प० २२८।७
१३ प० ५६६।६ १४ प० ६०६।२ १५ प० २३५।१ १६ आखि० ३०।३
१७ प० ५७९।६ १८ प० ५८६।१ १९ आखि० २१।७ २०. प० २५१।३
२१ प० ४३६।८ २२ प० ३६७।२ २३ प० १५२।५ २४ प० ६५।६
२५ प० ६४७।५ २६ प० ५४०।८ २७. प० २०२।१ २८ प० ६०७।८
२९ प० ५३८।९ ३० प० ४४९।२ ३१ प० ४३९।४ ३२ प० ३६२।७
३३. प० ७१।४ ३४ प० ९८।४ ३५ प० ४४९।६ ३६ प० २२।९
३७. प० ३४१।९ ३८. प० २७२।९ ३९ प० २२७।५ ४० प० २५९।९
४१. प० ८०।५ ४२ प० ४०३।१ ४३ प० २२३।३ ४४ प० ६२५।८
४५. प० ७२।९ ४६ प० ३४८।८ ४७ म०बा० १८।१२ ४८ प० ५३२।४
४९. प० ३६१।९ ५० प० २२३।३ ५१ प० ३२३।४ ५२ प० १६५।८
५३. प० २१७।४ ५४ प० ३०६।५ ५५ प० २९२।४ ५६. प० ३८३।३
५७. प० ५८५।६

मे आने वाले शब्द के पीछे आकर उसका सम्बन्ध वाक्य के किसी अन्य शब्द से जोड़ते है। प्रयोग के आधार पर इन्हे दो वर्गो मे बाँटा जा सकता है—अ - सबन्द्ध तथा आ - अनुबद्ध। सम्बद्ध सम्बन्धसूचक अव्यय सज्ञाओं की विभक्तियो के पश्चात् आते है किन्तु कभी-कभी इनका प्रयोग विभक्ति - चिह्न न होने पर भी होता है। इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख प्रयुक्त अव्यय निम्नलिखित है—

अस,[१] आरि[२] (समीप), जस[३] ~ जसि,[४] जेउँ[५] ~ ज्यो,[६] जैस,[७] तस,[८] निसाथौं[९] पास,[१०] बाज[११] ~ बाजु,[१२] बिन[१३] ~ बिना[१४] ~ बिनु,[१५] बराबरि[१६], भरि[१७], संग,[१८] सिउ[१९] (समम्), सम,[२०] समान,[२१] सरसि,[२२] साथ[२३] ~ साथा[२४] ~ साथाँ।[२५]

अनुबद्ध सम्बन्धसूचक अव्यय सज्ञा अथवा सज्ञा के समान उपयोग मे आने वाले शब्दो के विकृत रूपो के साथ प्रयुक्त होते है। जायसी की रचनाओ मे इनके उदाहरण भी मिलते है, यथा—

आगें—आइ बात तेहि **आगें** चली।[२६]

ताईं—पहुँचि सकै को पावन्हि **ताईं**।[२७]

(ग)—**समुच्चयबोधक**— इसके अनेक भेद हैं, यथा— सयोजक, विभाजक, विरोधदर्शक, सकेतवाचक तथा स्वरूपवाचक आदि। इन सभी भेदो के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख अव्ययो का प्रयोग जायसी-काव्य मे प्राप्त होता है, यथा—

व्युत्पत्ति के अनुसार सम्बन्धवाचक अव्यय दो प्रकार के है, १—मूल, २—यौगिक। हिन्दी और उसकी अन्य बोलियो मे मूल सबधवाचक अव्यय बहुत कम है, जैसे—ताईं, नाईं, बिना आदि। अधिकाश सबधवाचक अव्यय संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया आदि अन्य शब्दो से बने है।

१. प० ३९४।५ २ प० ४३४।६ ३ प० ३४५।५ ४ प० ४५१।१
५. प० ३४५।५ ६ प० ४२०।६ ७ प० ४६५।८ ८ प० ३४२।१
९. प० १२१।७ १०. प० ५४।४ ११. प० २।६ १२. प० १६६।६
१३. प० ७६।६ १४ प० ५९४।२ १५ प० ९६।४ १६. प० ३७१।४
१७. म०बा० १३।६ १८ प० ५४।४ १९. प० ११८।६ २०. प० ६११।२
२१. प० १६८।४ २२. प० ६१४।७ २३. प० ५८।५ २४ प० २९२।५
२५. प० १७६।७ २६ प० ७९।२ २७. प० ११८।७

सयोजक– अउ[१] ~ ओ[२] ~ औ[३] ~ और[४] ~ औरु ।[५]

मुख्य प्रयुक्त रूप 'औ' है ।

विभाजक–कहुँ ''की,[६] का 'की,[७] काहू'''का,[८] कि,[९] कै,[१०] की'''की,[११] कै'''कै,[१२] कहुँ,[१३] न ''न,[१४] नत,[१५] ना ··· 'न,[१६] ना'·····ना[१७] नाहिं त,[१८] नाहिं तो,[१९] नाहिं तौ[२०] तथा भावै'' भावै ।[२१]

विरोधदर्शक– पै ।[२२]

सकेतवाचक[२३]–जौ······तौ,[२४] जौं पै,[२५] जौं,[२६] त,[२७] तो,[२८] तौ[२९] तथा बरु[३०] ।

स्वरूपवाचक–जनु,[३१] जनहु,[३२] ~ जनहुँ[३३] जानु,[३४] जानहु[३५] ~ जानहुँ,[३६] मनहुँ,[३७] मानहु[३८] ~ मानहुँ ।[३९]

(घ) विस्मयादिबोधक—

अनुमोदनसूचक–अस्तु अस्तु[४०] (क्रिया का विस्मयादिबोधक के समान प्रयोग), अनु ।[४१]

स्वीकारबोधक– हाँ ।[४२]

तिरस्कारबोधक– अरे,[४३] रे ।[४४]

---

१. प० ६।६ २ प० ६३६।४ ३ प० ७०।५ ४ अख० ६।४
५. प० १५६।८ ६ प० ६०।६ ७ प० २३१।६ ८ प० ४६२।६
९. प० ५८।६ १० प० ४६६।३ ११ आखि० २०।७ १२ प० २०७।८
१३. प० २६५।२ १४. प० ६८।८ १५ म०बा० ११।४ १६. प० ४५३।७
१७. प० ४६६।३ १८. प० ६३।७ १९ प० ६४२।८ २० प० ८२।४
२१ प० १५२।६ २२. प० ८।२
२३ इन अव्ययो को सकेतवाचक कहने का कारण यह है कि पूर्व वाक्य मे जिस घटना का वर्णन रहता है उससे उत्तर वाक्य की घटना का सकेत पाया जाता है। काव्य मे गद्य की भाँति क्रमबद्ध वाक्य-विन्यास रहना आवश्यक नही है अत वहाँ अन्वय के उपरान्त ही इन अव्ययो के प्रयोग पर विचार करना चाहिए। यह भी उल्लेखनीय है कि यह अव्यय प्राय. जोडे मे प्रयुक्त होते हैं किन्तु कविता मे छन्दोऽनुरोध से कभी-कभी एक का लोप भी रहता है।
२४. प० २३२।७ २५ प० २१३।२ २६ प० ७०।४ २७ प० ५३४।३
२८. प० ७६।७ २९ प० २६२।५ ३० प० १४१।१ ३१. प० ३३।८
३२. प० ४८।६ ३३. प० ८२।५ ३४. प० १६७।५ ३५. प० ५१।२
३६. प० १०१।५ ३७ प० १६६।६ ३८. प० ५४।७ ३९. प० ५२८।७
४०. प० २७४।१ ४१ प० १८१।६ ४२ प० १४६।५ ४३. प० २०२।१
४४. प० १३२।४

शोकबोधक – हा,[१] हा हा,[२] तराहि तराहि[३] (क्रिया का विस्मयादि बोधक के समान प्रयोग)।
हर्षबोधक – धनि[४] ~ धन्नि[५] ~ धन्य[६]।
सम्बोधनबोधक – ए,[७] ऐ,[८] रे,[९] हो,[१०] अहो।[११]
स्फुट – नौजि।[१२]

निश्चयबोधक रूप : अवधी मे दो प्रकार के निश्चयबोधक रूप पाए जाते हैं, केवलार्थक और समेतार्थक। जायसी-काव्य मे इन दोनो के प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रियाविशेषण आदि के साथ प्रयुक्त हुए है।

समेतार्थक – समेतार्थक निश्चयबोधक बनाने के लिए जायसी ने –हु (–उ) अथवा –हूँ (–ऊँ) अथवा–हुँ (–उँ) प्रत्यय का प्रयोग किया है—

अ – संज्ञा– जरमहु।[१३]
आ – सर्वनाम – महूँ,[१४] हमहूँ,[१५] सोउ,[१६] कवनौ,[१७] तेहु।[१८]
इ – विशेषण – छहु,[१९] बारहु,[२०] चारिउ,[२१] सातों।[२२]
ई – क्रिया – मुएहुँ,[२३] मुएहु,[२४] मिलेहुँ।[२५]
उ – क्रियाविशेषण – अबहुँ,[२६] अबहूँ,[२७] कतहुँ,[२८] कैसेहुँ।[२९]

केवलार्थक – प्राय. –हि या –हिं (–इ, –इँ) का योग किया गया है, यथा—

अ – सज्ञा – घटहि मॉह,[३०] गावँहि गाऊँ।[३१]
आ – सर्वनाम – उहइ,[३२] ओहिं,[३३] सोइ,[३४] सबै।[३५]
इ – विशेषण – एकइ,[३६] एकहिं।[३७]
ई – क्रिया – जियतहिं,[३८] होतहि।[३९]
उ – क्रियाविशेषण – अबहि,[४०] अबहीं,[४१] आजुहिं,[४२] तहिअै।[४३]

---

१ प० १२१।२ — २ प० ३५७।७ — ३. प० ११६।६ — ४. प० ६२।७
५ प० ३२६।५ — ६ प० ४८१।२ — ७ प० ४८७।१ — ८. प० ४०७।१
६ प० १२८।८ — १०. प० ६२।८ — ११. प० ३६४।६ — १२. प० ३६६।२
१३. प० १७।६ — १४ प० ४८४।६ — १५ प० १३१।२ — १६. प० १५।६
१७ प० ४५।३ — १८. प० २६।२ — १६ प० ४४।६ — २०. प० ४४।६
२१. प० १२।६ — २२ प० १४१।६ — २३ प० ३११।६ — २४. प० ३६८।६
२५. प० २५५।५ — २६. प० २२२।२ — २७. प० १०।६ — २८. प० ३६।७
२६. प० ६२०।१ — ३०. प० १२४।५ — ३१ प० १३४।६ — ३२. प० ५।१
३३. प० १५१।४ — ३४. प० २८।७ — ३५ प० २८।७ — ३६ प० २१।३
३७. प० २२६।३ — ३८. प० २१६।६ — ३६. प० ३७८।३ — ४० प० २२०।४
४१. प० ४४३।१ — ४२ प० ६३।६ — ४३. प० ६८।४

५

शब्द-रचना

भाषा के क्षेत्र मे प्रवेश करने के लिए शब्द को कुछ व्याकरणिक प्रत्ययो से युक्त होना पडता है और तब वह 'पद' की सज्ञा धारण कर लेता है, किन्तु स्वतंत्र रूप से शब्द भाषा की ऐसी इकाई है जो बाह्य-जगत् से अपना सीधा प्रतीकात्मक सम्बन्ध रखती है। यही उसका प्रकृत स्वरूप है। प्रकृति की दृष्टि से शब्दो को तीन वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है—(क) मूल शब्द, (ख) यौगिक शब्द तथा (ग) समास शब्द। मूल शब्द वस्तुत भाषा की अविभाज्य इकाई है। इसके अन्तर्गत क्रिया तथा रूढ शब्दो का वह् प्रकृति-तत्व आता है जो अपना ध्वन्यात्मक परिवर्तन किये बिना ही स्वतत्र शब्द के रूप मे भाषा मे व्यवहृत होता है और अर्थ की दृष्टि से जिसका विभाजन सम्भव नही है, यथा—पढ्, लिख्, घूम्, काम्, चाम्, धाम् आदि। यौगिक शब्द प्रकृति और प्रत्यय के योग से बनने वाले शब्द है, यथा- सरस, अनजान, लुहार, पचायत, थकावट आदि। समास-शब्दो की रचना दो या दो से अधिक मूल शब्दो के सयोग से होती है, यथा—रात दिन, साँझ सबेरा, माँ बाप, भाग-दौड़ आदि। प्रस्तुत अध्याय मे जायसी की भाषा से सम्बद्ध यौगिक तथा समास-शब्दो की रचना-प्रक्रिया पर विचार किया जा रहा है।

ऊपर कहा जा चुका है कि प्रकृति मे प्रत्यय के योग से यौगिक शब्द-रचना होती है। प्रत्ययो को दो प्रमुख वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है—१—व्याकरणिक, २—व्युत्पादक। जो प्रत्यय शब्द मे जुडकर वाक्य के अन्तर्गत व्याकरणिक रूपो की सिद्धि कराते है, वे व्याकरणिक प्रत्यय कहलाते है। इन प्रत्ययो का विश्लेषण तथा विवेचन 'रूप-विचार' के अन्तर्गत किया जा चुका है। व्युत्पादक प्रत्यय किसी धातु या प्रातिपदिक के पूर्व अथवा पश्चात् जुडकर दूसरे प्रकार की धातु अथवा प्रातिपदिक की रचना करते है। ये व्युत्पादक प्रत्यय दो प्रकार के है, १—पूर्व-प्रत्यय, २—पर-प्रत्यय। पूर्व-प्रत्ययो का योग धातु अथवा प्रातिपदिको के पूर्व होता है और परप्रत्यय धातु अथवा प्रातिपादिको के पश्चात् जुडते है। यहाँ पहले जायसी की भाषा मे उपलब्ध पूर्व-प्रत्ययो का विवेचन प्रस्तुत है।

पूर्व-प्रत्यय-विचार : हिन्दी मे सस्कृत के उपसर्ग— अनु, अभि आदि—तथा कतिपय तत्सम शब्द—पुरा, प्राक्, प्रादुर्, आदि— पूर्व-प्रत्ययो के रूप मे प्रयुक्त मिलते है। सामान्यतः उक्त प्रकार के तत्सम पूर्व-प्रत्ययो का व्यवहार सस्कृत तत्सम शब्दों के साथ मिलता है किन्तु यत्र-तत्र वे हिन्दी तद्भव तथा हिन्दी मे व्यवहृत विदेशी शब्दो के साथ भी जुडे दिखाई

पडते है। इनके अतिरिक्त कुछ तद्भव पूर्व-प्रत्यय भी हिन्दी की शब्द–रचना मे लक्षित किए जा सकते है। तद्भव प्रत्ययो से तात्पर्य उन प्रत्ययो से है जो प्रा० भा० आ० भा० से म० भा० आ० भा० मे होकर हिन्दी मे आए है। जायसी की भाषा मे तत्सम तथा तद्भव दोनों प्रकार के पूर्व-प्रत्यय प्राप्त होते है। इनमे से अधिकाश तत्सम पूर्व-प्रत्यय अवधी की प्रकृति के अनुसार सजीव नही कहे जा सकते है। कतिपय पूर्व-प्रत्ययो के सम्बन्ध मे यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि कवि ने उनका प्रयोग पूर्व-प्रत्यय रूप मे न किया होगा वरन् उन्हे शब्द का अभिन्न अग मान कर परम्परागत प्रचलित रूप मे ही स्वीकार कर लिया होगा, यथा– (अनु–) **अनुसरई;**[१] (अति–) **अतियंत**[२]; (अधि–) **अधिकारा,**[३] (अप–) **अपजस,**[४] (अभि–) **अभिमानू,**[५] (अव–) **अवगुन;**[६] (आ–) **आगम;**[७] (उप–) **उपदेस,**[८] (दुर्–) **दुर्जन,**[९] (निर्–, निस्–) **निरास,**[१०] **निस्चल;**[११] (प्र–) **परगट**[१२] तथा (सम्–) **संपुट**[१३] आदि। कुछ शब्दो मे तत्सम पूर्व–प्रत्ययो के अवशिष्ट चिह्न मिलते है जिन्हे पूर्व–प्रत्यय रूप मे अलग करना सहज सम्भव नही है – यथा—(आ–) **अरंभ,**[१४] (उत्–) **उकठा;**[१५] (नि–) **निबरैं;**[१६] (निर–) **निसरौं**[१७] आदि। कवि की शब्द–रचनात्मक प्रक्रिया की झलक इने–गिने पूर्व-प्रत्ययो के प्रयोग मे ही मिलती है। ये पूर्व-प्रत्यय सज्ञा, विशेषण, क्रिया तथा क्रियाविशेषण आदि के पहले जुडे है और इनके योग से प्रकृत्यर्थ मे परिवर्तन आ गया है। सामान्यत पूर्व-प्रत्यय सर्वनाम के पहले प्रयुक्त नही मिलते किन्तु अपवाद–स्वरूप **निरापन** (**निर्+आपन**) प्रयोग एक स्थल पर मिलता है—

जौं लगि जिउ आपन सब कोई। बिनु जिउ सबै निरापन होई।[१८]

व्युत्पादक रचना की दृष्टि से जायसी की भाषा मे प्राप्त होने वाले पूर्व-प्रत्ययो को प्रमुख रूप से तीन वर्गो मे रखा जा सकता है– (क) वे पूर्व-प्रत्यय जो सज्ञा, विशेषण अथवा धातु के पहले जुड कर उसी कोटि की शब्द-रचना करते है जिसमे ये जुडते हैं, (ख) वे पूर्व-प्रत्यय जो सज्ञा, विशेषण अथवा धातु आदि के पूर्व जुडकर भिन्नवर्गीय शब्द-रचना करते है, (ग) वे पूर्व-प्रत्यय जो सज्ञा, विशेषण, क्रिया अथवा क्रियाविशेषण के पहले जुड कर समवर्गीय और भिन्नवर्गीय दोनो प्रकार की शब्द रचना करते है।

पूर्व-प्रत्ययो का यौगिक-विधान तथा व्युत्पन्न शब्दावली: पहले कहा जा चुका है कि जायसी की भाषा मे उपलब्ध पूर्व-प्रत्ययो का व्यवहार सज्ञा, विशेषण, क्रिया तथा क्रिया-विशेषणो के पूर्व हुआ है और इनके योग से सज्ञा, विशेषण, क्रिया तथा क्रियाविशेषणो की रचना हुई है। जायसी को भाषा मे कई प्रकार के यौगिक विधान मिलते है। यहाँ यह यौगिक–विधान उदाहरणो सहित प्रस्तुत है —

---

१. अख० ४४।६ २ प० ४१४।८ ३. म०बा० २०।१ ४ प० ४५०।५
५ प० १७६।६ ६ अख० १६।६ ७. प० २२६।५ ८ प० २००।६
९ प० ३५६।५ १० प० ५।७ ११ प० ५३३।८ १२ प० ५।४
१३ प० ५६२।१ १४ आखि० ५।५ १५ प० १६६।४ १६ प० ६४५।६
१७. प० १६५।६ १८ प० १६६।४

१.	पूर्व-प्रत्यय		+	संज्ञा		>	संज्ञा	अर्थ
	अ –			नियाउ			अनियाउ[१]	'हीनता'
	अन –			रुचि			अनरुचि[२]	'अभाव'
	अै –			गुन			अैगुन[३]	"
	औ –			गुन			औगुन[४]	"
	कु –			पथ			कुपथ[५]	'हीनता'
	दु –			भाग्य	(~ हाग)		दुहाग[६]	"
	दो –			"	"		दोहाग[७]	"
	नि –			छोह			निछोह[८]	'अभाव'
	वि –			गध			बिगध[९]	"
	स –			पूत			सपूत[१०]	'श्रेष्ठता'
	सिर–	(फा० सर–)		ताज			सिरताज[११]	"
	सु –			रितु			सुरितु[१२]	"
२.	पूर्व-प्रत्यय		+	सज्ञा		>	विशेषण	अर्थ
	अ –			मोल			अमोल[१३]	'अभाव'
	अन–			पत्ता			अनपत्त[१४]	"
	उ –			थल			उथला[१५]	'हीनता'
	औ –			घट			औघट[१६]	"
	दु –			केलि			दुहेली[१७] (विभक्ति-प्रत्यय सहित)	"
	नि –			भरोसा			निभरोसी[१८]	"
	बे –	(फा० बे–)		करार			बेकरार[१९]	"
	स –			भाग्य			सभागे[२०]	'श्रेष्ठता'
	सु –			रग			सुरग[२१]	"
३	पूर्व-प्रत्यय		+	विशेषण		>	विशेषण	अर्थ
	अ –			कूट			अकूट[२२]	'अभाव'
	अन–			भला			अनभला[२३]	"
	ओन–	(~ उन)		बीस	(~ इस)		ओनइस[२४]	'एक कम'
	नि –			गुनी			निगुनी[२५]	'हीनता'

---

१. प० ६२।६   २ प० ६५३।३   ३ प० ७२।८   ४ आखि० ४३।७
५ प० ८८।५   ६ अख० २३।७   ७ प० ८६।२   ८ प० ३७६।५
६. आखि० १७।३   १० प० ३६२।४   ११ प० ४६६।२   १२. प० ३३५।१
१३ प० १०६।१   १४ प० ३५२।३   १५ म०बा० १।४   १६. म०बा० १।११
१७ प० २५४।२   १८ प० ३।८   १९. प० ३६६।८   २० प० २८३।४
२१. प० ४३४।३   २२ प० १६६।१   २३. प० ६६।३   २४ प० ३६३।१
२५. प० ७६।५

४.	पूर्वप्रत्यय	+	क्रिया	>	विशेषण	अर्थ
	अ –		मेट्		अमेट[1]	'अभाव'
	अन–		चाख्		अनचाखे[2]	"
	कु –		भाख्		कुभाखी[3]	'हीनता'
	नि –		बहुर्		निबहुर[4]	'अभाव'
	स –		जग्		सजग[5]	'श्रेष्ठता'
	सु –		भर्		सुभर[6]	"
५	पूर्वप्रत्यय	+	क्रिया	>	क्रियाविशेषण	अर्थ
	बि –		सँभार्		बिसँभार[7]	'अभाव'

हिन्दी के तद्भव पूर्व-प्रत्ययो मे अध–, बिन–, भर– तथा हर– आदि की भी गणना की जाती रही है। जायसी-काव्य मे इनसे सम्बद्ध प्रयोग भी मिलते है, यथा–

अध – अधजर,[8] बिन– बिनपूँछे।[9]
भरि – भरिपूरि,[10] हर (फा० हर) हर फेरा।[11]
संस्कृत का 'सह' शब्द भी पूर्व-प्रत्ययवत् प्रयुक्त है सहदेस,[12] सहगवन,[13] सहलगी।[14]

पर-प्रत्यय-विचार तत्सम पूर्व–प्रत्ययो के समान ही तत्सम पर-प्रत्यय भी हिन्दी मे उल्लेखनीय सख्या मे मिलते है। जायसी की भाषा मे भी ये प्रत्यय प्रयुक्त है किन्तु इनके प्रयोग मे कोई विशेषता नही है। तद्भव तथा देशी पर-प्रत्ययो की दृष्टि से कवि की भाषा अवश्य ही महत्वपूर्ण है। ये प्रत्यय दो प्रकार के हैं, कृत् तथा तद्धित। पहले कृत–प्रत्ययो का विवेचन प्रस्तुत है। जायसी ने भाववाचक सज्ञा तथा अन्य सज्ञाओ की रचना मे इनका प्रयोग किया है। भाववाचक सज्ञा की रचना मे प्रमुख रूप से **–अ, – अंत, – आ, –आई, – आउ, – आन, – आर, – आव, – आवन, – आवा, – आस, – ई, – एरा, – औती, – औनी, –की, – ति, – न, – ना,– नि, – नी** तथा – वा परप्रत्यय प्रयुक्त है, यथा–

धातु	+	पर– प्रत्यय	>	भाववाचक सज्ञा
बोल्		– अ		बोल।[15]
चल्		– अ		चाल[16] (धातु के उपान्त्य अ की वृद्धि)।
गह्		– अत		गहत[17] (पकड)।
फेर्		– आ		फेरा।[18]
पसार्		– आ		पसारा।[19]

---

१. प० ३०१।६ २. प० ११३।७ ३. प० ८५।७ ४ प० ५८१।३
५. प० ६२१।४ ६ प० १०३।८ ७. प० ३२२।३ ८. प० १६०।६
९. प० ७६।७ १०. प० ३७।६ ११. प० ५६२।७ १२. प० ३१०।८
१३. प० ६५१।१ १४. प० १३८।३ १५. प० ६५२।६ १६. म०बा० ५।६
१७. प० ३४३।८ १८. प० ५६२।७ १९. आखि० ३७।६

धातु +	पर– प्रत्यय >	भाववाचक संज्ञा
पी	–* आई	पिआई ।[१]
मिल्	–* आउ	मेराउ ।[२]
कट्	–* आव	कटाव ।[३]
उठ्	–* आन	उठान ।[४]
उड्	–* आन	उडान ।[५]
भग्	–* आना	भगाना[६] (भगदड) ।
पैस्	– आर	पैसार ।[७]
सीख्	– आवन	सिखावन[८] (शिक्षा) ।
मिल	– आवा	मेरावा ।[९]
पी	– आस	पियास ।[१०]
हँस्	– ई	हँसी ।[११]
ढो	– ई	ढोई ।[१२]
बस्	– एरा	बसेरा ।[१३]
समझ्	– औता	समझौता ।[१४]
रह्	–* औती	रहौती[१५] (रहन-सहन) ।
उठ्	–* औनी	उठौनी[१६] (आक्रमण) ।
बूड्	– की	बुडकी[१७] (डुबकी) ।
पत्	– ति	उतपति ।[१८]
गह्	– न	गहन ।[१९]
कूट्	– नि	कूटनि ।[२०]
कर्	– नी	करनी ।[२१]
ढो	– वा	ढोवा ।[२२]

अन्य सज्ञाओ की रचना मे प्रमुख रूप से **–अ,–आ,–आउ,–आवन,–आवा,–ई,–उई, –औही,–औटी,–औना,–क,–ना,–नी,–मान** तथा **–वान** प्रयुक्त है, जैसे—

धातु +	पर– प्रत्यय >	संज्ञा
बाँध्	– अ	बाँध ।[२३]
उतार्	– आ	उतारा[२४] (प्रेत-बाधा या रोग या

अनिष्ट की शान्ति के निमित्त किसी व्यक्ति की देह के चारो ओर घुमाकर रखी हुई कुछ खाद्य अथवा अन्य प्रकार की सामग्री) ।

---

१. प० ३२०।५   २. प० ३५८।५   ३. प० ४८।५   ४. प० ४८३।८
५. प० ६८।४   ६. प० ५७६।३   ७. प० ५९१।६   ८. प० ७५।३
९. प० ४०५।१   १०. प० ३६८।५   ११. अख० ६।६   १२. प० ५२६।१
१३ प० ७१।२   १४. म०बा० ४।११   १५. आखि० ४३।२   १६. प० ६३०।७
१७. अख० २६।५   १८. अख० ४।१   १९. प० ६२५।६   २०. प० ५९९।३
२१. प० २०।७   २२. प० ५३६।५   २३. प० ५३०।८   २४. प० ४५०।६

*** पुष्पांकित प्रत्ययों के 'आ' तथा 'औ' अंश प्रेरणार्थक है ।**

धातु	+ पर– प्रत्यय	>	संज्ञा
बिछ्	– आउ		बिछाउ[१] (बिछौना)।
बिछ्	– आवन		बिछावन।[२]
पहिर्	– आवा		पहिरावा।[३]
काढ़	– उई		कढ़ई[४] (छोटा कटोरा या दिया, जिसे घड़े मे डाल कर दही निकालते है)
मर्	– ओही		मरोही[५] (मरणासन्न)।
कस्	– औटी		कसौटी।[६]
भूँज्	– औना		भुँजौना[७] (पान का एक प्रकार, जो आग मे भून कर पकाया जाता है)।
बैठ्	– क		बैठक।[८]
झर्	– ना		झरना।[९]
लिख्	– नी		लिखनी।[१०]
यज्	– मान		जजमान[११]+आ।
खिला	– वान		खिलवान[१२] (धनिया, खरबूजे आदि के भुने अथवा तले हुए बीज जो भोजन के पश्चात् दिए जाते है)।

धातु मे पर– प्रत्यय जोडकर विशेषणो की रचना भी की गई है। इस प्रकार के पर– प्रत्ययों मे **– आऊ,– आवन,– ऐली** तथा **–वाँ** प्रमुख हैं .

धातु	+ परप्रत्यय	>	विशेषण
जड़ (~जर्)	– आऊ		जराऊ।[१३]
कट्	– आऊ		कटाऊ।[१४]
सोह्	– आवन		सोहावन।[१५]
बिगस्	– ऐली		बिगसैली।[१६]
कट्	– वाँ		कटवाँ।[१७]
बट्	– वाँ		बटवाँ।[१८]

---

१ प० २७५।५ २ प० ३३८।५ ३ प० ४८८।१ ४. अख० ३१।५
५ प० ३९८।७ ६ प० २७३।९ ७. प० ३०९।५ ८. प० ३०।१
९. प० २।२ १०. प० १०।५ ११. प० ७७।२ १२ आखि० ४७।८
१३. प० ३८।२ १४. प० ५३०।५ १५. प० ७९।६ १६. प० ४३६।२
१७. प० ५४५।२ १८. प० ५४५।२

तद्धित पर–प्रत्यय : विवेचन की सुविधा के लिए यह कई उपवर्गों मे विभक्त किए जा सकते है, यथा– कर्तृवाचक, स्त्री-प्रत्यय, ऊनवाचक, विविध सज्ञा–रचनात्मक तथा विशेषणवाचक।

कर्तृवाचक– प्रमुख प्रत्यय– **अइत,–आ,– आर ~ आरा,– आरी,–इआ ~ इया, –इक, – ई, – उआ, – उवा,– ऊ, – एर, – क, – कर, – कार, – हार ~ हारा ~ हारी,** आदि है —

– अइत – भलइत[1] (भलैत – भालाधारी)।

– आ – जपा[2] (जाप करने वाले), तपा[3] (तप करने वाले)।

– आऊ – बटाऊ।[4]

– आर ~ आरा ~ आरी · सोनार,[5] बनिजारा[6], भिखारी[7]।

– इआ ~ इया सगुनिआ[8], पँवरिआ[9], (पौर पर बैठने वाला – प्रहरी) बेबहरिया[10], सोटिया[11] (सोटाधारी)।

– इक · बधिक[12], सामुद्रिक[13]।

– ई नेगी[14], पथी[15]।

– उआ ~ उवा : अगुआ[16], अगुवा[17]।

– ऊ हितू[18]।

– एर चितेर[19]।

– क : धानुक[20]।

– कर · मधुकर [21], दिनकर[22]।

– कार : धनुकार[23]।

– हार ~ हारा ~ हारी चिरिहार[24], कनहारा[25] (कर्णधारक), फुलहारी[26]।

प्रमुख विदेशी प्रत्यय : – गीर तथा –बाज।

– गीर : दस्तगीर[27] (हाथ पकडने वाला – सहायक)।

*–बाज · तबलबाज[28] (तबल=फरसा, बाज=धारी)।

---

१ प० ५१४।६   २ प० ८०।३   ३ प० ८०।३   ४ प० ३८।६
५ प० ८६।७   ६. प० ७४।१   ७ प० ४३।१   ८ प० १३५।८
९ प० ५५८।२   १० प० ७५।६   ११ प० २६६।४   १२ प० ६२१।४
१३ प० ७३।३   १४ प० ६४७।५   १५. प० ६००।३   १६ प० २०।१
१७ म०बा० १५।२   १८ प० ६४७।५   १९ प० ४६८।६   २०. प० ४६९।६
२१ प० ६१।७   २२ प० ६३८।८   २३. प० ५१४।६   २४. प० ७०।४
२५ प० ३८९।५   २६ प० ३९।१   २७. प० १८।७   २८. प० ४९९।२

***यह प्रत्यय बहुधा (खेलने वाला, प्रेम करने वाला) आदि के अर्थ मे आता है जैसे, दगाबाज, नशेबाज, सतरंजबाज आदि।**

स्त्री-प्रत्यय प्रमुख प्रयुक्त पर –प्रत्यय **–आ,–ई,–इ,–इन,–इनि,–इनी,–नि तथा–नी है** यथा—

– आ (तत्सम) बाला ।[१]

– ई ~ इ दूती[२], बकुली[३] (छन्दोऽनुरोध से कही-कही 'ई' का 'इ' रूप मे परिवर्तन हो जाता है) चेरि[४], बाँभनि ।[५]

– इन ग्वालिन,[६] चमारिन[७] ।

– इनि ~ इनी . बैसिनि[८], अगरवारिनि[९], रागिनी[१०], जाखिनी ।[११]

– नि ~ नी (ईकारान्त पुल्लिग के अन्त्य ई को लघु करके) मालिनि[१२], जोगिनि[१३], जोगिनी ।[१४]

ऊनवाचक पर– प्रत्यय प्रमुख प्रयुक्त पर-प्रत्यय**–आ,–वा,–वाँ,–इया,–एला, –ओला, –क,–टा,–ड़ा,–रा,–रि** तथा**–री** है, यथा—

– आ ~ वा ~ वाँ . मनुआ[१५], तरवा[१६], असुँवा[१७], मनुवाँ ।[१८]

– इया : नदिया ।[१९]

– एला : सिघेला ।[२०]

– ओला . खटोला ।[२१]

– क (तत्सम) दीपक ।[२२]

– टा : सुअटा ।[२३]

– ड़ा : लोहड़ा ।[२४]

– रा : सदेसरा[२५], खँडरा ।[२६]

– रि : तलावरि ।[२७]

– री : मछरी,[२८] छतरी ।[२९]

संज्ञा-रचनात्मक-प्रत्यय कृत् पर– प्रत्ययों की भाँति ही तद्धित पर– प्रत्ययो को भी दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—(१) भाववाचक संज्ञा बनाने वाले प्रत्यय (२) अन्य संज्ञाओ की रचना मे प्रयुक्त प्रत्यय । भाववाचक सज्ञा की रचना के लिए जायसी-काव्य मे जिन तद्धित प्रत्ययो का मुख्यरूप से प्रयोग मिलता है वे सोदाहरण इस प्रकार है :–आइँधि, –आई,–आक,–आर ~ आरा–आरी,–आला–ई,–औरी,–का,–ता,–ना, यथा—

---

१. प० ३१९।१ २. प० ५८६।१ ३. प० ८४।२ ४. प० ५९९।६
५. प० १८५।२ ६. प० १३५।२ ७. प० ४४८।६ ८. प० १८५।३
९. प० १८५।४ १०. प० ११६।७ ११. प० ४५०।३ १२. प० १३५।३
१३. प० ६००।७ १४. प० १३१।३ १५. अख० ११।८ १६. प० १३२।५
१७. म०बा० १३।३ १८ अख० ३८।१० १९. म०बा० २१।४ २०. प० ६१४।३
२१ म०बा० १४।९ २२. अख० १३।६ २३ प० ६७।८ २४. प० ५५०।३
२५. प० ३४९।८ २६. प० ५४७।५ २७. प० ३३।१ २८. म०बा० ४।४
२९. म०बा० १५।६

– आइँधि – बिसाइँधि[१], रकसाइँधि।[२]
– आई – मिताई[३], रौताई[४], ढिठाई।[५]
– आक – धमाक।[६]
– आर – चमकार[७], खुटकार[८]।
– आरा – लुवारा[९] ('व्' की श्रुति)।
– आरी – चिन्हारी[१०] (जान-पहचान)।
– आला – सियाला[११] ('य्' की श्रुति)।
– ई – पैनाई[१२], पतराई[१३], बड़ाई।[१४]
– औरी – ठगौरी।[१५]
– क – सनका[१६] (सकेत)।
– ता – प्रभुता।[१७]
– ना – बासना।[१८]

अन्य प्रकार की सज्ञाओ की रचना मे प्रयुक्त विविध तद्धित प्रत्ययो मे से उल्लेखनीय सोदाहरण इस प्रकार है—

– अरी ~ अवरि ~ अवलि ~ अवली देवारी[१९], मेघावरि[२०], रोमावलि[२१], रोमावली।[२२]
– आर ~ आरि ~ आरा सोवनार[२३], सोवनारि[२४], सोवनारा[२५] (स्वप्नागार)।
– ई – बतीसी[२६] (समूह वाचक)।
– ऊ – बाँहूँ[२७] (बाँह मे पहने जाने वाले एक आभूषण का नाम)।
– ओड़ा – हथोड़ा[२८] (हाथ के कड़े)।
– ओरी – हथोरी[२९] (हथेली)।
– औछी – मुगौछी[३०] (मूग का एक नमकीन खाद्य पदार्थ)।
– औटा – जोगौटा[३१], चंदनौटा।[३२]

– औरा – मसौरा[३३] (कबाब, मास से बना हुआ एक पदार्थ), मुगौरा[३४] (मूग से बना हुआ एक पदार्थ)।

---

१. प० ४४१।२ २. प० ३६२।७ ३. प० २२।१ ४. प० ६३।७
५. आखि ३५।२ ६. आखि० १६।६ ७. आखि० ५१।४ ८ म०बा० ४।७
९. प० ३५५।१ १०. प० ३०६।२ ११. प० ३४०।१ १२. प० १५६।७
१३. प० १५६।७ १४. प० ५०१।६ १५ प० ४५३।४ १६ म०बा० ८।११
१७. अख० १८।२ १८. प० ११७।८ १९. प० ३४८।५ २०. प० ३२।५
२१ प० ४१४।५ २२. प० ११४।३ २३ प० २६१।१ २४. प० २६१।१
२५. प० २९०।१ २६. प० १०७।२ २७. प० ३१८।६ २८. प० ३७।३
२९. प० ४८२।३ ३०. प० ५४९।३ ३१. प० १२६।४ ३२. प० ३२९।३
३३. प० ५४६।७ ३४. प० ५४९।१

– औरी – मेथौरी[1] (मेथी से युक्त एक विशेष प्रकार की बडी), डुभुकौरी[2], गरम पानी मे पकाई जाने वाली बरी, डुबक+बरी), बरौरी[3] (बडी का एक विशेष भेद)।

– गम – बिहंगम[4], तुरंगम।[5]

– ता – गोपीता[6], देवता[7] (समूहवाचक)।

– रू – पँखेरू।[8]

– ल – पायल।[9]

– ली – सहेली।[10]

– वान – बदिवान[11] (कैदी)।

– वान – पकवान।[12]

– वार – कोटवार।[13]

– हन – जडहन[14], बडहन[15] (उत्तर-पूर्व भारत मे उत्पन्न होने वाले धानो के नाम)।

– हर – नैहर[16], धौरहर।[17]

– हाऊँ – करिहाऊँ[18], कोनहाऊँ।[19]

विशेषणवाचक प्रत्यय:—जायसी ने सज्ञा शब्दो मे पर-प्रत्ययो का योग कर कुछ विशेषणो की भी रचना की है। इस प्रकार के प्रमुख पर–प्रत्यय **–आ,–आरू,–आल, –इक,–इला,–ईन,–ईलि,–ईली,–ए,–ल,–वंत,–वती,–वाँती,**–वारि तथा**–हा** है, यथा—

– आ – गेरुआ।[20]

– आरू – मयारू।[21]

– आल – दयाल।[22]

– इक – ऐहिक।[23]

– इला – पुरुबिला।[24] (पूर्व का– यहाँ पूर्व जन्म से तात्पर्य है)

– ईन – कुलीन।[25]

– ईलि ~ ईली– रंगीलि,[26] छबीली।[27]

---

१. प० ५४९।४ २. प० ५४९।७ ३ प० ५४९।७ ४. प० ३६०।१
५. प० ५१३।१ ६. प० १०२।७ ७. प० १९९।२ ८. प० १२७।८
९. प० २९६।६ १०. प० १८८।१ ११. प० ५७८।१ १२. प० ५९०।१
१३. प० ४१।३ १४. प० ५४४।६ १५. प० ५४४।६ १६. म०बा० १४।४
१७. प० ४४।२ १८ प० ४१४।५ १९. प० ५६७।५ २०. प० १३४।८
२१ प० २१४।१ २२. आखि० ४९।७ २३. प० ३६।८ २४ प० १९८।७
२५ प० २९६।८ २६. प० ३२१।३ २७. प० ३२६।१

– ए – पंडुआए[१] (पँडुआ– बंगाल– के बने हुए)।
– ल – सीतल।[२]
– वंत ~ वती ~ वॉंती – धनवत,[३] गुनवती,[४] रूपवॉंती।[५]
– वारि – घुँघुरवारि[६] (घुँघराली)।
– हा – खुमरिहा।[७]

कुछ विशेषणों की रचना विशेषण-शब्दो मे पर-प्रत्यय जोड़कर की गई है। इस प्रकार के प्रमुख रचनात्मक पर- प्रत्यय तथा सम्बद्ध उदाहरण इस प्रकार है–

– अ(व श्रुति)– हरुव,[८] गरुव।[९]
– अर – हरिअर।[१०]
– इल – करिल[११] (काले)।
– एर ~ एरी– जठेर,[१२] बडेरी।[१३]
– एला ~ एली – अकेला,[१४] नवेली।[१५]
– ल – नवल।[१६]
– वा – करुवा,[१७] गरुवा।[१८]
– सर ~ सरि – दोसर[१९], दोसरि।[२०]

समास

पूर्व-प्रत्ययो तथा पर- प्रत्ययो के अतिरिक्त विभिन्न शब्द भी मिलकर वृहत् शब्द की सृष्टि करते हैं। स्वतत्र शब्दो के मेल से बने हुए इस प्रकार के शब्द को समास कहते है। शब्द-रचना की दृष्टि से समास नवीन शब्दो के निर्माण मे विशेष साधक होते है। वाक्य में शब्दो का योग समास द्वारा एक शब्द का रूप ले लेता है अत समास के लिए यह आवश्यक है कि उसकी रचना मे दो या दो से अधिक शब्दो का योग हो। जायसी की भाषा में समास बहुधा दो शब्दो से ही मिल कर बने है। संस्कृत-शैली के लम्बे-लम्बे समासो का अभाव है।[२१] प्रयुक्त समास सर्वथा सहज तथा स्वाभाविक रूप मे आए है।

---

१. प० ३२६।२ २ प० ३०७।६ ३ प० ४४।३ ४. म०बा० ८।१४
५. आखि० ५६।१ ६ प० ६६।७ ७ प० ३२०।२ ८ प० १५७।३
९. प० १५७।३ १० प० ३३६।६ ११. प० ६२।४ १२. आखि० ३२।५
१३. प० ४३६।१ १४. प० ३०६।३ १५. प० ३४५।५ १६. प० ६०१।३
१७. प० ५६०।८ १८. प० ५६६।६ १९. प० १८०।८ २०. प० २५४।७

२१. संस्कृत-शैली के लम्बे-लम्बे समासो को अपनाने की प्रवृत्ति हिन्दी तथा उसकी किसी भी बोली मे नही है। यत्र-तत्र 'जनमनमजुमुकरमलहरनी' (रामचरितमानस) जैसे प्रयोग भले ही मिल जावें किन्तु ऐसे उदाहरण विरल है। जन-भाषा मे तो दो अथवा अधिक से अधिक तीन शब्दों के समास ही उचित एव मधुर लगते है।

हिन्दी समामो की रचना तत्सम और तत्सम, तत्सम और तद्भव, तद्भव और तद्भव, हिन्दी और हिन्दीतर, हिन्दीतर और हिन्दीतर शब्दो के योग से होती है । इनमे तत्सम और तत्सम तथा तद्भव और तद्भव शब्दो से बने हुए समासो की बहुलता है । तत्सम और तद्भव शब्दो के योग से बने समास अधिक नही है । हिन्दीतर शब्दो के साथ हिन्दी के तत्सम और तद्भव दोनो ही शब्दो का योग होता है । जायसी-काव्य मे तद्भव और तद्भव शब्दो के योग से बने समासो की प्रधानता है, अन्य वर्गो के अन्तर्गत आने वाले समास अपेक्षाकृत कम सख्या मे प्राप्त होते है । विविध भेदो के उदाहरण इस प्रकार है —

(क) तत्सम+तत्सम – राजसभा,[1] कटिमडन,[2] रुडमाल,[3] गिरिजापति,[4] महाजन ।[5]
(ख) तत्सम+तद्भव – मदमाँती,[6] रसलेवा,[7] जगजाने,[8] कँवलपत्र,[9] पुहुमिपति ।[10]
(ग) तद्भव+तद्भव – हथकरी,[11] चिरिहार,[12] देशनिकारा,[13] मँझधार,[14] फुलझरी ।[15]
(घ) विदेशी+विदेशी – उमरामीर,[16] सहमाँत,[17] सिरताज,[18] अलावलसाही ।[19]
(च) हिन्दी+विदेशी – कठहँडी,[20] जत्रकमान ।[21]

सभी परम्परागत प्रमुख समामो के – द्वन्द्व, तत्पुरुष, अव्ययीभाव, कर्मधारय, द्विगु तथा बहुव्रीहि के – प्रयोग लक्षित किए जा सकते है । इनके कतिपय उदाहरण इस प्रकार है—

द्वन्द्व समास—(अ) निम्नलिखित समस्त पदो मे केवल दो पदो का समास हुआ है– **सुख सांति,**[22] **माता पिता,**[23] **राजा रानी,**[24] **हाथ पाँउ,**[25] **जोगी जती,**[26] **चक्क चकोरी,**[27] **तंत मंत,**[28] **हाट बाट,**[29] **कौरौ पंडौ,**[30] **गाँग जउँन,**[31] **सारौ सुवा**[32] तथा **मनि मानिक**[33] आदि ।

(आ) कुछ प्रयोगो मे दो से अधिक पदो का सयोग भी मिलता है –

पंडित गुनि सामुद्रिक[34] तथा **जोगी जती सन्यासी**[35] ।

(इ) (एकार्थक) **सहचर-शब्द सहित समास—गिरि पहार,**[36] **सखी सहेली,**[37] **जगत-संसारा,**[38] **जिया जंतु**[39] तथा **भोग भुगुति**[40] आदि ।

---

१ प० ४७।१   २. प० ६२०।४   ३ प० २०७।२   ४. प० २१२।५
५ प० ३७।२   ६. प० ४७८।३   ७. प० ६१७।७   ८ प० ६११।५
९. प० ४३७।२   १०. प० १३।७   ११ प० ५७६।१   १२. प० ७८।१
१३. प० ३४०।५   १४. म०बा० २।१४   १५. प० ४६९।३   १६. प० ४९८।१
१७ प० ५६९।५   १८ प० ४९९।२   १९ प० ५२२।१   २०. प० ५४९।९
२१. प० ४९९।३   २२. प० ३१७।९   २३. प० ३०१।३   २४. प० ३३९।५
२५. प० १३०।४   २६. प० २२८।५   २७. प० २३४।६   २८. प० २१२।७
२९. प० २७५।८   ३०. प० ६३५।४   ३१. प० १५।९   ३२. प० २९।२
३३. प० ४८।६   ३४. प० ७३।३   ३५. प० ५५।९   ३६. प० ४५।६
३७. प० ५४।३   ३८. प० ३८६।२   ३९. आखि० १६।८   ४०. प० ५।४

(ई) अनुचर शब्द सहित समास - पानफूल,[1] मया मोह,[2] खेम कुसल,[3] भोग बेरास,[4] पंखि पतंग,[5] नदी नार[6] तथा रहस कोड[7] आदि ।

(उ) प्रतिचर शब्द सहित समास - रात दिन,[8] परगट गुपुत,[9] मित्र सत्रु,[10] दूबर बरिअ,[11] राउ रांक[12] तथा गुन अवगुन[13] आदि ।

(ऊ) अनुकार या ध्वन्यात्मक शब्द सहित समास - उबरे डुबरे,[14] अहोरि बहोरी[15] तथा आस पास[16] आदि ।

तत्पुरुष समास जायसी-काव्य मे तत्पुरुष समास के विविध भेदों से सम्बद्ध बहुत प्रयोग मिलते है—

(अ) कर्म तत्पुरुष – सतवादी[17], जिउलेवा[18], भिखमंगा ।[19]
(आ) करण तत्पुरुष – अगिदधा[20], रसभरी[21], नगजरी ।[22]
(इ) सम्प्रदान तत्पुरुष – धरमसार,[23] घोरसारा[24], हथकरी ।[25]
(ई) अपादान तत्पुरुष – देसनिकारा[26], बदिमोख[27] (बन्दीगृह से मोक्ष) ।
(उ) सम्बध तत्पुरुष – कठहंडी[28], जड़काला[29], रजाउरि ।[30]
(ऊ) अधिकरण तत्पुरुष – बनबास[31], रनबादी[32], घरपोई ।[33]
(ए) नञ् तत्पुरुष (निषेधात्मक)– अनपत,[34] अनरुचि,[35] अकाज ।[36]

(ऐ) उपपद तत्पुरुष – इस प्रकार के तत्पुरुष समास का द्वितीय पद ऐसा कृदन्त होता है जिसका स्वतन्त्र रूप मे प्रयोग नही होता । जायसी-काव्य मे ऐसे कतिपय प्रयोग मिलते हैं, यथा—बटपार[37], मँसखवा ।[38]

अव्ययीभाव समास निडर[39], निधरक[40], निछोही ।[41]

जायसी की रचनाओ मे सस्कृत पद्धति के अव्ययीभाव समास (आ, 'प्रति', 'यावत्' तथा 'वि' आदि अव्ययो से युक्त) नही प्राप्त होते । सस्कृत के 'प्रतिदिन', 'प्रतिवर्ष' आदि

---

१. प० २।७ २. आखि० २२।२ ३. प० ३६१।६ ४. प० ५६४।७
५. प० ५।४ ६. प० २।२ ७. प० ३२।६ ८. प० ५।२
९. प० ५।४ १०. प० ५।३ ११ प० १५।७ १२. प० ३६।३
१३. प० ११।८ १४. प० ५४१।७ १५. प० ४७४।३ १६. प० ५५५।२
१७. प० १४३।३ १८. प० ६२।४ १९. प० ७२।४ २०. प० ५७८।१
२१. प० ४।४ २२. प० ४८२।७ २३. प० ६००।१ २४. प० २६।४
२५. प० ५७६।१ २६. प० ३४०।५ २७. प० ६००।१ २८. प० २८४।५
२९. प० ३५१।१ ३०. प० ३३०।५ ३१. प० ४६२।८ ३२. प० ६१४।१
३३. प० १२३।२ ३४. प० ३५२।३ ३५. प० ६५३।३ ३६. प० ८८।९
३७. प० १३६।५ ३८. प० ७८।३ ३९ प० २७१।३ ४०. आखि० २१।७
४१. प० २३०।९

अव्ययीभाव समासो के विग्रह (प्रतिदिनम्—दिने दिने प्रतिदिनम्) पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वहा सज्ञा की द्विरुक्ति मिटाने के लिए ही 'प्रति' का उपयोग किया गया है। हिन्दी और उसकी विविध बोलियो मे 'प्रति' का उपयोग न कर सज्ञा की ही द्विरुक्ति करके अव्ययीभाव समास का गठन होता है। जायसी की रचनाओ मे इस प्रकार के प्रयोग भी अनेक स्थलो पर प्राप्त होते है, यथा—**दिन दिन**[१], **घर घर**।[२]

कर्मधारय समास : (क) विशेषण-पूर्व पद— महाजन[३], **कड़ुदाना**।[४]

(ख) **विशेषणोत्तर पद — देसतर**[५], **राजेसुरमहा**।[६]

(ग) **मध्यमपदलोपी — गुरब**[७] (गुड मे उबाला हुआ आम), **खडवानी**[८] (खाड मिला हुआ पानी)।

(घ) **उपमानपूर्वपद — ससिमुख**।[९]

(च) **उपमानोत्तर पद — करपल्लौ**[१०], **नैनसर**।[११]

द्विगु — चौबारा[१२], **चौराहा**[१३], **अठखभा**[१४]।

बहुव्रीहि समास — (इ) व्यधिकरण बहुव्रीहि — इसमे पूर्वपद विशेषण नही होता।

गठिछोरा[१५] (गाठ छोर (खोल) लेते है जो अर्थात् ठग), **रथवाह**[१६] (रथ का वहन करते है जो अर्थात् घोडे), **फुलचुही**[१७] (फूल चूसती है जो, एक पक्षी—विशेष)।

(ज) **समानाधिकरण बहुव्रीहि** — पूर्वपद विशेषण और उत्तर पद विशेष्य—

चतुर्भुज[१८] (चार भुजाओ वाले, विष्णु), **छपद**[१९] (छ पैरो वाला, भौरा), **तवंचूर**[२०] (ताम्रचूडा है जिसकी, मुर्गा)।

उक्त सभी प्रयोगो को देखने से यह स्पष्ट है कि जायसी के काव्य मे लगभग सभी प्रकार के समास प्रयुक्त हुए है। इन समासो मे तत्पुरुष समासो की प्रधानता है। जायसी की समास-शैली के सम्बन्ध मे एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि बहुत से समासो मे अरबी-फारसी की समास-रचना-पद्धति का प्रभाव स्पष्ट है। इस समासो मे पहला पद भेद्य है और दूसरा पद भेदक है, यथा— **किरिनरबि**[२१] (रवि की किरण), **लोकपखान**[२२] (पखान की लीक), **भोजन पेम**[२३] (प्रेम-पूर्ण भोजन), **दसन गयंद**[२४] (गयद के दसन) **मनि भागु**[२५] (भाग्य की मणि), **बान बिखु**[२६] (बिखबान), **खरग पोलाद**[२७] (पोलाद की खरग) आदि। यह हिन्दी समास रचना-शैली के सर्वथा विपरीत है। अरबी-फारसी के समासो की तुलना मे इस प्रकार की समास-योजना थोडी भिन्न है और वह इस अर्थ मे कि उनमे जो विभक्ति जुड़ी होती है (दर्दे दिल, दीवाने हाली, दास्ताने उर्दू आदि) वह इन समासो मे नही है।

---

१. प० १६।७ २. प० ३४०।३ ३ प० ३७।२ ४ आखि० ३५।२
५ प० १७।५ ६. प० २७१।२ ७ प० ५५०।२ ८. प० २८५।१
९. प० ६१।२ १०. प० ९।४ ११. प० ६१४।६ १२. प० ३३७।५
१३. आखि० २९।६ १४ प० ३३०।१ १५. प० ३९।८ १६. प० ४६।८
१७. प० ३२६।५ १८. प० ६२९।५ १९. म०बा० २१।१० २०. प० ४८१।३
२१. प० १५८।३ २२. प० ५६६।५ २३. प० ५७०।१ २४. प० ६१८।२
२५. प० ३५।८ २६ प० ४५४।५ २७. प० ६३१।३

६

कला-पक्ष

पण्डितराज जगन्नाथ ने रमणीयता को ही काव्य का मूल प्रवृत्ति-निमित्त माना है। उनका मत है कि रमणीयता अर्थ मे ही रहती है और उसकी अभिव्यक्ति 'शब्द' (भाषा) द्वारा होती है। पण्डितराज के मतानुसार अर्थ की रमणीयता को व्यक्त करने वाला शब्द काव्य है[१]। भामह ने भी काव्य मे शब्द और अर्थ की अवस्थिति को महत्व दिया है[२]। ये आचार्य रीति को काव्य की आत्मा मानने मे वामनाचार्य[३] से सहमत भले ही न हो किन्तु साहित्य-सर्जन मे भाषा और शब्दो के प्रयोग का महत्व इनकी दृष्टि मे भी कम नही है। वस्तुत रमणीयता का बहुत कुछ अश भाषा पर निर्भर होता है। भाषा भावो की वाहिका होती है अत उनके रसास्वादन के लिए भाषा का समर्थ, सशक्त, सन्तुलित तथा सुव्यवस्थित होना आवश्यक है। यदि भाषा अस्पष्ट हो अथवा शब्दाडम्बर के कुहासे से घिरी होने के कारण धूमिल हो तो उसकी कोई उपयोगिता नही क्योकि उस दशा मे साहित्यकार का सवेद्य सर्वथा निष्फल हो जायगा। सच्चा कवि भावावेश मे लिखता है अतएव सच्ची या उच्च कोटि की कविता मे भाषा भावानुगामिनी होती है। भाषा के अनुपयुक्त होने से कवि की सारी भावुकता तथा सवेदनशीलता उसके हृदय तक ही सीमित रह जाती है। उसकी सम्यक् अभिव्यक्ति तक सम्भव नही, भाव का साधारणीकरण तो बहुत दूर की बात है। यह सर्वथा सत्य है कि कविता का भाव हृदय मे उत्पन्न होता है किन्तु अनुभूत भाव, कल्पना या विचार को सुन्दर शब्दो मे व्यक्त कर देना ही कला का कर्म है। कविता की प्रभविष्णुता के लिए जिस प्रकार सुन्दर भाव आवश्यक है, उसी प्रकार सुन्दर भाषा भी। टाल्स्टाय ने इसी तथ्य का ध्यान रखते हुए कहा है—

'भाषा विचार का साधन है। भाषा का इस्तेमाल लापरवाही से करने का मतलब है विचार में लापरवाही करना।' [४]

---

१. रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। रसगंगाधर, १।१

२. शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्। काव्यालंकार १।१६

३. रीतिरात्मा काव्यस्य। काव्यालंकारवृत्ति १।२।६

४ कौन्स्तांन्तिन फेदिन लेखक और उसकी कला—अनुवादक—अमृतराय, आलोचना अक्टूबर, १९५४ पृ० ४६।

एक अन्य रूसी लेखक ने साहित्य मे भाषा की महत्ता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है—

"लेखक की कला की बात करते समय हमें सबसे पहले भाषा की बात करनी चाहिए। भाषा वह चीज है और सदा रहेगी जिससे लेखक अपनी इमारत खड़ी करता है। साहित्य की कला शब्दो की कला होती है। साहित्य के रूप-गठन जैसा महत्वपूर्ण तत्व भी भाषा के महत्व से गौण होता है। कोई साहित्यिक कृति कभी अच्छी हो ही नहीं सकती अगर उसकी भाषा दरिद्र हो[१]।"

भावो के अभिव्यजन का अनिवार्य माध्यम होने के फलस्वरूप भाषा का साहित्य म विशिष्ट महत्व है।

भाषा का लक्ष्य विविध भावो की सामान्य अभिव्यक्ति ही नही है। वह काव्य म प्राण-प्रतिष्ठा करती है। उसकी तो विशिष्टता यह है कि उसमे हृदय की प्रतिध्वनि सुनाई दे। इसीलिए कुशल कवि के हाथ मे पडकर उसका सौन्दर्य और भी अधिक निखर उठता है। सामान्य भाव भी सुन्दर भाषा के सम्पर्क मे आकर रमणीक प्रतीत होने लगते है, उत्कृष्ट भावो तथा सुन्दर भाषा का सयोग तो साक्षात् मणिकाचन सयोग ही होता है। कुशल कवि की भाषा गम्भीर रत्नाकर के समान होती है, जिसमे जितना बैठा जाता है, उतने ही सुन्दर रत्न हाथ लगते है[२]। भाषा की इसी विशेषता को लक्ष्य करके एक विद्वान ने कहा है—

'कवि की भाषा उसके हृदय तथा मस्तिष्क के ऐसे संदेशवाहक हैं जो उसके अभीष्ट भाव को तो पूर्णतया हृदयंगम किये रहते हैं, परन्तु प्रत्येक श्रोता या पाठक के लिए उतना ही रहस्य उद्घोषित करते है जितने को आत्मसात् करने की मानसिक योग्यता उसम होती है। वे कवि के भाव-कोष के मुक्त, परन्तु सुचतुर दाता हैं और पात्रता के अनुसार ही अर्थ-दान दिया करते हैं'।[३]

भाषा का यह अर्थ-गाम्भीर्य उसके निजी महत्व तथा भाव-सौन्दर्य दोनो के लिए ही उपयोगी है, किन्तु यही पर एक समस्या उठ खडी होती है कि भाषा का सौन्दर्य और उसके मूल्याकन की कसौटी क्या है? क्या भाषा को अलकृत, दार्शनिक या दुरूह बना देना ही उसे सुन्दर और प्रभावशाली रूप प्रदान करना है? क्या मधुर शब्दो के प्रयोग मात्र से ही कविता मधुर हो जाती है या कठिन शब्दो के एकत्रीकरण से ही काव्य मे गाम्भीर्य आ जाता है? सच तो यह है कि क्लिष्ट शब्दो का एक स्थल पर सग्रह ही भाषा का सौन्दर्य-विधायक नही हो सकता। इस प्रकार के प्रयास से भावाभिव्यजना मे व्याघात पहुँचने की सम्भावना ही अधिक है। उत्कृष्ट भाषा के लिए

---

१. वही, पृ० ४६।
२. 'ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्म गति, मोल रहीम विसाल।' रहीम दोहावली, २४१।
३. डॉ० प्रेमनारायण टण्डन : सूर की भाषा, पृ० ३७२-३७३।

शुद्धता, सरलता, स्पष्टता, यथार्थता, औचित्य, सामजस्य, सजीवता तथा मर्मस्पर्शिता आदि गुणो की आवश्यकता होती है। इन्ही से साहित्यकार की भाषा मे वह मोहिनी शक्ति उत्पन्न होती है जो सहृदयो को विमुग्ध कर देती है। भाषा के यही सौन्दर्य-वर्द्धक तत्व उसके कला-पक्ष के अन्तर्गत आते है और इन्ही की कसौटी पर कवि-विशेष की भाषा को परख कर उसका उचित मूल्याकन किया जाना चाहिए। इसके साथ ही कवि की काव्यशास्त्रीय अभिज्ञता, तद्‌विषयक दृष्टिकोण तथा भाषा सम्बन्धी मान्यता से परिचित होना भी आवश्यक है क्योकि इनकी पृष्ठभूमि मे ही भाषा के कला-पक्ष का विवेचन समुचित रूप से सम्भव है।

जायसी ने अपने पाण्डित्य एव कवित्व के सम्बन्ध मे अत्यधिक सयम तथा शील से काम लिया है[1] और अपना परिचय 'कबिन्ह केर पछिलगा' के रूप मे दिया है। जायसी के काव्य-शास्त्रीय ज्ञान के सम्बन्ध मे विशेष अन्तर्साक्ष्य भी नही प्राप्त होते। उनके काव्य मे रस, रसाग, छन्द तथा अन्य काव्यशास्त्रीय अगो से सम्बद्ध कतिपय

---

१. जायसी ने एक स्थल पर यह कहा है—

एक नैन कवि मुहम्मद गुनी। सोइ बिमोहा जेइँ कबि सुनी।
चाँद जइस जग विधि औतारा। दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा।
जग सूझा एकइ नैनाहाँ। उवा सूक अस नखतन्ह माहाँ।
जौं लहि अबहि डाभ न होई। तौ लहि सुगँध बसाइ न होई।
कीन्ह समुद्र पानि जौ खारा। तौ अति भएउ असूझ अपारा।
जौं सुमेरु तिरसूल बिनासा। भा कचनगिरि लाग अकासा।
जौं लहि घरी कलंक न परा। काँच होइ नहिं कंचन करा।

एक नैन जस दरपन औ तेहि निरमल भाउ।
सब रूपवंत पाँव गहि मुख जोवहिं कइ चाउ॥ प० २१।१-६

किन्तु इसे गर्वोक्ति कहा जाना उचित नहीं है। इस स्वाभिमानपूर्ण कथन में जायसी का चोट खाया हुआ हृदय बोल रहा है। यह सत्य है कि जायसी कुरूप थे तथा उन्हें कुरूपता के कारण ही उपहास का पात्र बनना पड़ा (जेइँ मुख देखा तेइँ हँसा), ऐसी दशा में यह सम्भावना उचित ही जान पड़ती है कि कवि ने क्षुब्ध होकर अपने उपहासकर्ताओं को इस प्रकार का मुँहतोड़ उत्तर दिया हो। उपर्युक्त उद्धरण की अतिम पक्ति—'सब रूपवंत पावँ गहि मुख जोवहिं कइ चाउ, —में 'रूपवत' शब्द का प्रयोग तथा अपने सम्बन्ध में निम्नलिखित उक्ति—

जेइँ मुख देखा तेइँ हँसा सुना तो आए आँसु।

में काव्य-सौष्ठव के साथ ही शारीरिक कुरूपता का उल्लेख और अन्य स्थलो पर आत्म-श्लाघा का अभाव इसी अनुमान की पुष्टि करते हैं।

शब्दो, यथा– **भाषा**[१], **चौपाई**[२], **पिंगल**[३], **दसइँ अवस्था**[४] (दशम अवस्था - मरण) **बीर,**[५] **सिंगार,**[६] **कबि,**[७] **कबित**[८] **तथा कबिता**[९]– का उल्लेख हो गया है किन्तु इतने सीमित[१०] शब्द-प्रयोगो के आधार पर कवि की काव्य-शास्त्रीय अभिज्ञता के सबध मे निर्णय दे देना सम्भव नही । इसके अतिरिक्त, जैसा पहले कहा जा चुका है, जायसी ने किसी भी स्थल पर भाषा-विषयक निजी मान्यता का भी उल्लेख नही किया है जिसकी सहायता से भाषा-प्रयोग के **सबंध मे उनका** दृष्टिकोण ज्ञात हो सके । अतएव अन्य साधनो के अभाव मे उनकी रचनाओ मे उपलब्ध वर्णनो के आधार पर व्यापक मानदडो द्वारा ही उनकी भाषा के कला-पक्ष का विश्लेषण सम्भव है ।

भाषा के चार अग होते है–ध्वनि (वर्ण), शब्द (पद), वाक्य तथा अर्थ । भाषा के गठन तथा रूप-निर्माण मे प्रथम तीन का विशेष महत्व है । इन सबकी विशेषताओ से युक्त होकर ही भाषा का वह सयोजित रूप सामने आता है जो साहित्यकार की कर्म-विधान-क्षमता का द्योतक होता है । अस्तु । इस तथ्य का ध्यान रखते हुए ही भाषा के प्रत्येक अग के कलात्मक स्वरूप पर पृथक्-पृथक् विचार करना उपयुक्त होगा । सबसे पहले वर्णगत विशेषताओ को ले ।

वर्ण-योजना—भाषा की सामग्री शब्द और शब्द की सामग्री वर्ण है । प्रत्येक वर्ण मे अपनी-अपनी ध्वनि होती है । समुचित वर्णो के प्रयोग से शब्दो का सौदर्य निखरता है अन्यथा कविता फीकी हो जाती है ।[११] कवि वर्णो के विशिष्ट तथा अनुकूल सामजस्य से ही

१	प० २४।५	२.	प० २४।५	३.	प० ४४६।३	४.	प० ११९।७
५	प० ६१९।३	६.	प० ५०७।७	७	प० ४४९।४	८	प० ६५२।३
९	प० १३।१						

१०. कवि की कृतियो का (विशेषत. 'पद्मावत' का, अन्य कृतियो मे कवि का दृष्टिकोण अधिक अध्यात्मोन्मुख रहा है) अध्ययन करने से यह स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है कि उन्हे काव्य-पद्धति तथा भाषा और साहित्य का अच्छा ज्ञान था। यह तो निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि जायसी ने इस काव्य-पद्धति की शिक्षा किससे और कहाँ प्राप्त की, किन्तु काव्यान्तर्गत विविध अलकारो की योजना, कविप्रसिद्ध उक्तियो का समावेश (विशेष रूप से नख-शिख वर्णन मे) तथा प्रबध-काव्य के निर्दिष्ट वर्ण्य विषयो (नगर, हाट, गढ, स्त्री, पशु, पक्षी, जलक्रीडा, समुद्र-यात्रा, ऋतु आदि) का सन्निवेश उनके काव्य-पद्धति-विषयक परिज्ञान का सम्यक परिचय देते है ।

११. 'कविता एक अपूर्व रसायन है। उसके रस की सिद्धि के लिए बडी सावधानी, बडी मनोयोगिता और बड़ी चतुराई आवश्यक होती है । रसायन सिद्ध करने मे ऑच के न्यूनाधिक होने से जैसे रस बिगड जाता है, वैसे ही यथोचित शब्दो का उपयोग न करने से काव्यरूपी रस भी बिगड जाता है। किसी-किसी स्थलविशेष पर रुक्षाक्षर वाले शब्द अच्छे लगते है, परन्तु और सर्वत्र ललित और मधुर शब्दो का ही प्रयोग करना उचित है। शब्द चुनने मे अक्षर-मैत्री का विशेष विचार रखना चाहिए । (प० महावीर प्रसाद द्विवेदी रसज्ञ–रंजन, पृ० ७)

मनोवाछित प्रभाव उत्पन्न करने मे सफल होते है, इसीलिए वे शब्द-योजना मे वर्ण-विन्यास पर विशेष बल देते है। सुन्दर वर्ण-योजना अपने वर्ण-सगीत से उस वातावरण को सहज ही उत्पन्न कर देती है जिसमे सहृदय को काव्यार्थ का रसानन्द प्राप्त होने के पूर्व ही रसानुकूल पृष्ठभूमि मिल जाती है। यदि किसी कोमल तथा सुकुमार भाव के वर्णन मे कर्णकटु वर्णों का आधिक्य हो तो वह वर्ण-विन्यास उस स्थल पर अनुचित होगा। कोमल रसो तथा भावों का चित्रण कोमल तथा मधुर वर्णों से निर्मित शब्दो द्वारा और अकोमल रसो और भावनाओ का प्रकाशन परुषवर्णयुक्त शब्दो द्वारा ही सफलतापूर्वक हो सकता है। आचार्यो ने इसीलिए साहित्य मे रीतियो[1] तथा वृत्तियो[2] का विधान किया है। माधुर्यादि गुणो[3] का भी वर्ण-योजना से घनिष्ठ सम्बन्ध है।[4] जायसी के काव्य मे उक्त विविध रीति, वृत्ति तथा गुणों

---

१. रीति शब्द का अर्थ है, मार्ग, पद्धति, प्रणाली, शैली आदि। भावादि के उत्कर्ष का ध्यान रखते हुए विशिष्ट रचना को ही रीति कहते हैं। 'विशिष्ट पदरचना रीतिः। विशेषोगुणात्मा।' -काव्यालकारसूत्र (१।२।७) आचार्यो ने रीति के तीन प्रमुख भेद माने हैं – वैदर्भी, गौडी तथा पाञ्चाली। वैदर्भी माधुर्यव्यजक वर्णो की ललित रचना होती है और गौडी ओजः प्रकाशक वर्णो से आडम्बरपूर्ण, पांचाली में इनके अतिरिक्त अन्य वर्ण आते है।

२. वृत्तियां नाटक तथा काव्य दोनों में अपना विशिष्ट स्थ,न रखती हैं–
शब्दतत्वाश्रयाः कश्चिद् अर्थतत्वयुजोपराः। ध्वन्यालोक (३।४८)

काव्य में वृत्ति-विचार अनुप्रास-भेद के अन्तर्गत होता रहा है। भामह, उद्भट आदि आचार्यों ने वृत्यानुप्रास के अन्तर्गत तीन प्रकार की वृत्तियो का उल्लेख किया है–परुषा, उपनागरिका तथा ग्राम्या कोमला। परुषा में रेफ, स, श आदि परुष वर्णों की बहुलता होती है। अन्य दो में मधुर तथा कोमल वर्णों की अधिकता होती है। हेमचंद्र ने इन तीनों वृत्तियो को अनुप्रास जाति के स्थान पर 'वर्ण-सघटना' कहा है।

३. यहाँ गुणो से अभिप्राय (मम्मट तथा अन्य ध्वनिवादी आचार्यों के अनुसार) केवल तीन गुणों – माधुर्य, ओज तथा प्रसाद से – ही है।

४. अनेक आचार्यों ने गुणो की वर्णधर्मिता का प्रतिपादन किया है किन्तु काव्यप्रकाशकार इससे सहमत नही है। उनका कथन है कि जिस प्रकार शौर्यादि आत्मा के ही गुण हैं, आकार के नहीं उसी प्रकार माधुर्यादि भी काव्य की आत्मा के ही गुण हैं। (काव्यप्रकाश ८।६६) प्रश्न उठता है कि गुणो का भाषा से किसी प्रकार का सम्बन्ध है भी अथवा नहीं। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार शौर्य मानसिक गुण तो अवश्य है किन्तु उसका बाह्य रूप सुगठित शरीर में भी झलकता है इसी प्रकार माधुर्यादि गुणो का भी वर्णों और पदों से सम्बन्ध होता है। व्यग्य-व्यजक भाव से (रस तथा गुण व्यंग्य और शब्दार्थ व्यंजक) गुणादि का शब्दार्थ पर निर्भर रहना आवश्यक है और भाषा तथा गुण का यही सम्बन्ध है। मम्मट ने भी सम्भवत इसीलिए 'न तु वर्णानाम् 'लिखकर भी माधुर्यादि में प्रयोज्य वर्णो की व्यवस्था की है। (काव्यप्रक श ८।७४,-७५)

की दृष्टि से वर्ण-योजना का वैभव देखने को मिलता है। यहाँ सक्षेप मे इन पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा।

माधुर्यगुण, मधुरावृत्ति और वैदर्भी रीति—इन तीनो मे ही प्रयुक्त होने वाली शब्दावली के अतर्गत ट, ठ, ड, ढ को छोड कर अन्य चारो वर्गो के स्पर्श वर्ण; ङ, ञ, ण, न तथा म, ह्रस्व र; समासरहित अथवा अल्प समास वाली कोमलकान्तपदावली तथा मधुर और ललित वर्ण-योजना के दर्शन होते है। इस प्रकार की विशेषताओ से युक्त भाषा की आवश्यकता मुख्यत सरस और मार्मिक प्रसगो मे होती है। 'पद्मावत' मे शृंगार के दोनो पक्षो सयोग तथा वियोग–का विस्तार से वर्णन करने के कारण कवि को इस प्रकार की मधुर वर्ण-योजना करने का अवसर बराबर मिला है। यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है—

रितु पावस बिरसै पिउ पावा। सावन भादौं अधिक सोहावा।
कोकिल बैन पाँति बग छूटी। धनि निसरी जेउँ बीर बहूटी।
चमकै बिज्जु बरिस जग सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना।
रँगराती पिय संग निसि जागै। गरजै चमकि चौंकि कँठ लागै।
सीतल बुंद ऊँच चौबारा। हरियर सब देखिअ संसारा।
मलै समीर बास सुखबासी। बेइलि फूल सेज सुख डासी।
हरियर भुम्मि कुसुंभी चोला। भा पिय संगम रचा हिंडोला।[1]

उपर्युक्त अश सयोग शृंगार का है। इसमे प्रयुक्त एक सौ उनसठ वर्णो मे से केवल छ टवर्ग के है। इनमे भी 'डासी' मे 'ड' कुछ खटकता है, उसके अतिरिक्त अन्य परुष वर्णो की परुषता भी मधुर वर्णो के सम्पर्क मे आने से समाप्त सी हो गई है। संयुक्ताक्षरो का अभाव है। माधुर्य गुण के प्रधान उपजीवक 'न' तथा ह्रस्व 'र' के प्रचुर प्रयोग प्राप्त होने है। अनुस्वार तथा उससे प्रभावित सानुनासिक वर्ण भी माधुर्य की सृष्टि कर रहे है।

वियोग शृगार के छन्दो मे भी इस प्रकार की मधुर वर्ण-योजना मिलती है। नागमती के विरहोद्गार अत्यन्त प्रभावशाली है। हृदय की सारी व्यथा और वेदना मधुर वर्णावली मे लिपटकर और भी मर्मस्पर्शी बन गई है––

(अ) **चमकि बीज घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा।**
बरिसै मघा झँकोरि झँकोरी। मोर दुइ नैन चुवहि जसि ओरी।
पुरवा लाग पुहुमि जल पूरी। आक जवास भई हौं झूरी।
धनि सूखी भर भादौं माहाँ। अबहूँ आइ न सींचसि नाहाँ।[2]

(आ) **कँवल जौ बिगसा मानसर छारहिं मिलै सुखाइ।**
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै जौ पिय सींचहु आइ।[3]

---

१. प० ३३७।१-७ २. प० ३४६।४-७ ३. प० ३५४।८-९

(इ) फागुन पवन झँकोरै बहा। चौगुन सीउ जाइ किमि सहा।
तन जस पियर पात भा मोरा। बिरह न रहै पवन होइ झोरा।
तरिवर झरै झरै बन ढाँखा। भइ अनपत्त फूल फर साखा।
करिन्ह बनाफति कीन्ह हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू।
फाग करहिं सब चाँचरि जोरी। मोहिं जिय लाइ दीन्हि जसि होरी।
जौ पै पियहिं जरत अस भावा। जरत मरत मोहिं रोस न आवा।
रातिहु देवस इहै मन मोरें। लागौं कत छार? जेउँ तोरें।

यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग होइ परौं कत धरै जहँ पाउ।[1]

उक्त सभी उदाहरणो मे कोमल तथा मधुर वर्णो का विन्यास है जिससे विप्रलम्भ भावना अत्यन्त मर्मस्पर्शी रूप मे व्यजित हुई है।

ओज गुण, परुषा वृत्ति तथा गौडी रीति इस वर्ग के अतर्गत आने वाले द्वित्व वर्णो, सयुक्त वर्णो, रेफ के सयोग तथा टवर्ग आदि कठोर वर्णो के प्रयोग अखरावट, आखिरी कलाम तथा महरी बाईसी मे नही प्राप्त होते। 'पदमावत' शृगार-प्रधान काव्य है जिसमे प्रेम तथा उसकी सुकुमार अनुभूतियो को ही सर्वोपरि स्थान मिला है, फिर भी कथानक के अनुरोध से ग्रन्थ मे अनेक स्थानो पर– रत्नसेन सूली खण्ड (दो० २६५), बादशाह चढाई खण्ड तथा राजा बादशाह युद्ध खण्ड (दो० ४८९-५३२), गोरा-बादल युद्ध-खण्ड (दो० ६२५-६३७) और रत्नसेन-देवपाल युद्ध खण्ड आदि मे (दो० ६४५-६४६)– युद्ध का वर्णन हुआ है। इनमे से प्रथम तथा अन्तिम मे तो नाममात्र के ही वर्णन है। युद्ध का विस्तृत वर्णन अन्य दो खण्डो मे ही प्राप्त होता है। इन्ही से ओजपूर्ण वर्ण-योजना के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है –

क – गोरै देख साथ सब जूझा। आपन काल नियर भा बूझा।
कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला। लाखन्ह सौं नहिं मुरै अकेला।
लई हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा। जैसे सिघ बिडारै घटा।
जेहि सिर देइ कोपि करवारू। सिउँ घोरा टूटै असवारू।
टूटहिं कंध कबंध निनारे। माँठ मँजीठि जानु रन डारे।
खेलि फागु सेंदुर छिरिआवै। चाँचरि खेलि आगि रन धावै।
हस्ती घोर आइ जो ढूका। उठै देह तिन्ह रुहिर भभूका।

भै अग्याँ सुलतानी बेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगें लिए पदारथ साथ॥[2]

ख – छंका गढ़ जोरा अस कीन्हा। खसिया मगर सुरँग तेइँ दीन्हा।
गरगज बाँधि कमानै धरीं। चलहिं एक मुख दारू भरीं।

---

१. प० ३५२।१-९ २. प० ६३३।१-९

हबसी रूमी औ जो फिरंगी । बड़ बड़ गुनी औ तिन्ह के संगी ।
जिन्ह के गोट जाहिं उपराहीं । जेहि ताकहिं तेहि चूकहिं नाहीं ।
अस्टधातु के गोला छूटहिं । गिरि पहार पब्बै सब फूटहिं ।
एक बार सब छूटहिं गोला । गरजै गँगन धरति सब डोला ।
फूटै कोट फूट जस सीसा । ओदरहिं बुरुज परहिं कौसीसा ।
लका रावट जसि भई डाह परा गढ़ सोइ ।
रावन लिखा जो जरै कहँ किमि अजरावर होइ ।[१]

ग – गरुअ गयद न टारे टरहीं । टूटहिं दत सुंड भुइँ परहीं ।[२]
घ – ठाठर टूट टूट सिर तासू । सिउँ सुमेरु जनु टूट अकासू ।[३]

इन सभी उद्धरणो को देखने से ज्ञात होता है कि यद्यपि अन्य स्थलो की अपेक्षा इनमे टवर्ग का प्रयोग अधिक हुआ है तथापि द्वित्व तथा सयुक्त वर्ण यहाँ भी विरल हैं । तुलसी के **'बरक्खत'**,[४] **'करक्खत'**[५] तथा **कटक्कट कट्टहिं**[६] जैसे प्रयोगो और भूषण द्वारा प्रयुक्त **'चंड-मुंड-भडासुर-खडिनि'**[७], **'मुंडड्डर'**[८] तथा **'रट्ठट्ठिल्लिय'**[९] जैसे शब्दो की टक्कर का एक भी प्रयोग जायसी-काव्य मे नही मिलता । यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि ओजादि के विषयो मे जायसी की विशेष रुचि नही थी इसीलिए वीररस के विविध भावो के अकन मे भी ओज-गुणयुक्त वर्ण-योजना को अधिक स्थान नही मिल पाया है ।

प्रसाद गुण, कोमला वृत्ति एवं पांचाली रीति : श्रवण मात्र से अर्थ की प्रतीति कराने वाले सरल और सुबोध शब्द प्रसाद गुण के अतर्गत माने जाते है । वर्ण-योजना की दृष्टि से सरल, समासरहित तथा ऋजु वर्णमाला प्रसादत्व उत्पन्न करती है। प्रसादगुणयुक्त पदावली के वर्णो मे न तो माधुर्य गुण की स्निग्धता होती है और न परुष वर्णो का खुरदरापन । उसमे सरलता तथा स्वाभाविकता का ही प्राधान्य होता है । जायसी के काव्य मे इस प्रकार की सरल, स्वाभाविक तथा प्रसाद गुणयुक्त वर्ण-योजना भी प्रचुर स्थलो पर मिलती है । 'पदमावत' मे तो कवि ने शृगार तथा शिख-नख वर्णन मे आलकारिक भाषा का प्रयोग किया भी है किन्तु अखरावट, आखिरी कलाम तथा महरी बाईसी मे एकाध स्थलो को छोड-कर अन्य सभी स्थानो पर प्रसादगुणमयी भाषा ही प्रयुक्त है । कवि ने भाषा मे शब्दो के तद्भव तथा स्वाभाविक रूपो को ही अधिक महत्व दिया है, जैसे –

क– अउर जो दीन्हेसि रतन अमोला । ताकर मरम न जानइ भोला ।
दीन्हेसि रसना औ रसभोगू । दीन्हेसि दसन जो बिहँसइ जोगू ।
दीन्हेसि जग देखइ कहँ नैना । दीन्हेसि स्रवन सुनइ कहँ बैना ।

---

१ प० ५२५।१-६ २. प० ५१७।२ ३. प० ६३७।३ ४ **कवितावली, ६।४७**
५. **वही, ६।४७** ६. **रामचरित मानस ६।८८** ७ **शिवराजभूषण २।३**
८. **वही, ३३३** ९. **वही, ३३२।५**

दीन्हेसि कंठ बोल जेहि माहां। दीन्हेसि कर पल्लौ बर बाहाँ।
दीन्हेसि चरन अनूप चलाही। सोइ जान जेहि दीन्हेसि नाही।
जोबन मरम जान पै बूढ़ा। मिला न तरुनापा जब ढूंढ़ा।
सुख कर मरम न जानइ राजा। दुखी जान जा कहँ दुख बाजा।

कया क मरम जान पै रोगी भोगी रहइ निचिंत।
सब कर मरम गोसाइँ जानइ जो घट घट महँ नित।[१]

ख– सा – साँसा जौ लहि दिन चारी। ठाकुर से करि लेहु चिन्हारी।
अध न रहहु होहु डिठियारा। चीन्हि लेहु जो तोहि सँवारा।
पहिले सो जो ठाकुर कीजिय। ऐसे जियन मरन नहिं छीजिय।
छाँड़हु घिउ औ मछरी मांसू। सूखे भोजन करहु गरासू।
दूध माँसु घिउ करु न अहारू। रोटी सानि करहु फरहारू।
एहि विधि काम घटावहु काया। काम क्रोध तिस्ना मद माया।
तब बैठहु वज्रासन मारी। गहि सुखमना पिंगला नारी।

प्रेत ततु तस लाग रहु करहु ध्यान चित बाँधि।
पारधि जैस अहेर कहँ लाग रहै सर साधि।[२]

ग– सवा लाख पैगम्बर जेते। अपने अपने पाए तेते।
एक रसूल न बैठहि छाँहां। सबही धूप लेहिं सिर माँहा।
घामै उमत दुखी जेहि केरी। सो का मानै सुख अवसेरी।
दुखी उमत तौ पुनि मैं दुखी। तेहि सुख होइ तौ पुनि मैं सुखी।
पुनि करता कै आयसु होई। उमत हंकारु लेखा मोहि देई।
कहब रसूल कि आयसु पावौं। पहिले सब धरमी लै आवौं।
होइ उतर तिन्ह ही ना चाहौं। पापी घालि नरक महँ बाहौं।

पाप पुन्नि केते खरे होइ चहत है पोच।
अस मन जानि मुहम्मद हिरदै मानेउ सोच।[३]

उक्त सभी उदाहरणो मे सयुक्ताक्षर का लगभग अभाव है। प्रत्येक शब्द मे ऐसे वर्ण गुथे है जो बोली के सहज रूप के अधिक निकट है। शब्दार्थ की सरलता तो स्पष्ट है ही, वर्ण-चयन भी सर्वथा स्वाभाविक है। कवि की दृष्टि किसी भी प्रकार के अलकरण अथवा चमत्कार-प्रदर्शन की ओर नही गई है। जायसी की माधुर्यगुणयुक्त और प्रसादगुण युक्त वर्ण-योजना मे यही प्रधान अन्तर है। माधुर्यगुणयुक्त वर्ण-योजना मे कवि ने कमनीयता लाने की चेष्टा की है, अलकरण भी अपेक्षाकृत अधिक है किन्तु प्रसादगुण मे कवि का मन सहज तथा ऋजु वर्ण-योजना मे ही रमा है।

---

१. प० ६।१-६ २. अख० ३६।१-६ ३. आखि० ३१।१-६

वर्ण-संगीत कविता और सगीत का जितना घनिष्ठ सम्बन्ध गीतो तथा पदो मे सम्भव है उतना दोहा, चौपाई जैसे छन्दो मे नही किन्तु जायसी की सहज शैली ने इन छन्दो मे भी गेयत्व उत्पन्न कर दिया है। वर्णो के प्रवाहपूर्ण कलात्मक सयोजन की प्रवृत्ति जायसी के काव्य को किस प्रकार सगीतमय बनाती चलती है, इसके अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते है। पद्मावती के नेत्रो के गतिशील लावण्य का वर्णन प्रस्तुत करने वाली इन पक्तियो मे ध्वनियो की सगीतमय योजना प्रत्यक्ष है –

(क) **पवन झकोरहिं देहिं हलोरा। सरग लाइ भुइ लाइ बहोरा।**
जग डोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अड़ार चाह पल माहाँ।[1]

(ख) **समुंद हिंडोर करहिं जनु झूले। खंजन लुरहिं मिरिग जनु भूले।**
सुभर समुंद अस नैन दुइ मानिक भरे तरंग।
आवत तीर जाहि फिरि काल भंवर तेहिं संग।[2]

झकोरहि, हलोरा, लाइ, बहोरा, डोलै, डोलत, उलटि, अडार, पल, हिडोर, झूले, लुरहि, भूले, सुभर, भरे, तरग, तीर, फिरि, काल और भवर आदि शब्दो मे 'र' और 'ल' की स्वाभाविक वर्ण-मैत्री ने बरबस एक सगीतात्मकता की योजना कर दी है।

कही-कही तो अत्यन्त सामान्य प्रसग के कथन भी इस वर्ण-सगीत के कारण बड़े सजीव हो उठे है, उदाहरणार्थ शेरशाह के दर्शन के लिए खडी हुई प्रजा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

मेदिनि दरस लुभानी अस्तुति बिनवइ ठाढ़ि।[3]

'मेदिनि दरस लुभानी' मे जो अनूठी मिठास है वह वर्ण-सगीत का ही तो प्रभाव है। इसी प्रकार—

मंदिर मदिर फुलवारी चोवा चंदन बास।
निसि दिन रहै बसत भा छहु रितु बारहु मास।[4]

मैं सिहलदीप की असाधारण प्राकृतिक सुषमा, तथा —

चहुँ दिसि रही बासना फुलवारी असि फूलि।
वह बसंत सौं भूली गा बसंत ओहि भूलि।[5]

मे पद्मावती के बसत-पूजन की मुद्रा तथा वातावरण की मादकता की जो झलक है उसके भीतर झलकती हुई सगीत-माधुरी कवि के विशिष्ट वर्ण-विधान पर ही अवलम्बित है। **'वह बसंत सौं भूली गा बसत ओहिं भूलि'** मे जिस स्वाभाविकता के साथ एक सरस व्यापार की जो सहज तथा मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है वह किसी काव्यशास्त्रीय गुण-विधान का प्रतिफल नही है। उसमे कवि की सगीतात्मक वर्ण-योजना की ही कला विद्यमान है।

---

१. प० १०३।४-५ २. प० १०३।७-६ ३. प० १६।६ ४ प० ४४।८-६
५. प० १८४।८-६

मात्राओ की सम्यक् योजना से भी वर्णों का नाद-सौदर्य बढ जाता है। जिस प्रकार कवि ने विषय के अनुरूप वर्णों का चयन करके भाव-सौरस्य का सवर्धन किया है उसी प्रकार स्वरो के द्वारा भी वर्णों मे एक निराली छटा उत्पन्न कर दी है और उनके द्वारा वर्ण्य विषय को मनोरम बना दिया है। जायसी ने कई स्थलो पर एकमात्रिक ह्रस्व वर्णों का प्रयोग कर छन्द मे वर्ण-सगीत का माधुर्य भर दिया है, यथा—

(अ) कंवल सूख पंखुरी बिहरानी। कन कन होइ मिलि छार उड़ानी।
बिरह रेति कंचन तनु लावा। चून चून कै खेह मिलावा।
कनक जो कन कन होइ बिहराई। पिय पँ छार समेटै आई।
बिरह पवन यह छार सरीरू। छारहु आनि मिला बहु नीरू।
अबहुँ मया कै आइ जियावहु बिथुरी छार समेटि।
नव अवतार होइ नइ काया दरस तुम्हारे भेंटि।[1]

(आ) जल थल भरे अपूरि सब गंगन धरति मिलि एक।
धनि जोबन औगाह महँ दे बूड़त पिय टेक।[2]

सयोग-शृगारवर्णन मे भी कवि ने इसी प्रकार ह्रस्व वर्णों की योजना कर भाषा को प्रभविष्णुता तथा सगीतात्मकता प्रदान की है—

भा निरमर सब धरनि अकासू। सेज सँवारि कीन्ह फुलडासू।
सेत बिछावन औ उजियारी। हँसि हँसि मिलहिं पुरुष औ नारी।
सोने फूल पिरिथिमी फूली। पिउ धनि सो धनि पिउ सों भूली।
चखु अंजन दै खँजन देखावा। होइ सारस जोरी पिउ पावा।
एहि रितु कंता पास जेहि सुख तिन्ह कै हिय माँह।
धनि हँसि लागै पिय गले धनि गल पिय कै बांह।[3]

उक्त अश मे 'र', 'न' आदि के विन्यास से अनूठी मिठास आगई है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार के नाद-सौदर्य तथा सगीतात्मक वर्ण-विन्यास की झलक हमे तुलसी,[4] सूर,[5]

---

१. पृ० ५८२।४-९ २. पृ० ३४६।८-९ ३. पृ० ३३८।४-९

४. कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि। रामचरितमानस

५. मानों माई घन घन अन्तर दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अन्तर, सोभित हरि ब्रज भामिनि।
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर सरद सुहाई जामिनि।
सुन्दर ससि गुन रूप राग निधि अंग अग अभिरामिनि।
रूप-निधान स्याम सुन्दर घन, आनंद मन बिश्रामिनि।
खजन मीन मयूर हंस पिक, भाइ भेद गज गामिनि।
को गति गनै सूर मोहन सग, काम विमोह्यो कामिनि।
सूरसागर, पद १०४८।

अथवा नददास[1] मे यत्र-तत्र प्राप्त होती है वैसी संगीतात्मक वर्ण-योजना जायसी-काव्य मे नही दिखाई पडती किन्तु इतना निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि जायसीकृत वर्ण-योजना मे भी एक सहज सगीत है जो पाठक को आकृष्ट किए बिना नही रहता ।

अनुप्रास-योजना —नाद-सौन्दर्य वर्ण-सगीत के लिए कविगण अनुप्रास के विविध स्वरूपो का भी आयोजन करते है । इनके प्रयोग से भी कविता मे संगीतात्मकता आ जाती है ।[2] जायसी के काव्य मे नाद-सौन्दर्य के निमित्त प्रयुक्त अनुप्रासो की योजना प्रयासरहित, स्वाभाविक तथा मनोहारिणी है । किसी-किमी स्थल पर अनुप्रासो का प्रयोग इतने सहज रूप मे हुआ है मानो कवि के शब्दभडार मे अनुप्रासयुक्त शब्दो के अतिरिक्त अन्य शब्द ही न हो, किन्तु अनुप्रास का नाद-सौन्दर्य शब्दो के भाव को कही दबने नही देता । उनका विन्यास भव्य अवश्य है, किन्तु वह इतना भडकीला नही है कि पाठको का ध्यान वर्ण्य विषय से हटकर आलंकारिक छटा मे ही उलझ जावे । अनुप्रास-योजना से काव्य मे कुछ स्थल तो अत्यधिक श्रुतिमधुर तथा सगीतमय हो गए है । अनुप्रास के विविध भेदो मे से लाटानुप्रास के अतिरिक्त अन्य प्रमुख भेद-छेक, वृत्ति तथा श्रुति वर्ण-योजना से ही सम्बद्ध है और सभी वर्ण-योजना मे सगीतात्मकता का सचार करते है, अत वर्ण-सगीत के अतर्गत जायसीकृत आनुप्रासिक प्रयोगो को भी देख लेना उचित होगा । जायसी-काव्य से उपरिलिखित अनुप्रासो के कुछ सुन्दर प्रयोग यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

छेकानुप्रास[3]—१. जो **हेरा** सो **हेरान** मुहमद आपुहि आपु महँ ।[4]
२. **सेवरा खेवरा** बानपरस्ती सिध साधक अवधूत ।[5]
३. कुसुम **माल** अस **मालति** पाई ।[6]

---

१. **नूपुर कंकन किंकिन करतल मजुल मुरली ।**
ताल मृदंग उमंग चग एकहि सुर जुरली ।
मृदुल मुरज टकार, ताल झंकार मिली धुनि ।
मधुर जत्र की तार भवर गुंजार रही पुनि ।
तैसिय मृदु पद पटकनि चटकनि करतारन की ।
लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की ।
रासपचाध्यायी-स० डॉ० उदमनारायण तिवारी पृ० ६६-६०

२. हमारे (अर्थात् भारतीय) साहित्य-शास्त्र मे स्वीकृत शब्दालकार दो प्रकार के हैं, एक तो वे जो मुख्यत सगीत का विधान करते है, जैसे अनुप्रास ।
—डॉ० देवराज : साहित्यचिन्ता, पृ० १५ ।

३. छेको व्यजनसघस्य सकृत्साम्यमनेकधा । साहित्यदर्पण, १०।३

४ अख० ७।११ ५ प० ३०।८ ६ प० ३१६।३

४ **सीस** सबन्हि के **सेदुर** पूरा। **सीस** पूरि **सब** अग **सेदूरा**।[१]
५ सोने **फूल** पिरिथिमी **फूली**। **पिउ** धनि **सौं** धनि **पिउ** सो भूली।[२]
६ **मन सो मन तन सों तन** गहा। **हिय** सो **हिय** बिच **हार न रहा**।[३]
७ **हिय हिंडोल** जस **डोलै** मोरा। बिरह **झुलावै** देइ **झंकोरा**।[४]
८ मासु खाइ **अब** हाडन्ह लागा। **अबहुँ आउ आवत** सुनि भागा।[५]
९ **अरबुद खरबुद** नील सख और खड पदुम करोरि।[६]
१० अरध उरध नहिं सूझै लाखन उमरा मीर।
अब खुर खेह जाब मिलि आइ परे तेहि भीर।[७]
११ कत वह आइ **झरोखे झाकी**। नैन कुरगिनि चितव**नि** बाँ**की**।[८]
१२. जत्र पखाउझ आउझ बाजा। सुरमडल रबाब भल साजा।[९]
१३. होइ हनिवत जमकातरि ढाहौं। आजु स्यामि **सँकरे** निरबाहौं।[१०]

वृत्यनुप्रास[११] जायसी के काव्य मे लगभग उन सभी वर्णो का अनुप्रास प्राप्त होता है जिनका उन्होने प्रयोग किया है। इनमे से क, ज, न, स तथा ह का वृत्यानुप्रास अधिकाशत. मिलता है। विविध वर्णो के अनुप्रास के उदाहरण निम्नलिखित है—

अ– १. वा—वह रूप न जाइ बखानी। अगम **अगोचर** अकथ कहानी।[१२]
२. अलख **अरूप** अबरन सो करता। वह सब सो सब ओहि सो बरता।[१३]
३ अमिअ अधर अस राजा सब जग आस करेइ।[१४]
४ अधर अधर सो भीज तँबोरी। अलकाउरि मुरि मुरि गौ मोरी।[१५]
५. जो फर देखिअ सोइअ फीका। ताकर कान्ह सराहिअ फीका।[१६]
आ– १. आपुहि बन औ **आपु** पखेरू। आपुहि सौजा **आपु** अहेरू।[१७]
२ उठे **आगि** औ **आवै** आधी। नैन न सूझ मरौ दुख बाँधी।[१८]
३. आधे समुद आए **सो** नाही। उठी बाउ आँधी उपराही।[१९]
इ– १ सब**इ** नास्ति वह अस्थिर अइस साज जेहि केरि।
एक साजइ अउ भाजइ चहइ सवारइ फेर।[२०]
उ– १. जिउ हमार पिउ लेवे अहा। दरसन देउ लेउ जब चहा।[२१]

---

१ प० ३३।२ २. प० ३३८।६ ३. प० ३३९।३ ४. प० ३४५।५
५ प० ३५५।७ ६. प० ३८५।९ ७. प० ४५७।८-९ ८ प० ४६९।२
९. प० ५२७।३ १०. प० ६२९।७

११ **अनेकस्यैकधासाम्यमसकृद् वाप्यनेकधा।**
एकस्य सकृदप्यैष वृत्यनुप्रासं उच्यते। साहित्यदर्पण १०।४

१२ अख० ३५।१ १३ प० ७।१ १४. प० १०६।८ १५ प० ३२६।४
१६. प० ४३६।७ १७. अख० १८।४ १८. प० ३५५।५ १९ प० ३८९।१
२०. प० ६।८-९ २१ प० ४०३।७

क – १. कुहू कुहू कोइल करि राखा । औ भिंगराज बोल बहु भाखा ।[1]
२ कतहू कथा कहै कछु कोई । कतहूँ नाच कोड भलि होई ।[2]
३. केला केलि करै का जो भा बैरि परोस ।[3]
४. कुँवर बतीसौ लक्खना सहस कराँ जस भान ।
काह कसौटी कसिए कंचन बारह बान ।[4]
५ कौतुक केलि करहिं दुख नसा । कुदहिं कुरुलहिं जनु सर हुसा ।[5]

ख – १. टा-टुक झाकहु सातौ खंडा । खंडै खंड लखहु बरम्हंडा ।[6]
२. खिनहि पीत खिन होइ मुख सेता । खिनहिं चेत खिन होइ अचेता।[7]
३. कहु सुख राखै की दुख दहुं कस जरम निबाह ।[8]
४. खंडरा खंडि खंडोई खंडी । परी एकोतर सै कठहंडी ।[9]

ग – १. गोदि गेंद कै जानहु लई । गेंदहु चाहि धनि कोवरि भई ।[10]
२ गवन आव धनि मिलन की ताईं । कवन गवन जो गवनै साँईं ।[11]
३. छर कै गहन गरासा गहन गरासे जाहिं ।[12]

घ – १. जबहिं घरी पूजी वह मारा । घरी घरी घरिआर पुकारा ।[13]
२. राघौ आघौ होत जौं कत आछत जियं साध ।
ओहि बिनु आघ बाघ बर सकै त लै अपराध ।[14]

च – १. चारि बसेरें सौं चढै सत सौं चढै जो पार ।[15]
२. जोबन चाँद जो चौदसि करा । बिरह कि चिनगि चाँद पुनि जरा ।[16]
३. तहाँ चित्रगढ चितउर चित्रसेनि कर राज ।[17]
४. चीर चारु औ चंदन चोला । हीर हार नग लाग अमोला ।[18]
५. भएउ चेत चित चेतनि चेता । बहुरि न आइ सहौं दुख एता ।[19]

छ – खंजन छपा देखि कै नैना । कोकिल छपा सुनत मधु बैना ।
गीवं देखि कै छपा मंजूरू । लंक देखि कै छपा सदूरू ।
भौंह धनुक जो छपा अकारा । बेनी बासुकि छपा पतारा ।
खरग छपा नासिका बिसेखी । अंब्रित छपा अधर रस पेखी ।
भुजन छपानि कंवल पौनारी । जंघ छपा केदली होइ बारी ।

---

१. प० २६।५ २ प० ३६।४ ३. प० ५७।६ ४. प० २७३।८-६
५. प० ३१६।७ ६. अख० १७।१ ७. प० ११६।६ ८ प० ६०।६
६ प० २८४।५ १०. प० ३१७।५ ११. प० ६१७।५ १२ प० ६२५।६
१३ प० ४२।३ १४. प० ५७२।८-६ १५ प० ४१।६ १६. प० १७३।५
१७. प० १७६।७ १८. प० २६६।२ १६ प० ४५६।१

आछरि रूप छपानी जबहिं चली धनि साजि ।
जावँत गरब गहीलि हुतिं सबै छपी मन लाजि ।।[1]

ज – १. जोबन तुरै हाथ गहि लीजै । जहा जाइ तह जाइ न दीजै ।[2]
२. जिउ पाइअ जग जनमे पिउ पाइअ कै सेव ।[3]
३. बरु जिउ जाइ जाइ जनि बोला । राजा सत्त सुमेरु न डोला ।[4]
४. अब जिउ जरम जरम तोहि पासा । किएउं जोग आएउ कबिलासा ।[5]
५ जौं जिउ जारें पिउ मिलै फिटु रे जीय जरि जाहि ।[6]

झ – १. बरिसै मघा झंकोरि झकोरी । मोर दुइ नैन चुवहिं जस ओरी ।
पुरबा लाग पुहुमि जल पूरी । आक जवास भई हो झूरी ।[7]

ट – १. ठाठर टूट टूट सिर तासू । सिउ सुमेरु जनु टूट अकासू ।[8]

ठ – १. सांठि नाठि उठि भए बटाऊ ना पहिचान न भेट ।[9]
२. राजै पदुमावति सौ कहा । साठ नाठि किछु गाठि न रहा ।[10]
३. ना सुठि लाबी न सुठि छोटी । ना सुठि पातरि न सुठि मोटी ।[11]

ड – १. डंडवै डांड दीन्ह जह ताईं । आइ सो डंडवत कीन्ह सबाईं ।
दुदि डाँडि सब सरगहि गई । पुहुमि जो डोल सो अस्थिर भई ।[12]

ड़ – १. गड़हन जड़हन बड़हन मिला । औ ससार तिलक खड़चिला ।[13]

ढ – १. तेहि ढीली का रही ढिलाई । साढी गाढ़ि ढील जब ताई ।[14]

ढ़ – १. पंवरिहि पवरि सिह गढ़ि काढ़े । डरपहिं राय देखि तैन्ह ठाढ़े ।[15]
२. बाक चढ़ाउ सुरग गढ़ चढ़त गएउ होइ भोर ।
भइ पुकार गढ ऊपर चढ़े सेंधि दै चोर ।[16]
३. पुतरी गढ़ि गढ़ि खभन्ह काढ़ी । जनु सजीव सेवा सब ठाढ़ी ।[17]

त – १. जावँत जगति हस्ति औ चाटा । सब कह भुगुति रात दिन बाटा ।[18]
२. तीख तुखार चाँड औ बाके । तरपहिं तबहि तायन बिनु हाके ।[19]

थ – १. साथी आथि निआथि भै सकेसि न साथ निबाहि ।[20]

द – १. जस दरपन महं दरसन देखा । हिय निरमल तेहि मँह जग देखा ।[21]

---

१. प० ३०२।३-९ २. प० १७१।४ ३. प० १७३।१ ४. प० २४२।६
५. प० ३१३।७ ६ प० ४०१।९ ७. प० ३४६।६ ८. प० ६३७।३
९. प० ३८।९ १०. प० ४२०।२ ११ प० ४६६।३ १२. प० ५७७।६-७
१३. प० ५४४।६ १४. प० ४५९।६ १५. प० ४१।४ १६. प० २३८।८-९
१७. प० २९०।२ १८. प० ५।२ १९. प० ४६।४ २० प० ४०१।१
२१. अख० १५।४

२. रोवत रकत भएउ मुख राता ।[1]

३. अहै कुवर अस हमरे चारू । आजु कुवरि कर करब सिगारू। [2]

४. रहै न आठ अठारह भाखा । सोरह सतरह रहै सो राखा ।[3]

ल – १. तीलहि फूलहि संग जेउँ होइ फुलाएल तेल ।[4]

२. लिखै लाख जो लेखा कहै न पारहि जोरि ।[5]

३. भै बगमेल सेल घनघोरा । औ गज पेल अकेल सो गोरा ।[6]

व – १ जौ तू मुवा कस रोवसि खरा । न मुवा रोवै न रोवै मरा ।[7]

स – १. सुन्नहि सात सरग उपराही । सुन्नहि सातौ धरति तराही ।[8]

२. सारौ सुवा सो रहचह करही ।[9]

३. भुगुति दिहेसि पुनि सब कह सकल साजना साजि ।[10]

४. सात खंड ऊपर कबिलासू । तहं सोवनारि सेज सुखबासू ।[11]

५. अति सुकुमारि सेज सो साजा छुवै न पावै कोइ ।[12]

ह – १. हनि हथेव हिय दरपन साजै । छोलनी जाप लिहै तन माजै ।[13]

२. हारु गवाइ सो अैसेहि रोवा । हेरि हेराइ लेहु जौ रोवा ।[14]

३. तू हरि लक हराए केहरि । अब कस हारै करसि हहेहरि ।[15]

४. सखि हिय हेरि हार मन मारी । हहरि परान तजै अब नारी ।[16]

५. काहू कहौं हौं तोसो किछौ न तोरे भाउ ।
इहाॅ बात मुख मोसो उहाॅ जीव ओहि ठाउं ।[17]

श्रुत्यनुप्रास [18] सभी वर्गों का अनुप्रास जायसी के काव्य मे प्राप्त होता है, पवर्ग के श्रुत्यनुप्रास का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है । विभिन्न उदाहरण इस प्रकार हैं—

१. जो अपने बल चढि कै नाॅघा । सो खसि परा टूटि गइ जाघा ।[19]

२. हस्ति घोर औ कापर सबहिं दीन्ह नौ साजु ।
भै गिरहस्त लखपती घर घर मानहि राजु ।[20]

३. कै खर बान कसै पिय लागा । जौ घर आवै अबहूँ कागा ।[21]

१. सुरग चीर भल सिंघल दीपी । कीन्ह छाप जो धन्नि वै छीपी ।[22]

---

१. प० ७७।५ २. प० २६२।२ ३. प० ३१३।३ ४. प० ६३।६
५. प० ३८५।८ ६ प० ६३२।१ ७. प० ४१३।१ ८. अख० ३०।५
९. प० २६।२ १०. प० ४।६ ११. प० २६१।१ १२. प० २६१।८
१३. अख० ३६।६ १४. प० ६४।७ १५. प० २५०।६ १६. प० ३४२।४
१७. प० ४२६।८-९ १८. उच्चार्यत्वाद्यदेकत्र स्थानतालुरवादिके ।
सादृश्यं व्यंजनस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते ।। साहित्यदर्पण, १०।५
१९. प० २४।५ २०. प० ३३१।८-९ २१. प० ३५८।२ २२. प० ३२६।५

२ जहाँ झुराहि दिहै सिर छाता। तहा हमार को चालै बाता।[1]

३. केस छोरि चरनन्ह् रज झारे।[2]

१. सखदराउ छोहारा डीठे। औरु खजहजा खाटे मीठे।[3]

२. तिलक लिलाट धरा तस डीठा।[4]

३. जो मजीठ औटै औ पचा। सो रग जरम न डोलै रँचा।[5]

४. घट घट जगत तोरि है डीठी। मोहि आपनि कछु सूझ न पीठी।[6]

१. जो पै जगत होति थिर माया। सैतत सिद्ध न पावत राया।[7]

२. वेद पुरान ग्रथ जत सबै सुनै सिखि लीन्ह।
नाद विनोद राग रस विदक स्रवन ओहि बिधि दीन्ह।[8]

१. आपुहि पुहुप फूलि बन फूले। आपुहि भँवर बास रस भूले।[9]

२. मुहमद बारि परेम की जेउ भावै तेउ खेल।
तीलहि फूलहि सग जेउ होइ फुलाएल तेल।[10]

३. पुनि अभरन बहु काढा अनबन भाँति जराउ।
फेरि फेरि निति पहिरहि जैस जैस मन भाउ।[11]

४. बंवरि जो पौंडि सीस भुइ लावा। बड फर सुभर ओहि पै पावा।[12]

५. पाच भूत आतमा नेवारेउँ। बारहि बार फिरत मन मारेउँ।[13]

१. जाहि बया गहि पिय कठलवा। करै मेराउ सोई गौरवा।[14]

२. पियरि तिलोरि आव जलहसा। बिरहा पैठि हिये कतनसा।[15]

३. लोचन कवल सिरीमुख सूरू। भए अतियत दुनहु रसमूरू।[16]

अनुप्रास के इन सभी उदाहरणो मे वर्णो की आवृत्ति के कारण वर्ण-सगीत सहज ही उत्पन्न हो गया है जिससे भाषा की श्रीवृद्धि हुई है।

वर्ण-मैत्री . वर्ण-योजना मे सौन्दर्य उत्पन्न करने का एक साधन वर्ण-मैत्री भी है। अनुप्रास-विधान और वर्ण-मैत्री मे सूक्ष्म अतर है। वर्ण-मैत्री के लिए यह आवश्यक नही है कि एक ही वर्ण की आवृत्ति शब्दो मे हो। शब्दो मे समान सख्या के वर्ण और उन वर्णों का गठन एक सा होना वर्ण-मैत्री के लिए यथेष्ट है। वर्ण-मैत्री मे वर्णों की योजना समान होनी चाहिए। उनकी मात्राए, उनकी स्वरूप-रचना एक सी होनी चाहिए। जायसी ने अपने काव्य मे अनेक स्थलो पर वर्ण-मैत्री का सफल निर्वाह कर भाषा को ललित तथा आकर्षक बना दिया है, यथा—

---

१. प० ४५७।७ २. प० ६०७।४ ३. प० ३४।७ ४. प० २६७।६
५. प० ३०८।५ ६. प० ४०७।७ ७. प० ४१।५ ८. प० ४७६।८-६
६. अख० १८।५ १० प० ६३।८-६ ११. प० ३२६।८-६ १२ प० ३८१।५
१३. प० ६४४।६ १४ प० ३५८।५ १५ प० ३५८।७ १६. प० ४१८।४

सगबगाहिं बिसभरे बिसारे। लहरिआहिं लहर्काहिं अति कारे
लुर्राहिं मुर्राहिं मार्नाहिं जनु केली। नाग चढ़ा मालति की बेली।[१]

उक्त पक्तियो मे वर्णावृत्ति, सवर्गीय वर्णध्वनि तथा मात्राओ का साम्य है इसीलिए वर्णो मे एक सन्तुलन है जो वर्ण-सगीत की सृष्टि करता है। इसी प्रकार की वर्ण-मैत्री के लिए निम्नलिखित पक्तिया भी उल्लेखनीय है —

(१) **हिय हिंडोल जस डोलै मोरा। बिरह झुलावै देइ झकोरा।**
बाट असूझ अथाह गभीरा। जिउ बाउर भा भवै भंभीरा।[२]
(२) **गरुअ गयद न टारे टरही। टूटहिं दत सुंड भुइ परहीं।**[३]
(३) **लाख जाहिं आवहिं दुइ लाखा। फरहिं झरहिं उपनहिं नौ साखा।**[४]
(४) **जहॉं दलपती दलमलहिं तहाँ तोर का जोग।**
आजु गवन तोर आवै मदिल मानु सुख भोग।[५]

उक्त उद्धरणो मे वर्ण-मैत्री का स्वरूप द्रष्टव्य है। कही निकटवर्ती शब्दो का आकार समान है, यथा– दत सुड, गरुअ गयद, असूझ अथाह, तो कही वर्णो की मात्राए एक जैसी है, यथा–'**फर्राहि झर्राहिं उपर्नाहिं**' आदि। उल्लिखित पक्तियो मे अलकार-विधान भी उतना चमत्कार नही ला पाया है जितना सौष्ठव वर्ण-मैत्री से उत्पन्न हो गया है।

वर्ण-योजना में अर्थ-सौरस्य– जायसी के पदो मे प्रयुक्त वर्ण केवल नाद-सौन्दर्य की ही सृष्टि नही करते, अर्थ मे भी रसात्मकता का सचार करते है। वर्ण-मैत्री श्रुतिमधुर होने के साथ साथ अर्थ को मूर्तिमान करने मे भी योग देती है, जैसे—

तरकि तरकि गौ चदन चोला। धरकि धरकि डर उठै न बोला।[६]

यहॉं एक ओर 'तरकि' और 'धरकि' के अनुप्रास सुखद है, साथ ही साथ इनमे प्रयुक्त वर्णो की आवृत्ति हृदय की धडकन तथा कपडे के फटने का बहुत ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत कर देती है। इसी प्रकार–

बरिसै मघा झकोरि झकोरी। मोर दुइ नैन चुर्वाहिं जस ओरी।[७]

मे 'झकोरि झकोरि' का वर्ण-विन्यास वर्षा ऋतु मे तीव्र गति से वायु के चलने और बूँदो के लहरा लहरा कर गिरने का अत्यन्त स्वाभाविक तथा सजीव चित्र प्रस्तुत कर देता है। इस प्रकार वर्ण-योजना के विविध कलात्मक प्रयोगो को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जायसी की काव्य-कला का आधार शब्द और अर्थ मात्र ही नही है। उन्होने वर्ण-विधान मे भी अपने कवि-सुलभ नैपुण्य का सुन्दर प्रदर्शन किया है, फलत भावो की अभिव्यजना मे केवल शब्दो का ही योगदान नही है, वरन् जिन वर्णो से जायसी ने शब्द-रचना की है वे भी विभिन्न रूपो मे कवि के भावो को साकार रूप प्रदान करने मे सहायक हुए

---

१. प० ४७०।४-५   २ प० ३४५।६-७   ३ प० ५१७।२   ४ प० ५२२।५
५. प० ६१३।८-९   ६. प० ३२७।३   ७ प० ३४६।५

हैं। जायसी की वर्ण-योजना जितनी कलापूर्ण है उतनी ही भावानुकूल भी है। अर्थ की गहराइयो मे उतरने के पूर्व ही जहाँ वर्ण-विन्यास हमारे मन को भाव-जगत् की ओर बरबस खीच ले वही कला की प्राणवत्ता सच्चे रूप मे चरितार्थ होती है और यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि जायसी के काव्य मे ऐसे अनेक मार्मिक स्थल है जहाँ अर्थ-गाभीर्य से परिचित होने के पूर्व ही वर्ण-विन्यास पाठक अथवा श्रोता को रस का सकेत देने लगता है।

शब्द-विन्यास भावानुरूप वर्ण-विन्यास के अतिरिक्त उचित शब्द-विन्यास भी काव्यशिल्प का प्रमुख प्रसाधन है। कुशलता से प्रयुक्त होने पर सामान्य शब्द भी काव्य मे सरसता का विधायक हो सकता है और लेशमात्र शैथिल्य अथवा असावधानी से विरसता तो बडी सरलता से आ ही सकती है, कभी कभी अर्थ का अनर्थ भी सम्भव है। श्रेष्ठ कवि इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुए ही शब्द-योजना मे अत्यधिक सतर्क रहते है। सुप्रसिद्ध फ्रासीसी लेखक फ्लावर्ट का कथन है कि केवल एक ही सज्ञा के द्वारा एक विचार व्यक्त हो सकता है, एक ही क्रिया उस विचार को प्रगतिशील बना सकती है और केवल एक ही विशेषण उसकी विशेष व्याख्या कर सकता है। उक्त कथन मे थोडी अतिरजना भले ही हो किन्तु शब्द-प्रयोग की महत्ता और उसके लिए अपेक्षित सतर्कता तथा विवेकशक्ति की जिस दिशा मे वह सकेत करता है, वह सर्वथा सत्य है। प्रतिभाशाली साहित्यकार अभीप्ट भावो को व्यक्त करने के लिए शब्दो का प्रयोग बडी सावधानी से करता है। भावाभिव्यक्ति के लिए अनेक शब्द उसके मन मे आ उपस्थित होते है किन्तु सभी सतोषजनक नही होते। उनमे से अथवा किसी अन्य क्षेत्र से साहित्यकार ऐसा शब्द छाट लेता है जो पाठक अथवा श्रोता के हृदय मे उसकी भावना को हूबहू उतार दे। यह शब्द-चयन ही कवि का सबसे अधिक आवश्यक तथा प्रयत्नसाध्य धर्म है। श्रेष्ठ साहित्यकारो के हाथ मे शब्द सदैव नाचा करते है मानो वे उनके वशानुवर्ती हो। साहित्यकार का मन्तव्य उन शब्दो से स्वत ध्वनित होने लगता है और वह भी इतने सुन्दर, स्पष्ट तथा प्रभावशाली रूप मे कि प्राय यह प्रतीत होता है कि कोई भी अन्य शब्द साहित्यकार के अभीष्ट अर्थ को इतने सुन्दर ढग से कदापि व्यक्त नही कर सकता था। साधारण कोटि के कवियो मे शब्द-चयन की इतनी लाघवता नही प्राप्त होती। कही शब्द सुन्दर तो भाव का अभाव, कही सुन्दर भाव को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द नही। शब्द और भाव का सम-सामजस्य ही साहित्य को स्थायित्व प्रदान करता है इसीलिए साहित्य मे उचित शब्द-विन्यास की बडी महत्ता है।

शब्द-वैभव शब्द भावाभिव्यंजना के माध्यम है, अतएव जिस कवि का शब्द-भण्डार जितना विशाल होगा उसकी भाषा और शैली उतनी ही समृद्ध तथा सम्पन्न होगी। तभी उसे विविध शब्दो मे से सर्वाधिक उपयुक्त शब्द को चुनने का अवसर मिल सकेगा। जायसी का शब्द-भण्डार विशाल तथा विस्तृत है और उन्होने तत्सम, अर्धतत्सम, तदभव, ठेठ तथा विदेशी सभी प्रकार के शब्दों को अपनाया है और इससे उनकी भाषा

मे अर्थ-समृद्धि तथा व्यंजकता की वृद्धि हुई है। यहाँ इन्ही शब्दों के कलात्मक पहलू पर विचार करना अभीष्ट है।

तत्सम शब्दावली : जायसी अवधी के सहज माधुर्य को सुरक्षित रखने के लिए विशेष रूप से सजग तथा प्रयत्नशील रहे है इसीलिए उन्होने तत्सम शब्दो के प्रयोग मे विशेष अभिरुचि प्रदर्शित नही की। उनके समस्त काव्य मे तत्सम शब्दावली का सानुपातिक रूप से अधिक मात्रा मे प्रयोग या तो सिद्धान्त-निरूपण, नीतिकथन तथा दार्शनिक प्रसगो मे मिलता है या अप्रस्तुत योजनाओ मे। दार्शनिक प्रसंगो मे भी कवि ने तत्सम शब्दावली का प्रयोग वही किया है जहाँ वह दुर्निवार हो गया है, अन्यथा उन्होने गम्भीर भावो को भी तद्भवाश्रित भाषा के द्वारा व्यक्त किया है। तत्सम शब्दावली से युक्त एक दार्शनिक स्थल देखिए—

छा—छाया जस बुंद अलोपू। ओठई सौं आनि रहा करि गोपू।
सोइ चित्त सौं मनुवाँ जागै। ओहि मिलि कौतुक खेलै लागै।
देखि पिंड कहं बोली बोलै। अब मोहिं बिनु कस नैन न खोलै।
परम हस तेहि ऊपर देई। सोऽह सोऽहं सांसै लेई।
तन सराय मम जानहु दीया। आसु तेल दम बाती कीया।
दीपक मह बिधि जोति समानी। आपुहि बरै बाति निरबानी।
निघटै तेल झूरि भइ बाती। गा दीपक बुझि अधियरि राती।[1]

ईश्वर की महिमा तथा प्रशस्ति का गान करने मे भी कवि ने यत्र-तत्र तत्सम शब्दावली को अपनाया है, जैसे —

(क) अलख अरूप अबरन सो करता। वह सब सों सब ओहि सों बरता।
परगट गुपुत सो सरब बियापी। धरमी चीन्ह चीन्ह नहिं पापी।[2]

(ख) ऐ गोसाइँ तू सिरजनहारू। तू सिरिजा यहु समुंद अपारू।
तूं जल ऊपर धरती राखे। जगत भार लै भार न भाखे।
तैं यह गंगन अंतरिख थांभा। जहां न टेक न थून्ही खांभा।
चांद सुरुज औ नखतन्ह पाँती। तोरे डर धावहिं दिन राती।
पानी पवन अगिनि औ मांटी। सब की पीठि तोरि है सांटी।
सो अमुरुख बाउर औ अंधा। तोहि छांड़ि औरहि चित बंधा।
घट घट जगत तोरि है डीठी। मोहिं आपनि किछु सूझ न पीठी।[3]

नीति-कथन तथा सूक्तियो मे भी तत्सम शब्दावली का उल्लेखनीय प्रयोग मिलत है, यथा —

---

१. अख० १३।१-७ २. प० ७।१-२ ३. प० ४०७।१-४

थल थल नग न होइ जेहि जोती। जल जल सीप न उपनै मोती।
बन बन बिरिख चंदन नहिं होई। तन तन बिरह न उपजै सोई।
जेहि उपना सो औटि मरि गएऊ। जरम निनार न कबहूँ भएऊ।
जल अंबुज रबि रहै अकासा। प्रीति तौ जानहुं एकहि पासा।[1]

उक्त सभी स्थलो पर एक बात समान रूप से लक्षित की जा सकती है और वह यह कि जहाँ कही भी कवि को अवसर मिला है उसने सस्कृत शब्दो को अवधी के माधुर्य मे रग दिया है। अतरिख, अगिनि, पौन, थल, बिरिख, परगट, गुपुत तथा सरबबियापी ऐसे ही शब्द हैं। अत्यल्प परिवर्तन के द्वारा ये तत्सम शब्द ऐसे प्रतीत होते है मानो तद्भव हो।

तत्सम शब्दावली का दूसरा उल्लेखनीय प्रयोग उन स्थलो पर मिलता है जहाँ कवि ने अप्रस्तुत योजना की है। पद्मावती के नख-शिख वर्णन मे कवि ने उपमाओ की झडी लगा दी है। इन अप्रस्तुत योजनाओ मे जायसी ने कवि-परम्परा का अनुसरण किया है अत तदनुसार ऐसे स्थलो पर तत्सम शब्दो का समावेश अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। पद्मावती के पेट तथा नाभि-प्रदेश के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

पेट पत्र चंदन जनु लावा। कुँकुह केसरि बरन सोहावा।
खीर अहार न कर सुकुवांरा। पान फूल के रहै अधारा।
स्याम भुअंगिनि रोमावली। नाभी निकसि कंवल कहं चली।
आइ दुहूँ नारंग बिच भई। देखि मंजूर ठमकि रहि गई।
जनहुं चढ़ी भंवरन्हि कै पाती। चंदन खाँभ बास कै माँती।
कै कालिंद्री बिरह सताई। चलि पयाग अरइल बिच आई।
नाभी कुंडर बानारसी। सौंह को होइ मीचु तहं बसी।[2]

इसी प्रकार राघव चेतन अलाउद्दीन के सम्मुख पद्मावती के रूप की प्रशंसा करते हुए कहता है—

यह जो पदुमिनि चितउर आनी। कुंदन कया दुवादस बानी।
कुंदन कनक न गंध न बासा। वह सुगंध जनु कंवल बिगासा।
कुंदन कनक कठोर सो अंगा। वह कोवलि रंग पुहुम सुरंगा।
ओहि छुइ पवन बिरिख जेहि लागा। सोइ मलयागिरि भएउ सभागा।
काह न मूंठि भरी ओहि खेही। असि मूरति कै देयं उरेही।
सबै चितेर चित्र कै हारे। ओहिक चित्र कोइ करै न पारे।
कया कपूर हाड़ जनु मोती। तेहि तें अधिक दीन्ह बिधि जोती।

सूरज क्रांति करा जसि निरमल नीर सरीर।
सौंहं निरखि नहिं जाइ निहारी नैनन्ह आवै नीर।[3]

---

१. प० ३११।१-४ २ प० ११४।१-७ ३. प० ४६८।१-६

उक्त उद्धरणो मे कवि ने प्रचुर तत्सम शब्दो का प्रयोग किया है किन्तु साथ ही साथ उसने तत्समता के प्रभाव को कम करने के लिए और अवधी की सहजता तथा भाषा-माधुरी का सन्निवेश करने के हेतु जिस कुशलता से शब्दो मे यत्र-तत्र परिवर्तन कर दिए हैं वह द्रष्टव्य है। बरन, कालिंद्री, दुवादस, निरमल तथा विधि आदि शब्दो मे ध्वन्यात्मक परिवर्तन कर कवि ने तत्समता के प्रभाव का निराकरण कर दिया है और इस प्रकार साहित्यिक अवधी मे तत्सम शब्दो का व्यवहार करते हुए भी उन्होने भाषा की मिठास की ही प्रधानता बनाए रखी है। जायसी को अवधी का सहज तथा मधुर रूप ही प्रिय था इसीलिए वे तद्भव शब्दावली का अधिक प्रयोग करते रहे है। जहा उन्हे दार्शनिक विवेचन, सिद्धान्त-निरूपण, नीति-कथन, ईश्वर की महत्ता का गुणगान अथवा नख-शिख वर्णन करना था वहा विषयानुकूल शब्दावली रखने के लिए उन्होने तत्सम शब्दावली का प्रयोग तो किया है किन्तु अवधी के माधुर्य तथा स्वरूप को महत्व देते हुए यथावश्यक काट-छाट कर दी है। यही कारण है कि जायसी के तत्सम शब्द-सम्पन्न स्थलो मे भी 'भाषापन' झलकता है।

तद्भव शब्दावली · जायसी ने तद्भव शब्दो का प्रयोग सबसे अधिक किया है। इसका कारण यह है कि उन्होने लोक-प्रचलित तथा व्यावहारिक भाषा को बहुत अधिक महत्व दिया है। तद्भव शब्दावली की बहुलता के कारण उनकी भाषा का आडम्बररहित सहज सौदर्य स्वाभाविक रूप से बढ गया है। एक उदाहरण देखिए—

काह हँससि तूँ मोसों किए जो और सों नेहु।
तोहि मुख चमकै बीजुरी मोहि मुख बरसै मेहु।[1]

उक्त पक्तियो मे लोक-व्यवहार की अवधी भाषा और उसमे प्रयुक्त तद्भव शब्दावली का सौन्दर्य दर्शनीय है। नागमती के उक्त कथन मे सभी शब्द तद्भव है तथा प्रयुक्त भाषा का रूप अत्यन्त सरल तथा सहज है किन्तु यह अंश अपनी मार्मिकता के कारण हृदय की गहराइयो को छू लेता है। एक अन्य स्थल पर पद्मावती के नख-शिख वर्णन मे कवि मणिजटित कुण्डलो का उल्लेख करते हुए कहता है—

मनि कुंडल चमकहिं अति लोने। जनु कौधा लौकहिं दुहुँ कोने।[2]

'कौधा' और 'लौकहि' शब्द कितने सजीव है! मन को बरबस मुग्ध करने वाले इस प्रकार के तद्भव शब्द-रत्न जायसी के काव्य-रत्नाकर मे भरे पडे है।

लोक-शब्दावली · जायसी ने कुछ ऐसे शब्दो का प्रयोग भी किया है जो साहित्य की परिष्कृत काव्य-भाषा मे बहुत कम प्रचलित अथवा सर्वथा अप्रचलित थे। हरिऔध ने इसे उनकी भाषा का दोष बताया है।[3] यह सत्य है कि जायसी द्वारा प्रयुक्त बहुत से शब्द

---

१. प० ४२७।८–९ २ प० ११०।२

३. **'ग्रामीणता के दोष से तो इनका ग्रन्थ भरा पड़ा है। इन्होंने इतने ठेठ ग्रामीण शब्दो का प्रयोग किया है जो किसी प्रकार बोध सुलभ नहीं।'**

हरिऔध हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास. पृ० २२६।

'बोध सुलभ' नही हे किन्तु इसी कारण उनकी भाषा को निकृष्ट ठहराना अनुचित है। इस सम्बन्ध मे हमे एक तो यह ध्यान रखना है कि जायसी का काव्य अवध के गाँवो मे बोली जाने वाली १६ वी शताब्दी की अवधी का रूप प्रस्तुत करता है।[1] दूसरे, ऐसे ठेठ शब्द ही तो उनकी काव्य-भाषा के रत्न है। यदि जायसी इन शब्दो को हेय समझ कर इनकी उपेक्षा कर देते तो उनकी भाषा मे वह चुस्ती और व्यजकता न आ पाती जो किसी भी जीवित भाषा की अमूल्य निधि है। इस प्रकार के शब्दो के प्रयोग से जायसी की अर्थ-व्यजकता और भी अधिक बढ गई है। उदाहरण प्रस्तुत है--

सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ कै बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिउ टेका। दीठि दवँगरा मेरवहु एका।[2]

नागमती के विरह-वर्णन के उक्त चित्र मे 'दवँगरा' शब्द से जिस प्राकृतिक व्यापार का बोध हो रहा है उसे क्या कोई भी समानार्थक साहित्यिक शब्द व्यक्त कर सकता है ? इसी विरह-वर्णन मे कवि ने भयंकर गर्मी के दिनो के लिए 'जेठ असाढी' शब्द का प्रयोग किया है--

तपै लाग अब जेठ असाढ़ी।[3]

अवधी-क्षेत्र के निवासी इस शब्द के अर्थ और माधुर्य से भली प्रकार अवगत है किन्तु परिष्कृत भाषा मे इसके जोड का शब्द मिलना सहज सम्भव नही। कहने का तात्पर्य यह है कि 'जायसी ने तत्कालीन बोलचाल की अवधी मे अपनी रचना की है। इनकी रचना बोल-चाल के यथातथ्य शब्दो से पूर्ण है।'[4] यह सत्य है कि उनकी भाषा मे कुछ ऐसे शब्द अवश्य ही आ गए है जो अपनी प्राचीनता अथवा एकदेशीयता के कारण दुरूह है, यथा-- **कँड़हारा**[5] (कर्णधार), **सहवारू**[6] (सहायक), **राँध**[7] (समीप), **करकच**[8] (बारबार का झगडा), **पाइल**[9] (तेज चलने वाला), **अढ़वायक**[10] (फरिश्ते), **गवेंजा**[11] (गाँव की बातचीत), **पाजी**[12] (पैदल), **परबता**[13] (तोता), **नौजि**[14] (ईश्वर न करे) तथा **तीवइ**[15] (स्त्री) आदि, किन्तु जायसी-काव्य मे इस प्रकार के दुर्बोध शब्दो का बाहुल्य नही है। अधिकता ऐसे शब्दो की ही है जिनमे अवधी का रस छलका पडता है।

विदेशी शब्दावली -- जायसी के समय मे बहुत से अरबी, फारसी तथा तुर्की शब्द हिन्दी भाषा और उसकी विविध बोलियो मे प्रचलित हो चुके थे। अवधी की व्यजकता

---

१. **जॉर्ज ग्रियर्सन-- पद्मावती (भूमिका), पृ० १।**
२. प० ३५४।६-७ ३. प० ३५६।१
४. **डॉ० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४४४।**
५. प० १८।६ ६. प० १५०।३ ७. प० ४४०।६ ८. म०बा० ७।३
९. अख० १२।१२ १०. अख० ५।३ ११. प० १४८।१ १२. प० ४१।२
१३. प० १६४।२ १४. प० ३६६।२ १५. प० ११७।५

बढाने के लिए कवि ने इन शब्दो को अपनी भाषा मे स्थान दिया है किन्तु इनके प्रयोग मे उनकी कर्म-कुशलता उल्लेखनीय है। उन्होने इन शब्दो के तत्सम रूपो की विशेष चिन्ता न की और इन्हे अपनी छेनी से तराश कर, काट कर ऐसा चिकना और सुगढ बना लिया कि ये भी अवधी का एक सहज अग बन गए। उदाहरण के लिए 'अरदास' शब्द को ही लीजिए—

एहि बिधि ढीलि दीन्ह तब ताईं। ढीली की अरदासैं आईं।[1]

उक्त शब्द अवधी की प्रकृति के इतना अनुरूप है कि प्रतीत होता है मानो अवधी का ही कोई अपना शब्द हो। भला कोई कह सकता है कि यह मधुर शब्द फारसी तत्सम 'अर्जदाश्त' का ही परिवर्तित रूप है। इसी प्रकार के बहुत से शब्द जायसी की भाषा मे घुल मिल गए है।[2] यत्र-तत्र कुछ कम प्रचलित अथवा अप्रचलित विदेशी शब्दों का प्रयोग भी जायसी ने किया है, यथा—

अलहदाद भल तिन्ह कर गुरू। दीन दुनिअ रोसन सुरखरू।[3]

यहा उद्धृत पक्ति का सम्पूर्ण उत्तरार्ध विदेशी शब्दो से पूर्ण है। इसी प्रकार अखरावट की निम्नलिखित पक्तियो मे—

सैयद मुहमद दीनहि सांचा। दानियाल सिख दीन्ह सबाचा।
जुग जुग अमर सो हजरत ख्वाजे। हजरत नबी रसूल नेवाजे[4]॥

विदेशी शब्दो का बाहुल्य है किन्तु इस प्रकार के स्थल विरल है। साथ ही हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कवि ने उन्ही स्थलो पर इन शब्दों का व्यवहार किया है जहाँ अन्यथा अभीष्ट वातावरण की सृष्टि सम्भव नही थी। 'पदमावत' के आरम्भ मे कवि ने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है, 'अखरावट' तथा 'आखिरी कलाम' मे इस्लाम और सूफी धर्म की साम्प्रदायिक मान्यताओ का वर्णन किया है, अतः इन स्थलो पर विदेशी शब्दो का व्यवहार कर कवि ने वर्णनो मे स्वाभाविकता की रक्षा ही की है हानि नही, विदेशी शब्दो के प्रयोग के सम्बन्ध मे एक अन्य तथ्य भी उल्लेखनीय है। जायसी ने मुसलमान होते हुए तथा अवसर मिलते हुए भी विदेशी शब्दो का यथा सम्भव कम से कम व्यवहार किया है, क्योकि उनका उद्देश्य लोक-सुलभ-भाषा मे काव्य-प्रणयन कर अपने सिद्धान्तों का प्रचार तथा प्रसार करना था, सकीर्ण मत या वाद के पचडे मे पड़ना नही। इस कथन की पुष्टि उन स्थलो को देखने से होती है जिनमे कवि ने इस्लाम से सम्बद्ध विषयो की चर्चा में भी अवधी के ही सहज शब्दो का प्रयोग किया है, जैसे—

[क] पुनि उसमान पँडित बड़ गुनी। लिखा पुरान जो आयत सुनी।[5]

---

१. प० ५३२।४ २. देखिए, तृतीय अध्याय। ३. प० २०।३ ४. अख० २७।५-६
५. प० १२।४

[ख] जो पुरान बिधि पठवा सोई पढत गिरंथ।
अउर जो भूले आवत ते सुनि लागत तेहि पंथ।[१]

यहाँ यदि कवि चाहता तो बडी सरलता से '**पुरान**' को 'कुरान', '**विधि**' को 'अल्लाह', '**गिरंथ**' को 'किताब' और '**पंथ**' को दीने-इस्लाम कह सकता था क्योकि उसका मन्तव्य यही है, किन्तु उसने विदेशी शब्दावली का आश्रय लेने के स्थान पर हिन्दू धर्म की विशिष्ट शब्दावली का ही व्यवहार किया है, अन्यत्र भी 'इब्लीस' को नारद[२], 'जन्नत' को '**कैलास**'[३] तथा 'सोऽहं' और 'अनल्हक' के परस्पर पर्याय होने पर भी केवल 'सोऽहं'[४] कह कर जायसी ने हिन्दी और अवधी के प्रति अपनी गहरी आस्था प्रकट की है।

पर्यायवाची शब्दावली : अधिकाश शब्दो के एकाधिक पर्याय होते है जिनमें स्थूल रूप से अर्थ-साम्य होते हुए भी सूक्ष्म अन्तर होता है। उदाहरणार्थ कृष्ण, गोपाल, मुरारि, गिरिधर आदि नाम एक ही व्यक्ति के है किन्तु सूक्ष्म रूप से विश्लेषण किया जावे तो ज्ञात होगा कि उनमे से प्रत्येक की निजी व्यजना है। 'कृष्ण' शब्द वर्ण का संकेत करता है तो 'गोपाल' शब्द कर्म का। 'मुरारि' तथा 'गिरिधर' शब्द भी कृष्ण के जीवन की विशिष्ट घटनाओ से सम्बद्ध है। कुशल कवि इन सूक्ष्म व्यजनाओ का ध्यान रखते हुए ही सर्वाधिक उपयुक्त शब्द का प्रयोग करते है। इस प्रकार प्रसगानुकूल शब्दो का प्रयोग करने से कविता मे मार्मिकता स्वत बढ जाती है। जायसी इस क्षेत्र मे आगे नही बढ सके है। शब्दो के विभिन्न पर्यायो का वैभव उनकी रचनाओ मे नगण्य है। और तो और, सूर्य और चन्द्रमा के लिए भी (जिनका उल्लेख कवि ने पदमावत मे बहुत स्थलो पर किया है) इने-गिने पर्यायवाची शब्द आए है, जैसे, **सूर्य – सूर,**[५] **सूरज,**[६] **सुरुज,**[७] **दिनकर,**[८] **दिनअर,**[९] **दिनियर,**[१०] **रबि,**[११] **भान,**[१२] **भानु,**[१३] **भानू**[१४]; **चन्द्र – चन्द्र,**[१५] **चंद,**[१६] **चाँद,**[१७] **ससि,**[१८] **ससिअर,**[१९] **ससियर**[२०]। उल्लिखित शब्दो मे से अधिकाश ध्वन्यात्मक परिवर्तन के कारण ही किंचित् बदल गए है। जायसी मे शब्दो के पर्याय-वैभव का लगभग अभाव है। जो भी हो, जायसी का शब्द-भाण्डार विशाल है। उसमे पर्यायवाची शब्दो की न्यूनता भले ही हो किन्तु तत्सम, अर्धतत्सम, ठेठ तथा विदेशी शब्दो का अपना स्थान है और कवि ने तद्भव शब्दो को सर्वाधिक महत्ता देते हुए भी अन्य कोटि के शब्दो का उपयुक्त तथा उचित रूप मे व्यवहार किया है।

शब्द-प्रयोग जायसी के शब्द-वैभव का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त उनके शब्द-प्रयोगो की झाँकी देखना भी समीचीन होगा। शब्द-प्रयोगो का विश्लेषण तथा अध्ययन कई

---

१ प० १२।८-९ २ अख० १०।८ ३. आखि० ५९।३ ४. अख० १३।४
५. प० ६२४।४ ६. प० ६१२।४ ७. प० ६४०।८ ८. प० ६३८।८
९. प० ३४३।३ १०. प० ५२१।८ ११. प० ६१२।५ १२. प० ५६५।४
१३. प० ५२०।५ १४. प० ३२६।४ १५. प० ४७८।९ १६. प० ५१०।१
१७. प० ६१२।६ १८. प० ७३८।८ १९. प० ३०७।१ २०. प० ६२५।८

दृष्टियो से किया जा सकता है यथा – शब्द-शक्ति, शब्दो के आलकारिक प्रयोग, शब्द-क्रीडा, विशिष्टार्थक शब्द, शब्द-निर्माण, शब्द-विकार, सजग शब्द-चयन, शब्द-मैत्री, द्वयर्थक शब्दावली, अनेकार्थी शब्द तथा शब्द-दोष आदि ।

शब्द-शक्ति शब्द की वास्तविक शक्ति उसके अर्थ मे है । अर्थ तो प्रत्येक शब्द मे अनिवार्य रूप से होता है किन्तु कथन की शैली के प्रभाव से शब्द मे निहित अर्थ तीन प्रकार का हो जाता है । जब बिना किसी घुमाव फिराव के सर्वथा सहज रूप मे अर्थ निकलता है तब उसको वाच्यार्थ ओर उसे व्यक्त करने वाली शक्ति को अभिधा कहा जाता है । जब थोडी तोड़-मरोड से कोई विशेष अर्थ या चित्र उपस्थित होता है तो वह अर्थ लक्ष्यार्थ कहलाता है और तत्सम्बन्धी शक्ति लक्षणा कहलाती है । इन दोनो से भिन्न, जब शब्द से वाच्यार्थ के साथ ही साथ विशिष्ट अर्थ भी ध्वनित होता है तो वह व्यग्यार्थ होता है और उससे सम्बद्ध शक्ति व्यजना कहलाती है । कवि-कर्म मे इन तीनो शब्द-शक्तियो का महत्व है । अभिधा में भावो की सीधी अभिव्यक्ति होती है । इस प्रकार के शब्द-विन्यास से सहज ही अर्थ-प्रतीति होती है । लक्षणा मे कवि शब्दो के द्वारा किसी क्रिया, चित्र या भाव का बिम्बग्रहण कराता है । इस प्रकार के शब्द-प्रयोगो मे वैलक्षण्य तथा चमत्कार होता है और वे भी सहृदयो के मनोभावो को तीव्रता से उभारते है । शब्द-शक्तियो मे अन्तिम है व्यजना । व्यजना का मूल अर्थगत वक्रता है । कुतक ने तो वक्रता के बिना काव्य की सत्ता ही नही मानी है । जायसी इन सभी शब्द-शक्तियो के महत्व से परिचित थे । उनकी भाषा मे इन तीनो के प्रयोग स्वत आ गए है जिनसे काव्य की मर्मस्पर्शिता और प्रभविष्णुता बहुत बढ गई है । यहाँ तीनो शब्द-शक्तियो से सम्बद्ध शब्द-प्रयोगो का पृथक्-पृथक् विवेचन समीचीन होगा ।

अभिधा-शक्ति : जायसी की सभी रचनाओ मे (विशेषत आखिरी कलाम मे) वर्णनात्मक स्थलो पर अथवा विभिन्न कथा-सूत्रो का सयोजन करते समय स्थान-स्थान पर इसका सरल तथा सुबोध रूप देखा जा सकता है । 'आखिरी कलाम' मे इस्लाम की धार्मिक पुस्तको के आधार पर प्रलय के दिनो का इतिवृत्तात्मक वर्णन ही कवि का लक्ष्य था, अतएव उस मे आदि से अन्त तक सरल तथा सुबोध अभिधामूलक शब्दावली ही दिखाई पडती है । 'पद्मावत' के सामान्य इतिवृत्तात्मक स्थलो तथा कतिपय स्फुट स्थलो मे भी अभिधामूलक शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति ही लक्षित की जा सकती है । इस प्रकार के अशो मे स्तुति-खड (दो० १-२४), सिघल द्वीप वर्णन खड (दो० २५-३९, ४४-४८), जन्म खण्ड (दो० ५२, ५४, ५६, ५८, ५९, ६०, ६३ तथा ६४), सुआ खण्ड (दो० ६६, ६७, ६९, तथा ७२), रत्नसेन जन्म खण्ड (दो० ७३), बनिजारा खड (दो० १२६, १२८, १३२, १३४-१३८), राजा-गजपति सवाद खड (दो० १४०-१४५), बोहित खड (दो० १४७, १४८), सात समुद्र खड (दो० १५५, १५७), सिंघल द्वीप खड (दो० १६२, १६४, १६५), पद्मावती सुआ खड (दो० १७६), बसत खड (दो०१८३, १८९, १९१, १९३, १९८), पार्वती महेश खड (दो० २०७, २०८, २०९, तथा २१२), राजागढ छेका खड (दो० २१७, २१८, २२० तथा २३१), गंधर्वसेन मत्री खड (दो० २३९, २४२ तथा २५६), रत्नसेन सूली खड

(दो० २६०, २६१, २६३, २७०), रत्नसेन पद्मावती विवाह खड (दो० २७२- २८७) पद्मावती रत्नसेन भेट खड (दो० २६१, २६६, ३०५-३०७, ३२५- ३२६), रत्नसेन साथी खंड (दो० ३३०, ३३१), षट-ऋतु वर्णन खड (दो० ३३२, ३३५, ३३६), नागमती वियोग खड (दो० ३४३, ३५६) नागमती सदेश खंड (दो० ३६२, ३६४, ३६८), रत्नसेन विदाई खंड (दो० ३८२, ३८३, ३८५), देश यात्रा खड (दो० ३८६- ३६६), लक्ष्मी समुद्र खड (दो० ४०३, ४०४, ४०६, ४१०, ४१३, ४१६, ४२० तथा ४२१), चित्तौर आगमन खड (दो० ४२६), राघव चेतन देस निकाला खड (दो० ४४७, ४४८ तथा ४५६), राघव चेतन दिल्ली आगमन खड (दो० ४५७, ४६१ तथा ४६२) पद्मावती रूप-चर्चा खड (दो० ४८७, ४८८), बादशाह चढाई खड (दो० ४६१, ४६५, ४६६, ४६६, ५०३, ५०४, ५११ तथा ५१२), राजा बादशाह युद्ध खड (दो० ५१७, ५२३, ५२५-५२६), बादशाह भोज खड (दो० ५४१-५५०) चित्तौडगढ वर्णन खड (दो० ५६०, ५६२), देवपाल दूती खंड (दो० ५८७), बादशाह दूती खड (दो० ६००-६०४), गोरा बादल युद्ध खड (दो० ६२२, ६३२) तथा पद्मावती नागमती सती खड (दो० ६४६, ६५१) आदि उल्लेखनीय है। यहाँ कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है –

१. पुनि रसूल तलफत तहां जैहें। बीबी आइ बार समुझैहें।
बीबी कहब घाम कत सहौ। कस न बैठि छांह मां रहौ।
सब पैगम्बर बैठे छाहाँ। तुम कस तपौ बजर अस माहाँ।
कहब रसूल छांह का बैठौं। उमत लागि धूपउ नहिं बैठौं।
तेइ सब बांधि घाम मंह मेले। का भा मोरे छांह अकेले।
तुम्हरे कोह सबहिं जो मरैं। समुझहु जीउ तबै निस्तरैं।
जो मोहिं चहौ निवारहु कोहू। तब विधि करैं उमत पर छोहू।

बहु दुख देखि पिता कर बीबी समुझा जीउ।
जाइ मुहम्मद बिनवा ठाढ़ पाक (पाग) कै गीउ।[1]

२ जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारौ तिन्ह गर्ब।
कंत पियारा बाहिरैं हम सुख भूला सर्ब।[2]

३ राकस कहा गोसाईं बिनाती। भल सेवक राकस कै जाती।[3]

४ चली पंथ पैगह सुलतानी। तीख तुरंग बाँक कँकानी।
पखरैं चलो सो पाँतिन्ह पाँती। बरन बरन औ भाँतिन्ह भाँती।[4]

५. काटे मंछ मेलि दधि धोए। औ पखारि चहुँ बार निचोए।
करुए तेल कीन्ह बसिवारू। मेंथी कर तेहि दीन्ह धुँगारू।[5]

---

१. आखि० ४।१-६ २ प० ३४४।८-६ ३ प० ३६३।१ ४. प० ४६६।१-२
५ प० ५४७।१-२

६ साजा पाट छत्र कै छाहाँ। रतन चौक पूरा तेहि माँहाँ।
कंचन कलस नीर भरि धरा। इन्द्र पास आनी अपछरा।[1]

इन सभी उद्धरणो मे अभिधामूलक शब्दावली की सहजता स्वय-व्यक्त है। अखरावट तथा महरी बाईसी मे भी इस प्रकार की शब्दावली उपलब्ध होती है।

अभिधाशक्ति द्वारा जिन वाचक शब्दो का अर्थ-बोध होता है, उन्हे तीन वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है – रूढ, यौगिक तथा योगरूढ। 'रूढ' शब्दो की व्युत्पत्ति नही होती। सामान्यतया प्रत्येक कवि के काव्य मे इस प्रकार के शब्दो का प्रयोग सबसे अधिक होता है। जायसी के सम्बन्ध मे भी यही तथ्य सरलतापूर्वक स्वीकार किया जा सकता है। 'गढ',[2] 'कथा',[3] 'सुख',[4] 'रतन',[5] चाद[6] आदि इसी प्रकार के शब्द है। यौगिक शब्दों की व्युत्पत्ति सम्भव होती है, अर्थात् वे प्रकृति और प्रत्यय के योग से बनते है तथा उनमे अवयवार्थ सहित समुदायार्थ का बोध होता है। अभिधाशक्ति से सम्पन्न भाषा के अन्तर्गत इस प्रकार की शब्दावली का भी महत्व कम नही। जायसी के काव्य से कतिपय शब्द उदाहरणस्वरूप उद्धृत है, यथा – **घोरसारा,**[7] **सभापति,**[8] **राजसभा,**[9] **गजरथ,**[10] **देवबार,**[11] **लोकचार,**[12] **इन्द्रलोक,**[13] **अतरपट,**[14] **चौबारा,**[15] **जलबासी**[16]। तीसरा वर्ग योगरूढ शब्दो का है। यह यौगिक तो होते है किन्तु इनका अर्थ रूढ होता है, अर्थात् प्रकृति और प्रत्यय का अलग-अलग अर्थ तो निकलता है, पर उससे शब्द का वास्तविक अर्थ न निकल कर एक विशिष्ट अर्थ निकलता है, जैसे— **सहस्सरबाहू,**[17] **महादेव,**[18] **कनकपत्र,**[19] **नराएन**[20], **लखाग्रिह,**[21] **कटिमण्डन**[22] आदि। इन सभी उपर्युक्त शब्दो का व्युत्पत्ति के आधार पर सार्थक विभाजन किया जा सकता है यथा, सहस्सरबाहू (हजार भुजाओ वाला), महादेव (बडा देवता), कनक पत्र (सोने का पत्र), नराएन (जल का निवासी), लखाग्रिहँ (लाख का घर) तथा कटिमण्डन (कमर को मण्डित करने वाली वस्तु), किन्तु यह सभी शब्द अपने सामान्य अर्थो के बोधक न होकर क्रमश केवल 'सहस्रबाहु', 'शिव', कनकपत्र नामक विशिष्ट वस्त्र, विष्णु, महाभारत मे वर्णित लाक्षागृह तथा करधनी का ही बोध कराते है। अतएव इन्हे योगरूढ शब्दो की कोटि मे रखना ही समीचीन होगा।

जायसी द्वारा प्रयुक्त अभिधामूलक शब्दावली कही-कही नीरसता उत्पन्न करती है। कवि जहाँ कोरा विवरण देता चला है या पशु-पक्षियो अथवा विविध खाद्य-पदार्थो की तालिका प्रस्तुत करता चला है वहाँ वर्णन मे नीरसता आ गई है, किन्तु जहाँ कवि ने विवरण न दे

---

१ प० २८५।४-५ २ प० ४०।१ ३ प० ११६ ४. प० ५७।६
५ प० २८५।४ ६ प० २८४।४ ७ प० २६।६ ८. प० ३६।४
९. प० ४७।१ १०. प० १४७।१ ११. प० १७३।७ १२. प० २१६।४
१३. प० २६४।४ १४. प० ३१५।८ १५. प० ३३७।५ १६. प० ५४२।४
१७. प० १०२।५ १८. प० २२९।४ १९. प० २८३।९ २०. प० ३४१।४
२१. प० ६११।८ २२. प० ६२०।४

कर किसी भाव को सहज रूप मे व्यक्त करना चाहा है वहाँ वाचक शब्दो ने मार्मिकता उत्पन्न कर दी है, काव्य अत्यन्त मनोरम हो गया है।

लक्षणा-शक्ति : कुशल कवि वर्ण्य-विषय का बिम्ब जगाने के लिए अनेक शब्द-चित्र भी अकित करते है। इस प्रक्रिया मे उन्हे लक्षणा-शक्ति का उपयोग करना होता है। इस शक्ति के द्वारा भाव का सौन्दर्योन्मेष कराने मे असमर्थ वाचक शब्दो की कमी पूरी हो जाती है। जायसी ने भी अपनी कल्पना के द्वारा ऐसे-ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है जिनसे वर्ण्य विषय को मूर्तत्व प्राप्त होने मे अत्यधिक सहायता मिली है। इस प्रकार के प्रमुख शब्द उनके द्वारा प्रयुक्त क्रियापद, विशेष्य तथा विशेषण है। यहाँ सक्षेप मे इन्ही का विवेचन किया जाता है—

क्रिया-शब्द : इस प्रकार के शब्दो मे सर्वप्रथम जायसी का **'अवतारी'** क्रिया-पद द्रष्टव्य है जिसका प्रयोग उन्होने पद्मावती के जन्म के सम्बन्ध मे किया है। पद्मावती के जन्म ग्रहण करने के लिए उत्पन्न होना, जन्म लेना, पैदा होना आदि न कह कर 'अवतार लेना' क्रिया का प्रयोग इस तथ्य का संकेत करता है कि कवि पद्मावती को ऐसी ईश्वरीय शक्ति से युक्त मानता है जिसका साधारण नर-नारियो मे अभाव है। इसी प्रकार दूसरा क्रिया-पद है **'खिला'** —

लहकहिं नैन बांह हिय खिला।[1]

'खिलना' पुष्प का धर्म है हृदय का नही किन्तु इस क्रियापद को हृदय से सम्बद्ध कर कवि उस सौन्दर्य तथा विकास को प्रत्यक्ष कर देता है जो फूल के खिलने पर दृष्टिगोचर होता है। चित्र प्रस्तुत करने वाले ऐसे लक्ष्यार्थसमन्वित क्रिया-पद जायसी-काव्य मे भरे पडे है। उनमे से कुछ यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

हरना — चेटक लाइ **हरहिं** मन जौं लहि गथ है फेंट।[2]
देखना — मैं तुम्ह राज बहुत सुख **देखा**।[3]
अरुझना — **अरुझा** पेम परी सिर जटा।[4]
झूरना — राजा इहाँ तैस तपि **झूरा**।[5]
खाना — डोलहि बोहित लहरैं **खाहीं**।[6]
मारना — जोगी मनहिं ओहिं रिस **मारहिं**।[7]
डहना — दधि समुद्र देखत मन **डहा**।[8]
जारना — पेम कि आगि **जरै जौं** कोई।[9]
मरना — कँपि कँपि **मरौं** लेहि हरि जीऊ।[10]
जारना — सियरि अगिनि बिरहिनि हिय **जारा**।[11]

---

१. प० ४२४।७ २. प० ३८।८ ३. प० ५७।६ ४. प० १२६।२
५. प० २३५।१ ६. प० १५०।६ ७. प० १५१।४ ८. प० १५२।१
९. प० १५२।६ १०. प० ३५०।२ ११. प० ३४९।६

बूड़ना – खिनहि निसास **बूड़ि** जिउ जाई ।[१]
खोना – निलज भिखारि लाज जेहि **खोई** ।[२]
तपना – सब निसि **तपि तपि** मरसि पियासी ।[३]
फटना – दारिवँ देखि **फाटि** हिय मरई ।[४]
फूलना – तस **फूला** मन राजा लोभ पाप अँधकूप ।[५]
पसीजना – गोरा बादल दुवौ **पसीजे** ।[६]

विशेषण लक्षणा-शक्ति का दूसरा साधन विशेषण है। विशेषणो का प्रयोग किसी अभिप्राय को विशेष प्रकार से प्रकट करने के लिए किया जाता है । कवि विशेषणो से वर्ण्य का विस्तार करता है इसल्गिए वह अपने मानसिक चित्रो को लाक्षणिक विशेषणो मे प्रस्तुत करता है । जायसी ने भी इस प्रकार लाक्षणिक विशेषणो की योजना की है, जैसे —

अस कर ओछ नैन हत्यारे । देखत गा पिउ गहे न पारे ।[७]

नेत्र कभी हत्यारे (हत्या करने वाले) हो ही नही सकते अतएव यहाँ वाच्यार्थ बाधित है । लक्षणा से अर्थ स्पष्ट होता है कि पद्मावती अपने नेत्रो की निदा इसलिए कर रही है कि उनके सामने ही उसका प्रियतम चला गया और वह कुछ भी न कर सकी । 'हत्यारे' विशेषण मे जो क्षोभ छिपा है वही कथन के सौदर्य को द्विगुणित कर देता है । एक और उदाहरण देखिए––

दुऔ सवति मिलि पाट बईठीं । हिय बिरोध मुख बातें मीठी ।[८]

नागमती और पद्मावती के विवाद का उल्लेख करते हुए जायसी ने उनकी बातो के लिए 'मीठीं' विशेषण का प्रयोग किया है । बातो का मीठा होना सम्भव नही, अत यहाँ मुख्यार्थ बाधित है । लक्षणा से 'सरस' अर्थ व्यक्त होता है । इसी प्रकार के लाक्षणिक विशेषणो के प्रयोग निम्नलिखित पक्तियो मे भी देखे जा सकते है––

क – गध्रपसेन **सुगध** नरेसू ।[९] ख – पखिन्ह बुधि जो होति **उज्यारी** ।[१०]
ग – घुघुरवारि अलकें **बिखभरी** ।[११] घ – कठिन पेम बिरहा दुख **भारी** ।[१२]
च – गाजहि चाहि **गरुव** दुख दुखी जान जेहि बाज ।[१३]

उल्लिखित पक्तियो मे प्रयुक्त विशेषण लक्ष्यार्थगर्भित है और उन्ही के प्रयोग से भाव-वर्णन मे सजीवता उत्पन्न हो गई है ।

संज्ञा-शब्द सज्ञा-शब्दो मे लक्षणा को उतना अवसर नही मिलता जितना क्रिया-पदो मे, फिर भी यत्र-तत्र कुछ सज्ञा-शब्दो मे लक्षणा का सुन्दर चमत्कार देखने को मिलता है । यहाँ एक दो उदाहरण दिए जाते है—

---

१. प० ११६।५ २. प० २६१।३ ३. प० ४३७।६ ४. प० ४३६।५
५. प० ३८६।८ ६. प० ६१०।१ ७. प० ५६०।७ ८. प० ४३४।२
९. प० २६।१ १०. प० ७२।२ ११ प० ६६।७ १२ प० १७८।२
१३ प० ५८०।६

काह हँससि तूं मोसो किए जो और सों नेहु ।
तोहि मुख चमकै बीजुरी मोहि मुख बरसै मेंहु ।[1]

यहाँ 'बीजुरी' का मुख पर चमकना तथा मुख पर 'मेहु' का बरसना अस्वाभाविक है किन्तु इनके लक्ष्यार्थ है 'मुस्कान' तथा 'आँसू' जिन्हे जान लेने पर ही वास्तविक अर्थोन्मेष होता है । इसी प्रकार निम्नलिखित पक्ति मे—

रोवै सब नैहर सिंघला । लै बजाइ कै राजा चला ।[2]

क्या 'नैहर' का रोना सभव है ? आधाराधेय भाव से नैहर मे रहने वालो का लक्ष्यार्थ स्पष्ट होता है । पद्मावत इस प्रकार के लाक्षणिक शब्द-प्रयोगो का भण्डार है ।

व्यजना-शक्ति अभिधा और लक्षणा के द्वारा शब्दो का अर्थ स्पष्ट होता है तथा बहुत से स्थलो पर सौदर्यानुभूति भी होती है फिर भी कुछ स्थल ऐसे आ जाते है जहाँ इन दोनो के द्वारा भी सम्पूर्ण अर्थ तथा विशेषत मार्मिक अर्थ की अभिव्यक्ति नही हो पाती । यह कार्य व्यजना-शक्ति सम्पादित करती है । जिस प्रकार घटे पर आघात करने से पहले टकार, फिर मधुर झकार फिर और मधुर झकार निकलती है उसी प्रकार शब्दो से भी पहले वाच्यार्थ, फिर व्यग्यार्थ ध्वनित होता है । यह व्यग्यार्थ ही काव्य का प्राण है और व्यजक शब्दो के सयोग से भाषा की सरसता, प्रभविष्णुता तथा शोभा मे चार चाँद लग जाते है । जायसी ने भी इस प्रकार के व्यजक शब्दो का प्रचुर प्रयोग किया है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

पिय सो कहेउ सदेसरा ऐ भवरा ऐ काग ।
सो धनि बिरहै जरि मुई तेहि क धुआँ हम लाग ।[3]

उपर्युक्त दोहे का वाच्यार्थ इस प्रकार है – 'हे भौरे हे कौए ! (मेरे) प्रियतम के पास जाकर यह सदेश कह देना कि वह स्त्री विरह मे जल कर मर गई और उसी का धुआँ हमे लग गया है ।' इस सामान्य अर्थ से सहृदय की भावुकता रस से अछूती ही रह जाती है और तब उसे रसानुभूति कराने के लिए यह व्यग्यार्थ आ उपस्थित होता है— 'प्रियतम । तुम इतने निष्ठुर हो कि कभी अपनी प्रिया का स्मरण तक नही करते । वहाँ तुम आनन्द के लिए केलि मे व्यस्त हो और यहाँ तुम्हारी पत्नी तुम्हारा नाम रटते-रटते मरणासन्न हो चुकी है । उसके हृदय की असह्य व्यथा से पशु-पक्षी तथा जीव-जन्तु तक प्रभावित हो गए है और उससे सहानुभूति करने लगे है किन्तु तुम न जाने कैसे पाषाणहृदय हो जो अब तक नही पसीजे । इतने निष्ठुर तो न बनो ।' यह व्यग्यार्थ ही उन सामान्य पक्तियो मे एक नवीन चेतना, नूतन प्राण-शक्ति का सचार कर होता है और पाठक अथवा श्रोता रससिक्त हो अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति करने लगता है । उक्त दोहे मे 'सदेसरा' शब्द भी कितना व्यजक है । जब प्रिय उदासीन हो और उन तक अपनी भावनाओ को पहुचाने के

---

१ प० ४२७।८-९ २ प० ३८४।४ ३ प० ३४६।८-८

लिए दूसरे का आश्रय लेना पडे तब एक छोटे से सदेश (सदेसरा) के अतिरिक्त और कहलाया भी क्या जा सकता है। एक उदाहरण और लीजिए। पद्मावत के आरम्भ मे जायसी एक स्थल पर कहते है—

भँवर आइ बनखड हुति लेहि कँवल कै बास।
दादुर बास न पावहीं भलेंहि जो आर्छहि पास।[1]

यहाँ अभिधा द्वारा निर्दिष्ट अर्थ इस प्रकार है– 'भौरा बनखड से आकर कमल की सुगन्धि लेता है किन्तु मेढक वह सुगन्धि नही पा सकता चाहे वह पास मे ही क्यो न रहे। इस वाच्यार्थ के अतिरिक्त ध्वनित होने वाला व्यग्यार्थ है 'रसिक तथा गुणज्ञ ही कला, गुण तथा सौन्दर्य का आनन्द-लाभ कर पाते है, अरसिक उससे वचित रहते है।' यहाँ सहृदय के लिए 'भँवर', काव्य तथा कला के लिए 'कँवल' तथा नीरस व्यक्ति के लिए 'दादुर' शब्द का प्रयोग कवि की सूक्ष्म दृष्टि तथा व्यजना-कौशल का परिचायक है। 'पद्मावत' मे कवि स्थल-स्थल पर व्यजना-शक्ति का आश्रय लेकर चला है। वस्तुवर्णन के प्रसग मे जायसी ने ऐसे व्यजक शब्दो का प्रयोग किया है जिनसे प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत परोक्ष सत्ता का अर्थ भी पाठक के मन मे अनायास ही उद्भासित हो उठे। जैसे, सिहलगढ के वर्णन मे नौ पौरी और दसवे दरवाजे वाले गढ के सकेत पाठक को नौ इन्द्रियद्वारो तथा दसवे ब्रह्मरन्ध्र वाले शरीर का सकेत देते है। इसी प्रकार सिंहलद्वीप के मनोरम 'अँबराउ' के वर्णन मे व्यजना के द्वारा कितने सुन्दर भाव की अभिव्यक्ति हुई है—

पथिक जौ पहुचै सहि घामू। दुख बिसरै सुख होइ बिसरामू।
जिन्ह वह पाई छाँह अनूपा। बहुरि न आइ सही यह धूपा।[2]

कवि ने सीधे सादे शब्दो मे ही बहुत बडी बात कह दी है। 'पथिक' का अभिधार्थ पथ पर चलने वाला है। साधना के पथ मे चलने वाले भी तो 'पथिक' होते है। ससार के कष्ट 'घाम' अथवा 'धूप' है और ईश्वर का अनुग्रहपूर्ण सान्निध्य 'छाँह'। 'छाँह' मे बैठने वाले 'पथिक' को 'धूप' का क्या भय ? विभिन्न प्रयुक्त शब्दो की व्यजकता कितनी समर्थ और प्रभावशालिनी है। इसी प्रकार हाट के वर्णन की ये पक्तिया—

जेइँ न हाट एहि लीन्ह बेसाहा। ताकहँ आन हाट कित लाहा।
कोई करै बेसाहना काहू केर बिकाइ।
कोई चला लाभ सौं कोई मूर गवाँइ।[3]

कितनी व्यजनापूर्ण है! 'हाट', 'बेसाहना', 'लाभ' तथा 'मूर' आदि शब्द वाच्यार्थ के साथ-साथ व्यग्यार्थो की ओर भी इगित करते है। जायसी ने केवल आध्यात्मिक पक्ष मे ही नही, लौकिक पक्ष मे भी भव्य शब्द-योजना से बडी सुन्दर व्यजनाए की है, एक उदाहरण देखिए—

---

१ प० २४।८-९ २ प० २७।६-७ ३. प० ३७।७-९

कँवल जो बिगसा मानसर छारहि मिलै सुखाइ ।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहँ जौ पिय सींचहु आइ ।[१]

यहाँ जल और कमल का प्रसंग वाच्यार्थ से घटित होने पर भी प्रस्तुत नही है। प्रस्तुत है विरहिणी नागमती की दशा और कामना। कवि ने अप्रस्तुत से प्रस्तुत की व्यजना करते हुए नागमती की भावनाओ का अत्यन्त मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

सक्षेपत यह कहा जा सकता है कि शब्द-शक्तियो के क्षेत्र मे जायसी की पैठ बडी गहरी थी। उनकी शब्द-योजना प्रयासरहित है और उसमे ऐसे लक्षक तथा व्यजक शब्द स्वत. आते चले गए है जो भावाभिव्यक्ति को शक्ति तथा सामर्थ्य प्रदान करने मे सहायक सिद्ध हुए है।

शब्दो के आलंकारिक प्रयोग : उक्ति-वैचित्र्य के अनेक रूप हो सकते है। सामान्यतया यह वैचित्र्य शब्द के विशेष प्रयोग या अर्थ की भगिमा से सम्पादित होता है। इसी आधार पर अलकार के दो भेद किए जाते है– शब्दालंकार और अर्थालंकार। इनमे से भाषा को अलकृत करने मे शब्दालकारो का ही विशेष योग रहता है अतएव जायसी की भाषा के कलापक्ष के अतर्गत इन्ही का सोदाहरण उल्लेख अभीष्ट है। कुछ शब्दालकार वर्णगत, कुछ शब्दगत तथा कुछ वाक्यगत होते है। वर्णगत शब्दालंकारो मे अनुप्रास, शब्दगत मे यमक, श्लेष, पुनरुक्तिप्रकाश तथा वीप्सा आदि आते हैं। वर्णगत शब्दालकारो की चर्चा उदाहरण-सहित वर्ण-सगीत के अतर्गत पिछले पृष्ठो मे की जा चुकी है अत: यहा शब्द-गत शब्दालकारो का विवेचन करना समीचीन होगा। जायसी ने जिन शब्दगत शब्दालकारो का विशेष रूप से प्रयोग किया है वे हैं यमक, श्लेष, पुनरुक्तिप्रकाश तथा वीप्सा। यहाँ प्रत्येक का सोदाहरण विवेचन किया जा रहा है।

यमक : जहा पर शब्द की आवृत्ति भिन्न अर्थों मे होती है वहाँ यमक अलकार माना जाता है। जायसी के काव्य से कुछ प्रयोग यहा उदाहरणार्थ प्रस्तुत किए जाते है–

१ भा अस **सूर** पुरुष निरमरा। **सूर** चाहि दह आगरि करा।[२]
२. रंग**नाथ** हौ जाकर हाथ ओही के **नाथ**।[३]
३ तेहि कपोल बाएँ **तिल** परा। जेइँ **तिल** देख सो तिल **तिल** जरा।[४]
४. तुम्ह पर सबद घटइ घट केरा। मोहि **घट** जीउ **घटत** नहि बेरा।[५]
५. जौ उन्ह मँह देखसि एक दासी। देखि **लोन** होइ **लोन** बेरासी।[६]
६ राजा **लोनु** सुनावा लाग दुहूँ जस **लोन**।
आए कोहाइ मदिल कहं सिंध जानु औगौन।[७]

---

१ प० ३५४।८-९ २. प० १६।५ ३ प० १४२।८ ४ प० १०९।३
५. प० २५९।६ ६. प० ४६१।७ ७. प० ५५१।८-९

७ **कनक** जौ **कनकन** होइ बिहराई । पिय पै छार समेटै आई ।[१]
८. **ढीली** नाउ न जानसि **ढीली** । सुठि बदि गाढ न निकसै कीली ।[२]
९. जौ तू **गवन** आइ गजगामी । **गवन** मोर जहवा मोर स्यामी ।[३]
१० सुद्धि बुद्धि सब बिसरी **बाट** परी मझ **बाट** ।[४]

उपर्युक्त पक्तियो मे अनेक स्थलो पर यमक का सौन्दर्य लक्षित किया जा सकता है, यथा– (१) सूर (पराक्रमी, सूर्य), (२) नाथ (योगी, नकेल), (३) तिल (तिल का चिह्न, खड), (४) घट (शरीर, घटना), (५) लोन (सौदर्य, नमक), (६) लोन (शिष्टाचार, नमक), (७) कनक (स्वर्ण, दाना), (८) गवन (गौना, गमन) और (९) बाट (विपत्ति तथा मार्ग) ।

श्लेष : किसी शब्द-विशेष मे अनेक अर्थ श्लिष्ट होने पर श्लेष अलकार होता है । जायसी के काव्य मे इस अलकार के प्रयोग भी अनेक स्थलो पर प्राप्त होते है, यथा –

१. भइ ओनत पदुमावती **बारी** ।[५]
२ कनक दुआदस बानि वह, चह **सोहाग** वह माग ।[६]
३. **दहिने** सख न सिगी पूरे । **बाएँ** पूरि बादि दिन झूरे ।[७]
४. कचन कया **सोनारि** की रहा न तोला मासु ।
कत कसौटी घालि कै चूरा गढै कि हासु ।।[८]
५. सखी साथ सब रहसहि कूदहि । औ **सिंगारहार** जनु गूदहि ।[९]
६. कैसेहु नवहि न नाए जोबन गरब उठान ।
जो पहिले **कर** लावै सो पाछै रति मान ।[१०]
७. कटु है पिय कर खोज जो पावा सो **मरजिया** ।[११]
८. जेइ पावा **गुरु** मीठ सो सुख मारग मह चलै ।[१२]

उपर्युक्त उद्धरणो मे से कुछ शब्दो के दो-दो अर्थ है – बारी (वाटिका, बाला), सोहाग (सौभाग्य, सोहागा), दाहिने-बाए (दाहिनी और बाईं ओर- दक्षिण तथा वाम मत) सोनारि (सोनारिन, उस स्त्री), सिगारहार (सिंगारहार नाम पुष्प, शृगार के लिए हार); पर (ऊपर, दूसरा), कर (हाथ, टैक्स), मरजिया (गोताखोर, मर कर जीवित हुआ)। ये सभी अर्थ ग्राह्य है अत इनमे श्लेष अलकार की योजना हुई है ।

जायसी कृत श्लेष-प्रयोग के सम्बन्ध मे एक अन्य तथ्य की ओर निर्देश कर देना भी यहाँ आवश्यक है । उपर्युक्त उदाहरणो मे तो शब्द-श्लेष स्वय ही प्रधान अलकार के रूप मे प्रयुक्त हुआ है किन्तु ऐसे भी अनेक स्थल है जहाँ इसका प्रयोग कवि ने मुद्रा अलकार की सिद्धि के लिए भी किया है, जैसे–

---

१ प० ५८२।६ २ प० ६०४।७ ३ प० ६१८।२ ४. प० ६४६।४
५ प० ५५।१ ६ प० १००।८ ७. प० ३६७।२ ८. प० ३८४।८-९
९. प० ४३३।४ १०. प० ४८३।८-९ ११ अख० २२।१० १२. अख० २६।१०

भई **पुछारि** लीन्ह बनबासू । बैरिन सवति दीन्ह चिल्हवासू ।
कै **खरबान कसै** पिय लागा । जो घर आवै अबहूँ कागा ।
हारिल भई पथ मै सेवा । अब तहँ पठवौ कौनु परेवा ।
धौरी पडुक कहु पिय ठाऊ । जौ **चितरोख** न दोसर नाऊ ।
जाहि बया गहि पिय **कठलवा** । करै मेराउ मोइ **गौरवा** ।
कोइल भई पुकारत रही । **महरि** पुकारि लेहु रे दही ।
पियरि तिलोरि आव **जलहमा** । विरहा पैठि हिए **कतनसा** ।[1]

इन पक्तियो मे पुछारि, खरबानक, हारिल, धौरी, पडुक, चितरोख, बया, कंठलवा, गौरवा, कोइलि, महरि, पियरि, तिलोरि, जलहस तथा कतनसा शब्द श्लिष्ट है । यथा, पुछारि= (१) मोरनी (२) पूछने वाली , खरबानक सै= (१) खरबानक नामक पक्षी के साथ (२) कसौटी पर कसकर, हारिल= (१) पक्षी-विशेष (२) हारी हुई, थकी हुई, धौरी= (१) धवर पक्षी (२) विरह मे रग उतरने से सफेद पडी हुई, पडुक= (१) पक्षी का नाम (२) पीली, चितरोख=(१) फाख्ता की एक जाति (२)चित मे पति के लिए रोष, बया= (१) एक पक्षी का नाम (२) व (और) आ(लौट आ), कठलवा= (१) पक्षी-विशेष (२) कठ (पकड कर) लाने वाला, गौरवा= (१) पक्षी-विशेष (२) गौरव युक्त, कोइलि= (१) पक्षी का नाम (२) आम की गुठली के भीतर भरी हुई बिजली जिससे बच्चें पपैया बनाते है, महरि= (१) पक्षी-विशेष (२) साम, पियरि= (१) पीलक चिडिया (२) पीली रगी हुई मागलिक धोती या ओढनी, तिलोरि= (१) तेलिया मैना (२) तिलयुक्त बडियाँ, जलहसा= (१) जल मे क्रीडा करने वाले हंस (२) हस (जी) जलता है, तथा कतनसा= (१) नीलकठ (२) क्यो नष्ट करता है । उल्लिखित शब्द विविध पक्षियो की नामबोधक सज्ञाए है । अत मुद्रालकार की सिद्धि यहाँ स्पष्ट है । इस प्रकार के अन्य प्रयोग पद्मावत के दो० सख्या ४, २९३, २९४ तथा ३७७ आदि मे प्राप्त होते है ।

वीप्सा आदर, आश्चर्य, उत्साह, घृणा तथा शोक आदि विविध मानसिक विकारो को व्यक्त करने के लिए जायसी ने अनेक स्थलो पर शब्दो की आवृत्ति की है । ऐसे स्थलो पर प्राय वीप्सा के उदाहरण प्राप्त होते है, जैसे–

१. एतना बोल न आव मुख करहि **तराहि तराहि** ।[2]
२. **मुयों मुयों** अहनिसि चिललाई । ओहि रोस नागन्ह धरि खाई ।[3]
३. देखि सुरुज वर कवल सजोगू । **अस्तु अस्तु** बोला सब लोगू ।[4]
४. **नमो नमो** नारायन देवा ।[5]

उपर्युक्त उद्धरणो मे 'तराहि तराहि,' 'मुयो मुयों', 'अस्तु अस्तु' तथा 'नमो नमो' मे वीप्सा अलकार है ।

---

१ प० ३५८।१-७ २ प० ११९।९ ३. प० ९७।६ ४. प० २७४।१
५. प० १६५।४

पुनरुक्तिप्रकाश जायसी ने अनेक स्थलो पर शब्द या शब्दो की आवृत्ति इस प्रकार की है कि उसमे अर्थ की सुन्दरता बढ गई है। इस प्रकार के पुनरुक्तिप्रकाश के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

१. **तरकि तरकि** गौ चदन चोला। **धरकि धरकि** डर उठै न बोला।[1]

२. आवहि झुड सो **पांतिहि पांती**। गवन सोहाइ सो **भांतिहि भांती**।[2]

३. कलप समान रैनि हठि बाढी। तिल तिल भरि **जुग जुग** बर गाढी।[3]

४. **सोत सोत** तन बेधा **रोंव रोंव** सब देह।
नस नस मह भै सालहि **हाड़ हाड़** भए बेह।[4]

५. रकत के बुद कया जत अहही। **पदुमावति पदुमावति** कहही।
रहहु त **बुंद बुंद** मह ठाऊ। परहु तौ सोइ लै लै नाऊ।
रोव रोव तन तासौ ओधा। **सोतहि सोत** बेधि जिउ सोधा।
हाड़ हाड़ मह सबद सो होई। **नस नस** माह उठै धुनि सोई।[5]

ऊपर जिन शब्दालकारो का उल्लेख किया गया है उनमे चमत्कार शब्द पर ही आश्रित होता है किन्तु कुछ अर्थालकार भी ऐसे होते है जिनमे चमत्कार उत्पन्न करने मे शब्द भी आशिक रूप से सहायक होता है। शब्द-चमत्कार की दृष्टि से ऐसे अलकारो और तत्सम्बन्धी प्रयोगो की चर्चा भी यहा की जा सकती है। इस प्रकार के अलकारो मे से प्रमुख रूप से दीपक, विनोक्ति, सहोक्ति तथा समासोक्ति का प्रयोग जायसी ने किया है।

दीपक जहाँ विभिन्न वर्ण्यो का एक ही धर्म स्थापित किया जाता है, वहाँ दीपक अलकार होता है। जायसी मे इसका प्रयोग मिलता है—

१. परिपल पेम न आछै छपा।[6]

२. सिद्ध गिद्ध जस दिस्टि गँगन महँ बिनु छर किछु न बसाइ।[7]

यहाँ 'छपा' क्रिया-पद 'परिमल' और 'पेम' दोनो से सम्बद्ध है। सारा चमत्कार उसी शब्द के प्रयोग मे है।

सहोक्ति कार्यकारणरहित सहवाची शब्दो द्वारा जहाँ एक धर्म का वर्णन होता है वहाँ सहोक्ति अलकार होता है। जायसी-काव्य का एक प्रयोग देखिए—

सोइ प्रीत जिअ साथ जो जाई।[8]

यहाँ 'साथ' शब्द द्वारा 'जाई' का सम्बन्ध कहा गया है।

विनोक्ति जहाँ एक के बिना दूसरे को शोभित अथवा अशोभित कहा जाय वहाँ विनोक्ति अलकार होता है—

---

१. प० ३२७।३ २ प० ३२।४ ३. प० १६८।४ ४. प० ४७३।८-९
५. प० २६२।४ ६ प० २११।२ ७ प० २४०।९ ८. प० ५८।५

१. अब हौं सुरुज चाँद वह छाया। जल बिनु मीन रकत बिनु काया।[१]
२. कहाँ छपाए चाँद हमारा। जेहि बिनु जगत रैनि अँधियारा।[२]

यहाँ 'बिनु' शब्द की सहायता से मीन, काया तथा जगत् का अशोभित होना वर्णित है।

समासोक्ति जहाँ कार्य, लिग या विशेषण की समानता के कारण प्रस्तुत के कथन मे अप्रस्तुत व्यवहार का आरोप होता है वहाँ समासोक्ति अलकार होता है। पद्मावत मे इस अलकार का प्रयोग प्रचुर स्थलो पर हुआ है। वस्तु-वर्णन के प्रसग मे कवि ने अनेक स्थलो पर ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है जिनसे पाठक के चित्त मे अप्रस्तुत का चित्र भी आ जाता है। पद्मावती-नागमती विलाप खड का एक अश देखिए—

कोइ न बहुरा निबहुर देसू। केहि पूछौं को कहै संदेसू।
जो गौने सो तहाँ कर होई। जो आवै कछु जान न सोई।
अगम पथ पिय तहाँ सिधावा। जोरे जाइ सो बहुरि न आवा।[३]

यहाँ परलोक यात्रा का अर्थ व्यग्य है। दिल्लीगमन मे परलोक गमन का आरोप किया गया है। इस दृष्टि से 'निबहुर देसू' तथा 'अगम पथ' आदि प्रयोग समासोक्ति का विधान करते है। इसी प्रकार निम्नलिखित वर्णन मे भी यद्यपि प्रस्तुत वर्णन सुए के प्रसग का है—

जौ लहि पिंजर अहा परेवा। अहा बाँद कीन्हेसि निति सेवा।
तेहिं बदि हुतें जौं छूटै पावा। पुनि किमि बाँदि होइ कित आवा।
दस बाटैं जेहि पिंजर माहाँ। कैसे बांच मजारी पाहां।[४]

तथापि अप्रस्तुत अर्थ (शरीर के नौ छिद्र और दशम ब्रह्मरन्ध्र), जीव (परेवा) तथा काल (मार्जारी) का भी सकेत स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है। इस प्रकार के अन्य अनेक स्थल पद्मावत मे यत्र-तत्र आए है जहाँ जायसी विशिष्ट शब्दो तथा विशेषणो के प्रयोग से प्रस्तुत अर्थ के साथ ही अप्रस्तुत अर्थ की ओर भी इगित करते चले हैं।

शब्द-क्रीड़ा शब्द-क्रीडा भी उक्ति-वैचित्र्य का ही एक अन्य रूप है। प्राचीन काल से ही साहित्य-रसिको मे कौतुक-सृष्टि तथा चमत्कारपूर्ण प्रमोद के हेतु बिन्दुमती, प्रहेलिका, चित्रकाव्य तथा दृष्टकूट आदि प्रचलित थे। वाणभट्ट, दण्डी, माघ तथा भारवि आदि सस्कृत के साहित्यकारो ने इनमे विशेष रुचि प्रदर्शित की थी। सूर की साहित्य-लहरी की तो रचना ही दृष्टिकूट पदो मे हुई है। सूफी कवियो को भी शब्द-क्रीडा मे आनन्द मिलता था। जायसी ने पदमावत मे कई स्थानो पर शब्द-क्रीडा के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने की सफल चेष्टा की है, यथा—

---

१ प० ६६।४ २ प० ३२०।७ ३ प० ५८१।३-५ ४ प० ६८।२-३-६

प्रान पयान होत केइं राखा । को मिलाव चात्रिक कै भाखा[1] ।

'अर्थात् प्राण निकलना चाहते है । इन्हे कौन रोकेगा । कौन चातक की भाषा से इन्हे मिलाएगा ।' यहाँ 'चात्रिक कै भाखा' का अर्थ है प्रियतम । चातक की भाषा=पिउ पिउ=प्रियतम । एक दूसरा प्रयोग देखिए –

मुहमद बाईं दिसि तजी एक सरवन एक आँखि ।
जब ते दाहिन होइ मिला बोलु पपीहा पाँखि ।[2]

अर्थात् "जब से' पपीहे का बोल' दाहिने होकर मिला तब से मुहम्मद ने बाई दिशा का देखना और सुनना छोड दिया ।" यहाँ भी 'बोलु पपीहा पाँखि' का अर्थ है—पपीहे का बोल=पिउ पिउ अर्थात् प्रियतम । चित्तौर-आगमन खड मे रत्नसेन के आगमन की पूर्व सूचना पाकर प्रेम-विह्वल नागमती अपनी सखियो से हर्ष प्रकट करते हुए कहती है–

दसौं दाउ कै गा जो दसहरा । पलटा सोइ नाँउँ लै महरा ।[3]

'जो सुरत के दसो दावँ करके दशहरे के दिन गया था वह मेरे ससुर का नाम लेकर लौटा है ।' स्मरणीय है कि नागमती के श्वसुर यानी रत्नसेन के पिता का नाम चित्रसेन था ।[4] अतएव यहाँ 'नाउ लै महरा' का अर्थ हुआ 'चित्रसेन को लेकर', किन्तु स्वर्गवासी चित्रसेन का लौटना तो सम्भव नही था, अत प्रसग को देखते हुए चित्रसेन का अर्थ इस प्रकार का होगा – चित्र=विचित्र, सेन=सेना, अर्थात् विचित्र सेना । इस प्रकार भावार्थ हुआ 'रत्नसेन विचित्र सेना लेकर लौटा है' ।[5] इसी प्रकार–

मन तिवानि कै रोवै हरि भडार कर टेकि ।[6]

मे 'हरि भडार' पद उल्लेखनीय है । यहा 'हरि' शब्द के अनेक अर्थो मे से सिह अर्थ की सगति बैठती है । 'हरि भडार' यानी 'सिह का पेट या कटि' । प्रसग पर विचार करने से अर्थ निकलता है कि पद्मावती सिह के समान पतली कटि पर हाथ रखकर रो रही थी । इसी कूट-शैली मे 'हरि' शब्द का प्रयोग अन्यत्र एक भिन्न अर्थ मे हुआ है –

बल हरि जस जुरजोधन मारा ।[7]

यहाँ जायसी की समास-शैली के कारण अर्थ और भी दुरूह हो गया है । जायसी को समासो मे विपरीत-क्रम से पद रखने की शैली प्रिय रही है ।[8] बलहरि भी इसी प्रकार का समास है । 'बलहरि' का उलटा 'हरिबल' है । 'हरि' का अर्थ सगति के अनुसार वायु हुआ, अतएव 'हरिबल' यानी वायु का बल रखने वाला अर्थात् वायुपुत्र भीमसेन । तब पक्ति का अर्थ स्पष्ट होता है – 'जैसे भीमसेन ने दुर्योधन को मारा ।'

---

१. प० ३४२।७ २ प० ३६७।६ ३. प० ४२४।३ ४. प० ७३।१-२
५. रत्नसेन की उक्त सेना के वर्णन के लिए दो० ३८५।७ तथा दो०४२५।२-४ द्रष्टव्य है ।
६ प० ३७८।६ ७. प० ६१४।६ ८ देखिए, समास-प्रकरण ।

विशिष्टार्थक शब्द : ऊपर जिस शब्द-क्रीडा का सकेत किया गया है, उसमे कवि ने उक्ति-वैचित्र्य-प्रदर्शन हेतु कूट-शैली को अपनाया है, किन्तु कुछ ऐसे भी शब्द जायसी-काव्य मे उपलब्ध होते है जो अपने प्रचलित अर्थ से भिन्न अर्थ मे प्रयुक्त होकर वैलक्षण्य उत्पन्न करते हैं, जैसे –

अ – **दूती दूत पकवान जो साधे ।**[१] आ – **भरे बोझ दूती कै कापर ।**[२]
इ – **बिरिध बएस जो बाधै पाऊ ।**[३]

उक्त पक्तियो मे कवि ने 'दूत', 'कापर' तथा 'पाऊ' शब्दो को क्रमश 'शीघ्र', 'सिर' 'तथा' 'गाँठ' के अर्थ मे प्रयुक्त किया है जो हिन्दी मे सामान्य रूप से प्रचलित नही है, इसी प्रकार जायसी ने 'कबि' शब्द का प्रयोग कवि (कर्ता) और काव्य (कृति) दोनो के लिए किया है –

कर्तावाचक अर्थ – **चारि मीत कबि मुहम्मद पाए ।**[४]
कृतिवाचक अर्थ – **उघरी जोम प्रेम कबि बरनी ।**[५]

उक्त दोनो प्रयोगो मे से कृतिवाचक अर्थ मे प्रयुक्त 'कवि' का प्रयोग अन्यत्र सामान्य रूप से देखने मे नही आता। 'ईसर' भी एक ऐसा ही शब्द है जिसका प्रयोग जायसी ने स्वामी अथवा धनी के अर्थ मे किया है –

अब ईसर भा दारिद खोवा ।[६]

अवधी मे अन्यत्र इस अर्थ की प्राप्ति दुर्लभ है। एक स्थल पर जपमाला के लिए 'जाप' शब्द का भी प्रयोग मिलता है जो विरल है –

विरह भभूति जटा बैरागी । छाला काँध जाप कठ लागी ।[७]

शब्द-निर्माण जायसी ने कुछ नवीन शब्दो की सृष्टि भी की है। यह शब्द अधिकाशत प्रचलित शब्दो मे उपसर्ग अथवा प्रत्ययो का योग कर देने से बने है, जैसे फॉस शब्द का अर्थ है बधन। कवि ने 'अन' उपसर्ग की सहायता से इसका विलोम 'अनफास' गढ डाला है –

जेकर पास अनफांस, कहु हिय फिकिर सँभारि कै ।
कहत रहै हर साँस, मुहमद निरमल होइ तब ।[८]

इसी प्रकार 'आपन' का विलोम 'निरापन' बना लिया है –

जौं लगि जिउ आपन सब कोई । बिनु जिउ सबै निरापन होई ।[९]

सज्जन के लिए 'सुपुरुस'[१०] तथा निराश्रय के लिए 'निभरोसी'[११] शब्द भी जायसी की सृजन-कला का प्रतिफल है।

---

१ प० ५८६।१ २. प० ५८६।२ ३ प० ५८६।४ ४. प० २२।१
५. प० २०।७ ६. प० २१४।२ ७. प० ६०१।४ ८. अख० ३६।१०-११
९. प० १६६।४ १०. प० ६३१।८ ११. प० ३।८

कुछ शब्दो मे–'नामा' या–'नाव' प्रत्यय लगाकर उन्हे नवीन रूप मे प्रस्तुत करने का श्रेय भी जायसी को दिया जा सकता है, यथा–

क – पूंछहि सबै बिहंगमनामा ।[१] **ख – भंवर न जाइ न पखीनामा ।**[२]

इसी वजन पर **'भुमियानामा',**[३] **'पुहुपसबनामा'**[४] तथा **'हिन्दू नाँव'**[५] आदि शब्द भी आए है।

शब्द-विकार सभी कवियो को शब्दो के रूप मे हेर-फेर करने की स्वतन्त्रता रहती है। थोडे बहुत रूप-परिवर्तन से काव्य मे प्राय सौष्ठव भी आ जाता है किन्तु औचित्य इसी बात मे है कि शब्दो का विकृत रूप मूल रूप से इतना भिन्न न हो जाये कि उसे सहज पहचानना ही सम्भव न हो सके। जायसी ने अधिकाशत इस औचित्य का निर्वाह किया है फिर भी उनके कतिपय शब्द अपने मूल रूप से भिन्न इतने विकृत रूप मे प्रयुक्त हुए है कि उनसे भिन्नार्थक शब्दो का भ्रम होने लगता है, यथा–**राही**[६] (राधिका), **पौ**[७] (पाव), **दामनहि**[८] (दमयन्ती), **जसोवै**[९] (यशोदा), **सनमंध**[१०] (सम्बन्ध) तथा **अजगुत**[११] (अयुक्त) आदि। सामान्यत शब्दो के विकृत रूप कही अनुप्रास की सगति अथवा मात्रा-पूर्ति के लिए प्रयुक्त है और कही तुकान्त के निर्वाह के लिए। (अ) अनुप्रास की सगति अथवा मात्रा-पूर्ति के लिए किए गए विकृत शब्द-रूपो के कतिपय उदाहरण यहाँ दिए जाते है —

कूसल ∠ कुशल पुनि रानी हंसि कूसल पूँछा ।[१२]
मता ∠ माता : मता न जानसि बालक आदी ।[१३]
ओदर ∠ उदर तेहि ओदर आदर बहु पाई ।[१४]
अरध ∠ अधः (नीचे) : अरध उरध कछु सूझ न आना ।[१५]
आहर ∠ आहार : आहर गएउ न भा सिध काजू ।[१६]

अब तुकान्त के लिए किए गये विकृत रूपो के भी कुछ उदाहरण देखिए–

पापिया ∠ पापी : पानि पवन तै पिया सो पिया । अब को आनि देइ पापिया ।[१७]
इंदू ∠ इन्द्र : नेजा उठा डरा मन इंदू । आइ न बाज जानि कै हिन्दू ।[१८]
बिछूना ∠ बिछोही : मिले रहस चाहिअ भा दूना । कत रोइअ जौं मिले बिछूना ।[१९]
रोवदा ∠ रोना : छदहि छद भएउ सो बंदा । छन एक माँह हसी रोवदा ।[२०]
माया ∠ माता : बादिल केरि जसोवै माया । आइ गहे बादिल के पाया ।[२१]

---

१. प० ३६४।६ २. प० १६२।१ ३ प० ४२५।६ ४. प० ४७१।३
५ प० ५०१।३ ६ प० ४२८।१ ७ प० ४६७।७ ८. प० ४१७।७
९. प० ६१३।१ १०. प० ४७५।८ ११. प० ४५०।५ १२. प० १७६।१
१३. प० ६१४।१ १४ प० ५०।५ १५. प० ५११।४ १६. प० २०४।६
१७ प० ५७८।४ १८ प० ६३०।५ १९. प० १७५।५ २० अख० ३५।२
२१. प० ६१३।१

जायसी ने शब्दो को तोडा मरोडा अवश्य है किन्तु छन्दोऽनुरोध से अथवा अवधी की सहज प्रकृति के अनुरोध से ही ऐसा किया है और यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दो की विकृति से अर्थ की रमणीयता को कही भी आघात नही पहुचा है।

सजग शब्द-चयन प्रत्येक भाव या व्यापार का वर्णन करने के लिए कवि को शब्द-चयन मे अत्यधिक सजग तथा सतर्क रहना पडता है। सर्वथा उपयुक्त शब्द की योजना ही भाव को सर्वाधिक समर्थ तथा प्रभावशाली रूप मे व्यक्त करने मे सफल हो सकती है इसीलिए कुशल कवि भावनाओ को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए बडी सतर्कता से शब्द-योजना करते है। जायसी इस क्षेत्र मे सिद्धहस्त है। विशेष रूप से पद्मावत मे उनकी भाषा का रूप अत्यन्त प्रौढ़ तथा भव्य है और उसका कारण अर्थगौरव एव भाव-सम्पत्ति से मण्डित सजग शब्द-चयन है। कवि ने अनुप्रास-विधान के लिए व्यर्थ और अशक्त शब्दो का प्रयोग नही किया है। अधिकाश स्थलो पर शब्द अर्थ-सौन्दर्य को और भी दीप्ति प्रदान करते है। शब्द-साधना के साथ अर्थ-गौरव को प्रकट करने वाला एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

रतनसेनि तुम्ह बाँधा मसि गोरा के गात।
जब लगि रुहिर न धोवौं तब लगि होउं न रात।[1]

यहाँ 'गोरा' शब्द का कैसा अर्थगर्भित प्रयोग कवि ने किया है। 'गोरा' एक पात्र का नाम भी है और श्वेत वर्ण का द्योतक भी। जो वस्तु श्वेत तथा निर्मल है उस पर मसि का चिह्न कितना बुरा लगेगा! यह धब्बा तो तभी मिटेगा जब उसे रक्त से धोया जावे। यहाँ सारा सौन्दर्य 'गोरा' शब्द के विन्यास मे है। एक दूसरा उदाहरण लीजिए। रत्नसेन-पद्मावती का प्रेम विषम से सम की ओर प्रवृत्त हुआ है जिसमे एक पक्ष की कष्ट-साधना दूसरे पक्ष मे पहले दया और फिर तुल्य प्रेम की प्रतिष्ठा करती है। जायसी ने इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य को ध्यान मे रख कर रत्नसेन के प्रति पद्मावती की आरम्भिक भावना को 'मया' कहा है, 'अनुराग' नही—

सुनि पदुमावति कै असि मया। भा बसत उपनी नै कया।[2]

यह शब्द-प्रयोग बहुत ही उपयुक्त है। पहले पद्मावती को रत्नसेन के कष्टो की सूचना मिली है तब उसका हृदय उसकी ओर आकृष्ट हुआ है। अत पद्मावती के हृदय मे पहले 'मया' का भाव आना ही स्वाभाविक है।

अमूर्त भावो तथा विषयो को साकार रूप प्रदान करने मे भी जायसी ने शब्द-योजना मे अपनी निपुणता का प्रदर्शन किया है। देवपाल दूती खड मे पद्मावती और दूती के सवाद मे कवि ने पद्मावती के द्वारा पातिव्रत की बडी भव्य व्यजना कराई है

---

१ प० ६३४।८-९   २ प० २३७।१

पद्मावती अपने पति के महत्व को प्रकट करते हुए तथा उस पर गर्व करते हुए दूती से कहती है–

सोन नदी अस मोर पिय गरुवा। पाहन होइ परं जौ हरुवा।
जेहि ऊपर अस गरुवा पीऊ। सो कस डोल डोलाएँ जीऊ।[1]

यहा 'गरुआ' और 'डोल' शब्दो के प्रयोग द्वारा जायसी ने एक अगोचर मानसिक विषय का गोचर भौतिक व्यापार के रूप मे जो प्रत्यक्षीकरण किया है वह कवि की उत्कृष्ट शब्द-योजना का उदाहरण है। कवि ने वस्तु-परिगणनात्मक प्रसगो तक मे अपने सजग शब्द-चयन की वृत्ति का परिचय दिया है––

फरे आँब अति सघन सोहाए। औ जस फरे अधिक सिर नाए।
कटहर डार पीड सौं पाके। बड़हर सोउ अनूप अति ताके।
खिरनी पाकि खाँड असि मीठी। जाँबु जो पाकि भँवर असि डीठी।
नरिअर फरे फरी खुरहुरी। फुरी जानु इद्रासन पुरी।
पुनि महु चुवै सो अधिक मिठासू। मधु जस मीठ पुहुप जस बासू।[2]

उक्त वर्णन को केवल सूची अथवा तालिका मात्र कह देना ही उचित नही है। कवि का वर्णन उपवन की श्री का अनूठा और सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। अन्तिम पक्ति मे महुओ के टपकते समय उनकी महक और मिठास की अतिशयता का ही सकेत नही है, 'चुवै' शब्द के प्रयोग ने वर्णन मे स्वाभाविकता भी उत्पन्न कर दी है। पद्मावत मे कवि के सजग शब्द-चयन के कारण अन्यत्र भी इसी प्रकार की मिठास है। जायसी ने नन्ददास की भाँति ललित शब्दो का परिष्करण नही किया है, भाषा मे जडिया की नक्काशी खराद, दीप्ति तथा कान्ति-निक्षेपण करने की चेष्टा भी उन्होने नही की है किन्तु अपने भावो की स्वाभाविक अभिव्यजना मे कवि को कमाल हासिल है और इसका श्रेय उसके सरल, स्वाभाविक तथा सजग शब्द-चयन को है।

शब्द-मैत्री : एक ही वजन के मिलते-जुलते हुए शब्दो के पास-पास रखने से भाषा मे लालित्य तथा माधुर्य आ जाता है। यह शब्द-विन्यास अपनी ध्वन्यात्मकता और स्वर-लहरी से अर्थ को गौरव, कल्पना को कमनीयता तथा भाषा को सौष्ठव प्रदान करता है। जायसी ने यत्र-तत्र शब्द-योजना मे शब्द-मैत्री का निर्वाह कर अपनी भाषा मे सगीत का समावेश कर दिया है। यहाँ शब्द-मैत्री से युक्त एक उदाहरण दिया जाता है –

राघौ आघौ होत जौ कत आछत जियँ साध।
ओहि बिनु आघ बाघ बर सकै त लै अपराध।[3]

प्रस्तुत पक्तियो मे 'राघौ आघौ' तथा 'आघ बाघ' की शब्द-मैत्री के कारण चमत्कार की सृष्टि हुई है। इसी प्रकार निम्नलिखित पक्तियो मे लालित्य 'बूढे आढे', 'उबरे दुबरे',

---

१. प० ५६६।४-५ २. प० २८।१-५ ३. प० ५७२।८।६

'अहोरि बहोरी' तथा 'अरध उरध' मे लक्षित होने वाली शब्द-मैत्री के कारण द्विगुणित हो गया है –

अ– बूढे आढे होहु तुम केइं यह दीन्ह असीस ।[1]

आ–मोट बड़े सब टोइ टोइ धरे । उबरे दुबरे खुरुक न चरे ।[2]

इ–सरद चंद मह खजन जोरी । फिरि फिरि लरहिं अहोरि बहोरी ।[3]

ई–अरध उरध कछु सूझ न आना ।[4]

द्वयर्थक शब्द-योजना जायसी के शब्द-प्रयोग का कौशल उनकी द्वयर्थक शब्द-योजना मे भी दिखाई पडता है । कुछ स्थलो पर कवि ने शब्दावली का विन्यास इतनी विदग्धता से किया है कि उसमे एक ओर तो नितान्त परिशुद्ध काव्य झलकता है और दूसरी ओर अध्यात्म की सरस्वती भी प्रवाहित होती रहती है । इस प्रकार की द्वयर्थक शब्द-योजना खुसरो तथा अन्य कवियो ने भी अपनी रचनाओ मे की है किन्तु जायसी ने उसके सौन्दर्य को बिलकुल निखार दिया । महाकवि के हाथो मे पडकर इस प्रकार की शब्द-योजना का उद्देश्य केवल अर्थ-चमत्कार ही न रहा, उसमे आध्यात्मिक अर्थो की भी व्यजना होने लगी । उदाहरण के लिए पद्मावती रत्नसेन खड को ही ले । 'पद्मावत' मे काव्य-पक्ष और अध्यात्म-पक्ष दोनो ही दृष्टियो से यह अश उत्कृष्ट है । कुछ उदाहरणो से यह बात पुष्ट हो सकेगी । राजमदिर मे विश्राम-स्थल का उल्लेख करते हुए जायसी कहते है –

सात खंड ऊपर कबिलासू । तहँ सोवनारि सेज सुखबासू ।[5]

यह सात खण्ड क्या हैं ? एक ओर तो यह स्थूल अर्थ स्पष्ट है कि महल मे सात खण्डो के ऊपर राजा और रानी का निजी निवास होता था जिसे मध्यकालीन स्थापत्य मे 'कविलास' या कैलाश' की सज्ञा दी जाती थी । वही 'सुखवासी' संज्ञक विशेष कक्ष भी होता था । दूसरी ओर अध्यात्म पक्ष मे महल है मानव शरीर । शरीर मे स्थित सात चक्र ही सात खंड है और उनके ऊपर आठवा चक्र उष्णीष कमल या कबिलास है । उसमे जो महासुख का स्थान है वही 'सुखवासी' है । कबिलास का वर्णन करते हुए कवि कहता है –

साजा राजमंदिर कबिलासू । सोने कर सब पुहुमि अकासू ।[6]

मध्यकालीन स्थापत्य मे शयनागार तथा सुखवासी के फर्श (पुहुमि) और छत (अकासू) पर सोने का पानी चढाया जाता था अत भौतिक पक्ष मे तो कवि का उक्त कथन सर्वथा सत्य है ही साथ ही अध्यात्म पक्ष मे भी उसकी सगति है । वहाँ 'सोने' शब्द शून्य से सम्बद्ध है । योगी को साधना के द्वारा सर्वशून्य की स्थिति मे पहुँचना अभिप्रेत होता है । जब वह इस सर्वशून्य की स्थिति मे पहुँच जाता है तो उसे सहजसुन्दरी का सान्निध्य प्राप्त होता है । यही रत्नसेन और पद्मावती का मिलन है । इसी मिलन-खण्ड मे दो अन्य प्रसग भी वर्णित है, एक तो पान के समान रग मे रँग जाना और दूसरे नायक नायिका का चौपड खेलना । कवि ने एक स्थल पर पान की विभिन्न जातियाँ गिनाई हैं –

१. प० ६५३।१ २. प० ५४१।७ ३ प० ४७४।३ ४. प० ५११।४
५. प० २९१।१ ६. प० ४८।१

हौं तुम्ह नेह पियर भा पानू । पेंड़ी हुति सुनिरासि बखानू ।
सुनि तुम्हार संसार बड़ौना । जोग लीन्ह तन कीन्ह गड़ौना ।[१]

पर यहाँ भी उद्देश्य द्वयर्थक शब्दावली के माध्यम से साहित्यिक और आध्यात्मिक चित्रो को एक साथ प्रस्तुत करना है । रत्नसेन अपने को पेडी का पान और पद्मावती को सुनिरास पान कहता है । पेडी मूलाधार अथवा प्रथम शून्यावस्था का प्रतीक है और 'सुनिरासि' शब्द पान की जाति विशेष का नाम तो है ही, सर्वशून्य अवस्था की ओर सकेत भी करता है। इसी प्रकार चौपड खेलने के समय पद्मावती रत्नसेन से कहती है—

ऐसे राजकुंवर नहिं मानौं । खेलु सारि पांसा तौ जानौं ।
कच्चे बारह बार फिरासी । पक्के तौ फिरि थिर न रहासी ।
रहै न आठ अठारह भाखा । सोरह सतरह रहै सो राखा ।
सतएं ढरै सो खेलनिहारा । ढारु इग्यारह जासि न मारा ।
तूं लीन्हे मन आछसि दुवा । औ जुग सारि चहसि पुनि छुवा ।
हौं नव नेह रचौं तोहि पाहाँ । दसौं दाउँ तोरे हिय माहाँ ।
पुनि चौपर खेलौ कै हिया । जो तिरहेल रहै सो तिया ।
जेहि मिलि बिछुरन औ तपनि अंत तत तेहि नित ।
तेहि मिलि बिछुरन को सहै बरु बिन मिले निचिंत ।[२]

इसके उत्तर मे रत्नसेन कहता है —

बोलौं बचन नारि सुनु सांचा । पुरुख क बोल सपत औ बाचा ।
यह मन तोहि अस लावा नारी । दिन तोहि पास और निसि सारी ।
पौ परि बारह बार मनावौं । सिर सौं खेलि पैत जिउ लावौं ।
मारि सारि सहि हौं अस राचा । तेहि बिच कोठा बोल न बाचा ।
पाकि गहै पै आस करीता । हौं जीतेहु हारा तुम जीता ।
मिलि कै जुग नहिं होउँ निनारा । कहां बीच दुतिया देनिहारा ।
अब जिउ जरम जरम तोहि पासा । किएउँ जोग आएउ कबिलासा ।
जाकर जीउ बसे जेहि सेते तेहि पुनि ताकरि टेक ।
कनक सोहाग न बिछुरै अवटि मिलै जो एक ।[३]

इन दोनो पद्याशो के अर्थ पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि कवि ने यहाँ सारि, पाँसा, कच्चे, पक्के, दुआ, तिरहेल, जुग (दो० ३१२) तथा पास, सारी, पौ, पैत, बिचकोठा, (दो० ३१३) एव अन्य सख्यावाचक शब्दो का प्रयोग जानबूझ कर किया है क्योकि यह

---

१. प० ३०९।२–३ २ प० ३१२।१–९ ३. प० ३१३।१–९

चौपड तथा अध्यात्म दोनो पक्षों मे घटित हो सकते है ।[१] जायसी ने केवल लौकिक पक्ष मे भी द्वयर्थक शब्द-योजना की है । बादशाह-चढाई-खड मे इसी प्रकार की शब्दावली के द्वारा अलाउद्दीन की तोपो तथा युवती स्त्रियो का वर्णन किया है –

> कहौं सिंगार सो जैसी नारीं । दारू पिअहिं सहज मँतवारी ।
> उठै आगि जौं छाँड़हिं स्वांसा । तेहिं डर कोउ रहै नहिं पासा ।
> सेंदुर आगि सीस उपराहीं । पहिया तरिवन झमकत जाहीं ।
> कुच गोला दुइ हिरदै लाए । अंचल धुजा रहहिं छिटकाए ।
> रसना गूँगि रहहिं मुख खोले । लंका जरी सो उन्ह के बोले ।
> अलकै सांकरि हस्तिन्ह गीवां । खाँचत डरहिं मरहिं सुठि जीवा ।
> बीर सिंगार दुवौ एक ठाऊं । सतुरुसाल गढभंजन नाऊं ।
> तिलक पलीता तुपक तन दुहुं दिसि बज्र के बान ।
> जहँ हेरहिं तहँ परै भगाना हंसहि त केहि के मान ।[२]

यहाँ भी अनेक शब्दों के दो-दो अर्थ है, यथा – सिंगार= (१) साज-सामान, (२) रूप की सज्जा; नारी= (१) स्त्री (२) तोपें, दारू= (१) मद्य (२) बारूद; मँतवारी= (१) स्वाभाविक यौवन मद से भरी (२) मतवाले गोलो से भरी; स्वाँसा= (१) साँस (२) धुआँ, रसना = (१) जीभ (२) तोप के मुह में लगी हुई डाट, तिलक = (१) स्त्रियो के माथे का एक आभूषण (२) तोप के ऊपर का एक अंश । द्वयर्थक शब्दावली के विन्यास मे जायसी की काव्य-शैली की यह विशेषता है कि उन्होने दोनो पक्षो का सफल निर्वाह किया है । इस प्रकार के शब्द-विन्यास को श्लेष, मुद्रा अथवा समासोक्ति

---

१. उक्त शब्दों के दोनों अर्थ इस प्रकार हैं :

प्रयुक्त शब्द	चौपडपरक अर्थ	अध्यात्मपरक अर्थ
सारि, सारी	गोट	सत्व
पाँसा, पास	हाथीदाँत के लम्बे टुकड़े	निस्सार
कच्चे	दाँव-विशेष	अनुभवहीन साधक
पक्के	दाँव-विशेष	अनुभवी साधक
दुआ	दाँव-विशेष	द्वैतभाव
तिरहेल	तीन बाजी	इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना की साधना
जुग	दो गोटें	प्राण और विन्दु
पौ	दाँव-विशेष	प्रकाश
पैत	अंत का घर	गुरु के चरण
बिचकोठा	बीच का घर	हृदय-गुहा

२. प० ५०७।१-६

अलकार कह कर ही टाला नही जा सकता । यह उनकी काव्य-कला का एक महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली अग है ।

अनेकार्थी शब्द · जायसी-काव्य मे अनेक स्थलो पर ऐसे शब्दो के प्रयोग भी मिलते है जो समध्वनीय होते हुए भी भिन्नार्थक है, यथा –

करिल केस बिसहर बिस भरे । लहरैं लेहिं कँवल मुख धरे ।[1]
ओहि भाँति पलुही सुख बारी । उठे **करिल** नव कोप सँवारी ।[2]
करिल चढे तहँ पाकहिं पूरी । मूँठिहि माँह रहहिं सौ चूरी ।[3]
परी **नाथ** कोइ छुअइ न पारा । मारग मानुस सोन उछारा ।[4]
गुरु हमार तुम्ह राजा हम चेला औ **नाथ** ।[5]
तूँ मन **नाथु** मारि कै स्वाँसा । जौ पै मरहि आपुहि करु नाँसा ।[6]
मोहिं यह लोभ सुनाउ न **माया** । काकर सुख काकरि यह काया ।[7]
ताकहँ गुरू करै असि **माया** । नव अवतार देइ नै काया ।[8]
पेमहि माहँ बिरह औ रसा । **मैन** के घर मधु अम्रित बसा ।[9]
सखि हिय हेरि हार **मैन** मारी । हहरि परान तजै अब नारी ।[10]

उक्त पक्तियो मे विभिन्न शब्दो के अर्थ क्रमशः इस प्रकार है, करिल – (१) काले, (२) करील, (३) कडाह, नाथ – (१) नथ, (२) योगी, (३) नाक मे डोरी पहनाना, माया– (१) माता, (२) स्नेहपूर्ण कृपा, मैन – (१) मोम, (२) मदन । इन प्रयोगों की कलात्मकता स्वयसिद्ध है । ऐसे बहुत से शब्द जायसी की रचनाओ मे बिखरे पडे हैं ।

शब्द-दोष · ऊपर शब्दो के कलात्मक प्रयोगो की कतिपय प्रमुख विधाओ का उल्लेख किया गया है । अब शब्द-प्रयोग मे प्राप्त दोषो पर भी विचार कर लिया जावे । निर्दोषिता काव्य का महान गुण है किन्तु वह अत्यन्त दुर्लभ है । इसका कारण स्पष्ट है । श्रेष्ठ कवि रस-निष्पत्ति मे इतना लीन हो जाते है कि वे कभी-कभी भाषा के बाह्य रूप पर अधिक ध्यान नही रख पाते, फलत. उनके काव्य मे दोष आ जाते है । जायसी-काव्य में भी यत्र-तत्र इसी कारण कुछ दोष मिलते है । भारतीय काव्य-शास्त्र मे दोष तीन प्रकार के बताए गये है – पद या शब्द-दोष, अर्थ-दोष और रस-दोष । भाषा के अध्ययन मे शब्द-दोषो की चर्चा ही अभीष्ट है अतएव उन्ही की दृष्टि से जायसी के प्रयोगों का विवेचन किया जाता है ।

जायसी के काव्य मे जो शब्द-दोष प्रमुख रूप से प्राप्त होते हैं वे इस प्रकार हैं– –श्रुतिकटु, च्युतसंस्कार, अप्रयुक्त, अनुचितार्थ, ग्राम्य, समाप्तपुनरात्त, अप्रतीतत्व, अश्लीलत्व, न्यूनपदत्व तथा तुक-दोष । यहाँ इनका सोदाहरण उल्लेख किया जा रहा है –

---

१. प० ६२।४ २. प० ४२३।५ ३. प० ५४३।३ ४. प० १५।४
५. प० १४७।८ ६. प० २१६।३ ७. प० १३०।१ ८. प० १८२।७
९. प० १६६।३ १०. प० ३४२।४

अ – श्रुतिकटु : मधुर शब्दो के स्थान पर कानो को खटकने वाले परुष या कठोर शब्दो का प्रयोग करने पर 'श्रुतिकटु' दोष होता है। यह दोष जायसी की भाषा मे बहुत कम मिलता है। अपवादस्वरूप एक दो उदाहरण निम्नलिखित पक्तियो मे देखे जा सकते है –

क– चरचहिं **चेष्टा** परिखहिं नारी। निअर नाहि ओषद तेहि बारी।[1]
ख– तुम अरजुन औ भीम भुआरा। तुम्ह नल नील **मेंड़**देनिहारा।[2]
ग– जिन्ह घर कता ते सुखी तिन्ह गारौ तिन्ह गर्ब।
कत पियारा बाहिरें हम सुख भूला **सर्ब**।[3]

प्रथम उदाहरण मे 'चेष्टा' शब्द पक्ति की सामान्य गति मे व्याघात उत्पन्न करता है। द्वितीय पक्ति मे 'मेड़' शब्द भी कानो को खटकता है। तृतीय उदाहरण मे कवि ने यद्यपि 'गर्ब' की सगति के लिए ही 'सर्ब' का प्रयोग किया है तथापि विप्रलम्भ की सरस और कोमल शब्दावली के अतर्गत इस प्रकार का सयुक्ताक्षरयुक्त शब्द निश्चय ही कर्णकटु है।

आ – च्युत-सस्कार – जहाँ रचना मे व्याकरण के सामान्य नियमो की अवहेलना की गई हो वहाँ यह दोष होता है। जायसी के काव्य मे अनेक प्रयोग इस दोष से प्रभावित हैं, एक उदाहरण देखिए –

बसन देखि छबि बीजु लजाना।[4]

यहाँ लिंग सम्बन्धी दोष है। 'बीजु' शब्द स्त्रीलिंग है किन्तु कवि ने उसका प्रयोग पुल्लिग रूप मे किया है। इसी प्रकार –

गै सो तपनि बरखा रितु आवा।[5]

मे भी 'बरखा रितु' को पुल्लिग मान कर कवि ने व्याकरण की उपेक्षा की है।

इ – अप्रयुक्त जहाँ व्याकरण से सिद्ध पद का अप्रचलित प्रयोग हो वहाँ अप्रयुक्त दोष होता है। इस दृष्टि से जायसी के द्वारा प्रयुक्त दो शब्द विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं – **'निरास'** तथा **'बिसबास'**। कवि ने 'निरास' शब्द का प्रयोग प्रचलित अर्थ से भिन्न अर्थ मे किया है –

सबहिं आस ताकरि हरि स्वाँसा। ओह न काहु कइ आस **निरासा**।[6]

यहाँ कवि के अनुसार 'निरासा' का अर्थ है 'जो कि किसी का आश्रित न हो।' व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ की संगति होते हुए भी प्रवृत्ति से भिन्न होने के कारण 'अप्रयुक्तत्व' ही माना जायगा। इसी प्रकार 'बिसबास' का प्रयोग कवि ने 'विश्वासघात' के अर्थ मे किया है –

१. प० १२०।३   २. प० ६११।४   ३. प० ३४४।८-९   ४ प० ३०२।२
५. प० ४२३।१   ६. प० ५।७

राजै बीरा दीन्हेउ जानै नहिं **बिसवास**।[१]

ई – अनुचितार्थ : जहाँ प्रयुक्त पद से प्रतिपाद्य अर्थ का तिरस्कार हो वहाँ यह दोष होता है। जायसी ने एक दो स्थलो पर ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है जो अभीष्ट अर्थ के प्रतिकूल अर्थ का बोध कराते है, यथा :

गोरख सबद सुद्ध भा राजा। रामा सुनि **रावन** होइ गाजा।[२]

'रावण' का अर्थ' 'रुलाने वाला' प्रसिद्ध है किन्तु कवि ने उसका प्रयोग 'रमण करने वाला' के अर्थ मे किया है। एक अन्य स्थल देखिए .

आदम हौवा कह् सृजा लेइ **घाला** कैलास।
पुनि तहँवाँ ते काढा नारद के बिसवास।[३]

यहाँ 'घाला' क्रिया का प्रयोग 'निवास दिया' के अर्थ मे हुआ है जब कि उसका प्रसिद्ध अर्थ 'मार डालना' होता है। प्रसिद्ध अर्थों का तिरस्कार होने से यहाँ उदाहृत पदो मे अनुचितार्थ दोष है।

उ– ग्राम्य कुछ स्थानो मे जायसी ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो सभ्य समाज की भाषा के उपयुक्त नही जान पडते, जैसे –

ततखन रतनसेनि गहबरा। छाडि **डफार** पाउ लै परा।[४]
करु सुदिस्टि औ किरिपा **हिंछा** पूजै मोरि।[५]
जैस अन्न बिनु कूँचे रूचै। तैस सिठाइ जो कोऊ कूँचै।[६]

'डफार', 'हिंछा' तथा 'कूँचै' शब्दों मे साहित्यिक भाषा का लालित्य अथवा गाम्भीर्य नही है।

ऊ– समाप्तपुनरात्त वक्तव्य विषय के वाक्य के समाप्त होने पर भी तत्संबधी पदो का प्रयोग करना पुनरात्त दोष है। जायसी कही-कही इस दोष से अपनी भाषा का परिहार नही कर पाए है, जैसे –

हिये छांह उपना औ सीऊ।[७]

ए– अप्रतीतत्व . शास्त्र-विशेष मे प्रयुक्त होने वाली पारिभाषिक शब्दावली जब काव्यभाषा मे प्रयुक्त होती है तो वह सामान्य सहृदयो के लिए दुर्बोध हो जाती है। ग्राम्यत्व यदि भाषा को अति साधारण करता है तो अप्रतीतत्व उसे अति विशिष्ट बनाता है। जायसी मे इस प्रकार के अनेक प्रकरण है जहाँ पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग विषय को दुर्ग्राह्य बना देता है, जैसे पद्मावती-रत्नसेन भेट खंड मे पद्मावती की सखियो और रत्नसेन का वार्तालाप इसी प्रकार का है —

---

१. प० ३९२।८ २. प० ३०४।१ ३. अख० ६।८-९ ४. प० २१३।१
५. प० १६५।९ ६. आखि० ४७।३ ७. प० ३२४।६

(क) पूछेन्हि गुरू कहाँ रे चेला। बिनु ससियर कस सूर अकेला।
धातु कमाइ सिखे तैं जोगी। अब कस जस निरधातु बियोगी।
कहाँ सो पाए बीरौ लीना। जेंहि तें होइ रूप औ सोना।
कस हरतार पार नहिं पावा। गंधक कहाँ कुरकुटा खावा।[1]
(ख) मरै सो जान होइ तन सूना। पीर न जानै पीर बिहूना।
पार न पाव जो गंधक पिया। सो हरतार कहौ किमि जिया।
सिद्धि गोटिका जापहँ नाहीं। कौन धातु पूंछहु तेहि पाहीं।
अब तेहि बाजु रांग भा डोलौं। होइ सार तब बर कै बोलौं।
अभरक कै तन एंगुर कीन्हा। सो तुम्ह फेरि अगिनि महँ दीन्हा।[2]

यहाँ श्लेष और मुद्रा का चमत्कार भले ही हो किन्तु इस प्रकार का संवाद रस की निष्पत्ति मे व्याघात पहुँचाता है, अतएव दोषयुक्त है।

ऐ — **अश्लीलत्व :** साहित्य मे सुरति-वर्णन त्याज्य तो नही है किन्तु कवि को इस प्रकार के वर्णन लक्षणा तथा व्यजना से ही करने चाहिए, अभिधा से नही। जायसी ने कुछ स्थलो पर अभिधा से काम किया है, फलत उन प्रसगो मे अश्लीलता आ गई है, यथा—

कहौं जूझि जस रावन रामा। सेज बिधसि बिरह संग्रामा।
लीन्ह लक कचन गढ़ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा।
औ जोबन मैमंत बिधंसा। बिचला बिरह जीव लै नंसा।
लूटे अंग अंग सब भेसा। छूटी मग भंग भे केसा।
कंचुकि चूर चूर भै ताने। टूटे हार मोंति छहराने।
बारी टाड सलोनी टूटीं। बाहू कंगन कलाई फूटीं।
चंदन अग छूट तस भेंटी। बेसरि टूटि तिलक गा मेंटी।[3]

ओ — **न्यूनपदत्व** यह जायसी की भाषा-समर्थता का सबसे बड़ा दोष है। उनकी रचनाओ मे कारक चिह्नो, सम्बन्धवाचक सर्वनामो तथा अव्ययो के लोप प्राय मिलते हैं। इस कारण भाषा के प्रसाद गुण मे व्याघात पहुँचता है और अर्थ हृदयगम कर पाना कठिन हो जाता है। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

कारक-चिह्न-लोप — कर्ता — जियत कंत तुम्ह हम कँठ लाईं।[4]
करण — भारथ भएउ झिलमिल आनवू।[5] (झिलमिल से)
संबंध — गंगन नखत जस जाहिं न गने।[6] (गगन के नखत)
अधिकरण — आजु सूर दिन अंथवा, आजु रैनि ससि बूड़ि।[7] (दिन में, रात में)

सम्बन्धवाचक सर्वनामो का लोप भी मिलता है, जैसे—

कहँ सो दीप पतंग कै मारा।[8]

---

१. प० २९३।३-६ २. प० २९४।३-७ ३. प० ३१८।१-७ ४. प० ६५०।४
५. प० ३४१।५ ६. प० १०४।५ ७ प० ६४९।८ ८. प० २३५।४

इस अर्द्धाली मे 'पतग' के पूर्व 'जेइ' (जिसने) पद लुप्त है, इस कारण अभीष्ट अर्थ सरलता से स्पष्ट नही हो पाता। देखने मे तो यह अर्थ प्रतीत होता है कि 'पतग का मारा हुआ दीपक कहा है' किन्तु वास्तविक अर्थ इस प्रकार है – 'वह दीपक कहाँ है जिसने मुझे पतग बनाकर मारा है।'

अव्ययलोप – अनेक स्थलो पर अव्ययो का लोप हो गया है, यथा—

क– तब तहँ चढ़ै फिरै सत भंवरी।[1] (फिरै=जब फिरै)

ख– बरपन साहि पैंत तहँ लावा। देखौं जबहि झरोखें आवा।[2]

(देखहुँ=इसलिए जिसमें देखूं)

ग – पुनि सो रहहि रहिहि नहिं कोई।[3] (रहिहि के पूर्व 'जब' होना चाहिए)

औ – **तुक-दोष** . कुछ स्थलो पर जायसी ने तुक का निर्वाह भी उचित रूप से नही किया है, जैसे—

मरम बैठ उठ तेहि पै गुना। जो रे मिरिग कस्तूरी पहाँ।[4]

यहाँ 'गुना' के साथ 'पहाँ' की सगति बिलकुल नही बैठती।

इसी प्रकार— **रोद नील कै डावसि चाला। फुर भा झूंठ झूंठ भा भला।**[5]

मे 'चाला' के साथ 'भला' की तुक भी श्रुति-मधुर नही है।

जायसी-काव्य मे स्थूल रूप से उपरिलिखित दोष यत्र-तत्र पाए जाते है, किन्तु एक तो इस प्रकार के दोषो की सख्या अधिक नही है और दूसरे, ये भाषा की स्वाभाविकता, प्रवाहमयता तथा सामर्थ्य मे छिप से गए है, अतएव काव्य-सौन्दर्य मे उल्लेखनीय व्याघात नही पहुँचाते।

वाक्यांश-योजना : वर्ण शब्दो का निर्माण करते हैं और शब्द वाक्य मे प्रयुक्त होने पर 'पद' कहलाने लगते हैं। पद-समूह ही वाक्यों का आधार है। कही-कही एकाधिक पद परस्पर सम्बद्ध होते है जिन्हे सुविधा के लिए वाक्याश कहा जा सकता है। इनके अतर्गत प्रमुख रूप से मुहावरे तथा सामासिक पद आते है। जायसी ने इन दोनो का प्रयोग अपनी रचनाओ मे किया है अत भाषा के कला-पक्ष की विवेचना मे इन पर भी दृष्टिपात करना उचित है। पहले मुहावरो पर विचार किया जा रहा है।

मुहावरे : मुहावरे भाषा का शृगार है। उनकी सृष्टि भाव-विकास की सुविधा के लिए हुई है। उनके प्रयोग से भाषा मे लालित्य तथा प्रवाह आता है और वह चमत्कारपूर्ण हो जाती है। भाषा की यह रोचकता और चुस्ती (जिसका कारण मुहावरे होते है) विशद भावो को थोड़े शब्दो मे अधिक समर्थ ढंग से प्रस्तुत करती है और इससे युक्त कथन पाठक या श्रोता के हृदय पर सीधी चोट करता है। कुछ लोगो का यह आक्षेप, कि मुहावरो के

---

१. प० ४५३।२ २. प० ५६७।३ ३. प० ७।६ ४ आखि० ३।६
५. आखि० ३५।४

प्रयोग से भाषा कभी-कभी जटिल तथा दुर्ग्राह्य हो जाती है, एक सीमा तक सत्य है। ऐसा तब होता है जब प्रयोगकर्त्ता ही चूक जाए। दोष प्रयोग का होता है मुहावरो का नही। यह तो भाषा की वह निधि है जिसके अभाव मे भाषा जीवन्त और प्रवाहमयी नही रह पाती। मुहावरो के महत्व को देखते हुए ही उन्हे भाषा का जीवन तथा आत्मा तक कहा गया है।[१] जायसी ने अपनी भाषा को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने के लिए मुहावरों का प्रयोग किया है और इससे उनकी भाषा मे चुस्ती तथा मार्मिकता आ गई है। एक उदाहरण देखिए—

आवा पौन बिछोह का, पात परा बेकरार।
तरिवर तजै जो चूरि कै लागै केहि की डार।[२]

यहाँ 'लागै केहि की डार' मुहावरा अन्योक्ति मे कितना उपयुक्त बैठा है। विरह दशा की निरवलंबता का कैसा गोचर प्रत्यक्षीकरण कवि ने करा दिया है। कही-कही तो कवि ने मुहावरो की झड़ी लगा दी है—

परी नाथ कोइ छुअइ न पारा। मारग मानुस सोन उछारा।
गउब सिंघ रेंगहिं एक बाटा। दूअउ पानि पियहिं एक घाटा।
नीर खीर छानइ दरबारा। दूध पानि सो करइ निरारा।[३]

परी नाथ न छूना, मार्ग में सोना उछालना, गाय और सिंघ का एक घाट पर पानी पीना, दूध का दूध और पानी का पानी करना आदि अनेक मुहावरे इन पंक्तियो मे कितनी सुन्दरता से निबद्ध हैं। इसी प्रकार—

सुनि सुनि सीस धुनहिं सब कर मलि मलि पछिताहिं।
कब हम हाथ चढ़हिं ये पातरि नैनन्ह के दुख जाहिं॥[४]

मे सीस धुनना, कर मलना, हाथ चढना तथा नेत्रो का दुख दूर होना आदि मुहावरे अत्यत भव्यता से विन्यस्त हैं। जायसी द्वारा प्रयुक्त प्रमुख मुहावरे यहाँ संकलित हैं—

१. राख कर देना – छार हुते सब कीन्हेसि पुनि **कीन्हेसि सब छार।**[५]
२. भण्डार न घटना– सबहि देइ नित **घट न भँडारू।**[६]
३. बराबरी कर सकना—
   छत्रहि अछत निछत्रहि छावा। दोसर नाहिं जो **सरबरि पावा।**[७]
४. दो चार दिन धंधा करना—
   अउर जो होइ सो बाउर अंधा। **दिन दुइ चार मरइ करि धंधा।**[८]

---

1. '......It is in truth, the life and spirit of language'
Smith: Words and Idioms, P. 276-277

२. प० ३९९।८-९ ३. प० १५।४-६ ४. प० ५२८।८-९ ५. प० ३।९
६. प० ५।१ ७ प० ६।३ ८. प० ७।७

५. प्रमाण होना—

बचन जो एक सुनाएन्हि साँचा । भए **परवान** दुहूँ जग बाँचा ।[1]

६ मिट्टी मे मिल जाना – बनखड टूटि **खेह मिलि जाई ।**[2]

७. न अँटना—

अगिलहि काहि पानि खर बाँटा । पछिलेहि काहि **न** कादहु **आंटा ।**[3]

८ एक घाट पानी पीना—

गउव सिघ रेगहि एक बाटा । दूअउ **पानि पिअहि एक घाटा ।**[4]

९. सरि पूजना– बराबरी न कर सकना—सेरसाहि **सरि पूजि न** कोऊ ।[5]

१० सोना बरसना— **कचन बरिस** सोर जग भएऊ ।[6]

११. हाथ देना—

दस्तगीर गाढे के साथी । जहँ अवगाह **देहि तँह हाथी ।**[7]

१२ अगुआ होना – **अगुआ भएउ** सेख बुरहानू ।[8]

१३.-१४. पैर पकड़ना, मुह जोहना—

एक नैन जस दरपन औ तेहि निरमल भाउ ।
सब रूपवत **पाँव गहि मुख जोवहिं** कइ चाउ ।[9]

१५ एक चित होना—

मुहमद चारिउ मीत मिलि भए जो **एकइ चित्त ।**[10]

१६. गुदडी का लाल —

फेरै भेस रहइ भा तपा । धूरि लपेटा **मानिक छपा ।**[11]

१७ आँसू आना– जेइ मुख देखा तेइँ हँसा सुना तो **आए आँसु ।**[12]

१८ वार पार न सूझना—

ताल तलावरि बरनि न जाही । **सूझइ वार पार** तेन्ह नाही ।[13]

१९. मूल गवाँ देना– कोइ चला लाभ सौ कोई **मूर गवाँइ ।**[14]

२० हाथ झाडकर चलना—

केत खेलार हारि तेन्ह पासा । **हाथ झारि** होइ चलहि निरासा ।[15]

२१ मन हर लेना – चेटक लाइ **हरहिं मन** जो लहि गथ है फेट ।[16]

२२. मन थकित होना – निरखि न जाइ **दिस्टि मन थाका ।**[17]

२३. हृदय मे न समाना—

हिअ न समाइ दिस्टि नहि पहुँचै जानहु ठाढ सुमेरु ।[18]

---

१. प० १२।७ २ प० १४।६ ३. प० १४।७ ४ प० १५।५
५. प० १७।३ ६ प० १७।५ ७ प० १८।७ ८ प० २०।२
९. प० २१।८-९ १० प० २२।८ ११ प० २३।७ १२. प० २३।९
१३ प० ३३।१ १४. प० ३७।९ १५. प० ३८।७ १६ प० ३८।८
१७. प० ४०।७ १८. प० ४०।८

२४ फिर जाना—

सप्त दीप के बर जो ओनाही । उतर न पावहि **फिर फिर जाहीं** ।[१]

२५ सोने मे सुहागा—

कंचन बरन सुआ अति लोना । मानहु मिला **सोहागहिं सोना** ।[२]

२६. सीस डुलाना – बरम्हा **सीस डोलावहिं** सुनत लाग तस भेद ।[३]

२७ निगाह बदलना – राजै सुना **दिस्टि भइ आना** ।[४]

२८ आज्ञा सिर माथे होना – पिता क **आएसु माँथे मोरे** ।[५]

२९ डर खाना – बिनवा सुअै **हिएँ डरु खावा** ।[६]

३०. चार दिन—

ऐ रानी मन देखु बिचारी । एहि नैहर रहना **दिन चारी** ।[७]

३१. अपने हाथ मे होना—

कित आवन पुनि **अपने हाथाँ** । कित मिलि कै खेलब एक साथाँ ।[८]

३२. सिर देना – **सीस न देइ** पतंग होइ तब लगि जाइ न चाख ।[९]

३३ बाहँ न देना – फिरत रहहिं कोइ **देहिं न बाहाँ** ।[१०]

३४ सिर के बल चढना – **सिर सौं चढ़ौं** पाय का कहना ।[११]

३५ अग मे न समाना – कैथिनि चली **समाइ न आँगा** ।[१२]

३६. हाथ पडना – काहूँ **हाथ परी** निबकौरी ।[१३]

३७ तन कर सोना – जेहि मनि आए सो **तनि तनि सोवा** ।[१४]

३८ दीपक का पतगा होना – जगत **दिया कर होइ पतंगू** ।[१५]

३९ आज कल – **आजु कालिह** भा चाहिअ अस सपने क सजोग ।[१६]

४०. हाथ मलना – **हाथ मीँजि** सिर धुनि सो रोवै जो निचित अस सोव ।[१७]

४१. हृदय मे पैठना – काढि लीन्ह जिउ **हिए पईठी** ।[१८]

४२. सिर पर पडना – जौ पहिले अपुने **सिर परई** । सो का काहु कै धरहरि करई ।[१९]

४३ आग बोना – तुम्हरे मडप **आग तेंहि बोई** ।[२०]

४४. हथेली पर प्राण रखना – आएहु मरै **हाथ जिउ लीन्हे** ।[२१]

४५. रोम न पसीजना – पै तुम्हार नहिं **रोवँ पसीजा** ।[२२]

४६. दूसरे के हाथ मे प्राण होना—

अब कौन भरोसे किछु कहौं **जीउ पराएँ हाथ** ।[२३]

---

१ प० ५३।७ २. प० ५४।७ ३. प० ५४।९ ४. प० ५६।१
५. प० ५६।५ ६ प० ५७।१ ७ प० ६०।३ ८ प० ६०।६
९. प० १५४।९ १०. प० १५७।६ ११ प० १६३।२ १२. प० १८५।६
१३. प० १८७।७ १४. प० १९२।७ १५. प० १९५।७ १६. प० १९८।९
१७. प० १९९।९ १८ प० २०१।३ १९. प० २०३।२ २० प० २०६।५
२१. प० २१८।३ २२ प० २२८।७ २३ प० २३२।९

४७. हत्थे चढना – **हाथ चढ़ौं** सो तेहि के प्रथम जो आपुहि नाम ।[१]

४८ प्राणो पर खेल जाना – तस ये दुवौ **जीव पर खेलहि** ।[२]

४९. जीव काढना – **जीव काढ़ि** भुइ धरौ लिलाटू ।[३]

५०. थाह न पाना – भँवर परा जिउ **थाह न पावा** ।[४]

५१. प्राण न रहना – कहत लाज औ **रहै न जीऊ** ।[५]

५२ बिजली मार जाना – जो जहँ तहाँ **बीजु अस मारा** ।[६]

५३. खरी बात कहना – **जौं खरि बात कहै** रिस लागै खरि पै कहै बसीठ ।[७]

५४. दस पाँच दिन होना—

दिन दस पांच तहाँ जो भए । राजा कतहुँ अहेरे गए ।[८]

५५. नमक लगना – सुनत रूखि भै रानी हिए **लोन अस लाग** ।[९]

५६. आग मे घी डालना – परा **अगिनि महँ** जानहुँ **घीऊ** ।[१०]

५७. मन लगना – यह **मन** तोहि **अस लावा** नारी ।[११]

५८. रँग मे रँग जाना —

बिहँसी धनि सुनि कै सत बाता । निस्चै तूँ मोरे **रँगराता** ।[१२]

५९. टोना कर देना – तोर रूप देखेउँ सुठि लोना । जनु जोगी तूँ **मलेसि टोना** ।[१३]

६०. पथ जोहना –

जरिउँ बिरह जस दीपक बाती । **पँथ जोवत** भइउँ सीप सेवाती ।[१४]

६१. नीद चली जाना—

डारि डारि जेउँ कोइल भई । भइउ चकोरि **नींद निसि गई** ।[१५]

६२. प्राण लेकर भागना—

औ जोवन मैमंत बिधंसा । बिचला बिरह **जीव लै नसा** ।[१६]

६३. रास रंग करना – पान फूल **रस रंग करीजै** । अधर अधर सौ चाखन कीजै ।[१७]

६४. रस मे भीगना – रातिहुँ देवस **रस भीजा** ।[१८]

६५ हृदय मे सँभार न होना—

जागत रैनि भएउ भिनुसारा । **हिय न सँभार** सोवति बेकरारा ।[१९]

६६. नेत्र शीतल होना – **नैन सिराने** भूख गइ देख तोर मुख आजु ।[२०]

६७. अपने घर मे राजा होना – सब अपने **अपने घर राजा** ।[२१]

६८. सदाबहार रहना – जेहि घर कंता रितु भली **आउ बसंता नित्तु** ।[२२]

---

१. प० २३३।९ २. प० २३९।४ ३ प० २४६।३ ४. प० २५१।६
५. प० २५५।२ ६. प० २६०।७ ७. प० २६८।९ ८. प० ८३।१
९. प० ८४।९ १०. प० ६०५।१ ११. प० ३१३।२ १२. प० ३१४।१
१३. प० ३१४।४ १४. प० ३१५।३ १५. प० ३१५।४ १६. प० ३१८।३
१७. प० ३१९।७ १८. प० ३२०।६ १९. प० ३२१।४ २०. प० ३३०।८
२१. प० ३३१।७ २२. प० ३३५।८

६९. चित हर लेना – नागरि नारि काहुँ बस परा। तेइँ बिमोहि **मोसौ चितु हरा**।[1]

७०. हृदय मे हारना —

पाट महादेइ **हिएँ न हारू**। समुझि जीउ चित चेत सँभारू।[2]

७१.–७२. आखे फाडना, हृदय फटना—**नैन पसारि** मरौ **हिय फाटी**।[3]

७३. चित्त से उतर जाना—

तोहि देखे पिय पलुहै काया। **उतरा चित्त** फेरि करु माया।[4]

७४. सिर पर धूल डालना – हौ का खेलौ कत बिनु तेहि रही **छार सिर मेलि**।[5]

७५. बात न पूछना – साँठि नाँठि लगि **बात को पूछा**।[6]

७६. मुँह लेकर आना – पावस आव **कवन मुख लाई**।[7]

७७. पत्थर का कलेजा होना – धनि न मिलै **धनि पाहन जीऊ**।[8]

७८ फल चुनना – **फूल चुनहिं** फर चूरहिं रहस कोड सुख छाँह।[9]

७९ हृदय मे न समाना – दूतिन्ह बात **न हिएँ समानी**।[10]

८० सिर धुनना – कवि ओहि सुनत **सीस पै धुना**।[11]

८१ मुह मे कालिख लगना – तबहुँ न रहहि **लागि मुख कारी**।[12]

८२ कान मे रुई होना –अबहूँ उघेलि **कान कै रूई**।[13]

८३. बात चलाना – तहाँ हमार को **चालै बाता**।[14]

८४. ऊँच-नीच न सूझना – **अरध उरध नहिं सूझै** लाखन्ह उमरा मीर।[15]

८५ मिट्टी मे मिल जाना – अब **खुर खेह** जाब मिलि आइ परे तेहि भीर।[16]

८६. आँखो मे गड़ जाना – देखत तिल **नैनन्ह गा गाड़ी**।[17]

८७. तेली का बैल होना – **तेलि बैल** जस बाएँ फिरै।[18]

८८. पैर तले होना – सब ससार **पाँव तर** मोरे।[19]

८९ चित्त बँध जाना—

जस सरवन बिनु अधी अधा। तस ररि मुई तोहि **चित बंधा**।[20]

९०. आँखो मे रखना – हम दुहुँ **नैन घालि कै राखहिं**।[21]

९१. सिर मारना – बहुतन्ह रोइ अैस **सिर मारा**।[22]

९२. गूलर का फूल होना – तपि कै पाव **उमरि कर फूला**।[23]

९३. पेट मे जी न रहना —

डोलै गढ गढपति सब काँपै। **जीव न पेट** हाथ हिय चाँपै।[24]

---

१. प० ३४१।२	२. प० ३४३।१	३. प० ३४६।३	४. प० ३४७।२
५ प० ३४८।९	६. प० ३५६।३	७ प० ४२७।३	८ प० ४२८।२
९. प० ४३२।९	१०. प० ४३३।२	११ प० ४४६।४	१२ प० ४५४।७
१३. प० ४५५।७	१४ प० ४५७।७	१५ प० ४५७।८	१६. प० ४५७।९
१७ प० ४८०।६	१८. प० ३६७।३	१९ प० ३६७।६	२० प० ३६८।३
२१. प० ३७६।६	२२ प० ४११।४	२३ प० ४१२।२	२४ प० ५००।१

९४ झुरा जाना – नरवर **गइउ झुराइ** न बोला ।[१]

९५ पत्ते की तरह डोलना – जॉवत गढ गढपति सब कापे **औ डोले जस पात** ।[२]

९६. गाढे मे पडना —

चितउर है हिन्दुन्ह कै माता । **गाढ परे** तजि जाइ न नाता ।[३]

९७ धरती मे न समाना – चला कटक **धरती न समाई** ।[४]

९८. आकाश फटना—

सहस पॉति गजहस्ति चलावा । **खसत अकास** धँसत भुइँ आवा ।[५]

९९. पसारा हुआ हाथ न सूझना—

इसिकदर केदली बन गवने अस होइगा अँधियार ।

हाथ पसार न सूझै **बरै लागु मसियार** ।[६]

१००. किसी को न गिनना —

चढे कुँवर मन करहि उछाहू । आगे घालि **गनहि नहि काहू** ।[७]

१०१. सावन-भादौ बरसना—

बरिसै सैल ऑसु होइ कादौ । जस बरिसै **सावन औ भादौं** ।[८]

१०२. ऑखो का दुख दूर होना—

सुनि सुनि **सीस धुनहिं** सब **कर मलि मलि पछिताहि** ।

कब हम **हाथ चढ़हिं** ये पातरि नैनन्ह के दुख जाहि ।[९]

१०३. ढील देना—

एहि विधि **ढील दीन्ह** जब ताईं ।·ढीली की अरदासै आईं ।[१०]

१०४. पैर तले समझना – सब ससार **पॉव तर लेखा** ।[११]

१०५. ऑख न लगना– दिन न नैन **तुम्ह लावहु** रैनि बिहावहु जागि ।[१२]

१०६. मुट्ठी मे आना– कत छॉडै जौ **आवै मूठी** ।[१३]

१०७. सिर पर सवार होना– पातसाहि है **सिर पर मोरे** ।[१४]

१०८. एक स्थान का होकर रह जाना – जो गौनै सो **तहाँ कर होई** ।[१५]

१०९–११०. हृदय की आग बुझाना, दम निकलना –

नैन डोल भरि ढारै हिए **न आगि बुझाइ** ।

घरी घरी जिउ बहुरै, **घरी घरी जिउ जाइ** ।[१६]

१११. कौड़ी के मोल होना – पदिक पदारथ पदुमिनि नारी ।

पिय बिनु भै **कौड़ी बर बारी** ।[१७]

---

१. प० ५००।२ २. प० ५००।८ ३. प० ५०२।३ ४ प० ५०५।५
५. प० ५०५।६ ६ प० ५०९।९ ७ प० ५१३।७ ८ प० ५१८।५
९ प० ५२८।८-९ १० प० ५३५।४ ११ प० ५५३।७ १२. प० ५७०।८
१३. प० ५७५।४ १४ प० ५७८।५ १५ प० ५८१।४ १६ प० ५८२।८-९
१७. प० ५८३।२

११२. मन बुड्ढा न होना— तन बुढाइ **मन बूढ न होई** ।[१]
११३ कान न देना— तस पदमावति **स्रवन न देई** ।[२]
११४ जी डूबना— देखि देखि **जिउ डूबै मोरा** ।[३]
११५ दरवाजा नँघाना—बहु रिसि काढि **दुवार नँघाई** ।[४]
११६ जी पोढा करना—कत न हेर **कीन्ह जिय पोढ़ा** ।[५]
११७. मन मे चाव बढना—पुरखन्ह देखि **चाउ मन बाढ़ा** ।[६]
११८. अधर मे मारना—टूटहि सीस **अधर धर मारे** ।[७]
११९ पीठ न देना— जब लगि जिऔ **देइ नहि पीठी** ।[८]
१२० आँखे बिछाना—पथ पूरि कै **दिस्टि बिछावौं** ।[९]
१२१ नाव भँवर मे पडना— तुम्ह पिय **भँवर परी अति बेरा** ।[१०]
१२२ बलिहारी जाना— सो अस दानि मुहम्मद तिनके **हौं बलिहार** ।[११]
१२३. टो टो कर पैर रखना—
टोइ टोइ भुइँ पावँ उठाओ नाहि तो परिहौ खाले रे ।[१२]
१२४. जी काँपना— देखि बार **जिउ** खिन खिन **कपै** कौन भरोसे बोलै रे ।[१३]

जायसी के काव्य मे उपर्युक्त तथा अन्य मुहावरे भाषा के सामान्य प्रवाह मे निष्प्रयोजन नही प्रयुक्त हुए है। कही पर वे सहजोद्गार के रूप मे आ गए है तो कही उक्ति-वैचित्र्य के हेतु। वे भाषा की रूढता के सहज माध्यम मात्र न होकर सशक्त अभिव्यजना के प्रसाधन है। जायसी ने जिस प्रकार अलकार-योजना तथा उक्ति-वैचित्र्य का उपयोग विशिष्ट स्थलो पर किया है उसी प्रकार मुहावरो का प्रयोग भी विशिष्ट स्थलो पर विषयानुरूप ही किया है। इनके प्रयोग मे जायसी की भाषा-समृद्धि का सुन्दर परिचय मिलता है।

सामासिक पदावली · वाक्याश के अन्तर्गत सामासिक पदावली को भी स्थान दिया जा सकता है क्योकि समास एकाधिक पदो का संयोग होते हैं। पिछले पृष्ठो मे समासो के विविध प्रयोगो की चर्चा सोदाहरण हो चुकी है अतएव यहाँ उनकी चर्चा व्यर्थ है। इस स्थल पर केवल इतना सकेत कर देना ही पर्याप्त होगा कि भाषा की दृष्टि से जायसी द्वारा प्रयुक्त समास सस्कृत शैली के समासो की भाँति जटिल नही है। बहुधा वे दो शब्दो से मिलकर बने है और उनसे भाषा मे किसी भी प्रकार की कृत्रिमता नही आने पाई है। तंत मत,[१४] मया मोह,[१५] जिउलेवा,[१६] कड़ूदाना[१७] तथा पंचतूरा[१८] आदि प्रयोग इस प्रकार के

---

१. प० ५८६।५ २. प० ५८६।७ ३. प० ५९६।६ ४. प० ५९९।७
५. प० ६१६।२ ६. प० ६२७।७ ७ प० ६३२।५ ८ प० ६३४।७
९. प० ६४०।३ १०. प० ६४३।२ ११. आखि० ३।९ १२. म०बा० १।१४
१३. म०बा० ३।६ १४. प० २१२।७ १५. आखि० २२।२ १६. प० ७२।४
१७ आखि० ३५।२ १८. प० ६३९।४

सामासिक पदो के उदाहरण रूप मे लिए जा सकते है। सामासिक पदावली की भाषा भी सहज तथा सुबोध है।

वाक्य भाषा का एक अन्य अग वाक्य है। वाक्य-विन्यास का अध्ययन मुख्यतया गद्य रचनाओ को लेकर ही किया जाता है। कारण यह है कि वाक्य मे विभिन्न शब्द-भेदो, वाक्याशो, उपवाक्यो आदि के क्रम और पारस्परिक सम्बन्ध के विषय मे जो नियम निर्धारित किये जाते है, वे प्राय गद्य रचनाओ के आधार पर ही होते है और गद्य-लेखक उनका उचित निर्वाह भी करते है। इसके विपरीत पद्य-लेखक को इस क्रम मे छन्द की आवश्यकता अथवा निजी रुचि के अनुसार परिवर्तन करने की पूरी स्वतन्त्रता रहती है अतएव तत्सम्बन्धी नियम सरलता से नही बनाए जा सकते है। भाषा के कला-पक्ष की दृष्टि से वाक्य के सम्बन्ध मे यहाँ केवल एक तथ्य पर ही प्रमुख रूप से विचार करना है कि वाक्य-विन्यास पर किन बातो का प्रभाव पड़ता है और उस प्रभाव से भाषा के स्वरूप मे कैसा परिवर्तन होता चलता है। इस दृष्टि से वाक्य 'शीर्षक' के अन्तर्गत जायसी की भाषा का अध्ययन अनेक रूपो मे किया सकता है। उनमे मुख्य है– १. विषय के अनुसार भाषा–रूप, २. सवादो की भाषा तथा ३ सूक्तिया और कहावते। इन वर्गो के अन्तर्गत प्रयुक्त वाक्यावली को आधार मान कर ही तत्सम्बन्धी भाषा का विवेचन आगे क्रमिक रूप मे प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. विषय के अनुसार भाषा-रूप : विषय की दृष्टि से समस्त जायसी-काव्य स्थूल रूप से निम्नलिखित उपवर्गो मे विभाजित किया जा सकता है (क) ईश्वर-प्रशस्ति तथा महिमा-गान, (ख) सिद्धान्त-निरूपण तथा दार्शनिक विवेचन, (ग) इतिवृत्तात्मक प्रसग, (घ) रूप-चित्रण, (च) सयोग-वर्णन, (छ) वियोग-वर्णन, (ज) युद्ध-वर्णन तथा (झ) स्फुट विषय। प्रत्येक विषय के अनुसार जायसी की भाषा मे क्या परिवर्तन हुआ है, यहाँ इसी की सोदाहरण व्याख्या की जायगी।

(क) ईश्वर-प्रशस्ति तथा महिमा-गान : जायसी ने पद्मावत तथा आखिरी कलाम के आरम्भ मे ईश्वर की महिमा और प्रशस्ति का गान किया है। प्रसगानुरोध से कतिपय अन्य स्थलो पर भी स्फुट रूप मे ईश्वर की महत्ता का उल्लेख प्राप्त होता है। इन सभी स्थलो मे प्रयुक्त भाषा अधिकाशत. सुबोध तथा सरल है। उसमे किसी प्रकार की आलकारिकता अथवा कृत्रिमता नही है। कवि ने सर्वथा सहज भाव से अपने हृदय की श्रद्धापूर्ण अनुभूतियो को सजोकर रखा है। ईश्वर की तीनो शक्तियो-सृजन, सरक्षण तथा सहार–के महत्व को स्वीकार करते हुए उसने ईश्वर के सर्वकर्तृत्व मे गहरी आस्था प्रकट की है –

ताकर कीन्ह न जानइ कोई। करै सोइ जो मन चित होई।[1]

श्रद्धा के उन पुनीत क्षणो मे, जब मन अपनी सारी कुटिलता और चचलता को त्याग भावुक बन जन जाता है, भाषा को सजाने और सँवारने का अवकाश किसे और कहाँ

---

१. प० ६।६

रहता है ? उस भावुकता मे निमग्न कवि की भाषा मे अर्थ-चमत्कार और उक्ति-वैचित्र्य को उतना अवसर नही मिलता, जितना सादगी, भावप्रवणता और प्रवाह को। उसके शब्द-शब्द मे गहराई होती है, पक्ति-पक्ति मे आवेश होता है, यथा—

ऐ गोसाइ तू सिरजनहारू। तूं सिरिजा यहु समुंद अपारू।
तूं जल ऊपर धरती राखे। जगत भार लै भार न भाखे।
तूं यह गंगन अंतरिख थांभा। जहां न टेक न थून्ही खांभा।
चांद सुरुज औ नखतन्ह पांती। तोरे डर धावहिं दिन राती।
पानी पवन अगिनि औ माँटी। सब की पीठि तोरि है सांटी।
सो अमुरुख बाउर औ अधा। तोहि छांड़ि औरहि चित बंधा।
घट घट जगत तोरि है डीठी। मोहि आपनि कछु सूझ न पीठी।

पौन हुतें भा पानी पानि हुतें भै आगि।
आगि हुते भै माटी गोरखधंधै लागि।[1]

इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले अश इसी प्रकार की भावमयता से युक्त है अतएव उनकी भाषा मे कही भी किसी प्रकार की कृत्रिमता नही है। शब्दावली मे तद्भव शब्दो का अनुपात सबसे अधिक है। बीच-बीच मे विदेशी शब्द भी अनायास आ गए है और उनके प्रयोग से भावनाओ की अभिव्यक्ति मे लेशमात्र भी अड़चन नही होती। इस प्रकार के स्थलो की भाषा मे न तो अलकरण है न लक्षणा-व्यजना का चमत्कारपूर्ण उक्तिवैचित्र्य। इनमे सीधी-सादी प्रसादगुणयुक्त भाषा का सहज प्रवाह है जो अपनी स्वाभाविक किन्तु समर्थ अभिव्यक्ति के कारण मन को बरबस आकृष्ट कर लेता है। यदि यत्र-तत्र दृष्टान्त, उदाहरण अथवा अन्य अलकार आ भी गए है, तो उनका उद्देश्य चमत्कार-विधान नही वरन् भावो को पुष्ट करना ही है।

(ख) **सिद्धान्त-निरूपण तथा दार्शनिक विवेचन :** जायसी ने पद्मावत और अखरावट मे अपने सिद्धान्तो का विवेचन तथा प्रतिपादन किया है। आखिरी कलाम और महरी बाईसी इस दृष्टि से अधिक महत्व की रचनाए नही है। पूर्वोक्त दोनो रचनाओ मे भी अखरावट मे कवि का चिन्तक मन अपने गम्भीरतम स्वरूप मे प्रकट हुआ है। जायसी ने उसमे अपनी समस्त साधना, विचारों तथा अनुभवों का मथन कर सार उपस्थित किया है। पद्मावत मे भी यत्र-तत्र कवि के दार्शनिक विचार व्यवस्थित तथा प्रौढ़ रूप मे उपलब्ध होते है। ईश्वर जीव, ससार, शरीर-रचना, गुरु-महत्व, प्रेम-मार्ग की कठिनाई, साधना की विविध अवस्थाओ तथा ध्येय-प्राप्ति के साधन आदि दार्शनिक विषयो के निरूपण मे भाषा मे गाम्भीर्य का समावेश सर्वथा स्वाभाविक है और उक्त विषयो की चर्चा मे जायसी की भाषा सामान्य स्तर

---

१. प० ४०७।१-६

से किंचित् ऊपर उठ गई है किन्तु इस गम्भीरता का अर्थ शुष्कता अथवा दुर्बोधता कदापि नही है। जायसी ने विविध दार्शनिक सिद्धान्तो की विवेचना मे भी भाषा का व्यवहार बहुत ही सयम से किया है और वे समर्थ, सुबोध तथा प्रौढ भाषा के बल पर गम्भीर प्रसगो मे भी सरसता का निर्वाह करने मे बहुत अधिक सफल हुए है। कवि ने जो कुछ भी कहा है, मनोरम शैली मे सुस्पष्ट भाषा के माध्यम से कहा है जिसमे सहृदय पाठक का मन लगता और प्रभावित होता है। एक उदाहरण देखिए —

का-करतार चहिय अस कीन्हा। आपन दोख आन सिर दीन्हा।
खाएनि गोहूँ कुमति भुलाने। परे आइ जग महं पछिताने।
छांड़ि जमाल जलालहि रोवा। कौन ठांव तें दैउ बिछोवा।
अंधकूप सगरउ ससारू। कहाँ सो पुरुख कहाँ मेहरारू।
रैनि छ मास तैंसि झरि लाई। रोइ रोइ आँसू नदी बहाई।
पुनि माया करता के भई। भा भिनुसार रैनि हटि गई।
सूरुज उए कवल दल फूले। दूवौ मिले पथ कर भूले।
तिन्ह सतति उपराजा भातिन्ह भाँति कुलीन।
हिंदू तुरुक दुवौ भए अपने अपने दीन।
बुँवहि समुंद समान यह अचरज कासों कहौं।
जो हेरा सो हेरान मुहमद आपुहि आपु महं।[1]

कही-कही अपनी मान्यताओ को स्पष्ट करने के लिए कवि ने रूपको का सहारा लिया है, यथा हस-रूपक, घी-रूपक, दीपक-रूपक, जुलाहा-रूपक आदि। ऐसे स्थलो पर भाषा आलकारिक हो गई है तथा उसमे रूपक का निर्वाह करने के कारण पारिभाषिक शब्दावली का अनुपात अधिक हो गया है, जैसे—

१. ना-नारद तब रोइ पुकारा। एक जोलाहें सौं मैं हारा।
प्रेम तंतु नित ताना तनई। जप तप साधि सैंकरा भरई।
दरब गरब सब देइ बिथारी। गनि साथी सब लेहि संभारी।
पांच भूत मांडी गनि मलई। ओहि सौं मोर न एकौ चलई।
बिधि कहँ संवरि साज सब साजै। लेइ लेइ नाव कूंच सौं माँजै।
मन मुर्री देइ सब अंग मारै। तन सो बिनै दोउ कर जारै।
सूत सूत सो कया मँजाई। सीझा काम बिनत सिधि पाई।[2]
२ मन सौं देइ कढनी दुइ काढी। गाढे छीर रहै होइ साढ़ी।
ना ओहि लेखे राति न दिना। करगह बैठि साट सो बिना।
खरिका लाइ करै तन घीसू। नियर न होइ डरै इबलीसू।

---

१ अख० ७।१-११ २. अख० ४३।१–७

भरै सांस जब नावै नरी। निसरै छूंछो पैठै भरी।
लाइ लाइ कै नरी चढ़ाई। इलालिलाह कै ढारि चलाई।
चित डोलै नहिं खूटी ढरई। पल पल पेखि आग अनुसरई।
सीधे मारग पहुचै जाई। जा एहि भाँति करै सिधि पाई।[१]

इन दार्शनिक विवेचनों की भाषा मे एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि कवि की वाक्य-योजना तर्क-शैली तथा सूत्र-पद्धति का अनुसरण करती चली है। शब्द-विन्यास बडी सावधानी से किया गया है फलत इन स्थलो की भाषा सुगठित तथा चुस्त है। उसमे लचरपन अथवा शैथिल्य नही मिलता।

ग – इतिवृत्तात्मक प्रसंग पद्मावत और आखिरी कलाम इतिवृत्तात्मक काव्य हैं। इनमे से पद्मावत मे तो कवि ने कथा-प्रसंगो के वर्णन के साथ-साथ अन्य वर्णनो पर भी ध्यान दिया है किन्तु आखिरी कलाम मे उसकी दृष्टि इतिवृत्तात्मकता तक ही रह गई है। उक्त दोनो ग्रन्थो के कथात्मक स्थलो की भाषा मे बहुत अन्तर है। आखिरी कलाम की भाषा अत्यन्त साधारण कोटि की है। रूप-विन्यास कही-कही बहुत शिथिल हो गया है, जैसे—

अंत कहा धरि जान से मारै। जिउ देइ देइ पुनि लौटि पछारै।
तस मारब जेहि भुइँ गडि जाई। खन खन मारै लौटि जियाई।[२]

इन पक्तियो मे 'मारै' और 'पछारै' क्रियाओ के रूप 'मारब' तथा 'पछारब' होने चाहिए। अर्थ की अस्पष्टता के भी अनेक उदाहरण प्राप्त हैं, यथा—

करु दीदार देखौं मैं तोही।[३]

यहाँ 'करु दीदार' से कवि का आशय 'दर्शन कर' नही अपितु यह है–'दर्शन करा दे'। इसी प्रकार—

नबी छांड़ि सब होई बरह बरिस कै राह।
सब अस जानौ मुहम्मद होइ बरिस कै राह।[४]

यहाँ यह अस्पष्ट है कि यदि रसूल को छोड कर अन्य सब लोगों के लिए वह मार्ग बारह वर्ष का होगा तो फिर एक वर्ष का कैसे हो जायगा। सम्भवत कवि का आशय यह है कि वह बारह वर्ष का मार्ग रसूल की कृपा से एक वर्ष का हो जायगा। किन्तु उपयुक्त पक्तियो से यह अर्थ भली प्रकार स्पष्ट नही हो पाता। कही-कही शब्दावली इतनी लचर और शिथिल है कि प्रतीत होता है मानो कवि के शब्द-भंडार मे अकाल पड गया हो। यथा, निम्नलिखित पक्ति मे—

पुनि रसूल नेवतब जेवनारा। बहुत भांति होई परकारा।[५]

---

१ अख० ४४।१-७ २ आखि० ४२।५-६ ३ आखि० ४६।४ ४. आखि० ४४।८-६
५ आखि० ४५।१

'नेवतब' का तात्पर्य 'न्योते' से है अथवा 'न्योतेंगे' ? दूसरी अर्द्धाली में 'भांति' और 'परकारा' एक दूसरे के पर्याय है किन्तु इनसे सम्बद्ध शब्द का कोई उल्लेख नही है। यह कुछ उदाहरण तो सकेत रूप मे दिये गए है। आखिरी कलाम मे ऐसे प्रचुर प्रयोग है जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस कृति के इतिवृत्तात्मक प्रसगो की भाषा वाक्य-सगठन तथा भावाभिव्यजना दोनो दृष्टियो से शिथिल है। पद्मावत के इतिवृत्तात्मक प्रसंगो मे प्रयुक्त भाषा आखिरी कलाम की भाषा से अधिक समर्थ है। इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण द्रष्टव्य है

सुअें तहां दिन दस कलि काटी। आइ बिआध ढुका लै टाटी।
पैग पैग भुइं चांपत आवा। पंखिन्ह देखि सबन्हि डर खावा।
देखहु कछु अचरिजु अनभला। तरिवर एक आवत है चला।
एहि बन रहत गई हम आऊ। तरिवर चलत न देखा काऊ।
आजु जो तरिवर चल भल नाहीं। आवहु एहि बन छांड़ि पराही।
वै तौ उड़े औरु बन ताका। पंडित सुआ भूलि मन थाका।
साखा देखि राज जनु पावा। बैठ निचिंत चला वह आवा।[1]

उक्त उदाहरण मे प्रयुक्त भाषा अभिधामूलक शब्दावली से युक्त है। उसमे सहज, सरल तथा सुबोध शब्दो का व्यवहार हुआ है और मुहावरो तथा कहावतो का लगभग अभाव है। सामासिक पद भी विरल है। छोटे-छोटे शब्द अपनी सहजता से मन को आकृष्ट कर लेते है। तद्भव शब्दो का बाहुल्य है और उनसे उत्पन्न स्वाभाविकता ही सम्बद्ध प्रसगों की मार्मिकता बढा देती है। पद्मावत के अधिकाश इतिवृत्तात्मक स्थलो की भाषा इसी प्रकार की है।

घ—रूप-चित्रण नखशिख वर्णन और रूप-चित्रण प्राय सभी कवियो ने किया है। इन स्थलों पर कवि चित्रकार बन जाते है और अपने प्रिय पात्र तथा पात्रियो की प्रत्येक अवस्था की प्रत्येक मुद्रा के अनेकानेक चित्र अकित करते चले जाते है। सूर और तुलसी ने अपने इष्टदेवो का रूप-वर्णन बार-बार किया है। जायसी के काव्य मे रूप-वर्णन को स्थान केवल पद्मावत मे ही मिल सका है। पद्मावत मे भी रूप तथा सौन्दर्य-वर्णन की योजना तो अनेक स्थलो पर हुई है किन्तु दो स्थलो पर पद्मावती के रूप का वर्णन अत्यन्त उल्लसित भाव से किया गया है, एक तो, हीरामन तोते के द्वारा चित्तौड के राजा रत्नसेन के सम्मुख और दूसरे, राघव चेतन के द्वारा दिल्ली मे बादशाह अलाउद्दीन के सामने। दोनो स्थलों के वर्णन नखशिख प्रणाली पर है। अग-प्रत्यगों के वर्णन के लिए विविध उपमानो का विधान किया गया है। ऐसे स्थलो की भाषा सामान्यतया आलकारिक हो गई है, जैसे –

पेट पत्र चदन जनु लावा। कुंकुम केसरि बरन सोहावा।
खीर अहार न कर सुकुवांरा। पान फूल के रहै अधारा।

---

१. प० ६६।१-७

स्याम भुअगिनि रोमावली। नाभी निकसि कँवल कहँ चली।
आइ दुहूँ नारँग बिच भई। देखि मजूर ठमकि रहि गई।
जनहु चढ़ी भँवरन्हि कै पांती। चदन खाँभ बास कै मांती।
कै कालिंद्री बिरह सताई। चलि पयाग अरइल बिच आई।
नाभी कुंडर बानारसी। सौंहं को होइ मीचु तहँ बसी।
सिर करवत तन करसी लै लै बहुत सीझे तेहि आस।
बहुत धूम घूंटत मैं देखे उतरु न देइ निरास॥[1]

इन पक्तियो मे पद्मावती के नेत्रो तथा नाभि-प्रदेश के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। कवि ने विविध उपमाओ तथा उत्प्रेक्षाओ की योजना अत्यन्त कुशलता से की है। भाषा मे अन्य स्थलो की अपेक्षा तत्समता अधिक है। प्रयुक्त शब्दावली माधुर्यगुणसम्पन्न है किन्तु अलकारो की बहुलता के कारण प्रसादत्व नही आ पाया है। लाक्षणिकता तथा उक्ति-वैचित्र्य का भी यथेष्ट पुट है। यत्र-तत्र स्फुट और सक्षिप्त रूप मे भी जो रूप-वर्णन किया गया है उसमे भी इसी प्रकार की भाषा की झलक दिखाई पडती है। एक स्थल पर तो जायसी ने पनिहारिनो के रूप-चित्रण मे सस्कृत शब्दावली को ज्यो का त्यो रख दिया है—

लंकसिंघिनी सारंगनैनी। हसगामिनी कोकिलबैनी।[2]

रूप-चित्रण की भाषा सरस, साहित्यिक तथा आलकारिक है। वह अनगढपन से सर्वथा मुक्त तो नही है फिर भी इतना निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उसमे पर्याप्त परिष्कार है जो जायसी के काव्य मे अन्यत्र दुर्लभ है।

च— संयोग-वर्णन पद्मावत श्रृगार-प्रधान काव्य है। अन्य ग्रन्थों मे किसी भी रस की सफल निष्पत्ति नही हो सकी है। आखिरी कलाम तथा महरी बाईसी मे कवि ने संयोग श्रृंगार की भावना भर ही उभार पाई है। पद्मावत मे सयोग पक्ष का वर्णन दो आलम्बनो के सहारे हुआ है। रत्नसेन-नागमती तथा रत्नसेन-पद्मावती। इनमे से रत्नसेन और नागमती के सयोग का एक ही चित्र कवि ने अकित किया है और वह है रत्नसेन के चित्तौर आगमन पर। यह चित्र साधारण तथा सक्षिप्त है और कवि का वर्णन सभी सम्भावित मनोभावो का उल्लेख तक नही कर पाया है। यहाँ भाषा साधारण कोटि की है। रत्नसेन और पद्मावती को लेकर कवि ने कई स्थलो पर सयोग वर्णन किया है, जैसे— बसत खण्ड (दो० १९४-१९९), पद्मावती रत्नसेन विवाह खण्ड (दो० २८०), पद्मावती रत्नसेन भेट खण्ड (दो० २९१-३२०), षट ऋतु वर्णन खण्ड (दो० ३३५-३४०), लक्ष्मी समुद्र खण्ड (दो० ४१८), चित्तौर आगमन खण्ड (दो० ४३१) तथा पद्मावती मिलन खण्ड (दो० ६४०-६४३)। इनमें से बसत खण्ड मे रत्नसेन और पद्मावती का सर्वप्रथम मिलन वर्णित है। यहाँ प्रेम एकपक्षीय ही वर्णित है अत वर्णन मे मार्मिकता नही आ पाई है। भाषा मे भी अनुकूल लालित्य नही है। विवाह-खण्ड मे बारात देख कर अनूढा पद्मावती मे श्रृगार

---

१. प० ११४।१-९ २. प० ३२।३

के सचारी भावो की जागृति दिखाई गई है। यहाँ भी केवल नायिका पक्ष मे आरोपित श्रृंगार का वर्णन है अत सयोग की अनुभूति भली भाँति उभर नही सकी है। इस प्रसग मे भाषा मे अभीष्ट माधुर्य तो है किन्तु वर्णन के अत्यधिक सक्षिप्त होने के कारण वह अधिक प्रभावशाली नही हो सका है। वास्तविक तथा पूर्ण संयोग श्रृंगार पद्मावती-रत्नसेन-भेट-खण्ड मे प्राप्त होता है। यहाँ प्रयुक्त भाषा के कई रूप दिखाई पडते है। सर्वप्रथम रूप तो वहाँ प्राप्त होता है जहाँ कवि ने रति-क्रीडा का वर्णन किया है—

कहि सत भाउ भएउ कंठलागू। जनु कचन मों मिला सोहागू।
चौरासी आसन बर जोगी। खट रस बिदक चतुर सो भोगी।
कुसुम माल असि मालति पाई। जनु चपा गहि डार ओनाई।
करी बेधि जनु भंवर भुलाना। हना राहु अर्जुन के बाना।
कंचन करी चढ़ी नग जोती। बरमा सौं बेधा जनु मोती।
नारग जानुँ कीर नख देई। अधर आंबु रस जानहु लेई।
कौतुक केलि करहिं दुख नसा। कुंदहिं कुरलहिं जनु सर हंसा।
रही बसाइ बासना चोवा चंदन मेद।
जो असि पदुमिनि रावै सो जानै यह भेद।[1]

इन पंक्तियो की भाषा मे तत्सम शब्दावली की प्रधानता है। यहाँ कवि ने रतिक्रीडा का नग्न वर्णन न करने के उद्देश्य से लाक्षणिक भाषा का प्रयोग किया है। अलकारो की योजना सायास है इसीलिए भाषा मे आलकारिकता का समावेश अधिक मात्रा मे हो गया है। इसी प्रकरण मे कवि आगे अधिक प्रगल्भ हो गया है तथा उसने अभिधात्मक भाषा मे सम्भोग-क्रीडा का नग्न वर्णन किया है। इस प्रकार की भाषा मे अश्लीलत्व दोष आ गया है। भाषा के उक्त दोनो रूप ही असामान्य रूप है। सामान्य रूप से इस स्थल पर तथा अन्य स्थलो मे जायसी का प्रयत्न यही रहा है कि ऐसे सरस शब्दो की योजना की जावे जो प्रसग की सरसता के लिए उपयुक्त हो। इसीलिए उन्होने अलकारो के प्रयोग मे भी सयम रखा है। वाक्य-योजना भी अधिकाशत सीधी-सादी है और यह उचित भी है क्योकि वाक्यो का मिश्रित या सयुक्त रूप रसोत्पादन और रसानुभूति, दोनो मे कभी-कभी बाधक हो जाता है। संयोग-वर्णन मे अपवाद-स्वरूप भाषा का एक अन्य रूप भी प्राप्त होता है जो कवि के लिए गौरव का विषय कदापि नही है। कही-कही जायसी पारिभाषिक शब्दावली तथा अप्रासगिक विवेचन के मोह मे उलझ गए है। पद्मावती से मिलन के पूर्व उसकी सखियों तथा रत्नसेन के मध्य का वार्तालाप एक ऐसा ही अंश है। कवि की भाषा यहाँ रसायनवादियो तथा धातुवादियो की पारिभाषिक शब्दावली से इतनी बोझिल है कि वह श्रृंगार की सरसता को व्यक्त करने मे सर्वथा असमर्थ हो गई है। कवि के अनावश्यक मोह ने भाषा और भाव दोनो के ही सौन्दर्य को भारी क्षति पहुचाई है और अभिव्यक्ति मे

---

१. प० ३१६ (संपूर्ण)

शैथिल्य ही नही, व्याघात उपस्थित हो गया है। सौभाग्य से इस प्रकार के स्थल अत्यल्प है। अधिकाश स्थलो पर कवि ने भावानुभूति की तीव्रता के साथ साथ शब्द-विधान की रसात्मकता का भी ध्यान रखा है और उसकी भाषा शब्द-सगीत, अर्थ-गौरव तथा शब्द-शक्ति के समन्वित योग से अत्यन्त आकर्षक हो गई है।

छ– वियोग-वर्णन : जायसी-काव्य का सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा काव्यात्मक विषय वियोग-वर्णन है। 'पद्मावत' मे कवि ने नागमती तथा पद्मावती दोनो के विरह का वर्णन किया है। नागमती का विरह अनेक स्थलो पर वर्णित है– यथा, नागमती-वियोग खंड (दो० ३४१-३५६), नागमती-सदेश खण्ड (दो० ३५७-३६२) तथा चित्तौर आगमन खण्ड (दो० ४२७)। पद्मावती के विरह का वर्णन भी कई स्थलो पर किया गया है– पद्मावती वियोग खण्ड (दो० १६८-१७४), राजा गढ छेका खण्ड (दो० २३१-२३४), गधर्वसेन मैत्री खण्ड (दो० २४७-२५५), लक्ष्मी-समुद्र खण्ड (दो० ३६६-४०२), नागमती विलाप खण्ड (दो० ५८१-५८३), पद्मावती-गोरा-बादल-सवाद खण्ड (दो० ६०८-६०६) तथा पद्मावती मिलन खण्ड (दो० ६४३)। पद्मावती-नागमती-सती खण्ड (दो० ६५०) मे रत्नसेन की मृत्यु पर दोनो का वियोग-वर्णन भी कवि ने कर दिया है। सूफी-परम्परा के अनुसार कवि ने रत्नसेन के विरह का भी चित्रण किया है। इस प्रकार के स्थल प्रेम खड (दो० १२१-१२५), जोगी खण्ड (दो० १२७,१३०,१३६), राजा गनपति संवाद खण्ड (दो० १४२-१४५), बोहित खण्ड (दो० १४६), सात समुद्र खण्ड (दो० १५२), सिहलद्वीप खण्ड (दो० १६३), पद्मावती सुआ-भेट-खण्ड (दो० १७८), राजा रत्नसेन सती खण्ड (दो० १९९-२०२), पार्वती-म्हेश-खड (दो० २०८-२१०), राजा गढ छेका खण्ड (दो० २१६,२२३,२२४) गधर्वसेन मैत्री खण्ड (दो० २४४-२४६), रत्नसेन सूली खण्ड (दो० २६१-२६२) तथा लक्ष्मी समुद्र खण्ड (दो० ४०६,४०८,४१०,४१६) मे है। इन सभी स्थलो मे रत्नसेन की प्रथम परिणीता पत्नी नागमती का विरह-वर्णन पद्मावत का प्राण है। नागमती की व्यथा और वेदना का जैसा मार्मिक, सजीव और गभीर चित्र कवि ने वहाँ अकित किया है वैसा चित्र पद्मावत मे ही नही साहित्य मे भी अन्यत्र दुर्लभ है। जायसी ने उक्त बारहमासे मे प्रकृति और मानवीय भावो का सहज तादात्म्य दिखाया है। हृदय के आवेगो की व्यजना चरमोत्कर्ष पर है। नागमती की व्यथा से मानव ही नही पशु-पक्षी तक विचलित हो उठे हैं, उनके हृदय मे भी सहानुभूति और करुणा का सागर उमड पड़ा है। विरहकातरा नागमती के सहज उद्गार पाठक के हृदय को बेध जाते हैं—

> **भर भादौं दूभर अति भारी। कैसे भरौं रैनि अंधियारी।**
> **मदिल सून पिय अनतै बसा। सेज नाग भै धै धै डसा।**
> **रहौं अकेलि गहे एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी।**
> **चमकि बीज घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा।**
> **बरिसै मघा झँकोरि झँकोरी। मोर दुइ नैन चुवहिं जसि ओरी।**
> **पुरबा लाग पुहुमि जल पूरी। आक जवास भई हौं झूरी।**

धनि सूखी भर भादौं मांहाँ। अबहूँ आइ न सींचसि नाहाँ।
जल थल भरे अपूरि सब गंगन धरति मिलि एक।
धनि जोबन औगाह महु दे बूड़त पिय टेक।[1]

यहा कवि की भाषा कितनी समर्थ है। भाषा अनलकृत होते हुए भी सर्वथा उपयुक्त है। भावो के आवेग मे प्रवाह की तीव्रता का साथ आलकारिक भाषा नही दे सकती। ऐसे प्रसगो मे सरल तथा प्रचलित भाषा ही अर्थ को भली प्रकार व्यक्त कर पाती है। जायसी ने यहाँ इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग बडी सावधानी व निष्ठा के साथ किया है, फलत विरह के प्रसगो मे एक अनूठी मार्मिकता आ गई है। अन्यत्र भी इसी भाषा-माधुर्य के कारण विरह-वर्णन अत्यन्त मर्मस्पर्शी बन गया है। चित्तौर आगमन पर नागमती रत्नसेन से कितने सरल किन्तु व्यथापूर्ण मार्मिक शब्दो मे कहती है—

काह हससि तूं मोसौं किए जो और सौं नेहु।
तोहि मुख चमकै बीजुरी मोहि मुख बरसै मेंहु।[2]

इस सरल शब्दावली मे कितनी व्यथा भरी है, इसका अनुमान सहृदय ही लगा सकते है। सीधी-सादी भाषा मे 'मुख चमकै बीजुरी' और 'मुख बरसै मेहु' की लाक्षणिकता अत्यन्त प्रभावशालिनी है। 'पद्मावती-विलाप-खण्ड' मे पद्मावती के विरह-वर्णन मे भी जायसी ने इसी प्रकार की सामान्य किन्तु मार्मिक भाषा का प्रयोग किया है—

पदुमावति बिनु कत दुहेली। बिनु जल कंवल सूखि जसि बेली।
गाढ़ि प्रीति पिय मो सौं लाए। ढीली जाइ निचिंत होइ छाए।
कोइ न बहुरा निबहुर देसू। केहि पूछौं को कहै सँदेसू।
जो गौनै सो तहाँ कर होई। जो आवै कछु जान न सोई।
अगम पथ पिय तहाँ सिधावा। जो रे जाइ सो बहुरि न आवा।
कुआ ढार जल जैस बिछोवा। डोल भरें नैनन्ह तस रोवा।
लेंजुरि भई नांह बिनु तोही। कुवां परी धरि काढ़हु मोही।
नैन डोल भरि ढारै हिएँ न आगि बुझाइ।
घरी घरी जिउ बहुरै घरी घरी जिउ जाइ।[3]

इन पक्तियो मे पद्मावती का करुण क्रन्दन प्रतिध्वनित हो रहा है। भाषा सरल है तथा छोटे छोटे मुहावरो के प्रयोग ने उसमे प्राणशक्ति का सचार कर दिया है।

वियोग-वर्णन मे भाषा का दूसरा रूप उन स्थलो पर दृष्टिगोचर होता है जहाँ कवि ने मार्मिकता के साथ बौद्धिकता का भी सयोग कर दिया है। इसके फलस्वरूप भाषा मे अपेक्षाकृत अधिक साहित्यिकता आ गई है। निम्नलिखित उद्धरण की भाषा इसी प्रकार की है—

---

१. प० ३४६।१-९ २. प०४२७।८-९ ३. प० ५८१।१-९

जौं भा चेत उठा बैरागा। बाउर जनहुं सोइ अस जागा।
आवन जगत बालक जस रोवा। उठा रोइ हा ग्यान सो खोवा।
हौं तो अहा अमरपुर जहां। इहां मरनपुर आएउ कहां।
केइं उपकार मरन कर कीन्हा। सकति जगाइ जीउ हरि लीन्हा।
सोवत अहा जहाँ सुख साखा। कस न तहाँ सोवत बिधि राखा।
अब जिउ तहाँ इहाँ तन सूना। कब लगि रहै परान बिहूना।
जौ जिउ घटिहि काल के हाथां। घटन नीक पै जीउ निसाथां।
अहुठ हाथ तन सरवर हिया कंवल तेहि मांह।
नैनन्हि जानहु निअरें कर पहुचत अवगाह।[1]

यहाँ भाषा मे तत्समता अधिक है। उल्लेखनीय यह है कि प्रयुक्त तत्सम शब्द अधिकाशत ऐसे ही हैं जो सरल तथा लोक-प्रचलित है। इस प्रकार की गभीर भाषा का कारण यह है कि जायसी यहाँ भी आध्यात्मिकता की ओर झुक गए है। आध्यात्मिकता के प्रति इस अतिशय मोह ने वियोग-वर्णन मे भी कवि की भाषा को कही-कही दुरूह तथा नीरस बना दिया है अन्यथा वह सरस, सरल तथा मर्मस्पर्शी है।

ज—युद्ध-वर्णन : कथा के अनुरोध से जायसी को 'पद्मावत' मे कई स्थलो पर युद्धो का वर्णन भी करना पडा है यथा—रत्नसेन और अलाउद्दीन का युद्ध (दो० ५१६-५२६), गोरा और अलाउद्दीन की सेना का युद्ध (दो० ६२७-६३७), रत्नसेन और देवपाल का युद्ध (दो० ६४६) तथा बादल के नेतृत्व मे राजपूतो और अलाउद्दीन का युद्ध (दो० ६५१)। इन युद्धो मे से प्रथम दो युद्धो का वर्णन कवि ने अधिक विस्तार से किया है। यहाँ कवि ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह सामान्य प्रसंगो से भिन्न, ओजपूर्ण और प्रभावोत्पादक है। निम्नलिखित उदाहरणो से भाषा के इस स्वरूप का अनुमान हो सकता है—

(क) **हस्तिन्ह सौं हस्ती हठि गाजहिं। जनु परबत परबत सौं बाजहिं।**
गरुअ गयंद न टारे टरहीं। टूटहिं दंत सुंड भुइ परहीं।
परबत आइ सो परहिं तराहीं। दर महं चांपि खेह मिलि जाहीं।
कोइ हस्ती असवारन्ह लेहीं। सुंड समेटि पाय तर देहीं।
कोइ असवार सिंघ होइ मारहिं। हनि मस्तक सिउं सुंड उतारहिं।
गरब गयदन्ह गंगन पसीजा। रुहिर जौ चुवै धरति सब भीजा।
कोइ मैमत सभारहिं नाहीं। तब जानहिं जब सिर गड खाहीं।
गंगन रुहिर जस बरिसै धरती भीजि बिलाइ।
सिर धर टूटि बिलाहिं तस पानी पंक बिलाइ।[2]

(ख) **फिरि आगें गोरै तब हाँका। खेलौं आजु करौं रन साका।**
हौं खेलौं धौलागिरि गोरा। टरौं न टारा बाग न मोरा।

---

१ प० १२११-६ २. प० ५१७।१-६

सोहिल जैस इद्र उपराहीं । मेघ घटा मोहि देखि बिलाहीं ।
सहसौं सीसु सेस सरि लेखौं । सहसौं नैन इंद्र भा देखौं ।
चारिउ भुजा चतुर्भुज आजू । कस न रहा और को राजू ।
हौं होइ भीवँ आजु रन गाजा । पाछें घालि दगवै राजा ।
होइ हनिवत जमकातरि ढाहौं । आजु स्यामि सकरै निरबाहौं ।
होइ नल नील आजु हौं देउ समुंद मह मेंड़ ।
कटक साहि कर टेकौं होइ सुमेरु रन बेंड ।[1]

इन उदाहरणो की भाषा मे सजीवता है। मध्यकालीन काव्य के अन्य युद्ध-वर्णनो की भाषा से जो मुख्य अन्तर जायसी के वर्णनो मे मिलता है वह है द्वित्व और सयुक्त वर्णों का लगभग अभाव। वीररस के उत्कर्ष मे सहायक होने वाली परुष वर्णों से निर्मित सामासिक पदावली भी जायसी-काव्य मे विरल है। इस सम्बन्ध मे पिछले पृष्ठो मे यह सकेत किया जा चुका है कि जायसी की प्रवृत्ति ओजगुण के अनुकूल नही थी फिर भी यह उल्लेखनीय है कि जायसी ने अपनी कुशल-शैली के द्वारा युद्ध-वर्णन को सजीवता प्रदान की है।

(झ) **अन्य स्फुट विषय :** इस वर्ग मे प्रकृति, पशु, पक्षी, नगर तथा भोज से सम्बद्ध वर्णन और नीति-कथन आते है। इन सभी विषयो मे लगभग एक जैसी भाषा का व्यवहार हुआ है। वर्ण्य विषय के अनुकूल भाषा की सरलता और स्वाभाविकता स्पष्टतया लक्षित की जा सकती है। रूप की दृष्टि से तद्भव शब्दो की अधिकता है। अलंकारो की योजना नगण्य है। प्रसगानुसार सरल भाषा का प्रयोग होने से उक्त विषयो का सौन्दर्य और भी निखर आया है।

साराश यह है कि विषय के अनुसार जायसी की भाषा के चार प्रमुख रूप जायसी-काव्य मे मिलते है – साधारण, व्यावहारिक, साहित्यिक तथा आलकारिक। साधारण रूप मे एक तो मुहावरो-कहावतो का प्रयोग नही है और दूसरे विन्यास भी बहुत अनगढ और शिथिल है, अतएव भाषा का यह रूप जायसी की गौरव-वृद्धि मे बाधक ही है साधक नही। द्वितीय रूप मे तद्भव शब्दावली का आधिक्य है किन्तु अर्द्धतत्सम और तत्सम शब्द भी उल्लेखनीय सख्या मे मिलते है। यत्र-तत्र विदेशी शब्दावली भी प्रयुक्त है। भाषा के इस रूप मे मुहावरो तथा कहावतो का भी पुट है और भाषा सरल, सहज तथा स्वाभाविक होते हुए भी सजीव है। भाषा के तृतीय और चतुर्थ रूपो मे तत्सम शब्दो का अनुपात प्रथम तथा द्वितीय रूप की अपेक्षा अधिक है किन्तु विशेषता इस बात की है कि एक भी क्लिष्ट तत्सम शब्द कही भी प्रयुक्त नही हुआ है। इन रूपो मे लाक्षणिकता भी अधिक है। भाषा के साहित्यिक रूप मे भी यत्र-तत्र अलंकार आए है किन्तु आलंकारिक रूप मे तो कवि ने अलकारों की झड़ी सी लगा दी है। रूप-सौन्दर्य-वर्णन आदि प्रसगो मे जहॉ भाषा का आलंकारिक रूप प्रयुक्त हुआ है, वहॉ प्रत्येक पक्ति मे अलंकार-योजना है। संक्षेपत यह

१ प० ६२६ (सम्पूर्ण)

कहा जा सकता है कि जायसी के काव्य मे अवधी भाषा के अनेक रूप प्राप्त होते हैं किन्तु अधिकता अवधी के ठेठ स्वरूप की है।

२– सवादों की भाषा : संवादो की भाषा का जितना अधिक समर्थ, सफल तथा ओजस्वी रूप गद्य मे सम्भव है, उतना पद्य मे नही। कवि को संवाद-रचना करते समय छन्द तथा तुक आदि के बन्धन मानने पडते है जिनसे गद्यकार सर्वथा मुक्त होता है। इस असुविधा के होते हुए भी इतिवृत्तात्मक काव्य मे कथानक को गति प्रदान करने के लिए तथा चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए सम्वादो की उपयोगिता असदिग्ध है, इसीलिए कथात्मक काव्य मे सवादो का गुम्फन अनिवार्य है। सवादो की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि वे पात्रो के बौद्धिक तथा सास्कृतिक स्तर के अनुरूप एवं प्रसंगानुकूल हो और उनकी वाक्य-योजना सक्षिप्त, यथावश्यक, सजीव तथा स्वाभाविक हो। वे कार्य-रोधक न होकर कार्य-प्रेरक हो। जायसी की विभिन्न कृतियो मे से आखिरी कलाम तथा पदमावत इतिवृत्तात्मक काव्य है अत उन्ही मे सवादो का प्रयोग मिलता है। आखिरी कलाम एक साम्प्रदायिक ग्रन्थ है जिसमे कयामत के दिनो का लम्बा चौडा वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत मुहम्मद साहब तथा आदम, मूसा व बीबी फातिमा आदि के सम्वाद है जिनकी भाषा साधारण कोटि की है। आलकारिकता तथा शब्द-चमत्कार को प्रश्रय नही मिला है। इस्लाम से सम्बद्ध होने के कारण तथा मुसलमान पात्रो के कारण यत्र-तत्र अरबी-फारसी के शब्द प्रयुक्त हुए है किन्तु उनके व्यवहार से भाषा के सामान्य प्रवाह मे किसी प्रकार का व्याघात नही पहुँचता। एक उदाहरण से इस कथन की पुष्टि हो सकेगी –

पुनि जैहं आदम केरे पासा। पिता तुम्हारि बहुत मोहिं आसा।
उमत मोरि गाढ़े है परी। भा न दान लेखा का धरी।
दुखिया पूत होत जो अहै। सब दुख पै बापै से कहै।
बाप बाप कैं जो कछु खांगै। तुमहिं छाडि कासौं चित बाँधै।
तुम जठेर पुनि सबहीं केरा। अहै संतति मुख तुम्हरै हेरा।
जेठ जठेर जो करिहै मिनती। ठाकुर जबहीं सुनिहैं मिनती।
जाइ दैउ सै बिनवौ रोई। मुख दयाल दाहिन तोहि होई।
कहहु जाइ जस देखे जेहि होवै उदघाट।
बहु दुख दुखी मुहम्मद बिधि सकर तेहि काट।

सुनौ पूत आपन दुख कहऊं। हौं अपने दुख ब्राउर रहऊं।
होइ बैकुंठ जो आयसु ठेलौं (ठेलेउँ)। दूत के कहे मुख गोहूं मेलौं (मेलेउ)।
दुखिया पेट लागि संग धावा। काढ़ि बिहिस्त से मैल ओढावा।
परलौ जाइ मंडल सुंसारा। नैन न सूझै निसि अंधियारा।
सकल (ज) गत में फिरि फिरि रोवा। जीउ जान बांधि कै खोवा।
भए उजियार पिरथिमी जइहौं। औ गोसाइं कै अस्तुति कहिहौं।
लौटि मिलै जौ होवै आई। तौ जिउ कहं धीरज भा जाई।

तेहि हुते लाजि उठै जिउ मुहं न सकौं दरसाइ ।
सो मुंह लाइ मुहम्मद बात कहौ का जाइ ।[1]

उपर्युक्त पक्तियो मे भाषा की सादगी, उसका अनगढ स्वरूप और सरल तथा सहज अभिव्यजन-शैली लक्षित की जा सकती है । काव्य मे प्रयुक्त होते हुए भी भाषा का स्वरूप बोलचाल की भाषा के बहुत अधिक निकट है और उसके इस ठेठ रूप मे ही उसका सौन्दर्य सन्निहित है । आखिरी कलाम के सभी सम्वादो मे भाषा का यही रूप प्रयुक्त हुआ है ।

सम्वादों की भाषा के वैविध्य के लिए 'पदमावत' उल्लेखनीय है । उसमे कथोपकथनो की संख्या सौ के लगभग है जिन्हे भाषा की दृष्टि से कई वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है । प्रथम वर्ग के अतर्गत वे सम्वाद आते है जिनकी भाषा अत्यधिक सरल तथा स्पष्ट है । वह अभिधार्थप्रधान है तथा जहा कही मुहावरो आदि के रूप मे लाक्षणिकता आ भी गई है वहा वह सायास चेष्टा से ही लक्षित होती है । 'पदमावत' की कतिपय पक्तिया उदाहरणस्वरूप यहाँ प्रस्तुत है

हम तौ बुद्धि गवाई बिख चारा अस खाइ ।
तूँ सुअटा पडित हता तूं कत फांदा आइ ।।
सुअें कहा हमहू अस भूले । टूट हिंडोर गरब जेहिं झूले ।
केरा के बन लीन्ह बसेरा । परा साथ तह बैरी केरा ।
सुख कुरिआर फरहरी खाना । बिख भा जबहिं बिआध तुलाना ।
काहेक भोग बिरिख अस फरा । अड़ा लाइ पखिन्ह कह धरा ।
होइ निचिंत बैठे तेहि अड़ा । तब जाना खोचा हिय गड़ा ।
सुखी चिंत जोरब धन करना । यह न चिंत आगे है मरना ।
भूले हमहु गरब तेहि माहाँ । सो बिसरा पावा जेहि पाहाँ ।
चरत न खुरुक कीन्ह तब जब सो चरा सुख सोइ ।
अब जो फांद परा गिय तब रोएं का होइ ।।[2]

इन पक्तियो मे जहाँ भाषा की सरलता, तद्भव शब्दावली का प्राधान्य आदि उल्लेखनीय है वही यह भी द्रष्टव्य है कि इस कथोपकथन मे सामान्य सिद्धान्त-कथनो तथा नीतिवाक्यो का भी समावेश हो गया है । वस्तुत यह जायसी के संवादो की एक सामान्य विशेषता है कि उनमे वार्तालाप प्राय साधारण स्तर से ऊपर उठ कर कुछ दार्शनिक रूप प्राप्त कर लेता है । इसके दो कारण जान पडते है । एक तो यह कि ग्रामीण जीवन मे जायसी की पैठ बडी गहरी थी जिसके कारण उन्हे यह भली भाति ज्ञात था कि भारतीय ग्रामीण जनता मे जगत् तथा जीवन के प्रति इस प्रकार का गम्भीर दृष्टिकोण एक सामान्य विषय है । जायसी ग्राम्य वातावरण मे रहे थे और पद्मावत में उन्होने इस जीवन का

---

१ आखिरी कलाम– दोहा ३२, ३३   २. प० ७०।८-९, ७१

बडा सजीव चित्रण किया है, ऐसी स्थिति मे उनके द्वारा इस पक्ष की उपेक्षा सम्भव नही थी। दूसरा कारण जीवन के मूलभूत सिद्धान्तों के प्रति कवि का मोह था, इसी से वह अवसर पाते ही उनको व्यक्त करने का मोह सवरण न कर सका। 'पद्मावत' के संवादो मे इसी तत्व-ज्ञान तथा नीति-निरूपण के कारण प्राय गम्भीरता छा जाती है। यहाँ उल्लेख्य है और जैसा उपरिलिखित उदाहरण से भी प्रकट है कि इस प्रकार के दर्शन-प्रभावित सवादों मे भी भाषा का रूप विकृत नही हुआ है और उसकी सरलता, सहजता तथा स्वाभाविकता सर्वथा सुरक्षित रही हैं। भाषा के इसी सुबोध, सुस्पष्ट तथा सुग्राह्य रूप का प्रयोग माता-रत्नसेन सवाद (दो० १२६-१३०), रत्नसेन-नागमती सवाद (दो० १३१-१३२), राजा गजपति सवाद (दो० १४०-१४१), राजकुवर केवट सवाद (दो० १४७-१४८), हीरामन-रत्नसेन संवाद (दो० १६२-१६३), पद्मावती-हीरामन सवाद (दो० १७६), पद्मावती सखी संवाद (दो० १६७-१६८), गन्धर्वसेन-भाट सवाद (दो० २६३-२६६), गन्धर्वसेन-हीरामन सवाद (दो० २७०-२७२), रत्नसेन-साथी सवाद (दो० ३३०-३३१), पद्मावती-सखी सवाद (दो० ३७६-३८१), समुद्र-रत्नसेन सवाद (दो० ३८७-३८८), राक्षस-रत्नसेन संवाद (दो० ३६२-३६३), लक्ष्मी-पद्मावती सवाद (दो० ३६८-३६६), समुद्र-रत्नसेन सवाद (दो० ४०६-४१३), लक्ष्मी-रत्नसेन सवाद (दो० ४१५-४१६) तथा राघव चेतन-अलाउद्दीन सवाद (दो० ४६०-४३२) आदि मे दिखाई पडता है।

संवादो मे प्रयुक्त भाषा का दूसरा रूप उन स्थलो मे देखा जा सकता है जहाँ कवि ने द्वयर्थक शब्दावली का प्रयोग करके एक ओर कथा-प्रवाह को गति प्रदान की है और दूसरी ओर विविध आध्यात्मिक तथा साम्प्रदायिक तथ्यों अथवा अन्य विषयो की व्यजना की है। इसमे सदेह नही कि 'पद्मावत' के अन्तर्गत ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ कवि की शैली को स्तुत्य सफलता प्राप्त हुई है और दोनो प्रकार के तथ्यो की सुन्दर अभिव्यक्ति है किन्तु साथ ही यह भी स्वीकार करना पडेगा कि इस प्रकार की शब्दावली के प्रयोग से कुछ संवादो की स्वाभाविक गति मे व्याघात उपस्थित हुआ है और काव्य-सौन्दर्य पर उसका अनिष्टकारी प्रभाव पडा है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

> **अस तप करत गएउ दिन भारी। चारि पहर बीते जुग चारी।**
> **परी सांझ पुनि सखी सो आई। चाँद सो रहै न उइं तराईं।**
> **पूछेन्हि गुरू कहाँ रे चेला। बिनु ससियर कस सूर अकेला।**
> **धातु कमाइ सिखे तैं जोगी। अब कस जस निरधातु बियोगी।**
> **कहां सो खोए बीरौ लोना। जेहि तें होइ रूप औ सोना।**
> **कस हरतार पार नहिं पावा। गधक कहाँ कुरकुटा खावा।**
> **कहाँ छपाए चांद हमारा। जेहि बिनु जगत रैनि अँधियारा।**
>
> **नैन कौड़िया हिय समुंद गुरू सो तेहि महं जोति।**
> **मन मरजिया न होइ परै हाथ न आवै मोति॥**

का बसाइ जौं गुरु अस बूझा। चकाबूह अभिमनु जो जूझा।
बिख जो देहि अम्रित देखराई। तेहि रे निछोहिहिं को पतिआई।
मरै सो जान होइ तन सूना। पीर न जानै पीरबिहूना।
पार न पाव जो गधक पिया। सो हरतार कहौ किमि जिया।
सिद्धि गोटिका जापहं नाही। कौनु धातु पूंछहु तेहि पाहीं।
अब तेहि बाजु रांग भा डोलौं। होइ सार तब बर कै बोलौं।
अभरक कै तन एगुर कीन्हा। सो तुम्ह फेरि अगिनि मँह दीन्हा।
मिलि जौ पिरीतम बिछुरै काया अगिनि जराइ।
कै सो मिलै तन तपनि बुझै कै मोहि मुएं बुझाइ।[1]

यह सवाद रत्नसेन और पद्मावती की सखियो के बीच उस समय का है जब रत्नसेन अपनी प्रियतमा से प्रथम मिलन की प्रतीक्षा अत्यधिक व्यग्रता से कर रहा है। स्पष्ट ही है कि इस अवसर पर होने वाली मनस्थिति के साथ उपर्युक्त सवाद न्याय नही कर पाता। उसमे प्रयुक्त होने वाली शब्दावली न तो प्रसगानुकूल है और न सुबोध ही। विभिन्न पारिभाषिक शब्दो के प्रयोग ने विषय के सौन्दर्य को दबा दिया है।

सवादो की भाषा का तीसरा रूप उन स्थलो पर प्राप्त होता है जहाँ कवि ने वाक्-चातुर्य की योजना की है। वस्तुत सवादो का वास्तविक महत्व वाक्-चातुर्य मे ही है और यही पर उपयुक्त शब्द-चयन मे कवि की कुशल सजगता सबसे अधिक अपेक्षित होती है। इस दृष्टि से नागमती-पद्मावती विवाद, पद्मावती-देवपाल दूती सवाद तथा रत्नसेन-सरजा सवाद उत्कृष्ट कोटि के है। नागमती-पद्मावती विवाद मे तो उन दोनो सपत्नियो के सवाद मे वैदग्ध्य और तीखापन देखते ही बनता है। पद्मावती नागमती की सुख केलि को देख ईर्ष्या से जल उठी और उसने नागमती पर व्यग्य किया—

बारी सुफल आहि तुम्ह रानी। है लाई पै लाइ जानी।[2]

बस विवाद का श्रीगणेश हो गया। वृक्ष, फल, फूल के मिस एक दूसरे पर वाक्-प्रहार होने लगे। नागमती ने भी पलट कर उत्तर दिया—

सो कस पराई बारी दूखी। तजै पानि धावहि मुंह सूखी।[3]

धीरे-धीरे उत्तर-प्रत्युत्तर से वातावरण मे गर्मी आने लगी। पद्मावती अब और मुखर हुई। उसने सीधे-सीधे ही कह दिया—

रहु अपनी तैं बारी मो सौं जूझु न बांझ।
मालति उपम कि पूजै बन कर खूझा खाझ।।[4]

यही नही —

तूं भुंजइलि हौं हंसिनि गोरी। मोहि तोहि मोति पोति कै जोरी।

---

१ प० दो० २९३, २९४ २. प० ४३४।४ ३ प० ४३५।५ ४. प० ४३६।८-९

कंचन करी रतन नग बना। जहां पदारथ सोह न पना।
तू रे राहु हौं ससि उजियारी। दिनहि कि पूजै मसि अंधियारी।
ठाढ़ि होसि जेहि ठांई मसि लागै तेहि ठाउं।
तेहि डर रांध न बैठौं जनि सावरि होइ जाउ।।[1]

लेकिन नागमती भला क्यो दब कर चुप रहने लगी। उसे भी अपने प्रियतम का स्नेह प्राप्त है–

लाजन्ह बूड़ि मरसि नहिं ऊभि उठावसि मांथ।
हौं रानी पिउ राजा तो कह जोगी नाथ।[2]

और जब उसने यह कर अत्यन्त कठोर प्रहार किया–

सब निसि तपि तपि मरसि पियासी। भोर भएं पावसि पिय बासी।
सेजवां रोइ रोइ जल भरसी। तूं मोसों का सरबरि करसी।[3]

तब तो पद्मावती के बदन मे आग लग गई। अब जीभ नही, हाथ ही मुह-तोड़ उत्तर दे सकते है –

पदुमावति सुन उतर न सही। नागमती नागिन जिमि गही।
ओइ ओहि कह ओइं ओहि कह गहा। गहागहनि तस जाइ न कहा।[4]

पद्मावत का यह सवाद वाग्विदग्धता की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर है। अन्य स्थलो की अपेक्षा यहा भाषा मे तत्समता अधिक है। मुहावरो और कहावतो का प्रयोग भी भाषा को सामर्थ्य प्रदान करने के लिए यत्र-तत्र हो गया है। सरल अलकारो की योजना से भी भाषा की साहित्यिकता मे वृद्धि हुई है। श्लेष तथा मुद्रा की सहायता से कवि ने एक ओर तो वाटिका को बातचीत का आधार बनाने के लिए वृक्षो, फल-फूलो आदि का उल्लेख किया है और दूसरी ओर ऊपर से प्रशसापरक किन्तु भीतर से विरोध व्यक्त करने वाले कूट पदो का प्रयोग किया है।

वाक्-चातुर्य की दृष्टि से देवपाल-दूती और पद्मावती के बीच का संवाद भी महत्वपूर्ण है। देवपाल की दूती कुमुदिनी मनोवैज्ञानिक दक्षता के साथ पद्मावती की जिज्ञासा, उत्सुकता तथा अभिलाषा को उद्दीप्त कर उसे अपने कपट-जाल मे फसाने का प्रयत्न करती है। वह कभी पद्मावती का सौन्दर्य बखानती है, कभी उसकी प्रशसा करती है, कभी यौवन की अस्थिरता का सकेत करते हुए सुखोपभोग का उपदेश देती है और कभी वृद्धावस्था मे सम्भाव्य तिरस्कार की चर्चा कर हितैषिणी के समान उसे सचेत करती है। जब पुरुष एक स्त्री-व्रत का पालन करना जानता ही नही तो स्त्री ही किसी एक पुरुष के लिए तपस्विनी बन कर अपना जीवन क्यो नष्ट करे ? दूती के इस चातुर्यपूर्ण कथन की झाँकी निम्नलिखित पक्तियो मे देखिए––

---

१. प० ४४०।५-६ २. प० ४३६।८-६ ३. प० ४३७।६-७ ४. प० ४४४।१-२

जनि तूं बारि करसि अस जीऊ। जौ लहि जोबन तौ लहि पीऊ।
पुरुष सिंघ आपन केहि केरा। एक खाइ दोसरेह मुह हेरा।
जोबन जल दिन दिन जस घटा। भवर छपाइ हस परगटा।
सुभर सरोवर जौ लहि नीरा। बहु आदर पंछी बहु तीरा।
नीर घटें पुनि पूंछ न कोई। बेरसि जो लीज हाथ रह सोई।
जब लगि कालिंदिरी बेरासी। पुनि सुरसरि होइ समुंद गरासी।
जोबन भवर फूल तन तोरा। बिरिध पोछ जस हाथ मरोरा।
क्रिस्न जो जोबन करत तन मया गुनत नहिं साथ।
छरि कें जाइहि बान लै धनुक छाड़ि तोहि हाथ।
कित पावसि पुनि जोबन राता। मेमँत चढा स्याम सिर छाता।
जोबन बिना बिरिध होइ नाऊ। बिनु जोबन थाकसि सब ठाऊ।
जोबन हेरत मिलै न हेरा। तेहि बन जाइहि करिहि न फेरा।
हहिं जो केस नग भवर जो बसा। पुनि बग होहिं जगत सब हसा।
सेंवर सेइ न चित करु सुवा। पुनि पछितासि अत होइ भुवा।
रूप तोर जग ऊपर लोना। यह जोबन पाहुन जग होना।
भोग बेरास केरि यह बेरा। मानि लेहि पुनि को केहि केरा।
उठत कोंप तरिवर जस तस जोबन तोहि रात।
तौ लहि रग लेहि रचि पुनि सो पियर ओइ पात।[१]

पद्मावती पहले तो अपने विरह दुख को ही शान्त भाव से कह कर दूती के कथन की अनसुनी कर जाती है—

जोबन जाउ जाउ सो भवरा। पिय की प्रीति सो जाइ न सवरा।
एहि जग जौं पिय करिहि न फेरा। ओहि जग मिलिहि सो दिन दिन मेरा।
जोबन मोर रतन जहं पीऊ। बलि सौंपौं यह जोबन जीऊ।[२]

किन्तु दूती पद्मावती के पति-प्रेम की गम्भीरता का अनुमान न कर सकने के कारण कुछ और प्रयास करती है यहाँ तक कि पद्मावती क्षुब्ध होकर कहने लगती है—

कुमुदिनि तूं बैरिनि नहिं धाई। मुहँ मसि बोलि चढ़ावै आई।[३]

और कुमुदिनी को उसके दूती-कर्म का पुरस्कार प्रभूत मात्रा मे देती है—

फेरत नैन चेरि सौ छूटी। भै कूटनि कुटनी तसि कूटी।
कान नाक काटे मसि लाई। बहु रिसि काढ़ि दुवार नँघाई।[४]

इस सवाद मे भाषा का प्रवाह तो सर्वत्र एक सा नही रह गया है, विशेषत, जब दूती 'मसि' शब्द को लेकर उसकी दार्शनिक व्याख्या करने लगती है,[५] किन्तु सामान्यत

---

१. प० ५६३,५६४ २ प० ५६५।५-७ ३. प० ५६७।१ ४. प० ५६६।६-७
५. प० ५६८।१-६

भाषा का प्रयोग दोनो पक्षों के मनोभावो के अनुकूल हुआ है। दूती कहावतो और सूक्तियो का प्रयोग अधिक करती है जिससे पद्मावती को वह अपने वाग्वैदग्ध्य से फुसला ले किन्तु पद्मावती के कथनो मे कवि ने सरल तथा सहज भाषा का प्रयोग किया है जो उस जैसी गम्भीर पतिपरायणा नारी के उपयुक्त ही है।

रत्नसेन और सरजा का वार्तालाप भी वाग्विदग्धता के क्षेत्र मे कवि की गहरी पैठ का परिचायक है। सरजा अलाउद्दीन का दूत बन कर पहले तो बडी निपुणता से रत्नसेन को अलाउद्दीन का प्रस्ताव मान लेने का परामर्श देता है किन्तु जब रत्नसेन क्षत्रियोचित मर्यादा का निर्वाह करते हुए उस प्रस्ताव को ठुकरा देता है तो सरजा छल और कपट का आश्रय ले बड़ी चतुराई से शपथ ले लेता है—

नाइत मॉझ भवर हति गीवां। सरजै कहा मद यहु जीवां।[1]

इस प्रकरण मे जायसी ने भाषा का सुन्दर विधान कर सरसता के साथ वाक्चातुर्य का मणि-काचन सयोग कर दिया है।

भाषा की पात्रानुकूलता – 'पद्मावत' के संवादो मे जायसी ने भाषा के प्रयोग मे पात्रानुकूल स्वाभाविकता का भी ध्यग्न रखा है। हीरामन के कथन विवेकसम्मत स्पष्टता से युक्त है और राघव-चेतन के वचन उसके नीच तथा छल-कपट-पूर्ण व्यवहार को ध्वनित करते है। दोनो विद्वान है अतएव दोनो ही की भाषा मे पाण्डित्य झलकता है किन्तु चारित्रिक विभिन्नताओ के कारण हीरामन के कथनो मे गम्भीरता एवं प्रशान्ति है और राघव चेतन के शब्दो मे वाचालता तथा आवेश। रत्नसेन की वाणी मे नायकोचित उत्साह तथा कर्मण्यता की झलक दिखाई पडती है और अलाउद्दीन के कथन उसके शक्तिशाली सम्राट के रूप का आभास देते है। इसी प्रकार पद्मावती की अधिकाश उक्तियो मे ऋजुता है और नागमती के उद्गारो मे शील-समन्वित लालित्य। गोरा-बादल के सवाद क्षत्रियोचित वीरता तथा स्वामिभक्ति की भावना से ओतप्रोत है और सरजा तथा देवपाल की दूती आदि वाक्पटु पात्रो के कथनो मे जायसी ने वचन-वक्रता तथा वाग्विदग्धता का नियोजन कर दिया है। परिस्थिति-भेद से भी विभिन्न पात्रो की भाषा का स्वरूप बदलता रहा है जैसे, रूप-गर्विता नागमती हीरामन से जब अपने सौन्दर्य की चर्चा स्वयं करती है तो उसकी वाणी मे दर्प है किन्तु वही रत्नसेन से वियुक्त होने पर मर्म-पीडा भरी विरह-कातरा कोमल वचनावली का प्रयोग करती है और रत्नसेन से मिलन के उपरान्त पद्मावती से विवाद करते समय उसकी वाणी मे रूप-गर्व के साथ साथ वाग्वैदग्ध्य भी झलकता है। इसी प्रकार हीरामन साथी पक्षियो के मध्य मे जिस प्रकार की सहज व्यावहारिक भाषा का प्रयोग करता है वह उसके द्वारा नख-शिख-वर्णन मे प्रयुक्त आलकारिक भाषा से अथवा पद्मावती, गन्धर्वसेन तथा रत्नसेन आदि से वार्तालाप मे व्यवहृत साहित्यिक भाषा से भिन्न है।

जायसी के संवादो मे केशव की शैली के सदृश अर्थपूर्ण छोटे-छोटे उपवाक्यों की

---

1 प० ५३७।६

योजना कही भी प्राप्त नही होती किन्तु इससे उनके द्वारा नियोजित सवादो के सौदर्य मे व्याघात नही उपस्थित होता। कवि ने सवादो की भाषा मे सजीवता, रोचकता, भावमयता तथा वचन-वक्रता का यथास्थल उपयोग कर सवादों को अपने कथा-शिल्प का प्रमुख उपकरण सिद्ध कर दिया है।

३. सूक्तियो तथा कहावतो की भाषा : जायसी-काव्य मे, विशेषत. पद्मावत मे सूक्तियो का प्रयोग प्रचुर रूप मे हुआ है। कवि ने जीवन के सारपूर्ण तथ्यों को इस रूप मे प्रस्तुत किया है कि उन्हे पढ कर पाठक का मन मुग्ध हो जाता है। ये सूक्तियाँ एक ओर तो कवि के अनुभव-जन्य ज्ञान का परिचय देती है और दूसरी ओर भावो की सफल अभिव्यजना मे भाषा को विशेष सामर्थ्य प्रदान करती है। इनकी भाषा सर्वत्र चुस्त, गठी हुई तथा सुबोध है और पढने वालो के मर्म का स्पर्श करती है। यहाँ जायसी-काव्य से कुछ चुनी हुई सूक्तियाँ उदाहरणार्थ सकलित है–

१. मेंटि न जाइ लिखी जसि होनी।[१]
२. मेंटि न जाइ लिखा पुरुबिला।[२]
३ मुहमद जीवन जल भरन रहंट घरी की रीति।
घरी सो आई ज्यो भरी ढरी जनम गा बीति।[३]
४ मुहमद बारि परेम का जेउ भावै तेउं खेल।
तीलहि फूलहि संग जेउ होइ फुलाएल तेल।[४]
५. यह मन कठिन मरै नहिं मारा।[५]
६ बिनु सत कस जस सेंवर भुआ।[६]
७. जहाँ सत्त तहं धरम संघाता।[७]
८. सत्त जहां साहस सिधि पावा।[८]
९. पेम घाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोई।[९]
१०. कठिन मरन तें पेम बेवस्था।[१०]
११. औ नहिं नेह काहु सौं कीजै। नाउ मीठ खाएं जिउ दीजै।[११]
१२. पहिलेंहि सुक्ख नेहु जब जोरा। पुनि होइ कठिन निबाहत ओरा।[१२]
१३. धुव ते ऊंच पेम धुव उवा। सिर दै पाउं देइ सो छुवा।[१३]
१४. करब पिरीति कठिन है काजा।[१४]
१५. पेम पहार कठिन बिधि गढा। सो पै चढै सीस सो चढा।[१५]
१६. दिया सो सब जप तप उपराहीं। दिया बराबर जग किछु नाही।[१६]

---

१. प० ५०।२ २. प० १९८।७ ३ प० ४२।८-९ ४. प० ६३।८-९
५. प० ७०।७ ६. प० ९२।१ ७. प० ९२।२ ८. प० ९२।४
९. प० ११९।२ १०. प० ११९।७ ११. प० १२२।३ १२. प० १२२।४
१३. प० १२२।७ १४. प० १२३।१ १५. प० १२४।३ १६. प० १४५।२

१७. दिया सो काज दुहूँ जग आवा । इहाँ जो दिया उहां सो पावा ।[१]
१८ पेम क लुबुध दगध पै सहा ।[२]
१९ मानुस पेम भएउ बैकुंठी । नाहिं त काह छार एक मूंठी ।[३]
२० जो हहिं नेह के बाउर ना तिन्ह धूप न छांह ।[४]
२१ मूरुख सो जो मतै घर नारी ।[५]
२२. किछु न कोइ लै जाइहि दिया जाइ पै साथ ।[६]
२३ सदा ऊंच सेइय पै बारू । ऊंचे सौं कीजै बेवहारू ।
ऊँचे चढ़े ऊँच खंड सूझा । ऊँचे पास ऊँचि बुधि बूझा ।
ऊंचे संग संग निति कीजै । ऊंचे काज जीव बलि दीजै ।
दिन दिन ऊंच होइ सो जेहि ऊंचे पर चाउ ।
ऊंचे चढ़त परिअ जौ ऊंच न छाडिअ काउ ।[७]

२४. पेमहि माहं बिरह औ रसा । मैन के घर मधु अंब्रित बसा ।[८]
२५ माटी मोल न किछु लहै औ माटी सब्र मोल ।
दिस्टि जो मांटी सो करै मांटी होइ अमोल ।[९]
२६. जौ लगि जिउ आपन सब कोई । बिनु जिउ सबै निरापन होई ।
भाइ बन्धु औ लोग पियारा । बिनु जिय घरी न राखै पारा ।[१०]
२७. जौ सत हिएं तौ सीतल आगी ।[११]
२८. बसै मीन जल धरती, अंबा बिरिख अकास ।
जौ रे पिरीत दुहुन महं, अंत होहिं एक पास ।[१२]
२९. परिमल पेम न आछै छपा ।[१३]
३०. जोग तंत जेउँ पानी काह करै तेहि आगि ।[१४]
३१ उलटा पंथ पेम के बारा । चढ़ै सरग जौं परै पतारा ।[१५]
३२ जहाँ गाढ़ ठाकुर कहं होई । संग न छाड़ै सेवक सोई ।[१६]
३३. जेहि जिय पेम पानि भा सोई । जेहि रग मिलै तेहि रग होई ।[१७]
३४. पुरुष गभीर न बोलहिं काऊ । जौ बोलहिं तौ ओर निबाहू ।[१८]
३५. रतन छिपाए ना छिपै पारखि होइ सो परीख ।[१९]
३६. मानुस साज लाख मन साजा । साजा बिधि सोई पै बाजा ।[२०]

---

१. प० १४५।४ २ प० १५२।१ ३ प० १६६।२ ४. प० १५१।६
५. प० १३२।१ ६. प० १४५।६ ७ प० १६३।५-६ ८ प० १६६।३
९. प० १६६।८-९ १०. प० १९६।४-५ ११ प० १७३।४ १२. प० १८१।८-९
१३. प० २११।२ १४ प० २२१।६ १५. प० २२६।६ १६ प० २४२।४
१७. प० २४३।३ १८. प० २५२।७ १९. प० २६६।८ २०. प० २७४।७

३७ जो पिय आएसु सोइ पियारी ।[१]

३८ साहस जहाँ सिद्धि तहं होई ।[२]

३९ ओछ जानि कै काहूँ जनि कोइ गरब करेइ ।
ओछै पारइ दैय है जीतपत्र जो देइ ।[३]

४०. चंपा प्रीति जो बेलि है दिन दिन आगरि बास ।
गरि गुरि आपु हेराइ जौं मुएहु न छाँड़ै पास ।[४]

४१ पुरुष क बोल सपत औ बाचा ।[५]

४२. दिन दस जल सूखा का नंसा । पुनि सोइ सरवर सोई हसा ।[६]

४३ तपनि मिरगिसिरा जे सहहिं अद्रा ते पलुहंत ।[७]

४४. बिरह कि आगि कठिन असि मंदी ।[८]

४५. थल थल नग न होइ जेहि जोती । जल जल सीप न उपनै मोंती ।
बन बन बिरिख चंदन नहिं होई । तन तन बिरह न उपजै सोई ।[९]

४६. तासौं दुख कहिए हो बीरा । जेहि सुनि कै लागै परपीरा ।[१०]

४७ जौ जिय काढ़ि देइ इन्ह कोई । जोगी भंवर न आपन होई ।[११]

४८ दरब त गरब लोभ बिख मूरी । दत्त न रहै सत्त होइ दूरी ।
दत्त सत्त एइ दूनौ भाई । दत्त न रहै सत्त पुनि जाई ।
जहाँ लोभ तहं पाप संघाती । सँचि के मरै आनि कै थाती ।[१२]

४९ लोभ न कीजै दीजै दानू । दानहि पुन्य होइ कल्यानू ।[१३]

५०. सांठें रहै सुधीनता निसठें आगरि भूख ।
बिनु गथ पुरुष पतंग ज्यो ठाठ ठाढ़ पै सूख ।[१४]

५१. यह मन ऐंठा रहै न सूधा । बिपति न संवरै संपतिहि लुबुधा ।[१५]

५२. ग्यान सो परमारथ मन बूझा ।[१६]

५३. कवि कै जीभ खरग हिरवानी ।[१७]

५४. जेहि सत हिएं कहाँ तेहि आंसू ।[१८]

५५. सहस बार जौ धोवहु तबहुं गयंदहि पंक ।[१९]

५६. मुहमद नीर गंभीर जो सो नै मिलै समुंद ।
भरे ते भारी होइ रहे छूंछे बाजहिं दुंद ।[२०]

---

१. प० ३०१।५ २. प० १४६।३ ३ प० २६६।८-९ ४ प० ३११।८-९
५. प० ३१३।१ ६. प० ३४३।७ ७ प० ३४३।६ ८. प० ३३५।४
९. प० ३११।१-२ १० प० ३६१।१ ११ प० ३७३।५ १२ प० ३८६।५
१३. प० ३८७।२ १४ प० ४२०।८-९ १५. प० ४२२।४ १६ प० ४४६।५
१७ प० ४५०।४ १८ प० ५३१।७ १९. प० ५३९।६ २० प० ५५१।८-९

५७. मूल गए संग रहै न पातू ।[1]
५८. चंद जो बसै चकोर चित नैनन्ह आव न सूर ।[2]
५९. मंदहि भल जो करै भलु सोई । अतहु भला भले कर होई ।
सतुरु जो बिख दै चाहै मारा । दीजै लोनु जानु बिख सारा ।[3]
६०. जो छर करै ओहि छर बाजा ।[4]
५१. लीक पखान पुरुष कर बोला ।[5]
६२. दुख जारै दुख भूंजै दुख खोवै सब लाज ।
गाजहि चाहि गरुव दुख दुखी जान जेहि बाज ।[6]
६३ जाकर सत्त सुमेरु है लागै जगत न डोल ।[7]
६४. मुहमद बिरिध जो नै चलै काह चलै भुइं टोइ ।
जोबन रतन हेरान है मकु धरती महं होइ ।[8]
६५. केतौ धाइ मरै कोइ बाटा । सो पै पाव जो लिखा लिलाटा ।
जो पै लिखा आन नहिं होई । कत धावै कत रोवै कोई ।[9]
६६. कत कोइ इंछ करै औ पूजा । जो बिधि लिखा सो होइ न दूजा ।[10]
६७ तिरिया पुहुमि खरग कै चेरी । जीतै खरग होइ तेहि केरी ।[11]
६८. देवन्ह चलि आई असि आँटी । सुजन कंचन दुर्जन भा मांटी ।[12]
६९ कंचन जुरै भए दस खंडा । फूटि न मिलै मांटी कर भंडा ।[13]
७० लोभ पाप कै नदी अंकोरा । सत्तु न रहै हाथ जस बोरा[14]
७१ फूल मरै पै मरै न बासू ।[15]
७२ भंवर आइ बनखंड हुति लेहि कंवल कै बास ।
दादुर बास न पावहिं भलेहिं जो आछहिं पास ।[16]
७३. छर कीजै बर जहाँ न आंटा । लीजै फूल टारि कै कांटा ।[17]
७४. सुभर सरोवर जौ लहि नीरा । बहु आदर पंखी बहु बीरा ।[18]
७५ बिरिध जो सीस डोलावै, सीस धुनै तेहि रीस ।
बूढे आढ़े होहु तुम्ह केइं यह दीन्ह असीस ।[19]

जायसी ने कुछ सूक्तियां सस्कृत तथा फारसी आदि से भी ले ली है, यथा—

थल थल नग न होइ जेहि जोती । जल जल सीप न उपनै मोती ।
बन बन बिरिख चंदन नहिं होई । तन तन बिरह न उपजै सोई ।[20]

---

१ प० ५५८।७ २ प० ५५६।९ ३ प० ५५९।२-३ ४ प० ५५९।७
५. प० ५६६।५ ६ प० ५८०।८-९ ७ प० ५८५।९ ८ प० ५८६।८-९
९. प० ५८८।४-५ १० प० ५८८।६ ११ प० ६१८।४ १२. प० ६२१।५
१३ प० ६२१।६ १४. प० ६२४।१ १५. प० ६५२।७ १६. प० २४।८-९
१७. प० ५७४।४ १८. प० ५९३।४ १९. प० ६५३।८-९ २०. प० ३११।१-२

उक्त सूक्ति पर संस्कृत के निम्नलिखित श्लोक का प्रभाव स्पष्ट है—

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने॥

एक अन्य उदाहरण देखिए—

भंवर जो पावा कँवल कहं, मन चिंता बहु केलि।
आइ परा कोइ हस्ति तहं, चूरि गएउ सब बेलि॥[1]

उल्लिखित पंक्तियो की तुलना इन पंक्तियो से कीजिये—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं। भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्री।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे। हा हन्त हन्त नलिनी गज उज्जहार॥

कही-कही फारसी कहावतो की छाया भी दिखाई पडती है जैसे—

(क) निअरहि दूरि फूल संग कांटा। दूरि जो निअरै जस गुर चाँटा।[2]
फ़ारसी— दूरा बा-बसर नजदीक वा नजदीकां बेबसर दूर।

अर्थात् दृष्टिवाले के लिए दूर भी नजदीक और बिना दृष्टि वाले को नजदीक भी दूर है।

(ख) परिमल पेम न आछै छपा।[3] **फारसी— इश्क वा मुश्क रा नतवां नहुफ्तन।**

अर्थात् प्रीति और कस्तूरी छिपाए नही छिपती। इन फारसी तथा संस्कृत सूक्तियो के भाव-ग्रहण से जायसी की उदारग्राहिणी बुद्धि के दर्शन होते है। इन तथा अन्य सूक्तियो के प्रयोग से कवि की भाषा की व्यंजकता मे अधिक तीव्रता आ गई है। उक्त सूक्तियो मे प्रयुक्त वाक्यावली सीधी-सादी और अनलंकृत है फिर भी उसमे सहज-चमत्कार और कवि-सुलभ भावुकता का सौन्दर्य दर्शनीय है।

कहावतो के प्रयोग : मुहावरो के समान ही कहावतें भी भाषा को सजीवता तथा सामर्थ्य प्रदान करती है। इनकी सबसे बडी भाषात्मक विशेषता समास या सूत्र-पद्धति है। आकार मे छोटी होते हुए भी ये विशाल भाव-राशि का भंडार होती है। जायसी-काव्य* मे इनका प्रयोग स्थल-स्थल पर हुआ है किन्तु कवि ने इन्हे ठूसने की चेष्टा कही भी नही

---

१. प० ३५६।८६ २ प० २४।७ ३ प० २११।२

*जायसी रचित 'मसलानामा' भी लोकोक्तियों का सुन्दर संकलन है। उक्त कृति की प्रत्येक पंक्ति में कोई न कोई कहावत या लोकोक्ति प्रयुक्त है और यह निर्विवाद है कि इस कृति के प्रकाश मे आने से अवधी बोली और अवध जनपद की लोकोक्तियो का एक महत्वपूर्ण भण्डार प्रकाश में आया है। कहावतों के आधार पर इस प्रकार उपदेशमूलक दृष्टान्तों के उपस्थापन से सम्बद्ध यह ग्रंथ हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व का है।

की है अत इनके प्रयोग से भाषा-प्रवाह मे व्यवधान कही भी नही पडता वरन् उक्तियो मे तीव्रता, स्वाभाविकता तथा लालित्य का ही समावेश हो गया है। यहाँ उदाहरण रूप मे कुछ कहावते जायसी-काव्य से उद्धृत की जा रही है :—

१. बोवै बबुर लवै कित धाना ।[१]
२. सोइ सोहागिनि जाहि सोहागू ।[२]
३ आपु मरे बिन सरग न छुवा ।[३]
४ खांड़ा दुइ न समाहिं मुहमद एक मियान महं ।[४]
५. जेहि सरवर महं हंस न आवा । बकुली तेहि जल हंस कहावा ।[५]
६ लोनी सोइ कंत जेहि चहा ।[६]
७ दिनहिं न पूजै निसि अंधियारी ।[७]
८. मुख कह आन पेट बस आना ।[८]
९. मारि न जाइ चहै जेहि सामी ।[९]
१०. तुरै रोग हरि माथे जाई ।[१०]
११. उलू न जान देवस कर भाऊ ।[११]
१२ अस बड़ बोल जीभ कह छोटी ।[१२]
१३ कान टूट जेहि अभरन का लै करब सो सोन ।[१३]
१४. निकसै न घिउ बाजु दधि मथै ।[१४]
१५. पुनि किछु हाथ न लागिहि मूंसि जाहिं जब चोर ।[१५]
१६. अब का कहं हम करब सिंगारू ।[१६]
१७. फूल सोइ जो महेसहिं चढै ।[१७]
१८. मुए केर मीचुहि का करई ।[१८]
१९ नग कर मरम सो जरिया जाना ।[१९]
२०. को अस हाथ सिंघ मुख घाला ।[२०]
२१ रोगिआ की को चालै बैदहि जहां उपास ।[२१]
२२. जौ पीसत घुन जाइहि पीसा ।[२२]
२३ सुन्दरि जाइ राजघर जोगिहि बंदर काट ।[२३]
२४. नितिहिं जो पाहन भख करहि अस केहि के मुख दांत ।[२४]

---

१. अख० १९।७ २. अख० २२।५ ३. अख० ३५।७ ४. अख० ४७।११
५. प० ८४।२ ६ प० ८४।५ ७ प० ८४।६ ८. प० ८५।६
९ प० ८६।२ १० प० ८६।७ ११. प० ८७।५ १२ प० ८७।६
१३ प० ८७।९ १४. प० १२४।१ १५. प० १२४।९ १६ प० १३३।४
१७. प० १४१।२ १८ प० १४२।२ १९ प० १७९।६ २०. प० १७९।७
२१. प० २०३।९ २२. प० २२०।१ २३. प० २२०।९ २४. प० २२२।९

२५. जेहि न पीर तेहि काकरि चिंता ।[1]
२६ एक दिसि आगि दोसर दिसि सीऊ ।[2]
२७ घर कै भेद लंक असि टूटी ।[3]
२८ बीरौ लाइ न सूखै दीजै । पावै पानि दिस्टि सो कीजै ।[4]
२९ गूंग कि फूंक न बाजइ बंसू ।[5]
३० जोगी पानि आगि तुइं राजा । आगिहि पानि जूझ नहिं छाजा ।[6]
३१ एक बार जो पी कै रहा । सुख जेंवन सुख भोजन कहा ।[7]
३२. फूल मुएउ पै मुई न बासा ।[8]
३३. दरब रहै भुइं दिपै लिलारा ।[9]
३४. चाँटिहि उठै मरन कै पांखा ।[10]
३५. सोइ सिंगार पांच भल कहा ।[11]
३६ करनी सार न कथनी कथा ।[12]
३७ सूधी अंगुरि न निकसै घीऊ ।[13]
३८ जो अंबिली बांकी हिय माहां । तेहि न भाव नारंग कै छाँहां ।[14]
३९ कंगन हाथ होइ जहं तहं दरपन का साखि ।[15]
४०. ताहि सिंघ कै गहै को मोंछा ।[16]
४१ जहं बीरा तहं चून है पान सुपारी काथ ।[17]
४२ गंगन धरति जेइ टेका का तेहि गरुअ पहार ।[18]
४३. पाहन कर रिपु पाहन हीरा ।[19]
४४. नाइत मांझ भंवर हति गीवां ।[20]
४५. बैठि सिंघासन गूंजै सिंघ चरै नहिं घास ।
जौ लहि मिरिग न पावै भोजन गनै उपास ।[21]
४६ सो कत पूज सिंघ सरि भालू ।[22]
४७ कनउड़ झार न मांथ ।[23]
४८ पिता मरै जो सारैं साथें । मींचु न देइ पूत के मांथे ।[24]
४९ सिंघ जियत नहि आपु धरावा । मुएं पार कोई घिसियावा ।[25]
५० सिंघ की मोंछ हाथ को मेला ।[26]

---

१ प० २२५।३ २ प० २५५।२ ३. प० ३७६।२ ४. प० ३७६।३
५ प० २६३।३ ६ प० २६३।७ ७ प० ३१९।६ ८ प० ३९७।७
९ प० ३८८।७ १० प० ४३८।७ ११ प० ४४६।७ १२ प० ४०६।५
१३ प० ४०६।६ १४ प० ४३४।७ १५ प० ४८२।९ १६ प० ४९१।७
१७ प० ५०१।९ १८. प० ५०३।८ १९. प० ५३३।५ २०. प० ५३७।६
२१ प० ५६३।८-९ २२. प० ५९९।२ २३ प० ६२३।९ २४ प० ६२७।२
२५ प० ६३४।६ २६ प० ६३४।५

इन सभी कहावतो की भाषा गठी हुई है। एक भी भरती का शब्द प्रयुक्त नही हुआ है और थोडे से शब्दो मे बड़ा आशय व्यक्त किया गया है। एकाध कहावतो का एक अन्य दृष्टि से विशेष महत्व है, यथा—

नाइत मांझ भंवर हति गीवां।

यहाँ 'नाइत' शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह शब्द 'सामुद्रिक व्यापारी' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है और वर्तमान अवधी मे इसका प्रयोग दुर्लभ है। जायसी-काव्य मे भी एक लोकोक्ति मे जडा रहने के कारण यह शब्द जीवित बना रहा है और भाषा के प्राचीन इतिहास का सकेत करता है। इस प्रकार के शब्द-रत्न को युग-युग तक सुरक्षित रखने मे जायसी द्वारा प्रयुक्त कहावतों का भी योगदान है।

वाक्यान्तर्गत प्रयुक्त भाषा का अध्ययन ऊपर जिन रूपो मे किया गया है वे कवि की भाषा के विविध कलात्मक पहलुओ पर सम्यक् प्रकाश डालते हैं। सच तो यह है कि जायसी की भाषा के सभी अगो–वर्ण, शब्द, वाक्याश तथा वाक्य– मे अपना अपना सौन्दर्य है और उनका सश्लिष्ट रूप ऐसी आभा छिटकाता है जो सहृदयो को सहज ही मुग्ध कर लेती है।

ऊपर हमने भाषा के विविध अगो का पृथक्-पृथक् उल्लेख करते हुए जायसी की भाषा के तत्सम्बन्धी प्रयोगो की गुण-दोष विवेचना की है। इस विवेचना के उपरान्त भी उनकी भाषा के सश्लिष्ट रूप की कतिपय विशेषताए–सहजता, समर्थता, मधुरता, एकरूपता, चित्रात्मकता, अल्पाक्षरविशिष्टता, कान्ति तथा मसृणता– अकथित ही रह गई हैं, अतएव सक्षेप मे उनका सकेत भी यहाँ समीचीन होगा।

सहजता कवि का उद्देश्य भावो अथवा व्यापारो का प्रभावशाली तथा मार्मिक चित्रण करना होता है, साथ ही उसका अभिप्रेत यह भी होता है कि अभीष्ट भाव या व्यापार की अनुभूति पाठक या श्रोता को जितनी जल्दी हो सके उतना ही अच्छा, देर होने से अनुभूति मे विघ्न ही पडता है। कुशल कवि इसीलिए विविध भावो, व्यापारो अथवा तथ्यो को इस रूप मे प्रस्तुत करते है कि सहृदयो को उन्हे हृदयगम करने मे किसी प्रकार की कठिनाई न हो। मार्मिक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए सहज और सुबोध भाषा का इसी कारण विशेष महत्व है। जायसी के काव्य मे ऐसे स्थलो का अभाव नही है जहाँ कवि ने सरल और सहज भाषा मे भावो तथा व्यापारो की अत्यन्त प्रभावशालिनी अभिव्यजना की है। कवि की सरल तथा सुबोध शब्दावली के बहुत से उदाहरण प्रस्तुत प्रबन्ध मे अनेक स्थलो पर दिये जा चुके है अत यहाँ एकाध उदाहरण ही पर्याप्त होगे। निम्नलिखित पक्तियो मे विरहिणी नागमती के मनोभावो का सुबोध चित्रण कितनी सहज किन्तु मार्मिक भाषा मे किया गया है—

१ रकत ढरा माँसू गरा हाड़ भए सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई आइ समेटउ पंख।[1]

---

१ प० ३५०।८-९

२ यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग होइ परौं कंत धरै जहं पाउ।[1]

उक्त पक्तियो की सहजता स्वयसिद्ध है। जायसी ने, इने-गिने स्थल छोड कर (वे स्थल, जहाँ कवि आलकारिकता अथवा आध्यात्मिकता के मोह मे पड गया है) अधिकाशत इसी प्रकार की सहज भाषा मे भावो की अभिव्यक्ति की है।

समर्थता सहज तथा सुबोध होने के साथ-साथ जायसी की भाषा मे भावाभिव्यजना की समर्थता का गुण भी विद्यमान है। उदाहरण के लिए यह पक्तिया द्रष्टव्य है—

तपै लाग अब जेठ असाढ़ी। भै मोकहं यह छाजनि गाढ़ी।
तन तिनुवर भा झूरौं खरी। भै बिरहा आगरि सिर परी।
सांठि नाहिं औ कंध न कोई। बाक न आव कहौं केहि रोई।
ररि दूबरि भई टेक बिहूनी। थभ नाहिं उठि सकै न थूनी।
बरिसहिं नैन चुवहिं घर माहां। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाहां।
कोरे कहाँ ठाठ नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा।
अबहूँ दिस्टि मया करु, छान्हिन तजु घर आउ।
मंदिल उजार होत है, नव कै आनि बसाउ।[2]

ठेठ अवधी भाषा के लोक-प्रचलित इन सहज शब्दो मे श्लेष के माध्यम से जो मर्थता और चमत्कार-शक्ति भर दी गई है वह अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। भाषा सहज किन्तु ोधे हृदय को स्पर्श करती है। एक अन्य उदाहरण देखिए—

मुहमद बिरिध बएस अब भई। जोबन हुत सो अवस्था गई।
बल जो गएउ कै खीन सरीरू। दिस्टि गई नैनन्ह दै नीरू।
दसन गए कै तुचा कपोला। बैन गए दै अनरुचि बोला।
बुद्धि गई हिरदै बौराई। गरब गएउ तरहुड़ सिर नाई।
सरवन गए ऊँच दै सुना। गारौ गएउ सीस भा धुना।
भंवर गएउ केसन्ह दै भुवा। जोबन गएउ जियत जनु मुवा।
तब लगि जीवन जोबन हाथा। पुनि सो मींचु पराए हाथा।
बिरिध जो सीस डोलावै, सीस धुनै तेहि रीस।
बूढ़े आढ़े होहु तुम्ह केइँ यह दीन्ह असीस।[3]

कवि ने कितनी सुन्दरता से लोक-व्यवहार की अवधी मे वृद्धावस्था का सजीव ात्र अंकित किया है। प्रयुक्त सरल शब्दो मे अत्यधिक व्यजकता है। जायसी के काव्य मे ा प्रकार के सैकडो उदाहरण सहज ही उपलब्ध हो सकते है जहाँ भाव भाषागत ामर्थ्य के कारण अत्यन्त मर्मस्पर्शी हो गए है।

---

1 प० ३५२।८-९ 2. प० २५६।१-९ 3 प० ६५३।१-९

मधुरता : जायसी की भाषा यद्यपि अधिक परिष्कृत, साहित्यिक तथा संस्कृतनिष्ठ नही है तथापि उसका लालित्य हृदयग्राही है। वह श्रुतिमधुर है। उसमे ठेठ अवधी की रस-माधुरी झलकती है। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो मे "वह माधुर्य 'भाषा' का माधुर्य है, संस्कृत का माधुर्य नही।"[१] जायसी की पहुच अवध की लोक-भाषा के माधुर्य-स्रोत तक थी और वही माधुर्य उसकी रचनाओ मे भी अबाध गति से प्रवाहित होता है। इस माधुर्य का रसास्वादन कराने के हेतु एक अश यहाँ उद्धृत किया जाता है—

पदुमावति बिनु कत दुहेली। बिनु जल कंवल सूखि जसि बेली।
गाढि प्रीति पिय मो सो लाए। ढीली जाइ निचिंत होइ छाए।
कोइ न बहुरा निबहुर देसू। केहि पूछौं को कहै संदेसू।
जो गौनै सो तहाँ कर होई। जो आवै कछु जान न सोई।
अगम पथ पिय तहाँ सिधावा। जो रे जाइ सो बहुरि न आवा।
कुआ ढार जल जैस बिछोवा। डोल भरे नैनन्ह तस रोवा।
लेंजुरि भई नांह बिनु तोही। कुवां परी धरि काढ़हु मोही।
नैन डोलै भरि ढारै हिए न आगि बुझाइ।
घरी घरी जिउ बहुरै घरी घरी जिउ जाइ।[२]

यहाँ दुहेली, बेली, निबहुर, अगम पंथ, बहुरि, कुआँढार तथा लेजुरि आदि शब्दो मे निराला माधुर्य है जो वर्णन को अत्यन्त रसमय बना देता है। जायसी-काव्य मे इसी प्रकार का माधुर्य सर्वत्र प्राप्त होता है।

एकरूपता जायसी के भाषा-सौन्दर्य मे उसकी एकरूपता का भी महत्व है। लगभग समस्त काव्य मे सामान्यत एक जैसी सरल, मधुर तथा सुबोध भाषा का व्यवहार हुआ है। उसमे संस्कृत की कोमलकात पदावलियो का अभाव है। वह लोक-भाषा है, लोकभूमि पर बहने वाली जन-वाणी-गगा का सौम्य प्रवाह है। भाषा की यह रूप-छटा उसके आकर्षण को और भी बढा देती है।

चित्रात्मकता : अपने हृत्पट पर अकित विभिन्न चित्रों को अध्येता के मन मे शब्दो के माध्यम से उतार देना जायसी जैसे प्रतिभावान कवि के लिए दुष्कर न था। उनकी शब्दावली अनायास ही अनेक मनोरम भाव-चित्रो का अकन करती चलती है। इस चित्राकन मे कवि के शब्द-विन्यास ने रूढ काव्यशास्त्रीय परम्पराओ का अनुसरण नही किया है वरन् वह कवि की भावग्राहिणी छन्द-योजना के उन्मुक्त प्रवाह मे निखरता चला है। उसका वैशिष्ट्य किसी प्रकार के बाहरी सजाव-सिंगार मे नही वरन् ठेठ अवधी की बोलचाल की मिठास मे ही अपनी सम्पूर्ण क्षमता के साथ उद्घाटित हुआ है। प्रकृत भाषा-शक्ति की संजीवनी के योग से ही जायसी की प्रतिभा स्थूल विवरणों के प्रसंग मे भी अनूठे भावचित्र खीचने मे समर्थ हुई है।

---

१. जायसी-ग्रन्थावली भूमिका, पृ० २०५। २. प० ५८।१-६

शेरशाह के राज्य मे न्याय और समृद्धि के वर्णन के सहारे जायसी का राज्यादर्श प्रस्तुत करने वाली निम्नलिखित पक्तिया इस दृष्टि से उल्लेखनीय है

१. परी नाथ कोइ छुअइ न पारा। मारग मानुस सोन उछारा।[1]
२. सेरसाहि सरि पूज न कोऊ। समुंद सुमेर घटहिं नित दोऊ।
दान डांक बाजइ दरबारा। कीरति गई समुद्रहं पारा।
कचन बरिस सोर जग भएऊ। दारिद भागि देसंतर गएऊ।[2]

'**परी नाथ कोइ छुअइ न पारा**' मे प्रजा की चारित्र्य-सम्पन्नता और राजा की न्याय-पटुता, '**मारग मानुस सोन उछारा**' मे जनता की आर्थिक समृद्धि, रत्नाकर '**समुंद**' और स्वर्णाकर '**सुमेर**' के नित्य घटने के वर्णन मे राजा की असाधारण दानशीलता, '**कीरति गई समुद्रहं पारा**' मे दानी राजा के यश-विस्तार तथा '**दारिद भागि देसंतर गएऊ**' में अर्थाभाव के नितान्त अभाव की जो व्यजना हुई है उसमे जायसी के भाव-चित्रो के अकन की शक्ति झलकती है। इसी प्रकार सिहल गढ की असीम ऊंचाई और उसकी बॉकी खाई की अतल गहराई के वर्णन मे—

कांपै जांघि जाइ नहिं झांका।[3]

तथा घोडो की सजीव मुद्रा के अकन मे—

थिर न रहहिं रिस लोह चबाहीं। भांजहिं पूंछि सीस उपराहीं।[4]

जैसी अकृत्रिम तथा वेगवती भाषा के माध्यम से भावो तथा दृश्यो का जो सप्राण चित्रण बन पडा है वह देखते ही बनता है।

अल्पाक्षरविशिष्टता : कही-कही जायसी ने इन शब्द-चित्रो का अंकन करने मे बडी कृपणता से काम लिया है। जहा चार शब्द कहने की आवश्यकता है वहाँ उन्होने एक ही शब्द से काम चला लेना चाहा है। ऐसे स्थलो पर उन्होंने कल्पनाजनित चित्र की रेखाओ को अपने मन मे रखते हुए उसके उतने ही अश के लिए शब्दो का प्रयोग किया है जितना पाठक के मन मे चित्र की रूप-रेखा उभारने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार की न्यून शब्द-योजना से जायसी के अनेक चित्रो के रग उभर ही नही पाए है और उनका पूर्ण आनन्द लेने के लिए पाठक को अपनी ओर से रग भरने पडे है। एक ऐसा ही स्थल यहाँ प्रस्तुत है जिसमे जायसी ने अपनी चित्रग्राहिणी शक्ति से नायिका के विकसित सौन्दर्य का अत्यन्त भव्य चित्र न्यूनतम शब्दो द्वारा अकित किया है—

पदुमावति भै पूनिवं कला। चौदह चाँद उए सिंघला।
सोरह करा सिंगार बनावा। नखतन्ह भरे सुरुज ससि पावा।[5]

---

१. प० १५।४ २. प० १७।३-५ ३. प० ४०।३ ४. प० ४६।७
५. प० ३३८।२-३

यहाँ जायसी का आशय यह है कि शरद ऋतु के आकाश मे खिला हुआ चन्द्रमा ही पद्मावती बन गया। पूर्णिमा का चन्द्र मुख बन गया और उससे पहले की तिथियो मे उदित चौदह चन्द्रमाओ से पद्मावती के दूसरे अगो का लावण्य बढा। पूर्णिमा को चन्द्रमा की पद्रह कलाएं पूरी हो जाती है किन्तु चन्द्रमा मे सोलह कलाए मानी जाती हैं। नक्षत्रो की वह सम्मिलित ज्योति ही सोलहवी कला हुई। पद्मावती पक्ष मे अर्थ यो निकाला जा सकता है कि अंगो और मुख की परिपूर्ण शोभा से युक्त होने पर भी उसने (पद्मावती ने) आभूषणो का जो शृगार किया उसी से उसमे सोलहवी कला की आभा उत्पन्न हो गई। इस प्रकार नक्षत्रो के साथ सोलह कला-सम्पन्न पद्मावती रूपी चन्द्रमा को रत्नसेन रूपी सूर्य ने प्राप्त किया। एक दूसरा उदाहरण लीजिए। पद्मावती की सुहागरात के अगले दिन सखियाँ उससे प्रश्न करती हैं—

चदन चौंप पवन अस पीऊ। भइउ चतुरसम कस भा जीऊ।[1]

अर्थात् 'स्त्री रूपी चदन की चोंप अथवा स्वल्प रस को भी यदि प्रिय पा जावे तो वह उसे लेने के लिए पवन के समान दौडता है। तुम तो पद्मिनी होने के कारण साक्षात् चतुरसम सुगन्धि थी। भला पति ने तुम्हारे साथ क्या न किया होगा ? बताओ तो कि तुम पर क्या बीती ?' कवि ने अपनी सक्षिप्त शैली के अनुसार यहाँ केवल 'चदन चोप' ही कहा है। 'स्त्री रूपी चदन रस' यह व्याख्या अध्येता को स्वय करनी पडती है। इस प्रकार जायसी ने कही-कही एक शब्द, अपूर्ण शब्द या पद के द्वारा बहुत कुछ कह डालना चाहा है और यह अल्पाक्षर-योजना उनकी भाषा की महत्वपूर्ण विशेषता है।

कान्ति तथा मसृणता कुशल कवि शब्द-चयन के उपरान्त शब्दो को अपनी खराद पर चढा कर चमका देते है। इस प्रक्रिया से शब्द का खुरदरापन जाता रहता है और उसमे निखार आ जाता है। जायसी की दृष्टि रीतिकालीन कवियो की भाँति भाषा के परिष्कार पर नही थी अतएव उनकी भाषा मे वह सजावट नही आ पाई है जो रीति-युग की भाषा का शृगार है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि अवधी की प्रकृति के अनुसार 'श' को 'स', 'ण' को 'न', 'व' 'को' 'ब' तथा सयुक्ताक्षरो को पूर्णाक्षर बना कर जायसी ने बोली के माधुर्य को सुरक्षित रखा है।

समष्टि रूप मे यह कहा जा सकता है कि जायसी की भाषा की समर्थता उत्कृष्ट कोटि की है। वह श्रुतिमधुर, सरल किन्तु व्यजनापूर्ण तथा माधुर्यपूरित है। उसमे हमे तत्कालीन लोक-भाषा की ताजगी और मिठास मिलती है। प्रसंगानुकूल भाषा के विविध रूपो का प्रयोग कवि ने किया है और सभी पर उसका अधिकार रहा है। अवधी भाषा की उस प्रारम्भिक अवस्था मे उसका जैसा शृगार जायसी ने अपनी समर्थ तूलिका से किया वैसा तुलसीदास को छोड कर हिन्दी का कोई अन्य कवि नही कर सका है।

---

१. प० ३२३।७

७

जायसी की भाषा और लोक-जीवन

भाषा और लोक का सम्बन्ध अविच्छिन्न है। लोक-जीवन के विविध अगो से सम्बद्ध शब्द समय-समय पर आवश्यकता के अनुसार उत्पन्न तथा प्रयुक्त होते रहते है। यह शब्द अमर नही होते। युग के परिवर्तन के साथ-साथ यह भी विकृत और परिवर्तित होते रहते है और कभी-कभी पूर्णरूपेण अनुपयोगी होने पर नष्ट भी हो जाते है, किन्तु यदि सयोग से यह किसी उत्कृष्ट साहित्यकार के कृपापात्र हो जाते है तो इन्हे अक्षय जीवन मिल जाता है। उसकी रचना मे स्थान पाकर यह युगो तक अपने काल की वस्तुओ, क्रियाओ तथा सस्थाओ आदि के स्मारक बन, पुरातत्व के अवशेषो की भाति अतीत जीवन का स्मरण कराया करते हे। सास्कृतिक दृष्टि से इस प्रकार की शब्दावली का महत्व कम नही है, किन्तु उसके वास्तविक सौन्दर्य तथा महत्व का उद्घाटन तभी सम्भव है जब हम स्वय भी कल्पना के द्वारा उनके युग मे जाने का प्रयास करे। शब्दो पर समय की धुन्ध धीरे-धीरे छाती रहती है और उनका वास्तविक अर्थ हमारी दृष्टि मे धुधला पडकर ओझल होने लगता है। जब तक उस जमी हुई काई को हटाया न जाय, तब तक पूर्ण रसास्वादन सम्भव नही। बीसवी शताब्दी की मान्यताओ तथा परिभाषाओ के अनुसार सोलहवी शती के कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दो के सौन्दर्य-बोध का प्रयास कवि के साथ अन्याय करना ही होगा। तत्कालीन वातावरण की पृष्ठभूमि मे ही तत्सम्बन्धित शब्दो के विशिष्ट प्रयोग और महत्व को समझा जा सकता है। साहित्यकार की कृति मे इन शब्दो का प्रवेश कैसे हो जाता है, यह भी बडा रोचक विषय है। प्रत्येक मनुष्य अपने युग की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा सास्कृतिक परिस्थितियो से थोडा बहुत परिचित होता ही है फिर साहित्यकार का क्या कहना। समाज का सबसे अधिक भावुक तथा सहृदय प्राणी होने के नाते वह सामान्य मनुष्य की अपेक्षा प्रत्येक घटना, दशा तथा स्थिति के प्रति अधिक सवेदनशील होता है। जगत् तथा जीवन के अनवरत सम्पर्क और प्रभाव के कारण उसके मानस-पटल पर जो अनुभूतिया ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से, धूमिल किंवा स्पष्ट रूप से अकित हो जाया करती है, उन्ही की अभिव्यक्ति हृदय की गहराइयो के बांध तोड, उसकी रचना मे अनायास ही प्रवाहित हो चलती है। इसी साहित्य-सरिता मे ऐसे शब्द-रत्न भी बह आते हैं, जिन्हे प्राप्त कर ज्ञान की सारी दरिद्रता नष्ट हो जाती है। ऐसे उल्लेख अध्येता के सम्मुख अपने युग के लोक-जीवन का जीता-जागता चित्र उपस्थित कर देते हैं। इनके द्वारा पाठक के सम्मुख अतीत फिर से नया ससार बन आ खडा होता है। जायसी

का काव्य इसी प्रकार के उल्लेखो का भंडार है। पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी के भारतीय जीवन की ऐसी सुन्दर, अविकल, प्रभविष्णु तथा जीवन्त प्रतिकृति साहित्य मे अन्यत्र दुर्लभ ही है। इसी विशेषता को लक्ष्य करके डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने जायसी के सम्बन्ध मे कहा है .

"अपने समय के लोक जीवन, साहित्य और संस्कृति के उदार अन्तराल में भरे हुए शब्दो तक कवि की अव्याहत गति थी।"[१]

जायसी ने नागरिक तथा ग्राम्य –दोनो प्रकार के– जीवन सबधी महत्वपूर्ण चित्र अंकित किए है। पद्मावत की घटना-स्थली प्राय नगर-भूमि ही रही है। उसमे सिंहलनगर, चित्तौड तथा दिल्ली का प्रमुखतया उल्लेख है। इन स्थानो के प्रसग मे कवि ने तत्कालीन नागरी सभ्यता और सस्कृति का सुन्दर परिचय दिया है। इनके साथ ही ग्राम्य-जीवन से सम्बद्ध शब्दावली भी जायसी के काव्य मे प्राप्त होती है जो इस बात का ठोस प्रमाण है कि जायसी जन-कवि थे। वस्तुत उनकी लोक-दृष्टि इतनी सजग थी कि उन्होने राज-परिवार के मध्य भी साधारण जीवन की झाँकी देखी है। उस सरल-हृदय कवि ने अपनी 'माटी' की सौंधी बास का अनुभव किया था, उसके हृदय मे अपनी 'धरती' और उसके हरियाले मटमैले वातावरण के प्रति ऐसा लगाव था जिसे नागरिक जीवन की चकाचौंध भी कभी नष्ट न कर पाई। नागरिक तथा ग्राम्य-जीवन से सम्बद्ध इस समस्त उपलब्ध शब्दावली को विश्लेषण की सुविधा के हेतु कई प्रमुख वर्गो मे विभाजित किया सकता है, यथा— सामाजिक जीवन से सम्बद्ध शब्दावली, आर्थिक दशा और शिल्प से सम्बद्ध शब्दावली; राजदरबार, शासन-व्यवस्था तथा युद्ध से सम्बद्ध शब्दावली, धर्म, दर्शन तथा लोक-विश्वास से सम्बद्ध शब्दावली, कला-कौशल सम्बन्धी शब्दावली और भौगोलिक शब्दावली। इन वर्गो मे आने वाले शब्दो की सख्या प्रचुर है और वे अधिकांशत आज भी लोक-प्रचलित तथा सुबोध एव सहजगम्य है। अगले पृष्ठो मे इस प्रकार के सरल, सामान्य तथा लोक-प्रचलित शब्दो का प्रयोग-निर्देश मात्र ही पर्याप्त समझा गया है। जिस शब्द का स्वरूप मूल रूप की तुलना मे बहुत अधिक बदल गया है, उसके मूल रूप को स्पष्टता, अर्थ-सौन्दर्य तथा तुलना की दृष्टि से दे दिया गया है, साथ ही महत्वपूर्ण तथा क्लिष्ट शब्दो की यथासम्भव व्युत्पत्ति देने का प्रयास किया गया है और उनके सास्कृतिक महत्व की ओर भी सकेत किया गया है। ये समस्त शब्द दो प्रकार के हैं –एक तो विविध व्यवहृत वस्तुओ की सज्ञा बताने वाले नामबोधक शब्द और दूसरे, सम्बद्ध क्रिया-कलाप पर प्रकाश डालने वाले शब्द। प्रस्तुत विवेचन मे दोनो को ही स्थान मिला है।

सामाजिक जीवन से सम्बद्ध शब्दावली : इस वर्ग के अन्तर्गत (क) वर्ण तथा जाति, (ख) परिवार, (ग) खान-पान, (घ) वस्त्राभूषण, (च) सस्कार, (छ) पर्वोत्सव

---

१. पद्मावत, स० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राक्कथन, पृ० ९।

(**ख**) **परिवार** जायसी ने पारिवारिक सम्बन्धो का बोध कराने के लिए अनेक शब्दो का व्यवहार किया है, जैसे माँ के लिए **माता,**[1] **मातु,**[2] **जननी,**[3] **माया,**[4] **मता**[5] (**सं० माता**), **माई,**[6] **मात,**[7] **महतारी**[8]; पिता के लिए **पिता,**[9] **बाप**[10] (**स० वाप**), **बाबुल;**[11] पति के लिए **बर,**[12] **पिउ,**[13] **नाँह,**[14] **कंत,**[15] **पिया,**[16] राजा,[17] **पीऊ,**[18] **साजन,**[19] **पुरुख,**[20] **स्वामि**[21] (**सं० स्वामी**), **पिय,**[22] **सजना**[23] आदि शब्द प्रयुक्त है। इनके अतिरिक्त कवि ने इसी अर्थ मे **रावन** शब्द का व्यवहार भी अनेक स्थलो पर किया है—

१. मँदिलन्ह होइहि सेज बिछावन। आजु सबहिं के मिलिहैं **रावन**।[24]
२ **रावन** राइ रूप सब भूलै दीपक जैस पतग।[25]
३ लक जो पैग देत मुरि जाई। कैसे रही जो **रावन** राई।[26]
४. कहौ सखी आपन सतिभाऊ। हौ जो कहति कस **रावन** राऊ।[27]
५. ससि मुख सौह खरग गहि रामा। **रावन** सौं चाहै संग्रामा।[28]

'रावन' शब्द व्यक्तिवाचक सज्ञा होने के अतिरिक्त 'रमणीक' तथा 'रमण करने वाला' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द सस्कृत धातु रम् से विकसित प्रा० धातु राव् से सम्बद्ध है। पत्नी के लिए प्रयुक्त शब्दो मे **मेहरारू,**[29] **सोहागिनि,**[30] **दारा,**[31] **तिवाई,**[32] **नारि,**[33] **रामा,**[34] **तीवइ,**[35] **मेहरी**[36] (**सं० महल्लिका**), **धनि**[37] (**सं० धन्या**), **तिरिया,**[38] **ग्रिहिनि,**[39] **तिया,**[40] **धनिआ,**[41] **इस्तिरि,**[42] **जोई**[43]; पुत्री के लिए **बारी,**[44] **कन्या,**[45] **बारि,**[46] **बेटी**[47]; पुत्र के लिए **पूत,**[48] **बारा,**[49] **सुत,**[50] **सपूत,**[51] **बटवा,**[52] **बेटा**[53] (**देशज बिट्ट**); भाई के लिए **भाइ,**[54] **भाई,**[55] **बीर,**[56] **बन्धु,**[57] **बीरा**[58]; अन्य संबन्धियो के लिए **भगिनि,**[59] **सौति,**[60]

---

१. प० ३०१।३ २. प० ५०।५ ३. प० ७३। २ ४. प० १२६।१
५ प० १३३।१ ६. प० ३६२।१ ७. प० ६१४।८ ८. म०बा० १३।४
६ प० ५०।४ १०. प० ५८८।४ ११. म०बा० १६।१२ १२. प० ५३।७
१३. प० ६०।८ १४. प० ६२।८ १५. प० ८६।६ १६. प० ८६।८
१७. प० २५६।७ १८ प० २८१।२ १६. प० ३०१।८ २०. प० ४२७।२
२१. प० ४३६।२ २२. प० ३१७।४ २३. म०बा० ७।१६ २४. आखि० ५५।६
२५. प० ५२।६ २६ प० ३२३।६ २७. प० ३२४।१ २८. प० ४७५।२
२६. अख० ७।४ ३० अख० २२।५ ३१. प० ८०।४ ३२ प० ८६।४
३३ प० ८६।६ ३४. प० ५२।८ ३५ प० ११७।५ ३६. प० १३२।६
३७. प० ३०४।२ ३८. प० ३६८।७ ३६. प० ४६१।१ ४०. प० ३१२।७
४१. प० ३०६।१ ४२ म०बा० ६।७ ४३. प० ५८४।३ ४४. प० ५३।२
४५ प० ५१।१ ४६. प० ६३।३ ४७. प० ३६७।४ ४८ प० ३६२।५
४६. प० ७३।२ ५०. प० ३६२।२ ५१ प० ३६२।४ ५२. म०बा० ६।३
५३. प० २६८।४ ५४ प० ३७५।३ ५५. प० ३८४।३ ५६. प० ३६१।१
५७ प० १६६।५ ५८. प० ३६१।१ ५६. प० ४०३।१ ६० प० ४२६।६

(सं० भक्त), माँड (सं० मण्डक), लुचुई (स० रुचि या फा० लोच), पूरी (सं० पोलिका), सोहारी (स०सं+आहार), खँडरा (सं० खडलक), जाउरि, पछियाउरि। बादशाह-भोज-खंड मे इन पदार्थों के अतिरिक्त कुछ नवीन खाद्य भी वर्णित हैं, यथा— बरा (स० वट), पीठे, मुँगौछी, मुँगौरा (स० मुद्ग+वटक), गुरबरी, मेथौरी, खिरिसा, बरी, कढ़ी, डुमुकौरी, बरौरी, रिकवछ, तहरी, हलुआ, मोतिलडु, छाल, मुरकुरी, माँठ (स० मंडक), पेराक, बुंद, ढुरहुरी, फेनी, पापर (सं० पर्पट या तामिल प ु) । अन्य पकावन[1] या पकवान[2] (सं० पक्वान्न) मे लदू[3] (सं० लड्डुक), गोझा[4] (सं० गुह्यक) और खिरौरा[5] (स० क्षीर+वटक) उल्लिखित हैं।

(इ) गव्य पदार्थ : दूध से बने खाद्य पदार्थ को गव्य कहा जाता है। जायसी ने इस प्रकार के कई पदार्थों से सम्बद्ध शब्दावली का उल्लेख किया है, यथा—माठा[6] (सं०मथित), छाँछि,[7] महिउ[8] (स० मथित), माखन[9] (स० मथज), लैनू[10] (स० नवनीत), दधि,[11] दही,[12] घिउ,[13] घिय,[14] घिरित[15] साढी[16] (स० सार), मोरँडा[17] (सं० मयूरांड), खोवा,[18] सिखरन[19] (सं० शिखरिणी)।

(ई) मधुर पदार्थ मधु,[20] गुर[21] (स० गुड), खँडोई[22] (स० खंडवती), खाँड[23] (सं० खाँडव)।

(उ) पेय पदार्थ शराब,[24] (सुरा,[25] दारू[26]), दूध,[27] (खीर,[28] छीर,[29]) जिअना[30] (सं० जीवन) पानि,[31] नीर,[32] खंडवानी,[33] काँजी[34] (सं० कांजिका)।

(ऊ) तरकारी : इनका उल्लेख विशेषत: बादशाह-भोज-खड मे हुआ है। दो० ५४८ मे अनेक तरकारी[35] (फा० तर+कारी) वर्णित है, यथा– कुम्हड़ा (सं० कुष्माँड), लौआ (सं० अलाबु), भाँटा (स० बंग), अरुई, तोरई, चिचिंडा, डिंडसी, परवर, कुँदरू (स० कुन्दुरु), करैला, सेंब (सं० शिम्बा) पत्तेदार तरकारियो के लिए साग[36] (सं०शाक) शब्द का व्यवहार मिलता है। एक स्थान पर कटहर[37] (स० कटफल) भी वर्णित है।

(ए) फल [37] सिंहलद्वीप-वर्णन खंड (दो० ३४) मे वर्णित फल[38] (स० फल) इस

---

१. प० ५६०।८	२ प० ५८६।१	३ प० ४८३।३	४. प० १६२।४
५. प० ५८६।१	६ अख० ३१।३	७. प० ४५६।४	८. प० ४५६।४
९ अख० ३१।७	१० प० ५४६।५	११. प० १२४।१	१२ प० १५२।२
१३ प० १२४।१	१४ प० ५४५।०	१५. प० ५४२।१	१६ प० १५२।४
१७. प० २८४।६	१६. प० ५५०।३	१९ प० ५५१।४	२०. प० ४।५
२१. प० २४।६	२२. प० २८४।४	२३ प० ५४९।२	२४ अख० ४८।१
२५. प० १५४।३	२६. प० ५०६।४	२७ प० २८४।७	२८ प० १५।६
२९. अख० ३०।१०	३० प० ५।६	३१. प० १५।५	३२. प० १५।६
३३. प० २८५।१	३४. प० १५२।३	३५. प० ५४८।१	३६. प० ५४८
३७. प० ५४६।३	३८. प० ३१।८		

प्रकार है— **गलगल, तुरँज, बेद, अजौर, सदाफर** (सं० सदाफल), **सेव, कमरख, रायकरौंदा, बेर, तूत, नींबू** (सं० निम्बुक), **जँभीर, निउंजी, दारिवँ** (सं० दाड़िम), **दाख** (सं० द्राक्षा), **हरपारेउरी, केरा**, दो० १८७ मे इनके अतिरिक्त अन्य वर्णित फल **आँब** (सं० आम्र), **जाँबु, बड़हर, खीरी** (स० क्षीरिणी), **बिजौर, नरियर, अँबिलि** (सं० अम्लिका), **महुव, खजूर, अँवरा** (सं० आमलक), **कसौंदा, करौंदा** तथा **निबकौरी** है। स्फुट रूप मे **बोलसिरी**[1] (सं० मौलिश्री), [**सहार**[2] (सं० सहकार), **कैथ**[3] (सं०कपित्थ), **उँबरी**[4] (सं० उदुम्बर), **मकोई,**[5] **सिरीफल,**[6] **हिन्दुआना,**[7] **खीरा**[8] आदि है।

(ऐ) मांस तथा अन्य सामिष पदार्थ अलाउद्दीन जैसे मुसलमान शासक के सम्मानार्थ आयोजित भोज मे मास का प्राधान्य स्वाभाविक ही था, इसीलिए कवि ने उस उपयुक्त अवसर पर अनेक प्रकार के सामिष भोज्य पदार्थों का वर्णन किया है। दो० ५४१ मे उन पशुओ तथा पक्षियों का उल्लेख है जो भोज के निमित्त पकड कर लाए और मारे गए। दो० ५४२ मे कवि ने इसी निमित्त पकडी गई मछलियो की चर्चा करते हुए उनके पन्द्रह प्रकारों के नाम गिनाए है। (पशु-पक्षी तथा मछलियो के यह भेद भौगोलिक प्रकरण के अन्तर्गत वर्णित है।) दो० ५४५ मे मास के विविध प्रकारो की चर्चा करते हुए कवि ने **कटवाँ, बटवाँ, रसा**, दो० ५४६ मे **समोसा, फर, मसौरा** तथा दो० ५४७ मे मछलियो के '**खंडरा**', '**अरदावा**' और '**अंडा**' पकाने का उल्लेख किया है। इन विविध खाद्य-पदार्थों के नामोल्लेख के साथ साथ कवि ने '**बावन परकार**'[9] तथा '**अनेक परकार**'[10] कह कर एक महत्वपूर्ण परम्परा की ओर भी सकेत किया है। मध्ययुग मे भोजन के विविध प्रकारों के सम्बन्ध मे कुछ सख्याएँ प्रचलित थी। इस प्रकार के उल्लेख अन्यत्र भी प्राप्त होते है।[11]

सूपकर्म : जायसी भोज-पदार्थो की तालिका-मात्र ही देकर सन्तुष्ट नही हुए है, उन्होने इनमे से बहुतो के बनाने की विधि का सविस्तार उल्लेख करके पाकशास्त्र सबधी अपने ज्ञान का सुन्दर परिचय दिया है। इन वर्णनो मे हमे भाषा की दृष्टि से कुछ महत्वपूर्ण सज्ञा-पद तथा क्रिया-पद प्राप्त होते है। प्रमुख उदाहरण इस प्रकार है —

क – झालर मॉड आए घिउ **पोए**।[12]
ख – पुनि सधान आए बहु **सांधे**। दूध दही के **मोरंडा** बाधे।[13]

---

१. प० १८८।५   २. प० ३३६।८   ३. प० ४३६।२   ४ प० ४३८।७
५. प० ४७७।२   ६. प० ४८३।१   ७. प० ५४६।३   ८. प० ५४६।३
९ प० २८४।४   १०. प० ५५०।८

११. **सूर ने एक स्थान पर सत्तरह सौ प्रकार के भोजन लिखे है : नंद भवन में कान्ह अरोगे .... सत्तरह सौ भोजन तहँ आए। (सूरसागर, प० १०१४); हेरात में हुमायूँ के प्रातः कलेवे में तीन सौ और दोपहर के भोजन मे बारह सौ प्रकार की खाद्य-सामग्री परसी गई (अकबरनामा, पृ० ४२६) लोक में भोजन के 'छप्पन प्रकार' का उल्लेख अब भी प्रचलित है।**   १२. प० २८४।२   १३. प० २८४।६

ग – खडरा **खडि** खंडोई खडी ।[1]

घ – तब **पोसे** जब पहिलेहि **धोए** । कापर **छानि** मांड भल **पोए** ।[2]

च – करिल चढे तहँ **पार्काहि** पूरी ।[3]

छ – लुचुई **पोइ** घीय सो **भेई** ।[4]

ज – निरमल मासु अनूप पखारा । तिन्ह के अब बरनौ परकारा ।
कटवाँ कटवाँ **मिला** सुबासू । **सीझा** अनबन भाति गरासू ।
बहुतै सोधै घिरित **बघारा** । औ तह कुकुह पीसि उतारा ।
सेधा लोन **परा** सब हाडी । काटे कद मूर कै आडी ।
सोवा सौफ **उतारे** धना । तेहि ते आव अधिक बासना ।
पानि **उतारा** टॉकहिं टॉका । घिरित परेह रहा तस **पाका** ।
औरु कीन्ह मासुन्ह के खडा । **लाग चुरै** सो बड बड हुंडा ।
छागर बहुत समूचे धरे सरागन्हि **भूँजि** ।
जो अस जेंवन जेंवै उठै सिंघ अस गूजि ।[5]

झ – भूजि समोसा घिय महँ **काढ़े** । लौग मिरिच तिन्ह महँ सब डाढे ।
औरु जो माँसु अनूप सो बाँटा । भे फर फूल आव औ भाँटा ।[6]

ट – सिरिका **भेइ** काढि ते आने ।[7]

ठ – **काटे** मंछ मेलि दधि धोए । औ पखारि **चहुँ** बार **निचोए** ।
करुए तेल कीन्ह **बसिवारू** । मेथी कर तेहि दीन्ह **धुंगारू** ।
जुगति जुगति सब मछ **बघारे** । ऑब **चीरि** तेहि मॉह उतारे ।
ऊपर तेहिं तहं चटपट **राखा** । सो रस परस पाव जो चाखा ।
भाँति भाँति तिन्ह खडरा **तरे** । अंडा **तरि तरि** बेहर धरे ।
घिउ टाटक मह **सोधि सेरावा** । अनेक बखान कीन्ह अरदावा ।[8]

ड – चुक्क **लाइ के** रीधे भाँटा । अरुई कह भल अरिहन बाँटा ।
तोरई चिचिंडा डिंडसी तरे । जीर धुगारि **कलै** सब धरे ।
परवर कुदरू **भूंजे** ठाढे । बहुतै घियँ **चुरु चुरु** कै काढे ।
करुई **काढि** करैला काटे । आदी मेलि तरे **किय खाटे** ।
रीधे ठाढ सेंब के फारा । छौकि साग पुनि सोंधि उतारा ।[9]

ढ – मीठि महिउ औ जीरा लावा । भीजि बरी जनु लेनू खावा ।[10]

त – जति परकार रसोड बखानी । तब भइ जब पानी सो सानी ।[11]

इन उल्लेखो के अतिरिक्त भिन्न प्रकरणो मे भी इम प्रकार की शब्दावली के एकाध प्रयोग दिखाई पड़ते हैं यथा :

---

१. प० २८४।५ २ प० ५४३।२ ३. प० ५४३।३ ४. प० ५४३।६
५. प० दो० ५४५ (सम्पूर्ण) ६. प० ५४६।१ ७. प० ५४६।६
८. प० ५४७।१-६ ९. प० ५४८।३-७ १०. प० ५४९।५ ११. प० ५५१।१

थ – न जनहु पेम **औटि** एक भएऊ ।[1] द – कटि कटि मासु **सराग** पिरोवा ।[2]

खान-पान से सम्बद्ध अन्य आवश्यक सामग्री के अन्तर्गत मसालो की बोधक शब्दावली की चर्चा की जा सकती है । बादशाह-भोज-खड मे जायसी ने **रसोई**[3] **(सं० रसवती)**, **सुसार**[4] **(सं० सूपशाला)** मे विविध मसालो का उल्लेख किया है (द्रष्टव्य दो० ५४५-५४९), यथा—**सेंधा लोन (स० सैन्धव)**, **कदमूर**, **सोवा**, **सौंफ**, **धना (स० धान्य)**, **मेंथी**, **चुक्क (स० चुक्र)**, **सौंठि (सं० शुंठि)**, **जीरा (स० जीरक)**, **अंबचुर (स० आम्रचूर्ण)**, **लाइची (स० एला)**, **हींग (स० हिंगु)** तथा **आद (स० आर्द्रक)** आदि । अन्य मसाले तथा मेवे **बादाम**[5] **(फा० बादाम)**, **किसमिस**[6] **(फा० किशमिश)**, **सखदराउ**[7] **(स० शखद्राव)**, **छोहारा**,[8] **चिरौंजी**,[9] **जैफर**[10] **(स० जातिफल)**, **लौंग**[11] **(सं० लवंग)**, **सुपारी**[12] **(स० शूर्पारिका)**, **छुहारी**,[13] **गुवा**[14] **(सं० गुवाक)**, **मिरिच**[15] **(स० मरीच)**, **लोन**[16] **(सं० लवण)** तथा **हरदि**[17] **(सं० हरिद्रा)** आदि है ।

इस प्रकार के विविध अगो से युक्त जायसी का खान-पान सम्बन्धी वर्णन विस्तृत होने हुए भी पूर्ण नही कहा जा सकता । उसमे न तो विभिन्न सामाजिक वर्गो के लोगो के (उच्च, मध्यम तथा निम्न के) खान-पान का ही विस्तृत उल्लेख है और न विविध अवस्थाओं के लोगो का (बाल, युवा, वृद्ध का) ही । इस प्रकार के स्थल एकाध ही है जिनसे समाज के अन्य लोगो के खान-पान पर कुछ प्रकाश पड सके, यथा

'जोगी-खड' मे रत्नसेन अपनी पत्नी से कहता है

जूड़ कुरकुटा पै भखु चाहा । जोगिनि तात भात दहुँ काहा ।[18]

यहाँ **'कुरकुटा'** का उल्लेख हुआ है जो सम्भवत भात का एक निकृष्ट रूप था और जिसे साधु-सन्यासी खाते थे । इसी प्रकार 'अखरावट' मे एक स्थल पर कवि काम, क्रोध, तृष्णा, मद तथा माया पर विजय प्राप्त करने के लिए परामर्श देता है :

छाँड़हु घिउ औ मछरी माँसू । सूखे भोजन करहु गरासू ।
दूध माँसु घिउ करु न अहारू । रोटी सानि करहु फरहारू ।[19]

यहाँ 'रोटी' और 'फरहार' की गणना सात्विक भोजन के अन्तर्गत की गई है जो शुद्ध प्रकृति वालों का भोजन है । पद्मावत मे स्त्री-वर्णन के प्रसग मे कवि ने 'हस्तिनि', सिघिनी (स० सिहिनी), चित्रिनी (स० चित्रिणी) तथा 'पद्मिनी' स्त्रियो के भोजन का उल्लेख किया है किन्तु वह परम्परागत ही है और खान-पान की दृष्टि से विशिष्ट महत्व का नही है । किन्तु जायसी को इस अपूर्णता के लिए दोषी नही ठहराया जा सकता है, क्योकि सामाजिक खान-पान मात्र का ही वर्णन करना उनका प्रधान उद्देश्य नही । प्रबन्ध-

---

१. प० २३१।७ २ प० २५३।५ ३. प० ५४०।८ ४. प० ४०३।५
५ प० ३४।२ ६. प० ३४।४ ७. प० ४३४।२ ८. प० ३४।७
९. प० १८७।२ १० प० १८७।४ ११. प० १८७।४ १२ प० १८७।४
१३. प० १८७।४ १४ प० १८७।४ १५ प० ४३९।६ १६. प० ४६१।७
१७ प० २९२।३ १८. प० १३२।७ १९ अख० ३६।४-५

रचना की मान्यताओ का ध्यान रखते हुए उन्होने सीमित क्षेत्र मे खान-पान का जो वर्णन किया है वह भले ही एकागी हो किन्तु महत्वपूर्ण है, इसमे कोई सदेह नही। नर-नारियों के खान-पान के अतिरिक्त कवि ने पशु-पक्षियो, जीव-जन्तुओ तथा अन्य मनुष्येतर प्राणियो के भोजन आदि का भी यत्र-तत्र सकेत किया है। यथा, घोडो को **'खर'** और **'पानि'** मिलता है,[1] हाथी **बिरिख** (स० **वृक्ष**) उखाड कर तथा झाड कर मुह मे डाल लेते है।[2] सिह हरिण आदि का मास खाता है[3] और कभी-कभी---

रकत पिअै मनई कर खाइ मारि कै मांसु।[4]

पक्षीगण **फर**[5] (**सं० फल**) खाते है और **'चारा'**[6] चुगते है। बिचारे घुन को **'झूर काठ'**[7] खा कर ही सतोष करना पडता है किन्तु चीटी छोटी होते हुए भी दीमक को खा जाती है।[8] राक्षसगण तो मासभक्षी होने के कारण ही **'मसुखवा'**[9] (स० मासखादक) कहलाते है।

अन्य खाद्य वस्तुओ मे सर्वाधिक उल्लेखनीय वस्तु **'पान'** (**सं० पर्ण>पण्ण>पान**) है। अत्यधिक सुकुमार तथा पद्मिनी स्त्रियो का तो वह भोजन ही है

क– पान फूल के रहहिं अधारा।[10] **ख– पान फूल सों बहुत पियारू।**[11]
ग– पान अधार रहै तन जीऊ।[12]

अन्य स्थानो पर भी उसका विशिष्ट महत्व है। भोजनोपरान्त पान देना नियम है ही,[13] सम्मानार्थ भी पान खिलाया जाता है।[14] इसीलिए तो **बीड़ा**[15] (**सं० वीटक**) उठाना साहसी व्यक्तियो के ही वश की बात थी। जायसी ने पान का उल्लेख करते हुए उसके सहयोगी तत्वो का भी कथन किया है

जहं बीरा तह चून है पान सुपारी काथ।[16]

कपूर डाल कर बनाई गई कत्थे की टिकिया या **खिरौरी**[17] (**सं० खदिरवटिका**) भी उल्लिखित है। पद्मावत मे दो० ३०६ मे पान की अनेक जातियो के नाम दिए गए है, यथा– पेडी, सुनिरासि, बडौना, गडौना, करभँज, नेवती तथा भुँजौना।

जायसी ने दिन के विविध भागो के लिए (प्रात, मध्याह्न, सध्या और रात्रि) पृथक्-पृथक् भोजन का निर्देश नही किया है। खाद्य-पदार्थो के साधारण अर्थ मे **भोजन,**[18] **जेंवन,**[19] **भखु,**[20] **खाना,**[21] **अहारु,**[22] **भुगुति**[23] आदि शब्दो का प्रयोग मिलता है। **उपास**[24]

---

१ प० १४।७	२ प० ४५।६	३. प० १७२।५	४ प० ११६।६
५. प० ६८।४	६. प० ७०।४	७ प० १५८।६	८ प० ३६५।३
६. प० ३६६।२	१० प० ४६।४	११. प० ४६५।३	१२ प० ४८५।४
१३. प० २८५।२	१४ प० १८१।१	१५. प० ६१२।१	१६. प० ५०१।६
१७. प० ३६।२	१८ प० ६६।७	१६. प० ५६३।३	२० प० १३२।७
२१ प० ५।६	२२. अख० ३६।५	२३. प० ३।१	२४. प० ४१४।७

मे **फरहारू**[१] किया जाता है। खाद्य पदार्थों के छ स्वाद माने जाते है— **मधुर, कटु, अम्ल,** तिक्त, कषाय तथा लवण। जायसी के काव्य मे इनमे से कुछ स्वादो का उल्लेख मिलता है, यथा— **खार,**[२] **करुइ,**[३] **खट्टा मीठा**[४], **चटपटा**[५] शब्द भी प्रयुक्त है। **सवाद**[६] (**सं० स्वाद**) शब्द भी आया है। खाना खाने के लिए **जेंवा**[७] तथा **खाइ**[८] शब्दो का प्रयोग हुआ है। **निम्न वर्ग के** सन्दर्भ मे **भखैं**[९] भी मिलता है। खाने के एक ग्रास को **कवर**[१०] (**सं० कवल**) कहा गया है।

विविध खाद्य-पदार्थों मे **रैता**[११] (**सं० राजिकाक्त**), **सधान,**[१२] **खिलवान**[१३] आदि की चर्चा मिलती है। प्रकृत रूप मे अथवा भून कर खाये जाने वाले पदार्थो के लिए **खजहजा**[१४] (**सं० खाद्य+भ्रज्य**) शब्द प्रयुक्त है। अन्य उपयोगी पदार्थों मे **सिरिका,**[१५] **करुए तेल,**[१६] **आटा**[१७] तथा **अरिहन**[१८] आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

(घ) **वस्त्राभूषण :** वस्त्र के साधारण अर्थ मे **चीर,**[१९] **अंबर,**[२०] **कापर**[२१] (**स० कर्पट**) और रेशमी वस्त्र के लिए **पाट**[२२] शब्द का व्यवहार हुआ है। कुछ वस्त्रो के विशिष्ट नाम भी मिलते है, यथा दो० सख्या ३२९ मे **छाएल, चदनौटा, बाँसपोर, झिलमिल, चिकवा, चीर, मेघौना, पेमचा, डोरिया, बीदरी** आदि वर्णित है। स्फुट प्रसगो मे **नेत**[२३] (**सं० नेत्र**), **मकरी क तार,**[२४] **सँमुद लहरि,**[२५] **तारमंडर,**[२६] **कनकपत्र**[२७] आदि नाम मिलते है। जायसी ने प्रमुख रूप से पद्मावती के ही वस्त्रो की चर्चा की है। 'पदमावत' मे पद्मावती तथा उसकी सखियो और दासियो के वस्त्र सम्बन्धी उल्लेखो से स्त्रियो के तत्कालीन पहनावे का सकेत मिलता है। उस समय स्त्रियाँ तीन वस्त्र प्रमुखतया पहनती थी, लहँगा, साडी तथा कचुकी। जायसी ने लहँगे के अर्थ मे **चोला,**[२८] **लहर**[२९] तथा **फारी**[३०] शब्दो का प्रयोग किया है। लहगे का एक महत्वपूर्ण भाग **नीवी**[३१] है। कवि ने उसका उल्लेख करते हुए उसके बँधे हुए फुँदनो की समता कमल की कली से की है— **नीवी कवल करी जनु बाँधी।**[३२]

जायसी ने **फुँदिया**[३३] शब्द सम्भवत फुँदनेदार नीवीबन्ध के लिए प्रयुक्त किया है। ओढनी के लिए **चीर**[३४] तथा **पटोर**[३५] (**स० पट्टकूल**) शब्द व्यवहृत है। कवि ने 'छाएल पँडुआए गुजराती' कह कर भी दुपट्टो तथा ओढनियो का सकेत किया है। प्राचीन काल मे गुजरात तथा बगाल चूनरी तथा दुपट्टो की छपाई के लिए प्रसिद्ध थे।[३६] स्त्रियो का एक

---

१. अख० ३६।५ २. प० १८।४ ३. प० ४।४ ४. प० ५६६।२
५. प० ५४७।३ ६. प० ५९०।९ ७ प० ५७०।१ ८. प० ५९३।२
९ प० ३९५।३ १० प० २८४।९ ११ प० ५४८।२ १२ प० २८४।६
१३ आखि० ४७।८ १४ प० २८।६ १५. प० ५४६।२ १६. प० ५४७।२
१७ प० ५४३।१ १८. प० ५४८।३ १९ प० ११०।६ २० प० ४७९।३
२१ प० ५४३।२ २२ प० ११७।६ २३ प० ३३६।६ २४ प० ४८५।६
२५. प० ११७।५ २६ प० १८४।३ २७. प० २८३।९ २८ प० १८४।३
२९. प० ३२९।१ ३० प० ३२९।३ ३१ प० २९९।६ ३२ प० २९९।६
३३ प० ३२९।२ ३४. प० २९९।२ ३५ प० १८५।२
३६. डॉ० मोतीचन्द · प्राचीन भारतीय वेष-भूषा, पृ० १५६।

अन्य महत्वपूर्ण वस्त्र **चोली**[१] **(सं० चोली)**, आँगी[२] (सं० अंगिका), **कंचुकि**[३] **या केंचुकि**[४] **(स० कचुक, कचुलिका)** था। इसी के एक प्रकार को **कसनिया**[५] कहते थे जिसमे बद लगे होते थे। इनके अतिरिक्त जायसी ने **सारी**[६] **(सं० शाटिका)** का उल्लेख भी अनेक स्थलो पर किया है। रेशमी साडी के लिए **पटोरी**[७] शब्द आया है। पल्ले के कोने को **खूंट**[८] और सामने के भाग को **आँचर**[९] कहा गया है। मागलिक अवसरो पर स्त्रियाँ **पियरी**[१०] पहनती थी। नवविवाहिता स्त्री के सन्दर्भ मे **घूंघट**[११] **(स० अवगुण्ठन)** की प्रथा का सकेत भी जायसी ने किया है।

पुरुषो के वस्त्रो से सम्बद्ध शब्दावली बहुत कम है। रत्नसेन के विवाह के अवसर पर वर की वेश-भूषा के अन्तर्गत लाल रंग का **दगल**[१२] (मोटे वस्त्र का रुईदार अँगरखा) वर्णित है। इसी से मिलते-जुलते वस्त्र **बागा**[१३] **(फा० बाग)** का भी उल्लेख हुआ है। यह दोनो सिले हुए वस्त्र थे। बिना सिले हुए वस्त्रो मे **धोती**[१४] **(सं० धोत्रिका)** मुख्यतया वर्णित है। धोती के लपेटे जाने वाले एक भाग को **फेंटा**[१५] कहा जाता था। पगडी के अर्थ मे **पाग**[१६] **(सं० पटक)** तथा टोपी के अर्थ मे **कुलाह**[१७] शब्द मिलता है। योगियो की वेश-भूषा में **जोगौटा**[१८] **(स० योगपट्ट)** का वर्णन है। पुराने फटे हुए वस्त्र के लिए **चिरकुट**[१९] **(सं०चीर+कुट्ट)** शब्द प्रयुक्त है। जायसी-काव्य मे ओढने तथा बिछाने के काम मे आने वाले वस्त्रो के बोधक शब्द भी मिलते हैं। इनमे उल्लेखनीय शब्द **काँवरि**[२०] **(स० कम्बल)**, **कंथी,**[२१] **काँथरि**[२२] है। कथा ओढने-बिछाने के अतिरिक्त पहनी भी जाती थी और इसका व्यवहार योगी तथा योगिनी दोनो करते थे।[२३] योगी लोग अनेक प्रकार के चर्मों का व्यवहार करते थे। रत्नसेन के योगी रूप मे जायसी ने **बघछाला**[२४] का उल्लेख किया है। ओढने-बिछाने वाली अन्य वस्तुओं मे **चादर,**[२५] **बिस्तर,**[२६] **साँथरि**[२७] **(सं० संस्तार)**, **सौर**[२८] **सुपेती, बिछावन**[२९] तथा **बिछाउ**[३०] मुख्य हैं। बालको के वस्त्रो का वर्णन जायसी-काव्य मे नही मिलता है। राजाओं से पुरस्कार-स्वरूप प्राप्त वेश-भूषा के लिए **पहिरावा,**[३१] **पहिरन**[३२] आदि शब्द आये है।

---

१. प० ३२११३ २ प० २३२११ ३ प० २८०१३ ४. प० ३८१६
५ प० २८०१४ ६ प० ६२११ ७ प० ६४८१३ ८ प० ११०१४
९. प० ६२०१५ १०. प० ३५८१७ ११ प० ६१६११ १२ प० २७६१७
१३ आखि० ११२ १४ प० २८३१६ १५ प० ६१७१३ १६ प० ५६५१३
१७. आखि० ५४१३ १८ प० १२६१४ १९ आखि० ३१२ २०. प० १२९१६
२१ प० १२६१५ २२. प० १४३१४
२३. कंथा पहिरि डड कर गहा। सिद्धि होइ कहँ गोरख कहा। प० १२६१५
अबहि नबल जोबन तप लीन्हे। फारि पटोरा कथा कीन्हे। प० ६०११३
२४. प० १२६१५ २५ अख० ६१११ २६ आखि० ४५१३ २७ प० १३९१२
२८ प० १३९१२ २९. प० ५५६११ ३० प० २७५१५ ३१ प० ४८८११
३२. प० ५१३१६

नर-नारियों के वस्त्रो के साथ-साथ उनके रगों का निर्देश भी यत्र-तत्र मिलता है। सारी का कुसुम्भी रँग उस समय का प्रिय रग ज्ञात होता है– **हरियर भुम्मि कुसुंभी चोला**।[१] साडी के अन्य रगो मे **सुरग** शब्द उल्लेखनीय है। अन्य वस्त्र भी इस प्रकार के होते थे – **सुरँग चीर भल सिंघलदीपी**।[२] अथवा, **पटुइनि पहिरि सुरँग तन चोला**।[३] मागलिक अवसरो पर **रात**[४] (**स० रक्त**) वर्ण के वस्त्रो की चर्चा हुई है। अँगिया भी लाल रग की होती थी– **फुँदिया और कसनिया राती**।[५] यत्र-तत्र वस्त्रों के अनेक रगों का सकेत भी मिलता है– **पेमचा डोरिया औ बीदरी। स्याम सेत पियरी औ हरी**।[६] कवि ने **बरन बरन पहिरे सब सारी**[७] कह कर भी इसी दिशा मे सकेत किया है। योगियो का वेश **गेरुआ**[८] होता था। वस्त्रों की रगाई के साथ-साथ छपाई भी होती थी। जायसी ने **छीप की सारी**,[९] **छाएल पंडुआए गुजराती**,[१०] कह कर इसका भी परिचय दिया है। मूल्यवान वस्त्रो पर सोने के पानी से भी छपाई होती थी तथा उनमे मोती लगाए जाते थे।[११]

आभूषणो के लिए जायसी ने मुख्यत **गहने**[१२] (**सं० ग्रहणक**), **अभरन**[१३] (**सं० आभरण**) आदि शब्दों का प्रयोग किया है। स्त्रियो के आभूषणो की चर्चा अधिक मिलती है। अलकार-शास्त्रियो ने स्त्रियों के बारह आभूषण माने है। जायसी ने भी **बारह अभरन**[१४] कह कर उस मान्यता की पुष्टि की है। आभूषण प्राय सोने-चाँदी के सादे या जड़ाऊ बनाए जाते है। जायसी ने सोने या मोती के अथवा रत्नजटित आभरणो का ही उल्लेख प्रमुख रूप से किया है। अधिकतर आभूषणो के नाम दिए गए है, किन्तु कही-कही आभूषण-विशेष की बनावट के सम्बन्ध मे भी सकेत मिलता है। जायसी के वर्णन के अनुसार आभिजात्य वर्ग की स्त्रियो के प्रमुख आभूषण अनेक है, यथा, माँग को मोती से भरा जाता था– **तेहि पर पूरि धरे जौ मोंती**[१५]। मस्तक पर पहिनने के तीन-चार आभूषणो के नाम भी मिलते है, यथा– **बंदन**,[१६] **तिलक**[१७], **टीका**[१८] (**सं० तिलक**), **सिरी**[१९] (**सं० श्री**), कान के लिए **कुंडल**,[२०] **खूँट**,[२१] **खूँटी**,[२२] **खुम्भी**,[२३] **बारी**[२४] (**सं० वल्ली**), **तरिवन**[२५] (**सं० तालपर्ण**) आदि उल्लिखित है। कुडल मणिजटित भी होते थे– **मनि कुंडल चमकहिं अति लोने**।[२६] नाक के प्रमुख आभूषणो मे **नाथ**[२७] (**सं० नस्त**), **बेसरि**[२८] (**सं० द्वयस्र**) की चर्चा है। कवि ने नाक के लिए **करनफूल**[२९] का भी उल्लेख किया है। गले के लिए **हार**,[३०] **मोतिन्ह कै माला**,[३१] **मुकुताहल माला**,[३२] **हीर**

---

१ प० ३३७।७ २. प० ३२६।५ ३ प० १८५।७ ४ प० २७५।५
५ प० ३२६।२ ६ प० ३२६।६ ७. प० १८४।५ ८. प० १३४।८
९ प० ६२।१ १०. प० ३२६।२ ११. **मोंति लाग औ छापे सोने**। प० ३२६।४
१२ प० ११०।९ १३ म०बा० १२।६ १४. प० २९६।७ १५ प० १००।६
१६. प० ४००।३ १७. प० ५०७।८ १८ प० ६१५।५ १९ प० ४२७।७
२०. प० ११०।१ २१. प० ११०।४ २२. प० २९७।७ २३ प० ११०।५
२४ प० ३१८।६ २५ प० ५०७।३ २६ प० ११०।२ २७. प० १५।४
२८ प० १०५।२ २९ प० २९६।७ ३०. प० ६४।३ ३१ प० ६७।७
३२. प० १११।८

हार,[1] **कठसिरि**[2] (**सं० कंठश्री**), **हाँस**[3] (सं० अंसालिका), हाथ मे कोहनी से ऊपर पहनने के लिए **टाड**[4] (**प्रा० टड्डय**), **बाँहूँ**[5] (**सं० बाहुस्थ**), कलाई मे पहनने के लिए **हँथोड़ा**[6] (**सं० हस्तपाटक**), **बलय**[7] (**सं० वलय**), कंगन,[8] अँगुली के लिए **अँगूठी** (**सं० अँगुष्ठिका**); कटि के लिए **छुद्रावली,**[10] **कटिमंडन,**[11] **छुद्रघंटि**[12] (**सं० क्षुद्रघंटिका**), पैर के लिए **पायल**[13] (**सं० पादपाल**), **चूरा**[14] तथा पैर की अँगुलियो के लिए **अनवट**[15] (**सं० अँगुष्ठ**) और **बिछिया**[16] (**सं० वृश्चिका**) उल्लिखित है। पुरुषो के आभूषणो मे **जराऊ कुंडल**[17] तथा **नवगिरही टोडर**[18] वर्णित है। योगियो को **चक्र,**[19] **मुंद्रा**[20] तथा **कुंडल**[21] आदि से अलंकृत बताया गया है।

च– **संस्कारसूचक शब्द** जायसी के काव्य मे पाँच सस्कारो का (जातकर्म, नामकरण, वेदारभ, विवाह तथा अन्त्येष्टि का) ही उल्लेख मिलता है। इनमे विवाह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। 'पद्मावत' के अतिरिक्त 'महरी बाईसी' और 'आखिरी कलाम' मे भी इस संस्कार के स्फुट सकेत प्राप्त होते है। छठी, बरिच्छा, तिलक, गौना आदि अन्य सांस्कृतिक कार्य तथा रीतियाँ भी यथास्थान सक्षेप में उल्लिखित हैं। सर्व-प्रथम जातकर्म को ले। जायसी ने पद्मावती और रत्नसेन दोनो के जन्म का उल्लेख किया है। पद्मावती का जन्मोत्सव-वर्णन अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है। बालक के जन्म के अवसर पर स्वच्छता का ध्यान रखना व्यावहारिक तथा आवश्यक है। पद्मावती के जन्म का आभास मिलने पर राज-मन्दिर सोने से सँवारा[22] गया। सभी स्थान चंदन से लीप[23] दिए गए। इस स्वच्छ वातावरण मे 'दस मास'[24] पूरे होने पर पद्मावती कन्या रूप में अवतरित हुई। जन्मोपरान्त छठी रात्रि आने पर **छठी**[25] (**सं० षष्ठी**) मनाई गई। सारी रात्रि '**रहसकोड**'[26] मे व्यतीत हुई। प्रात.काल पडितो ने एकत्र होकर ग्रन्थों की सहायता से जन्म-फल बताया।[27] नाम-करण का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है। कन्या **रासि**[28] (**सं० राशि**) मे उत्पन्न होने के कारण उसका '**नाँउँ**' (**नाम**) जन्म-नक्षत्र के अनुसार 'पदुमावति' (पद्मावती) रक्खा गया।[29] अन्य भावी बातो का बखान करने के उपरान्त **जोतिषी** (**सं० ज्योतिषी**) लोगों ने 'जन्म-पत्री' लिखी[30], तत्पश्चात् **असीस** (**सं० आशीष**) दे कर वे चले गये। रत्नसेन का जन्मोत्सव तथा अन्य सम्बद्ध कृत्य अत्यधिक संक्षिप्त रूप में वर्णित हैं। उसके जन्म पर 'पडित गुनि सामुद्रिक'

---

१. प० २६६।२ २ प० १११।८ ३. प० ३८४।६ ४. प० २६६।५
५. प० २६६।५ ६ प० ३७।३ ७. प० २८०।४ ८. म०बा० १२।५
९ प० ११२।५ १० म०बा० १२।४ ११. प० ६२०।४ १२. प० ११६।६
१३ प० ११८।६ १४ प० ११८।६ १५. प० ११८।७ १६ प० ११८।७
१७ प० २७६।५ १८. प० ३६२।५ १९. प० १२६।४ २०. प० १२६।६
२१ प० १६७।६ २२. प० ५०।८ २३. प० ५०।८ २४. प० ५१।१
२५. प० ५२।१ २६. प० ५१।१ २७. प० ५२।२ २८. प० ५२।४
२९. प० ५२।४ ३०. प० ५३।१

आदि ने आकर 'लगन' (स० लग्न) का विचार किया[१] और उसके भावी शौर्य तथा पद्मावती से सयोग का उल्लेख करते हुए सभी लखन[२] (सं० लक्षण) लिख दिये। विद्यारम्भ भी केवल नाम मात्र को वर्णित है और वह भी केवल पद्मावती का—

पाँच बरिस महँ भई सो बारी। दीन्ह पुरान पढ़ै बैसारी।[३]

विवाह : जायसी ने जीवन के इस महत्वपूर्ण सस्कार के वर्णन मे विशेष रुचि प्रदर्शित की है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि उनकी दृष्टि मे यह एक सस्कार-मात्र न होकर प्रेम-पथ मे आने वाली कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने वाले साधक का पुरस्कार है। प्रेम की स्थिति सामान्य नही है

धुव तें ऊँच पेम धुव उवा। सिर दै पाउ देइ सो छुवा।[४]

इसीलिए तो जायसी ने बारबार कहा है– **करत पिरीत कठिन है काजा।**[५]

इस प्रकार के दुर्लभ प्रेम-मार्ग पर सफलता प्राप्त करने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध मे जितना भी कहा जाय, थोड़ा है। जायसी ने अन्य सस्कारो की अपेक्षा विवाह को अधिक महत्व दे कर इसी तथ्य की व्यजना की है। रत्नसेन-पद्मावती विवाह-वर्णन इस प्रकार है– सर्वप्रथम **'बरोक'**[६] (**वर+रोक**) हुई और **'तिलक'**[७] चढाया गया। **'मंगलाचार'**[८] मनाने के लिए **बाजे** (**सं० वाद्य**) बजने लगे। **'लगन'**[९] निश्चित हुई, और सर्वत्र **नेवत**[१०] (**सं० निमन्त्रण**) भेजे गए। सभी दिशाओ मे अनन्द (स० आनन्द) छाया था। विवाह के हेतु पृथ्वी पर 'रात बिछाउ' (रक्त बिछौने) बिछाए गए।[११] मुक्ता-माणिक्यो के द्वारा **माड़ौ**[१२] (**सं० मंडप**) को सजाया गया। 'चदन खाभ' और 'मानिक दिया' विवाह-मडप की शोभा मे चार चाँद लगा रहे थे।[१३] घर-घर द्वारो पर 'बदन'[१४] बाधे गए और सारा नगर मागलिक गीत तथा बाजो की मधुर ध्वनि से गूँज उठा।[१५] शुभ मुहूर्त मे रथ पर सवार हो रत्नसेन वर वेश मे राजसी वस्त्राभूषणो से अलकृत होकर **'बरात'**[१६] (**स० वरयात्रा**) के साथ आया। सारे नगर मे **'सोहिला'**[१७] गाये जाने लगे। इस समय बरात के साथ 'मसियार' थे जो सर्वत्र प्रकाश फैला रहे थे।[१८] बारात के निकट आने पर पद्मावती कुतूहलवश रत्नसेन को देखने के लिए धौराहर (सं० धवलगृह) पर जा चढी। बरातियो का स्वागत 'पान फूल सेंदुर' से किया गया। उन्हे उचित आसन दिए गए और सब के मध्य मे 'सिंघासन पाट' पर **दूलह**[१९] (**सं० दुर्लभ**) बिठाया गया। पहले **जेवनार** (**सं० जेमन**) हुई, तदुपरान्त **बियाहचार**[२०] आरम्भ हुआ। **'रतन चौक'**[२१]

---

१. प० ७३।४ २. प० ७३।६ ३. प० ५३।२ ४. प० १२२।७
५. प० १२३।१ ६. प० २७४।२ ७ प० २७४।२ ८. प० २७४।६
९. प० २७५।१ १०. प० २७५।१ ११. प० २७५।५ १२ प० २७५।५
१३ प० २७५।६ १४ प० २७५।७ १५. प० २७५।७ १६. प० २७५।९
१७. प० २७७।९ १८. प० २७७।४ १९ प० २७९।५ २०. प० २८५।२
२१. प० २८५।४

पूरा गया, **कलस** की स्थापना हुई।[१] कन्या मंडप मे लाई गई[२] और **गाँठि दुलह दुलहिनि कै जोरी**[३]। इस अवसर पर मन्त्रोच्चार तथा स्वस्ति-पाठ हो रहा था।[४] वर और वधू दोनो के नाम लेकर **गोत उचारा**[५] (**सं० गोत्रोच्चार**) होने लगा। तब मंगलचार करती हुई स्त्रियो ने पद्मावती को **जैमाला**[६] (**सं० जयमाला**) दी। रत्नसेन को भी एक माला दी गई और दोनो ने एक दूसरे को मालाए पहिनाई। तत्पश्चात् जलाजलि के साथ कन्या पति को सौप दी गई।[७] **भांवरि**[८] (**सं० भ्रमण**) पड़ने लगी और साथ ही साथ **'नेवछावरि'**[९] के रूप मे मोती बरसाये जाने लगे। दोनो **'सतफेर'**[१०] फिरने लगे। **'भाँवर'** हो चुकने के उपरान्त 'नेवछावरि' तथा अन्य सभी **'राजचार'**[११] किए गए। **दाइज**[१२] (**सं० दायाद्य**) भी दिया गया जो अपरिमित था। विवाह के पश्चात् वर-वधू को धौराहर मे निवास दिया गया।[१३] वहा रात्रि मे सखिया पद्मावती को बारह आभूषण तथा सोलह शृगारो से सजा कर[१४] **सोवनार**[१५] (**सं० स्वप्नागार>प्रा० सोवणआर**) मे रत्नसेन के समीप लाई[१६]। कवि ने पहले यहाँ चौपड खेलने[१७] और तत्पश्चात् रति का वर्णन भी किया है।[१८] आखिरी कलाम मे भी विवाह से सम्बद्ध शब्दावली का प्रयोग हुआ है[१९]। किन्तु उसमे कोई नवीनता नही है इसी प्रकार महरी बाईसी मे **'सगाई'**[२०] तथा **'बियाहु'**[२१] उल्लिखित है। इस कृति मे यद्यपि छन्द सख्या ८,१३ और २० मे विवाह सम्बन्धी शब्दावली का प्रयोग हुआ है, तथापि यह भी पिष्टपेषित ही है, अत यहाॅ उसकी पुनरावृत्ति व्यर्थ ही है। जायसी द्वारा वर्णित विवाह-पद्धति हिन्दू लोकाचारो के अनुरूप ही है। उनका यह वर्णन हिन्दू समाज के इस कृत्य के इतना अधिक निकट है कि कुछ विद्वान तो इस प्रकार की भी सम्भावना करने लगे है कि जायसी सम्भवत सद्योधर्मान्तिरित भारतीय सूफी सन्त थे।[२२]

गौना (**सं० गमन**) पद्मावत मे जायसी ने गौना-प्रथा का उल्लेख दो स्थानो पर किया है। पहला, रत्नसेन-विदाई-खड मे पद्मावती का गौना और दूसरा, गोरा-बादल-युद्ध खड मे बादल का गौना। **'गवनचार'**[२३] (**सं० गमनचार**) के अवसर पर भेटने की प्रथा आज भी प्रचलित है। पद्मावती भी अपने पिता के घर से चलते समय अपनी सखियो से 'भेटने'[२४] का आग्रह करती हैं। सगे-सम्बन्धियो के गले लग कर तथा उन्हे रोता हुआ छोड कर वह विमान पर चढ कर पतिगृह चली।[२५] इस अवसर पर उसके पिता गन्धर्वसेन ने **'गवन'** का

---

१. प० २८५।५ २. प० २८५।५ ३. प० २८५।६ ४ प० २८५।७
५. प० २८६।१ ६. प० २८६।२ ७. प० २८६।४ ८ प० २८६।६
९. प० २८६।६ १०. प० २८६।७ ११. प० २८६।८ १२ प० २८६।९
१३. प० २८८।१ १४ प० ३००।१ १५. प० २९०।१ १६. प० ३०३।१
१७ प० ३१२-३१३ १८ प० ३१६-१७ (सम्पूर्ण)
१९ आखि० छं० ५५-५६ २० म० बा० ८।७ २१ म० बा० ८।२
२२. शिवसहाय पाठक : पद्मावत का काव्य-सौन्दर्य, पृ० १९१।
२३ प० ३७८।१ २४. प० ३७९।९ २५. प० ३८४।२

'साज'[1] दिया। 'रतन पदारथ मानिक मोती' भंडार से निकाल कर रथो मे भरे गये।[2] दिये जाने वाले वस्त्रो की सख्या इतनी अधिक थी कि उनसे चार लाख पिटारे भर गये।[3] दासियाँ एक सहस्र पालकियो मे बैठ कर चली।[4] इस प्रकार अपार विदाई लेकर रत्नसेन घर चला। दूसरा प्रसग बादल के गौने का है। बादल जिस दिन युद्ध-यात्रा के लिए उद्यत हुआ, उसी दिन उसका गौना आ पहुँचा।[5] यह वर्णन काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। भाषा की दृष्टि से **'चालू'**[6] **(सं० चल्)** शब्द विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो गौने के लिए प्रयुक्त हुआ है। यह उस प्रथा की ओर सकेत करता है जिसके अनुसार कन्या गौने मे ही पहली बार ससुराल जाती है। उत्तर प्रदेश के कुछ पूर्वी जिलो मे (बस्ती, गोडा आदि मे) अब भी यह परम्परा प्रचलित है।

अन्त्येष्टि . जायसी ने इस सस्कार का परम्परागत रूप मे उल्लेख नही किया है, किन्तु इसी प्रसग मे हमे कुछ महत्वपूर्ण सकेत प्राप्त होते है। मरण-सम्बन्धी पहला उल्लेख्य सकेत दो० ७९ मे है जहाँ कवि कहता है

तब लगि चित्रसेन **सिव साजा** । रतनसेन चितउर भा राजा ।

'सिव साजा' मे उस मध्यकालीन प्रथा की ओर सकेत है जिसमे मरण के अनन्तर राजाओ के लिए शिव-मन्दिर का निर्माण करके उसमे शिवलिंग की स्थापना की जाती थी और यह समझा जाता था कि मृत व्यक्ति शिव मे लीन हो गया।[7] इस प्रकार के शिव मन्दिर-निर्माण की प्रथा स्याम, कम्बुज आदि स्थानो मे भी थी। मरण-सम्बन्धी अन्य दो महत्वपूर्ण सकेत **'जौहर'** और **'सती'** प्रथा के है। जौहर-प्रथा भारतीय नारी-जाति के इतिहास की सर्वाधिक गौरवपूर्ण घटना है। यह वह प्रथा थी जिसमे नारी आत्म-सम्मान तथा सतीत्व की रक्षा के लिए हसते-हसते प्राण त्याग कर देती थी। श्री ए० जी० शिरेफ ने लिखा है कि जौहर सामूहिक आत्म-बलिदान है जिसकी बलिवेदी वीर क्षत्रियो के लिए रणभूमि होती थी, जहा वे मृत्यु-पर्यन्त लड कर प्राण दे देते थे और क्षत्राणिया अग्नि की ज्वाला मे कूद कर प्राणान्त कर लेती थी।[8] 'पद्मावत' मे जौहर दो स्थानो पर वर्णित है। एक तो अलाउद्दीन और रत्नसेन के युद्ध के प्रसग मे, जब राजपूतो को भावी पराजय का विश्वास हो गया तो 'जौहर कह साजा रनिवासू'।[9] किन्तु इस स्थल पर तो सन्धि होने के कारण वह दारुण वेला टल गई। दूसरी बार जब अलाउद्दीन ने चित्तौड पर आक्रमण किया तो—

---

१. प० ३८५।२ २. प० ३८५।५ ३. प० ३८५।४ ४. प० ३८५।३
५. प० ६१५।१ ६. प० ६१६।६
७. **पद्मावत : सं० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ७८।**
८. **ए० जी० शिरेफ पदुमावति, पृ० २९३, पाद-टिप्पणी।**
९. प० ५३१।७

जौहर भईं सब इस्तिरी, पुरुष भये संग्राम ।[1]

सती-प्रथा का उल्लेख रत्नसेन की मृत्यु के अनन्तर किया गया है। नागमती और पद्मावती दोनो रानिया **'सिवलोक'** की यात्रा करने के लिए अन्तिम श्रृंगार करती हैं। 'चदन अगर' आदि से सर[2] (चिता) की रचना की गई और सब राजा को 'गति'[3] देने के लिए बाजा बजाते हुए ले चले। (उल्लेखनीय है कि जायसी ने अर्थी के लिए 'खाट' शब्द का व्यवहार किया है **लै सर ऊपर खाट बिछाई।**[4] मुसलमानो मे खाट पर शव ले जाने की प्रथा है और सम्भवत जायसी ने उसी से प्रभावित होकर इस शब्द का प्रयोग किया है।) चिता की रचना करने के उपरान्त 'दान पुन्नि' किया गया तथा दोनो रानियो ने सात बार पति के शरीर की भावरि दी।[5] तब उन्होने पति का कठालिंगन किया और आग लगा कर राख हो गईं।[6] जायसी के उल्लिखित विविध वर्णनो का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जायसी ने सस्कार-वर्णनों को प्रमुखता नही दी है। उनका प्रधान उद्देश्य प्रेम-कथा का वर्णन कर प्रेम के महत्व को प्रस्तुत करना था—

मानुस पेम भएउ बैकुंठी। नाँहि त काह छार एक मूंठी ।[7]

नायक अथवा नायिका के जीवन का सागोपाग वर्णन करना नही। प्रबन्ध-काव्य की रचना करते हुए भी वे तुलसी के समान जीवन के सभी पक्षो का सानुपातिक एव सतुलित वर्णन करने में सफल नही हो सके है।

छ— पर्वोत्सव तथा मनोविनोद : जायसी-काव्य मे इन दोनों वर्गों से सम्बद्ध शब्दावली प्रचुर मात्रा मे प्रयुक्त हुई है। पहले पर्वोत्सव-सबधी शब्दावली को ले। हर्ष तथा उल्लास के प्रतीक पर्व तथा उत्सवो का जन-जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान है। जायसी ने जिन पर्वोत्सवों का उल्लेख किया है वे हिन्दू जनता के बीच भली प्रकार प्रचलित हैं। यह तीन हैं वसत, होली तथा दिवाली। **'दसहरा'**[8] भी नाम-मात्र के लिए उल्लिखित है।

वसंत 'पद्मावत' मे वसन्त का वर्णन दो रूपो मे हुआ है, पर्वोत्सव के रूप मे तथा ऋतु-उत्सव के रूप मे। पर्वोत्सव के रूप मे जायसी ने **'सिरी पचमी'**[9]* (माघ शुक्ल पचमी को वसन्त-पचमी का दिन) का वर्णन किया है। इस अवसर पर पद्मावती तथा उसकी अन्य सखियो ने 'बरन बरन की सारी' पहिन[10] कर तथा अगो मे 'चोवा चंदन' आदि सुगन्ध का प्रलेप कर अपना सिंगार किया।[11] वे हाथो मे 'फूल डालि 'लेकर' विश्वनाथ की पूजा' के लिए चली।[12] मार्ग मे सभी एक दूसरे को 'जोहार' करती हुई उल्लासपूर्ण बाते करती

---

१. प० ६५१।८ २. प० ६४६।४ ३ प० ६४६।४ ४. प० ६५०।३
५. प० ६५०।१ ६ प० ६५०।७ ७ प० १६६।२ ८ प० ४२४।३
६ प० १८३।१ १० प० १८४।५ ११. प० १८४।४ १२. प० १८५।८

***कवि ने इसका आगमन शिशिर के बाद कहा है जब कि इसे हेमन्त के बाद कहना चाहिए था।**

थी ।[१] 'फर फूल'[२] जो कुछ जिसके हाथ आया, उसने वही ले लिया। फिर सब '**झुड बाधि कै**' '**पचमि**'[३] (एक प्रकार का लोकगीत) गाने लगी। नारी कठो से निकले हुए स्वर मे 'ढोल दुन्द औ भेरी', 'तूर झाझ सख सीग डफ' तथा बसकारि, 'महुवर' (**स० मधुकर**) आदि विविध वाद्य सहयोग दे रहे थे।[४] इस उमग मे सेदुर 'बुक्का' भर भर कर धमारी होने लगी।[५] स्त्रिया कुछ दूर तक चलती और फिर ठहर कर **चाँचरि** (**स० चर्चरी**) करने लगती थी।[६] सभी '**नाँच कोड' (देशज कुड्ड)** मे व्यस्त थे।[७] सेदुर की '**खेह**' इतनी अधिक मात्रा मे उड रही थी कि उससे 'धरती', 'गगन' और वन मे 'बिरिखपात' लाल हो गये।[८] इस प्रकार विविध 'कुरेरे' करती हुई राजकुमारी 'महादेव मढ़' मे जा पहुची।[९] देव-मण्डप मे प्रविष्ट होकर उसने देवता को तीन बार प्रणाम किया[१०] और पूजा चढाई।[११] सारा मडप 'फर फूलन्ह' से भर गया।[१२] पद्मावती ने चन्दन और 'अगर' से देवता को स्नान कराके उसे 'सेदुर' लगाया और फिर उसे 'परसि' (स्पर्श कर) उसके पैरो पर गिर पडी।[१३] अपनी मनोकामना पूर्ण करने की प्रार्थना करते हुए पद्मावती ने 'कलस' चढाने की '**मानता**' भी मानी।[१४] तदुपरान्त रथ पर चढ सिहलगढ की ओर प्रयाण किया।[१५]

ऋतु-उत्सव के रूप मे वसन्त का चित्रण सक्षिप्त ही है। दो० ३३५ मे कवि कहता है कि 'बसन्त रितु' आने पर पद्मावती ने अगो मे 'चदन चीर' पहने, 'परिमल बास' का सेवन किया, 'फाग' होने लगा और सुन्दर 'चाचरि' जुडी। सभी लोग सुख का अनुभव कर रहे थे।

होली जायसी ने होली जलाने की चर्चा वसन्तोत्सव के अवसर पर ही की है .

फागु खेलि पुनि दाहब होली। सैंतब खेह उड़ाउब झोली।[१६]

उन्होंने इस अवसर पर होने वाली '**चांचरि**' (स० चर्चरी) नृत्य, '**धमारी**' (वसन्त का एक औद्धत्यपूर्ण नृत्य) गान-'**मनौरा झूमक**' आदि लोकगीत और फाग[१७] खेलने तथा झोली भर भर '**खेह**' उड़ाने का वर्णन किया है।[१८] गोरा-बादल-युद्ध-खड मे उपमान रूप मे होली के **अवसर** पर अबीर गुलाल उडाये जाने का उल्लेख मिलता है।[१९]

दीवाली : जायसी ने नागमती के बारहमासे के अन्तर्गत इस पर्व का उल्लेख मात्र ही किया है : **अबहूँ निठुर आव एहिं बारा। परब देवारी होइ संसारा।**[२०]

इस समय अन्य सौभाग्यशालिनी स्त्रिया अग मोड कर 'झूमक' गाती है[२१] और गा कर तथा खेल कर '**तेवहार**'[२२] (**त्यौहार**) मना रही है।[२३] जायसी कृत उपर्युक्त वर्णनो से हिन्दू पर्वोत्सवो को सम्पन्न करने की परम्परा पर सक्षिप्त प्रकाश पडता है।

---

१ प० १८६।२ २. प० १८६।३ ३. प० १८६।१ ४. प० १८६।२-४
५. प० १८६।६ ६ प० १८६।७ ७ प० १८६।७ ८. प० १८६।८-९
९. प० १९०।१ १० प० १९१।१-२ ११. प० १९१।३ १२ प० १९१।४
१३ प० १९१।५ १४ प० १९१।८ १५. प० १९६।१ १६. प० १८६।४
१७ प० २०४।५ १८. प० १८६।४ १९. प० ६३३।६ २०. प० ३४८।५
२१. प० ३४८।६ २२. प० ३४८।८ २३. प० ३४८।८

मनोविनोद सम्बन्धी शब्द : पर्वोत्सव के अतिरिक्त खेल-कूद के विविध प्रकार भी जीवन मे आमोद-प्रमोद की सृष्टि करते है। जायसी ने इस सम्बन्ध मे चौपड, शतरज तथा चौगान खेलने का विस्तृत वर्णन किया है।

चौपड़ : जायसी ने **चौपड़ (सं० चतुष्पट्ट)** का उल्लेख कई स्थानो पर किया है। इनमे से दो स्थल विशेषत उल्लेखनीय है – एक तो, सिंहल द्वीप– वर्णन-खड मे राजकुमारो का चौपड खेलना और दूसरे 'पद्मावती-रत्नसेन-भेट-खड' मे वर-वधू के चौपड खेलने की चर्चा करना। प्रथम स्थल सक्षिप्त है और वहा **'सारी'** (**स० शारि**) तथा **पाँसा (स० पाशक)** का उल्लेख करके कवि ने मनोविनोद के एक तत्कालीन साधन की ओर सकेत किया है

मदिर मदिर सब कें चौपारी। बैठि कुवँर सब खेलहिं सारी।
पाँसा ढरै खेल भलि होई। खरग दान सरि पूज न कोई।[1]

किन्तु दूसरे प्रसग मे (जहा चौपड खेलना एक सामाजिक प्रथा के रूप मे वर्णित है) उल्लेख विस्तृत है तथा उससे इस खेल की रीति का सुन्दर परिचय मिलता है

(क) अैसे राजकुंवर नहिं मानौ। खेलु **सारि पाँसा** तौ जानौ।
कच्चे बारह बार फिरासी। **पक्के** तौ फिरि थिर न रहासी।
रहै न **आठ अठारह** भाखा। **सोरह सतरह** रहै सो राखा।
सतएँ ढरै सो खेलनिहारा। **ढारु इगारह** **जासि न मारा**।
तू लीन्हे मन आछसि **दुवा**। औ **जुग सारि** चहसि पुनि छुवा।
हौ **नव** नेह रचौं तोहि पाहाँ। **दसौं दाउँ** तोरे हिय माहाँ।
पुनि **चौपर खेलौं** कै हिया। जो **तिरहेल** रहै सो **तिया**।
जेहि मिलि बिछुरन औ तपनि अत तत तेहि नित।
तेहि मिलि बिछुरन को सहै बरु बिन मिले निचित।[2]

(ख) **पौ** परि बारह बार मनावौ। **सिर** सौं खेलि **पैंत** जिउ लावौ।
माफि सारि सहि हौं अस राँचा। तेहि **बिच कोठा** बोल न बाँचा।
पाकि गहे पै आस **करीता**। हौं जीतेहुँ **हारा** तुम्ह **जीता**।
मिलि कै **जुग** नहिं होउँ निनारा। कहाँ बीच **दुतिया** देनिहारा।[3]

उपर्युक्त अशो मे चौपड के विशिष्ट पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त हैं।[4] मध्यकालीन समाज मे मनोविनोदार्थ अनेक साधनो की व्यवस्था थी, जिनमे चौपड या द्यूत-क्रीडा का स्थान प्रमुख था। कुछ शिलालेखो मे इस प्रकार के प्रमाण है कि समाज मे द्यूतगृहो की व्यवस्था थी और उन पर राजकीय कर लगता था।[5]

---

१. प० ४४।५-६ २. प० दो० ३१२ ३. प० ३१३।३-६

४ प्रसंगवश, यहां यह बता देना अनुचित न होगा कि जायसी का यह वर्णन श्लेषात्मक है जिसके अन्य अर्थ प्रेमपरक तथा योगपरक भी हैं।

५. म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ० ५२।

मनोरजन का दूसरा उल्लिखित महत्वपूर्ण साधन **सँतरज**[1] **(शतरंज)** है। कवि ने इसका वर्णन 'चित्तौड गढ वर्णन खड' के अन्तर्गत रत्नसेन द्वारा अलाउद्दीन के स्वागत के प्रसग मे किया है। विषय की स्पष्टता के लिए यहाँ तत्सम्बन्धित कतिपय पक्तियो को उद्धृत करना आवश्यक है –

> **खे**लहि दुवौ साहि औ राजा। साहि क **रुख** दरपन रह साजा।
> पेम क लुबुध **पयादे** पाऊँ। चलै सौह ताकै कोनहाऊँ।
> **घोरा** दै **फरजी बँदि** लावा। जेहि मोहरा रुख चहै सो पावा।
> राजा **फील** देइ **सह** माँगा। **सह दै साहि फरजी** दिग खाँगा।
>
> फीलहि फील **ढुकावा** भए दुवौ चौदत।
> राजा चहै **बुरुद** भा साहि चहै सह मत।[2]

अर्थात् 'राजा और शाह दोनो खेलने लगे। शाह की दृष्टि दर्पण पर लगी हुई थी। प्रेम का लुभाया हुआ व्यक्ति 'प्यादे' की भाँति पैरो चलता है। वह बढता तो सीधे है किन्तु दृष्टि निरन्तर कोने की ओर रहती है। शाह ने अपना 'घोडा' देकर (मरवा कर) राजा के 'फरजी' का मार्ग उस जगह पर (घर पर) जाने से बद कर दिया जहाँ पर राजा का 'फरजी' जाकर शाह के बादशाह की 'शह' 'मात' करता था। शाह ने 'रुख' (हाथी) से वह 'मोहरा' पा लिया जिसे वह चाहता था। (यह मोहरा शाह की मात करता था, इससे मारना आवश्यक था) राजा ने 'फील' (ऊँट) चल कर शह दी। शाह ने अपना बादशाह 'फरजी' के पास खगते (अडा कर रखते हुए) राजा को 'शह' दी। राजा ने शाह की शह बचने के लिए अपने फील (ऊँट) को 'ढुका' (ढकेल) दिया, यानी अर्दब मे डाल दिया। इस पर शाह ने अपने 'फील' (ऊट) को उस पर डाल दिया और दोनो 'चौदत' यानी आमने-सामने बराबरी से आ गए। अब स्थिति यह हुई कि राजा शाह की 'बुर्दबाजी' करना चाहता था और राजा की 'शहमात' करना चाहता था।[3] इस व्याख्या से स्पष्ट है कि कवि ने इन पक्तियो मे शतरंज के विशिष्ट शब्दो का ही प्रयोग नही किया है, बल्कि उसकी विविध चालो का भी उल्लेख करके वर्णन मे प्राण डाल दिए हैं। इसी प्रसग मे कवि आगे कहता है

> **रुख माँगत रुख तासौं भएऊ। भा सहमाँत खेल मिटि गएऊ।**[4]

इसी पंक्ति मे भी शतरज की दो महत्वपूर्ण चालो **'शहरुखा'** और **'शहमात'** का सकेत है। 'शहमात' होने पर खेल समाप्त हो जाता है, जायसी ने चतुरता से इसका भी उल्लेख कर दिया है।

---

१ प० ५६७।१ २. प० ५६७।४-६
३. **डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पद्मावत, पृ० ६१४ (रामदास गुप्त कृत व्याख्या)।**
४. प० ५६६।५

इसी प्रकार की शैली मे कवि ने **चौगान**[1] (फा० **चौगान**) का भी वर्णन किया है। स खेल के लिए **'मैदान'**[2], **'गोई'**[3], **'हाल'**[4] (चौगान के मैदान के अन्त मे दोनो ओर दो गुम्मटनुमा खम्भे, जिनके बीच से गेद निकालना खेल का उद्देश्य होता है। आजकल की भाषा मे इन्हे 'गोल' कहते है, इनका अन्य नाम **कूरी**[5] (**सं० कूट**) भी है।), **'तुरै'**[6] (**सं० तुरग**), **चौगान**[7] (**खेलने का बल्ला, अं० पोलोस्टिक**) तथा **'खेलार'**[8] की आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति **'गोइ'** (**फा० गूय**) लेकर बढता है वही दोनो 'कुरी' के बीच मे गेद (स० कन्दुक) निकाल कर **'हाल'** करने में समर्थ होता है।[9] किन्तु उन 'कुरियो' तक पहुँचना सरल नही है।[10] वे देखने मे निकट प्रतीत होती है, पर उन तक पहुंच पाना बडा कठिन है।[11] चौगान के खेल की एक घडी की अवधि भी बडी कठिन होती है।[12] जब तक गेद के साथ सिर भी न दिया जाय, मैदान मे जीत नही होती।[13] उल्लेखनीय है कि अन्य दो प्रसगो की भाति इस खेल के वर्णन मे भी कवि ने श्लेषालकार का आश्रय लिया है और सम्बद्ध पक्तियो मे चौगान के अतिरिक्त शृंगारपरक अर्थ भी ध्वनित होता है।

मनोरजन के इन तीन प्रधान साधनो के अतिरिक्त कवि ने मनोविनोद तथा क्रीडा के अन्य रूपों का भी यत्र-तत्र उल्लेख किया है। सिंहलगढ मे सामान्य जनता **'नाच कोड'**[14] (**दे० कुड्ड**) का आनन्द लेती है। कही 'काठ' नचाया जाता है[15], तो कही **'छरहटा'** (**स० छलहट्ट**)[16] लगता है जहाँ लोग आश्चर्यजनक कृत्य देख विस्मित तथा हर्षित होते है। चित्तौड मे तो ऐसे **'अखार'**[17] (**सं० अक्षवाट**) भी हैं जिनमे विविध कलाओ का प्रदर्शन करने वाले 'नट',[18] अभिनेताओ द्वारा नाटक,[19] 'पातुर'[20] का 'नाच'[21] तथा 'बाजा'[22] आदि के द्वारा मनोविनोद किया जाता है।[23] क्षत्रिय लोग वन मे **'अहेर'**[24] (**सं० आखेट**) करने जाते है। स्त्रिया भी अनेक प्रकार के साधनो से अपना मनोरजन करती है। कभी जल मे 'केलि'[25] करती है और कभी **'हिंडोला'**[26] (**सं० हिंडोल**) रच कर आनन्द लेती है। कोई हाथ में 'बीन' लेकर बजाने लगती है और कोई **'मिरदंग'** (**सं० मृदंग**) के 'नाद' मे विभोर हो उठती है।[27] इसी प्रकार की अन्य रसकेली[28] (जलक्रीडा आदि) भी हैं जिनमे तल्लीन रहकर वे अपने दिन आनन्दपूर्वक व्यतीत करती हैं।[29]

ज—शिष्टाचार सम्बन्धी शब्द : शिष्टाचार सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण अग है।

---

१. प० ६३६।६ २. प० ६२६।७ ३ प० ६२८।१ ४. प० ६२८।५
५. प० ६२८।५ ६. प० ६२८।२ ७. प० ६२८।३ ८. प० ६२६।३
९. प० ६२८।४ १० प० ६२८।५ ११. प० ६२८।५ १२. प० ६२८।५
१३. प० ६२८।६ १४. प० ३९।४ १५. प० ३९।५ १६. प० ३९।५
१७ प० ५५७।४ १८ प० ५५७।४ १९ प० ५५७।४ २०. प० ५२८।६
२१. प० ५२९।७ २२. प० ५५७।४ २३. प० ५५७।४ २४. प० ३६४।१
२५ प० ६३।१ २६ प० ३४५।४ २७. प० ३३२।९ २८ प० ५४।३
२९. प० ३३२।८-९

प्रत्येक युग मे, सर्वत्र, तत्सम्बन्धित आचरण-पद्धति किसी न किसी रूप मे प्रचलित रही है। जायसी ने भी यथास्थान इस प्रकार की शब्दावली का व्यवहार किया है। इनमे से अधिकाश शब्द परम्परागत तथा लोक-प्रचलित है। इस प्रकार के विविध व्यवहारो मे 'प्रणाम' अथवा 'अभिवादन' की प्रक्रिया विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। अतः सर्वप्रथम उसी से सम्बद्ध शब्दो के उदाहरण दिये जाते है –

१ – सब रानी ओहि करहिं **जोहारू**।[१] २ – आपु आपु मह करहि **जोहारू**।[२]
३ – सबै आइ **सिर नावहि** मरबरि करै न कोइ।[३]
४ – पदुमावति के दरसन आसा। **डंडवत** कीन्ह मडप चहुँ पासा।[४]
५ – **नमो नमो** नारायन देवा। का मोहि जोग सकौं करि सेवा।[५]
६ – हीरामनि भुइ **धरा लिलाटू**।[६]
७ – **परसि पाय** राजा के रानी। पुनि आरति बादिल कह आनी।[७]

समवयस्को तथा स्त्रियो के पारस्परिक अभिवादन करने की प्रणाली किंचित् भिन्न होती है, अतएव उनके प्रसग मे एक-दो अन्य शब्द भी प्रयुक्त हुए है, यथा

आइ मिले चितउर के साथी। सबहो बिहँसि आइ **दिए हाथी**।[८]
बाँह पसारि धाइ कै **भेंटी**।[९]

नमस्कारादि करने के अर्थ मे प्रयुक्त शब्दो के अन्तर्गत '**अदेस**' (**स० आदेश**) शब्द विशेषत. उल्लेखनीय है। यह सिद्धो तथा नाथो का पारिभाषिक शब्द है।[१०] जायसी ने इसे अपना कर सामान्य जीवन मे इसका प्रयोग दिखाया है। एक स्थान पर नागमती रत्नसेन से कहती है

तुम सौ अहै **अदेस** पियारे।[११]

एक अन्य स्थान पर रत्नसेन अपनी माता से विदा लेते समय कहता है

सिघलदीप जाब मै माता मोर **अदेस**।[१२]

अपने से बडो के सम्मुख नम्रता का प्रदर्शन भी शिष्टाचार का एक आवश्यक नियम है। जायसी के काव्य मे इस भाव को व्यक्त करने के लिए **अरदास** (**फ़ा० अर्ज़दाश्त**),

---

१ प० ४६।५ २ प० १८६।२ ३ प० २६।८ ४ प० १६५।३
५. प० १६५।४ ६. प० २५६।१ ७. प० ६४१।१ ८. प० ३३०।२
६. प० ५८७।४
१० **सिद्धों तथा नाथों में शिष्य गुरु को प्रणाम करके 'आदेश' शब्द तीन बार कहता है। उत्तर में गुरु भी 'आदेश' कहता है।**
११. प० ६१।५ १२. प० १३०।६

बिनाती, अस्तुति, निहोरा आदि विभिन्न शब्द संज्ञा तथा क्रिया दोनो रूपो मे प्रयुक्त हुए है, यथा .

अ – ओन्ह **बिनउब** आगे होइ करब जगत कर मोख ।[१]

आ – मेदिनि दरस लोभानी **अस्तुति बिनवइ** ठाढि ।[२]

इ – पै गोसाइँ सौं एक **बिनाती** । मारग कठिन जाब केहि भाँती ।[३]

ई – साखि होहु एहि भीखि **निहोरा** ।[४]

उ – ढीली की **अरदासे** आईं ।[५]

इसी प्रसग मे 'असीस' का प्रयोग भी मिलता है जो शब्द के मूल अर्थ से भिन्न है–

सब पिरथिमी **असीसइ** जोरि जोरि कै हाथ ।[६]

देहि **असीस** सबै मिलि तुम्ह माथे निति छात ।[७]

'असीस' शब्द केवल आशीर्वादार्थ भी व्यवहृत हुआ है

दै **असीस** बहुरे जोतिषी ।[८] बिप्र **असीसा** कीन्ह पयाना ।[९]

इसी अर्थ मे **आसिरबाद**[१०] तथा **बरम्हाऊ**[११] (स० **ब्रह्मापयति**) का प्रयोग भी मिलता है । इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्दो, वाक्याशो तथा वाक्यो के प्रयोग भी उपलब्ध होते है जिनसे शिष्टाचार सम्बन्धी अन्य व्यवहारो पर प्रकाश पडता है, यथा, पद्मावती एक अवसर पर अपने पिता के पास कहलाती है

पिता क आएसु मांथे मोरे । कहहु जाइ बिनवै कर जोरे ।[१२]

पुत्री का इस प्रकार का नम्र सदेश शिष्टाचार के सर्वथा अनुकूल ही है । कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार है

१. गुरु हमार तुम्ह राजा हम चेला औ नाथ ।
जहाँ पाँव गुरु राखै चेला राखै माँथ ।[१३]

२. जेहि परैबत पर दरसन लहना । सिर सौं चढ़ौं पाय का कहना ।[१४]

३. कुंडल गहे सीस भुइ लावा । पावरि होउं जहाँ ओहि पावा ।
जटा छोरि कै बार बोहारौं । जेहि पंथ होइ सीस तह बारौं ।[१५]

४ जौं सो बोलावहि पाउ सौं हम तहँ चलहिं लिलाट ।[१६]

५ रतनसेनि बिनवा कर जोरी । अस्तुति जोगि जीभि नहिं मोरी ।[१७]

६. जौं यह बचन तौं मांथें मोरें । सेवा करौं ठाढ़ कर जोरें ।[१८]

---

१. प० ११।६   २. प० १६।६   ३ प० १४१।३   ४. प० २१६।७
५ प० ५३२।४   ६ प० १५।८   ७. प० १३१।८   ८. प० ५३।१
९. प० ८२।२   १० प० २७१।६   ११. प० २६३।५   १२. प० ५६।५
१३. प० १४७।८-९   १४ प० १६३।२   १५ प० १६७।६-७   १६. प० २३८।६
१७. प० २८७।६   १८. प० ५३७।४

ऐसे स्थलों मे भाषा कर्णप्रिय, मधुर और शिष्ट-व्यवहार के सर्वथा अनुकूल है। इस सामान्य लोक-प्रचलित शिष्टाचार के अतिरिक्त राजकीय शिष्टाचार का उल्लेख भी यत्र-तत्र प्राप्त होता है। सभी राजा अपने से बडे राजा के सम्मुख सिर नवाते है।[१] राघव-चेतन तक सिर नवाने के उपरान्त ही 'अर्सीस' देता है।[२] सम्मानार्थ 'पहिरावा' देना तथा हाथी-घोडे प्रदान करना भी राजनैतिक शिष्टाचार का एक अग समझा जाता था।[३] कभी-कभी पान देना मात्र ही सम्मान का प्रतीक होता था।[४] अतिथि के सम्मानार्थ उसके गले मे पगडी पहनाना भी शिष्टाचार था।[५] जायसी ने राजसभा के शिष्टाचार का वर्णन करते हुए इस बात का भी सकेत दिया है कि सभासद् लोग राजा की बात का उत्तर अपने स्थान पर खडे होकर देते थे।[६] राजकीय पत्रादि लेखन मे भी उचित शिष्टाचार का निर्वाह किया जाता था। अलाउद्दीन द्वारा रत्नसेन को भेजे गए पत्र के सम्बन्ध मे कवि कहता है

पत्र दीन्ह लै राजहि किरिपा लिखी अनेग।[७]

यहाँ 'किरिपा लिखी' प्रयोग विशेषत द्रष्टव्य है। इस सम्बन्ध मे डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने मध्यकालीन पत्रो का परिचय देते हुए उनके सात भाग (भेद नही) बताए है। उनके अनुसार इनमे से चौथा उपचार था, जिसके अन्तर्गत प्रेषक यथोचित नमस्कारादि लिखता था।[८] कवि द्वारा प्रयुक्त 'किरिपा लिखी अनेग' से उसका अभिप्राय उसी कुशल प्रश्नादि से है जो अलाउद्दीन के पत्र मे उल्लिखित था।

स्वागत-सत्कार : शिष्टाचार के अन्तर्गत स्वागत-सत्कार का अपना विशिष्ट महत्व है। जायसी के काव्य मे इस प्रकार के दो-तीन स्थल विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यह प्रसग विस्तृत नही है और विविध कार्यो की ओर सकेत मात्र करते है। पहला प्रसग उस समय का है जब सिहल द्वीप को प्रयाण करते हुए रत्नसेन समुद्र के तट पर पहुँचा। उडीसा नरेश उसके आगमन का समाचार सुन उससे मिलने ('भेटै'[९]) के लिए स्वय आए तथा उन्होने **'पहुँनई'**[१०] की आज्ञा चाही। दूसरे स्थल मे कवि पद्मावती के साथ लौटते हुए रत्नसेन के समुद्र-कृत आतिथ्य तथा विदा-प्रसग का वर्णन करता है। यहाँ 'समदन'[११] शब्द विशेषत उल्लेखनीय है। शिष्टाचार के विविध नियमो मे एक नियम यह भी है कि विदा देते समय अतिथि को भेट रूप मे कुछ धन दिया जावे। **'समदन' (स० समदन)** उसी अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। तीसरा स्थल रत्नसेन के चित्तौड-आगमन का है। भाट द्वारा रत्नसेन के आगमन की सूचना पाकर सभी भाई-बधु घोडो पर सवार होकर अगवानी करने चले[१२]। राजा बाजो

---

१. प० ३७४।६ २. प० ४६०।२ ३. प० ४८८।१ ४ प० १८१।१
५ प० ५६५।३ ६. प० ३७६।१ ७ प० ४८८।८
८ **पद्मावत : स० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ५०८।**
६. प० १४०।२ १० प० १४०।४ ११ प० ४१६।८ १२ प० ४२५।८

के साथ नगर मे लाया गया[१]। इस अवसर पर घरों पर बदनवार बाध दिए गए[२]। नगर मे चारों दिशाओ मे '**बधावा**' तथा '**मगलचार**' होने लगे[३]। दिन भर दान किया गया[४]। विशिष्ट अतिथि का स्वागत स्वय आगे बढ कर करना और स्वय ही उसका विविध प्रकार से सत्कार करना भी शिष्टाचार के अन्तर्गत आता है। रत्नसेन अलाउद्दीन के दुर्ग-आगमन पर स्वयं आगे बढ कर उसका स्वागत तो करता ही है[५], भोजन के अवसर पर व्यक्तिगत रूप से भी आतिथ्य करके[६] उपर्युक्त दोनो नियमो का निर्वाह करता है। इस सम्बन्ध मे अतिम प्रसग अलाउद्दीन के बन्धन से मुक्त होकर रत्नसेन के पुन चित्तौड आने का है। इस अवसर पर भी 'बधाउ' बजता है।। पद्मावती अपनी सखियो सहित आगे जाकर 'सेंदुर फूल तबोर' से प्रिय के 'पाय दुइ' (पाद-द्वय) की पूजा करती है[७]। तदुपरान्त 'गजहस्ति'[८] पर चढा कर और मार्ग मे 'नेत' (नेत्र-एक वस्त्र का नाम) बिछा, 'बाजत गाजत' राजा को लाकर सिहासन पर बिठाया जाता है। बादल की 'आरति' कर तथा उसकी भुजाओ को 'पूज' कर घोडे के मस्तक तथा पैरोंको भी दबाया जाता है, जिससे उन दोनो के प्रति भी सम्मान की व्यजना होती है।[९]

(झ) **व्यवहारोपयोगी पदार्थ** दैनिक जीवन मे प्रयुक्त जिन उपयोगी वस्तुओ का उल्लेख जायसी-काव्य मे हुआ है, उनको स्थूल रूप से कई वर्गो मे रखा जा सकता है, यथा, पात्र, सामान्य मनुष्यो के उपयोग की अन्य वस्तुएँ, सुगधित पदार्थ तथा वाहन आदि।

पात्र : पात्रो के साधारण अर्थ मे किसी विशेष शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है। **भाँडा**[१०] (**सं० भाण्ड**) मिट्टी के बर्तन के लिए आया है। कुछ पात्र पानी, दूध, दही आदि रखने के काम मे अधिकाशत प्रयुक्त होते है, यथा— **गागरि,**[११] **गगरी**[१२] (**स० गर्गरी**), **कलस**[१३] (**सं० कलश**), **मॉट,**[१४] **दहेंड़ि**[१५] (**सं० दधिभाण्डिका**), **टाँक**[१६], **टाका**[१७], **गड़ुआ**[१८] (**स० गड्डूक**), **उदपान**[१९] (**स० उदक पानक**), **कचोरा**[२०] (**स० कच्चोलक**), **लोटा**[२१] तथा **डोल**[२२]। मदिरा पीने मे **सुराही**[२३] और **पियाला**[२४] व्यवहार मे आते है। भोजन करने के लिए **थार**[२५] (**सं० स्थाल**), **कोंपर,**[२६] **कटोरा**[२७] (**स० करोटि**), **खोरा,**[२८] **खोरी,**[२९] **कचोरी**[३०] और **पनवारा**[३१] (**स० पर्ण+वार**) तथा भोजन पकाने के लिए **कराह**[३२] (**सं० कटाह**), **करिल**[३३] (**देशज कडिल्ल**), **हुडा**[३४], **लोहड़ा**[३५]

---

१ प० ४२६।१* २. प० ४२६।३ ३ प० ४२६।३ ४ प० ४२७।१
५. **पैठत पंवरि मिला लै राजा।** प० ५५३।६
६. **करै संवार गुसाईं जहाँ परै किछु चूक।** प० ५६२।९
७. प० ६३९।९ ८. प० ६४१।८ ९ प० ६४१।१-९ १० अख० ५।१
११ म० बा० १०।४ १२ अख० ४२।१० १३. प० ३२।६ १४ प० ६३३।४
१५ प० १५२।४ १६. प० ५४५।६ १७. प० १३५।१ १८ प० २८३।४
१९ प० १२६।६ २० प० ५६४।१ २१ प० ५६२।४ २२. प० ५८१।६
२३ प० ३१९।१ २४ प० १९४।५ २५. प० ३२५।५ २६. प० ५६२।२
२७ आखि० ४८।२ २८. प० २८३।३ २९. प० २८३।३ ३०. प० २६९।९
३१ प० ३८३।१ ३२. प० १५३।८ ३३ प० ५४३।३ ३४ प० ५४७।७
३५. प० ५५०।३

आदि पात्रो का उल्लेख मिलता है। काठ की बनी हुई **कठहंडी**[1] भी एक स्थान पर वर्णित है। मटके से दही निकालने वाला छोटा बेला **कढुई**[2] कहलाता है।

सामान्य मनुष्यो के उपयोग की अन्य वस्तुएँ : जायसी– काव्य मे गृहस्थों के उपयोग मे आने वाली अनेक वस्तुओ से सम्बद्ध शब्दावली भी मिलती है, यथा– **पाती**[3] **(स० पत्रिका), कागर**[4] **(अ० कागज), लिखनी**[5] **(सं० लेखनी), मसि,**[6] **कूँजी**[7] **(स० कुंजिका), तारा**[8] **(स० तालक), खाट**[9] **(स० खट्वा), पलँग**[10]**, पालक**[11] **(सं० पर्यंक), सेज**[12] **(स० शय्या), कीली**[13] **(सं० कीलिका), लउटी**[14] **(सं० लगुड़), सीढ़ी,**[15] **निसेनी**[16] **(स० नि श्रेणि), दरपन,**[17] **आरस**[18] **(सं० आदर्श), गुन**[19] **(सं० गुण), जिय**[20] **(सं० ज्या), लेंजुरि**[21] **(सं० रज्जु), वोढ**[22] **(सं० वोढृ), छुरी**[23] **(स० क्षुरिका), डोरि**[24] **(सं० डोरक), तागा**[25] **(पहलवी ताक, फ़ा० ताग), सुई**[26] **(सं० सूचिका), दीप**[27]**, दीपक**[28]**, दिया**[29]**, बाती**[30] **(स० वर्तिका), पेटार**[31]**, पेई**[32] **(स० पेटिका), खरवार**[33] **(सं० खल्लवार), पाऊ**[34] **(सं० पादुका), पाँवरि**[35]**, पँवरी**[36] **(सं० पादपट्ट), पैरी**[37]**, पीजर**[38]**, पिंजर**[39] **(सं० पिंजर), सीसी**[40]**, सँड़सी**[41] **(सं० संदंशिका) सरौत**[42] **(सं० सारपत्र), झोलो**[43] **(सं० झोलिका), कुल्हाड़ी**[44]**, मँथनी**[45]**, खैला**[46] तथा **साँटी**[47] आदि। जायसी ने **गेंडुआ**[48] तथा **गलसुई**[49] नामक तकियो का उल्लेख किया है। माँस पकाने के लिए **सराग**[50] **(सं० शलाका)** भी वर्णित है।

सुगंधित पदार्थ श्रृगार प्रसाधन के निमित्त तथा स्फुट प्रसंगो मे अनेक सुगधित पदार्थों की चर्चा भी जायसी ने की है, यथा - **अगर**[51] **(सं० अगुरु), अरगजा**[52] **(सं० अगुरु), कपूर**[53] **(सं० कर्पूर), कस्तूरी,**[54] **कुहँकुहँ**[55] **(सं० कुंकुम), केवरा,**[56] **चंदन,**[57] **चेना**[58] **(कपूर का**

---

१. प० २८४।५ २ अख० ३१।५ ३ प० १८८।८ ४ प० १०।५
५. प० १०।५ ६. प० १०।५ ७. प० २३।४ ८ प० २३।४
९ प० ६४६।६ १०. प० २६१।५ ११ प० ४८५।७ १२ प० २६१।५
१३. प० ६०४।७ १४. अख० ३५।२ १५ प० ५५३।३ १६ प० २६७।४
१७. प० २१।८ १८ प० ५६८।७ १९. प० ५४०।७ २० प० ३५६।३
२१. प० ५८१।७ २२ प० ४०६।४ २३. प० ५४१।८ २४. प० ६०४।७
२५. प० २३०।२ २६. अख० १६।४ २७. प० ११०।१ २८. प० १९।२
२९ प० १००।२ ३०. प० २३४।४ ३१ प० ३८५।४ ३२ प० २१४।६
३३. प० ३८५।४ ३४. प० ४०९।५ ३५. प० १६७।६ ३६. प० १३७।३
३७ प० २७६।८ ३८ प० ५८।३ ३९. प० ६८।२ ४०. प० १११।१
४१. प० ५८०।४ ४२. प० ३०९।६ ४३. प० १८४।६ ४४. अख० २८।३
४५ प० १५२।४ ४६ अख० ३१।३ ४७. प० ६४७।२ ४८ प० २९१।६
४९ प० २९१।६ ५०. प० ५४५।८ ५१ प० ६४९।४ ५२ प० ५६५।१
५३. प० ४३।२ ५४. प० ४३५।२ ५५. प० ३७।२ ५६. प० ३६।४
५७. प० ३७।६ ५८ प० ४।१

एक भेद), चोवा,[1] फुलाएल[2] (सं० फुल्लतैल), बेना[3] (सं० वीरण), भीवंसेन[4] (कपूर का एक भेद), मेंद[5] तथा **चतुरसम**[6]।

वाहन जायसी-काव्य से तत्कालीन प्रमुख वाहनो का सकेत भी मिलता है। स्थल की सवारियो मे हाथी और घोडे प्रमुख वाहन थे। हाथी के लिए **हस्ति,**[7] **गय,**[8] **गज,**[9] **कुंजर,**[10] **हाथी,**[11] **गयद**[12] तथा घोडे के लिए **हय,**[13] **तुरंग,**[14] **तुरँ,**[15] **रथवाह,**[16] **तोखार,**[17] **तुरगम,**[18] **तुरिअ**[19] तथा **घोर**[20] आदि शब्द प्रयुक्त है। जायसी ने पदमावत दो० ४८६ मे घोडो की विविध जातियो तथा रंगो का भी उल्लेख किया है। यह उल्लेखनीय है कि घोडा भारत मे प्राचीन काल से वाहन के रूप मे प्रयुक्त होता रहा है और उनके विविध भेदो के भारतीय नाम इस देश मे प्रचलित थे। वाणभट्ट ने रगो के आधार पर घोडो के देशी नामो का ही उल्लेख किया है, यथा-शोण, श्याम, श्वेत, पिंजर आदि। इतिहासकारो का अनुमान है कि धीरे-धीरे राष्ट्रकूट राजाओ के लिए अरब के सौदागर अरबी घोड़े लाने लगे और उनके अरबी नामो ने देशी नामो को हटा दिया। इन अरबी नामो के प्रभाव का संकेत इसी तथ्य से मिलता है कि बारहवी शती मे हेमचन्द्र ने 'अभिधान चिन्तामणि' नामक कोश मे घोडो के अरबी और सस्कृत नाम साथ-साथ दिए है। वर्णरत्नाकर मे भी घोडो के अरबी नाम मिलते है। जायसी ने सम्भवत. इसी प्रकार के किसी वर्णन-सग्रह से अपनी सूची ली होगी। अन्य पशुओ मे लोक-विश्वास के अनुसार **बैल**[21] को शिव का वाहन कहा जाता है। स्थल के अन्य वाहनो मे **रथ**[22] उल्लेखनीय है। राजाओ के रथ स्वर्णमडित होते थे तथा अनेक प्रकार से मढे जाते थे।[23] आइने अकबरी मे पालकी, सिंहासन, चौडोल तथा डोली का सवारी के रूप मे उल्लेख मिलता है। जायसी ने इनमे से पालकी के लिए **बेवानू**[24] **(सं० विमान)** तथा चौडोल के लिए **चंडोल**[25] **(सं० चंडदोल)** शब्दो का प्रयोग किया है। **सिंघासन**[26] **(सं० सिंहासन), डाँड़ी**[27] **(सं० दण्डिका)** तथा **सुखासन**[28] नामक अन्य सवारियों का उल्लेख भी मिलता है। जल की सवारियो मे **नाउ**[29] या **नाव**[30] **(सं० नौका), बेरा**[31] **(देशज बेडय), तरँडा**[32] **(सं० तरण्ड)** तथा **बोहित**[33] **(सं० बोधित्थ)** वर्णित हैं। साधारण जनता के वाहनों मे **खटोला**[34] उल्लिखित है। यह पीढे को बाँध कर बनाई हुई ऐसी डोली होती है जिसमे केवल एक ही स्त्री बैठ सकती है।

---

१. प० ४३५।२ २ प० ६३।६ ३. प० ४।१ ४. प० ४।१
५. प० ३६।४ ६. प० ३२३।७ ७ प० ३।२ ८. प० १४।२
९. प० २६।६ १०. प० १७०।३ ११ प० २४२।१ १२ प० ४२९।७
१३ प० १४।२ १४. प० ४६।१ १५. प० ८६।७ १६. प० ४६।८
१७ प० २७६।८ १८ प० ४१९।७ १९. प० ६२२।९ २०. प० ३।२
२१. प० २०७।१ २२. प० ५०६।२ २३ औ राता रथ सोने क साजा। प० २७७।२
२४. प० ५७४।१ २५ प० ६२२।१ २६. प० ६१२।८ २७ प० ३८५।३
२८. प० ६१२।२ २९. प० २०२।२ ३०. प० ३४५।७ ३१. प० ६४३।१
३२ प० २०२।८ ३३. प० ५४०।७ ३४. म० बा० १४।९

(ट) स्वास्थ्य तथा रोग से सम्बद्ध शब्द रोग[1] तथा ब्याधि[2] मानव-जीवन से अभिन्न रूप मे सम्बद्ध है। जायसी ने भी नागरिक-जीवन का वर्णन करते हुए प्रसंगवश **बिथा**[3] (सं० ब्यथा), **रोगी**,[4] **ओखद**[5] (सं० औषधि) तथा **बैद**[6] (स० वैद्य) की चर्चा की है। **छाजनि**,[7] **सनिपात**,[8] **मिरिगिया बातू**[9] (सं० मृगीवात) तथा **पीर**[10] (स० पीड़ा) आदि कुछ प्रमुख रोग है। कभी-कभी सुपारी लगने से भी मनुष्य अस्वस्थ हो जाता है।[11]

(ठ) काल विभाग सम्बन्धी शब्द जायसी के काव्य मे समय के विविध विभागो की भी चर्चा हुई है। इस प्रकार की शब्दावली के अन्तर्गत दिवस, रात्रि तथा उनके अन्य लघु अंश पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष तथा युग आदि का उल्लेख किया जा सकता है, यथा

आन[12] (अ० आन), पल[13], **खन**[14], खिन[15], तिल आधु[16], निमिख[17], नैन पलक[18] (नेत्रों के पलक बंद करने में जितना समय लगे), **डंड**[19] (सं० दंड), **घरी**[20] (सं० घटिका), **पहर**[21], **परभात**[22], (बिहान[23] < सं० विभात), **भिनुसार**[24] (सं० विनिशा), **भोर**[25] (सं० विभावरी) **सकारा**[26] (सं० सकाल), **सांझ**[27], **दिन**[28], **देवस**[29], अह[30], **रात**[31], **निसि**[32], **रैनि**[33], **पख**[34], **मास**[35], **रितु**[36], **बरिस**[37], **जुग**[38] तथा **कलप**[39]। 'नागमती वियोग खंड' मे (असाढ[40], **सावन**[41], **भादों**[42], **कुआर**[43], **कातिक**[44], **अगहन**[45], **पूस**[46], **माह**[47], **फागुन**[48], **चैत**[49], **बैसाख**[50] तथा **जेठ**[51]) बारह महीनो का और 'षट्-ऋतु-वर्णन खड' मे (**बसंत**[52], **ग्रीखम**[53], **पावस**[54], **सरद**[55], **सिसिर**[56] तथा **हेवत**[57]) छ ऋतुओ का वर्णन किया गया है। सप्ताह के विविध दिनो के नाम (**आवित**, **सोम**, **मंगर**, **बुध**, **बिहफै**, **सूक** तथा **सनीचर**) पद्मावत के दो० सख्या ३८२ मे वर्णित है। तिथियो मे **पुनिउं**[58], **दुइजि**[59], **तीजि**[60], **पंचमी**[61], **चौदसि**[62] **करा** तथा **अमावस**[63] का

---

१ प० २५६।२ २. प० ४३।९ ३. प० २५६।६ ४. प० २५२।२
५ प० २।७ ६. प० २५२।२ ७. प० ३५६।१ ८. प० ४५२।४
९. प० ४५२।४ १०. प० ४५२।६ ११. प० ५६९।७ १२. प० १८१।५
१३. प० १०३।५ १४ प० ६५।५ १५. प० ९७।३ १६ प० १४६।८
१७. प० ४१३।९ १८. प० ४६।९ १९. प० १६७।८ २०. प० ४२।३
२१ प० ४२।२ २२ प० ३०८।३ २३ प० १९७।२ २४ प० १५८।३
२५. प० २९।२ २६ प० १११।५ २७. प० १११।५ २८ प० ९३।८
२९ प० ६८।८ ३०. प० ९७।६ ३१. प० ९३।८ ३२. प० ४४।९
३३ प० २७।५ ३४. प० १६२।५ ३५. प० ५१।१ ३६ प० ४४।९
३७. प० ५३।२ ३८. प० १६८।४ ३९ प० १६८।४ ४०. प० ३४४।१
४१. प० ३४५।१ ४२ प० ३४६।१ ४३ प० ३४७।१ ४४ प० ३४८।१
४५. प० ३४९।१ ४६. प० ३५०।१ ४७ प० ३५१।१ ४८. प० ३५२।१
४९. प० ३५३।१ ५०. प० ३५४।१ ५१ प० ३५५।१ ५२. प० ३३५।१
५३. प० ३३६।१ ५४. प० ३३७।१ ५५. प० ३३८।१ ५६. प० ३३९।१
५७. प० ३४०।१ ५८. प० ५१।५ ५९. प० ५१।६ ६० प० ४४८।४
६१. प० १६२।५ ६२. प० १७३।५ ६३. प० ५१।५

उल्लेख मिलता है। पद्मावत के दो० सख्या ३८३ मे महीने की सभी तिथिया सख्याओ मे (एक, दुइ, तीन आदि) वर्णित है।

नक्षत्रो में **'कचपची'**[1] (हि० कचपच-कृत्तिका नक्षत्र), **मिरगिसिरा**[2] **(सं० मृगशिरा)**, **अद्रा**[3] **(सं० आर्द्रा)**, **पुनर्वसु**[4], **पुख**[5] (स० पुष्य), **पुरवा**[6] **(सं० पूर्वा)**, उतरा[7], हस्ति[8], **चित्रा**[9], **सेवाति**[10] **(सं० स्वाति)**, **सुहेल**[11] **(अ० सुहैल)**, मघा[12] तथा तारो मे अगस्ति[13] **(सं० अगस्त्य)**, **सूक**[14] **(सं० शुक्र)** और **धुव**[15] **(सं० ध्रुव)** उल्लिखित हैं।

आर्थिक दशा और शिल्प से सम्बद्ध शब्दावली तत्कालीन आर्थिक स्थिति का परिचय कराने वाले कतिपय शब्द भी जायसी के काव्य मे हमे प्राप्त होते हैं। **जेंवा**[16] **(सं० आजीविका)** का अर्जन करने के लिए भारत मे अब तक जितने उद्यम तथा शिल्प प्रचलित रहे है, उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान कृषि का है। जायसी ने इसके सम्बन्ध मे एक-आध ही सकेत किए है, यथा, खेती की सिंचाई के साधनो के रूप मे उन्होने **'रहँट'**[17]**(सं० अरघट्ट)** और **'कुआँ'**[18] का नाम लिया है। **'बरखा'**[19] **(सं० वर्षा)** तो आदि काल से भारतीय कृषको का प्राण ही रही है। कुएँ से पानी निकालने के लिए **'कुंआढार'**[20] **(सं० कूप+धार)** तथा **ढोल**[21] **(सं० ढोल)** का प्रयोग किया जाता था। कृषि के योग्य भूमि के अनेक प्रकार थे, जिनमे से जायसी ने **गोहन**[22] **(सं० गोधान)** का उल्लेख किया है। इस प्रकार की धरती बहुत खाद वाली होने के कारण सर्वोत्तम मानी जाती है।[23] **खरिहान**[24] **(स० खाद्याधान)** मे नाज इकट्ठा किया जाता था। कुछ अन्य **'बौसाउ'**[25] **(सं० व्यवसाय)** भी यत्र-तत्र वर्णित है। इनमे **'सोनार'**[26] **(सं० सुवर्णकार)** और उसके विविध कार्यो का उल्लेख जायसी ने विशेष रुचि के साथ किया है। सोना तथा अन्य कच्ची धातुओ को गलाने व स्वच्छ करने के लिए **घरी**[27] **(सं० घटिका)** का उपयोग किया जाता था। उसमे आँच देने से धातु का मैल ऊपर आ जाता था और धातु शुद्ध हो जाती थी।[28] कभी-कभी सोने मे किसी अन्य धातु की मिलावट कर दी जाती थी और तब उस सोने को शुद्ध करने के लिए कुछ विशेष प्रक्रियाएँ करनी पडती थी, यथा

---

१. प० ६१५।५ २ प० ३४३।६ ३ प० ६३८।२ ४ प० ३४५।२
५. प० ३४४।७ ६. प० ३४६।६ ७ प० ३४७।२ ८. प० ६१०।५
९. प० ३४७।४ १० प० ३४३।३ ११ प० १७५।६ १२ प० ३४६।५
१३. प० ६१०।६ १४ प० ४४२।५ १५ प० ३६८।१ १६ प० ४८८।३
१७. प० ४२।८ १८. प० ५८१।६ १९. प० ३४३।४ २०. प० ५८१।६
२१. प० ५८१।६ २२ प० ४१०।७
२३ विलियम क्रुक, ए रूरल एंड एग्रिकल्चरल ग्लॉसरी फॉर दि नार्थ वेस्ट प्रॉविन्सेज एण्ड दि अवध, १८८८ कलकत्ता, पृ० १०४।
२४ प० १३३।३ २५ प० ५६६।६ २६ प० ८१।७ २७. प० २१।५
२८ जौं लहि घरी कलंक न परा। काँच होइ नहिं कंचन करा। प० २१।७

चाँदी मिले हुए सोने को शुद्ध करने के लिए उस सोने की **'सलोनी'**[1] की जाती थी।[2] यदि सोने मे सीसा मिल जावे तो सोना बिखर जाता है और उसमे कुछ कालापन भी आ जाता है[3]– जायसी ने इस तथ्य का उल्लेख करते हुए बताया है कि ऐसी दशा मे सोने मे सोहागा[4] मिलाने की आवश्यकता होती है।[5] इससे सोना शुद्ध हो जाता है। किन्तु इतने से ही उसकी शुद्धता पर विश्वास नही कर लिया जाता। उसे 'ता ता कै' बार बार कसा जाता था।[6] सोना कसने के लिए दो वस्तुओ की आवश्यकता होती थी, एक तो **'कसौटी'**[7] (**सं० कषपट्टिका**) की और दूसरे **'बनवारी'**[8] (**सं० वर्णमालिका**) की। इन दोनो की सहायता से **'कनकबान'**[9] को बार बार परखा जाता था। **'बारहबानी'**[10] (**सं० द्वादशवर्णी**) सोना सबसे अधिक शुद्ध होता था। जायसी ने इसका उल्लेख अनेक स्थानो पर किया है।[11] सोने मे जडाव का काम करने वाले को **जरिया**[12] (**हि० जड़ना**) कहा जाता था। जायसी ने नगो तथा रत्नो की उठी हुई किनारियो को घिसने की प्रक्रिया के लिए **कोरी**[13] तथा जडने के लिए **जरी**[14] क्रिया-पदो का व्यवहार किया है। तत्कालीन अन्य शिल्पकारो और व्यवसायो का भी सकेत जायसी-काव्य मे मिलता है। दूध, दही बेचने का कार्य प्राय **ग्वालिनि**[15] (**सं० गोपाल+इनि**) करती थी। नाव चलाने का कार्य **केवट**[16] (**सं० कैवर्त**) करते थे। **करिआ**[17] (**सं० कर्णिक**), **कँड़हारा**[18] (**स० कर्णधार**) कहलाते है। तथा **खेवक**[19] (**स० क्षेपक**) भी यत्र-तत्र प्रयुक्त है। पानी मे गोता लगाने वाले **मरजिया**[20] कहलाते है। **मालिनि**[21] फूल बेचने का काम करती थी, अतएव **फुलहारी**[22] कहलाती थी। विवाहादि सस्कारो मे **मौर गाँथने** का कार्य भी यही करती थी। **गाँधी**[23] (**सं० गन्धिन**)

---

१ प० ५०।२

२. सोने में से चाँदी की मिलावट साफ करने के लिए सोने को पीटकर उसके पत्तर बनाते हैं और उन पत्तरो को कंडे की राख, ईंटों की बुकनी, सांभर नमक और कड़ुवे तेल की सलोनी (इसी मसाले का नाम सलोनी है) मे डुबोकर कंडे की आँच में कई बार तपाते हैं, जिससे वह सलोनी चादी को खा लेती है और सोना शुद्ध हो जाता है। इसी को सोने की सलोनी करना कहते हैं।....जायसी से लगभग २०० वर्ष पूर्व लिखे हुए ठक्कुर फेरु कृत 'द्रव्य परीक्षा' नामक ग्रन्थ में सलोनी द्वारा सोना-चांदी शुद्ध करने की विधि दी है।' पद्मावतः सं० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ५१।

३ परा प्रीति कंचन महं सीसा। बिथरि न मिलै स्याम पै दीसा। प० ८९।६

४ प० ८९।७

५. कहां सोनार पास जेहि जाऊँ। देइ सोहाग करै एक ठाऊं। प० ८९।७

६ कंचन जब कसिअै कै ताता। तब जानिअ वहुं पीत कि राता। प० १७९।४

७. प० ८३।५ ८. प० ८३।५ ९. प० १७२।६ १०. प० ४९।७

११. प० ४९।७, ९३।१, १००।८, २७३।६, ४४९।१ तथा ४६८।१ आदि।

१२ प० १७९।६ १३ प० ४२।१४ १४. प० ४८२।७ १५. प० १३५।२

१६. प० १४८।१ १७ प० ५८।६ १८ प० १८।६ १९ प० १९।९

२० प० १४६।६ २१ प० १३५।३ २२. प० ३९।१ २३. प० ३९।२

इत्र तथा **सोधा**[1] **(सं० सुगन्धि)** बेचने का व्यवसाय करते थे। चिडियो को जाल मे फास कर पकडने वाला या मारने वाला **चिरिहार**[2] कहलाता था। इसके लिए **बिआध**[3] **(सं० व्याध)** शब्द भी प्रयुक्त है। चिडियाँ पकडने के साधनो मे **लासा**[4], **टाटी**[5], **लगी**[6], **जार**[7], **चारा**[8], **डेली**[9], **अड़ा**[10], **खोचा**[11], **फांद**[12] तथा **चिल्हबाँसू**[13] **(देशज चिल्ला=पक्षी+सं० पाश)** वर्णित है। कपडा बुनने का काम हिन्दू और मुसलमान दोनो करते थे। हिन्दुओ मे कपडा बुनने वाले **कोरी**[14] **(देशज कोलिअ)** और मुसलमान बुनकर **जोलाहे**[15] **(फा० जोलाह)** कहलाते थे। जायसी ने अखरावट (छन्द सं० ४३-४४) मे कपडा बुनने के विविध उपकरणो का उल्लेख किया है, यथा—**ततु, सूत, कूँच (सं० कूर्च), पाई, नरी, ढारि, खूँटी, करगह** आदि। बुने हुए कपडे की लम्बाई मे पडे हुए सूत या धागे को **ताना** कहा जाता था। लोहे के औज़ार तथा अन्य उपकरणो को बनाने वाले के लिए अखरावट छन्द स० ३९ मे **लोहार (सं० लौहकार)** शब्द प्रयुक्त है। लोहार लोहे को **भाठी (सं० भ्राष्टिका) मे ताइ कै (तपा कर) खरतर (खूब खरा या लाल)** करता है और **घन** (**हथेव**) की चोट मार कर **दरपन** गढता है (प्राचीन काल मे लोहे को माँज तथा चमका कर दर्पण बनाए जाते थे)। पीटने से पहले लोहे को **सँड़सी (सं० संदशिका)** से अच्छी तरह पकड कर **निहाऊ**[16] **(सं० निघातिका)** पर रखा जाता है। कपड़ो पर छपाई करने वाले के लिए जायसी-काव्य मे **छीपी**[17] **(देश० छिम्पय)** शब्द व्यवहृत है। **पटुआ**[18] **(सं० पट्टवाय)** गहनो को डोरो मे पोने का काम करते थे। मिट्टी के बर्तन आदि बनाने वाला **कुम्हार**[19] या **कोहार**[20] **(सं० कुम्भकार)** कहलाता है। वह **पिंडा**[21] **(मिट्टी का लोंदा) चाक**[22] **(सं० चक्र)** पर चढा कर विभिन्न प्रकार के बर्तन बनाता है। खराद करने वाले व्यक्ति को **कुँदेर**[23] **(फा०कुंदह+एर)** तथा खराद को **कुंद**[24] कहा गया है। घरेलू काम-काज करने वाली जातियो से सम्बद्ध शब्दो के अन्तर्गत **नाऊ**[25] **(बं० स्नापित), बारी**[26] **(सं० वाठी), कहार**[27] **(सं० काहारक), धोबिनि**[28] **(सं० धावी), पनिहारी**[29], **भँडारी**[30] **(सं० भाण्डा-गारिक), बरइनि**[31], **धाइ**[32] **(स० धात्री)** आदि का उल्लेख किया जा सकता है। मागलिक अवसरो पर पुरस्कार प्राप्त करने वाले **सेवक**[33], **चेरी**[34], **बाँद**[35] **(फा० बन्दह्), नेगी**[36] अथवा **पवनि**[37] कहलाते थे। जहर उतारने वाले **गुनी**[38] अथवा **गारुरी**[39] **(सं० गारुड़िक)** कहलाते थे। चिकित्सक को **बैद**[40] **(सं० वैद्य)** तथा झाड-फूंक कर उपचार करने वालो को **ओझा**[41] और

---

१ प० ३९।२	२. प० ७८।१	३ प० ६९।१	४. प० ६९।७
५ प० ६९।१	६ प० ७०।५	७. प० ७०।७	८. प० ७०।७
९ प० ७०।१	१०. प० ७१।४	११. प० ७१।५	१२ प० ७१।९
१३ प० ३५८।१	१४. प० १८५।२	१५. प० अख० ४३।१	१६ प० ६३६।३
१७. प० ३२९।५	१८ प० ३२९।१	१९. प० ३९४।७	२० अख० ३७।९
२१ अख० ५।१	२२ प० ३९४।७	२३. प० ११२।१	२४ प० १११।२
२५ प० ५६।३	२६ प० ५६।३	२७ म०बा० १४।२	२८. प० ४३८।८
२९ म०बा० १०।२	३०. प० ६७।१	३१. प० १८५।७	३२. प० ८५।४
३३. प० ५७।४	३४ प० ९१।७	३५ प० १८।९	३६, प० १२०।१
३७. प० १८५।८	३८ प० १२०।२	३९. प० १२०।२	४०. प० १२०।२
४१. प० १२०।२			

सयान[१] कहा जाता था। हाथी चलाने वाले के लिए **महाउत**[२] (**सं० महामात्र**) और **मथवाह**[३] तथा हाथी पर नियंत्रण रखने वाले उपकरण के लिए **आँकुस**[४] (**सं० अंकुश**) शब्द का प्रयोग मिलता है। अपनी कलाओ से जनता अथवा सम्पन्न लोगो को प्रसन्न करके जीविकोपार्जन करने वाली जातियो मे **बेसा**[५] (**सं० वेश्या**), **बेड़िनि**[६], **पतुरिनि**[७], **नट**[८], **पहलवान**[९] आदि की चर्चा की जा सकती है। **भिखारी**[१०] भीख माँग कर जीवन-यापन करते है। राजदरबारो मे विरुदावलि गाने वाले **भाँट**[११] (**सं० भट्ट**) कहे जाते थे। कुछ लोग छल, कपट तथा चोरी आदि से धनोपार्जन करते रहे है। जायसी ने इस प्रकार के **चोर**[१२], **ठग**[१३], **बटपार**[१४] तथा **गँठिछोरा**[१५] लोगो का भी उल्लेख किया है। मदिरा बना कर बेचने वाले **कलवार** (**सं० कल्यपाल**) कहे जाते है। जायसी ने कलवार की स्त्री **कलवारि**[१६] का उल्लेख किया है। उन्होने मदिरा बनाने की विधि का भी सकेत किया है—

> बिरहै **दगध** कीन्ह तन **भाठी**। हाड जराइ दीन्ह जस **काठी**।
> नैन नीर सो **पोती** किया। तस **मद चुआ** बरै जनु दिया।[१७]

यहाँ विरह की आग, शरीर की भट्ठी, हड्डियो का ईंधन और आँसुओ की पोती बनाकर प्रेम रूपी मद के टपकने की कल्पना की गई है। **कोल्हू**[१८] मे सरसो आदि पेर कर तेल निकालने वाले **तेली**[१९] भी उल्लिखित है। तेल तथा अन्य वस्तुएँ **जोख**[२०] (**तराजू**) पर तौलकर बेची जाती है। नाप-तौल के सन्दर्भ मे जायसी ने **टाँक**[२१] (**सं० टंक**), **मन**,[२२] **रती**[२३] (**सं० रक्तिका**), **तोला**[२४] तथा **माँसु**[२५] (**माशा**) का उल्लेख किया है।

जायसी की वाणिज्य तथा व्यापार सम्बन्धी शब्दावली भी उल्लेखनीय है। वाणिज्य तथा व्यापार के लिए क्रमश **बनिज**[२६] (**सं० वाणिज्य**) तथा **बैपार**[२७] (**सं० व्यापार**) और व्यापारियो के लिए **बैपारी**[२८] शब्द प्रयुक्त है। एक साथ समूह मे निकलने वाले व्यापारियो के लिए **बनिजारा**[२९] (**सं० वाणिज्यकारक**) तथा **साथी**[३०] (**सं० सार्थिक**) शब्द व्यवहृत हैं। समुद्र-मार्ग से व्यापार करने वाले वणिक को **नाइत**[३१] कहा जाता था। **बस्तु**[३२] (**सं० वस्तु**) को बेचने के लिए हाट[३३] (**सं० हट्ट**) में ले जाया जाता था। सभी वस्तुओ के अलग-अलग **मोल**[३४] (**सं० मूल्य**) थे और **गथ**[३५] (**वैदिक सं० ग्रथ**) अथवा **साँठि**[३६] (**सं० संस्था**) के द्वारा

---

१. प० १२०।२ २. प० ४५।७ ३ प० ४६४।७ ४. प० ४६३।७
५ प० ३८।१ ६. प० ११२।७ ७. प० ५२६।१ ८. प० ५५७।४
९ आखि० ८।५ १०. प० ७४।२ ११. प० २७३।१ १२. प० १२४।४
१३ प० १५१।६ १४. प० १५१।६ १५. प० ३६।८ १६. प० १८५।५
१७. प० १५४।५-६ १८ अख० २८।५ १९. अख० २४।७ २०. आखि० २६।९
२१. प० ५२४।९ २२. प० १३३।८ २३. प० ३५७।६ २४. प० ३८४।८
२५. प० ३८४।८ २६. प० ७४।६ २७. प० २१८।५ २८. प० ७४।२
२९. प० ७४।१ ३०. प० १४४।७ ३१. प० ५३७।६ ३२. प० ७४।७
३३. प० ७५।७ ३४. प० ७६।२ ३५. प० ३८।८ ३६. प० ३८।९

ही उनका **बेसाहना**[1] **(स० वि+साधय्)** सम्भव था। इस व्यापार मे किसी को **लाभ**[2] होता था और किसी को **कुबानी**[3] **(सं कुवाणिज्य)** मे पडकर **मूर**[4] **(सं० मूल)** भी गवाँ देना पडता था। **पूँजी**[5] की हानि[6] व्यापारी के लिए बडी कष्टप्रद थी। जायसी ने **दिनार**[7] **(फा० दीनार)** तथा **टका**[8] **(स० टंक)** नामक दो मुद्राओ का भी उल्लेख किया है। ये **टकसार**[9] मे ढलती थी। बडे सिक्को को **भँजाने**[10] **(सं० भज्)** का सकेत भी मिलता है। व्यापार मे लगाने के लिए कभी-कभी **बेवहरिया**[11] **(सं० व्यावहारिक)** से **रिनि**[12] **(सं० ऋण)** लेना पडता था। आवश्यकता पडने पर **रिनिबधी**[13] को वस्तुएँ **गहने**[14] **(सं० ग्रहण)** रखनी पडती थी। समाज मे गहने आदि **थाती**[15] **(सं० स्थातृ)** रूप मे रखने की भी व्यवस्था थी। जायसी ने सोने, चाँदी, मोती आदि के व्यापार का भी उल्लेख किया है। कतिपय स्थानो तथा उनसे आने वाली वस्तुओ का उल्लेख करके कवि ने अन्तर्प्रान्तीय तथा अन्तर्देशीय व्यापार की ओर भी सकेत किया है। इस प्रकार के उल्लेखो में **सुगँध समीरी**[16] **(सुमात्रा के पूर्वी टापुओं से आने वाली सुगन्धित वस्तु)**, **पँडुआए चीर**[17] **(पँडुआ से आए हुए चीर)**, **गुजराती छाएल**[18] **(गुजरात के छपे हुए वस्त्र)**, **खरग हिरवानी**[19] **(हिरात की बनी हुई तलवार)** तथा **कंकानी, सिराजी, हिरमिजी, इराकी** और **तुरुकी तुरंग**[20] आदि प्रमुख है।

आर्थिक शब्दावली के अन्तर्गत बहुमूल्य रत्नो तथा धातुओ और खनिज पदार्थों की भी चर्चा की जा सकती है। बहुमूल्य पत्थरो के लिए **रतन**[21] **(सं० रत्न)**, **नग**[22] **(फ़ा नगीनः)** तथा **मनि**[23] **(स० मणि)** शब्दो का प्रयोग मिलता है। यत्र-तत्र वर्णित रत्न अनेक हैं, यथा– **गजमोंति**[24] **(सं० गजमौक्तिक)**, **बिद्रुम**[25] **(सं० विद्रुम)**, **मूँगा**[26] **(सं० मुङ्ग)**, **मानिक**[27] **(सं० माणिक्य)**, **मोती**[28] **(स० मौक्तिक)**, **मुकुताहल**[29] **(सं० मुक्ताफल)**, **पना**[30] **(सं० पर्ण)**, **हीरा**[31] **(सं० हीरक)** या **बज्र**[32] **(सं० वज्र)**। पद्मावत मे **पदारथ**[33] शब्द भी हीरे का बोधक है। इन रत्नो के साथ ही **काँच**[34] और **सोती**[35] **(सं० शुक्ति)** का भी उल्लेख किया जा सकता है। प्रमुख धातुएँ तथा अन्य खनिज पदार्थ भी यत्र-तत्र वर्णित हैं। उनकी नामावली इस प्रकार है– **अभरक**[36] **(सं० अभ्रक)**, **एँगुर**[37] **(सं० हिंगुल)**, **गंधक**,[38] **जसता**[39] **(सं० यशद)**,

---

१. प० ३७।८   २. प० ३७।८   ३. प० ७५।३   ४. प० ७५।३
५. प० ७५।४   ६. प० ७५।३   ७. प० ३५६।७   ८. प० ६२३।२
९. प० ४५६।७   १०. प० ४२१।६   ११. प० ७५।६   १२. प० ७५।३
१३. प० ९६।७   १४. प० ४६०।९   १५. प० ३८६।५   १६. प० २९०।६
१७. प० ३२९।२   १८. प० ३२९।२   १९. प० ४५०।४   २०. प० ४९६।१-७
२१. प० ५१३।६   २२. प० ५३३।९   २३. प० ४१७।४   २४. प० ७९।३
२५. प० ४४३।५   २६. प० ४०४।२   २७. प० ३८५।५   २८. प० ४१०।५
२९. प० १५८।६   ३०. प० ४४०।६   ३१. प० ६२२।६   ३२. प० ४१।२
३३. प० ४४०।६   ३४. प० १३३।८   ३५. प० ३७४।५   ३६. प० २९४।७
३७. प० २९४।७   ३८. प० २७६।६   ३९. प० ३७७।३

पार[1] (सं॰ पारद), **लोह**,[2] **पोलाद**,[3] **बीरौलोना**,[4] **राँग**,[5] **सेंदुर**[6] (सं० सिन्दूर) तथा **सीसा**[7] (सं० **शीस**) आदि । सोने के लिए **सोना**,[8] **कंचन**,[9] **कनक**[10] तथा **कनै**[11] (सं० **कनक**) और चाँदी के लिए **रूपा**[12] शब्द प्रयुक्त है ।

राजदरबार, **शासन - व्यवस्था तथा युद्ध सम्बन्धी शब्दावली** : जायसी–काव्य मे राजदरबार, शासन-व्यवस्था तथा युद्ध सम्बन्धी शब्दावली यथेष्ट मात्रा मे मिलती है । उनके युग मे देश मे राजतत्र था । **राजा**[13] ही **पुहुमिपति**[14] (सं० **पृथ्वीपति**) होता था । हिन्दू सम्राट को **महाराजेसुर**[15] और मुसलमान सम्राट को **सुलतान**[16] (अ० **सुल्तान**), पातसाहि[17] (फा० **पादशाह**) अथवा **साह**[18] (फा० **शाह**) कहा जाता था । बडे-बडे **नरपति**,[19] **भुअपति**[20] और **छत्रपति**[21] भी इनकी सत्ता स्वीकार करते थे । चक्रवर्ती सम्राट के लिए जायसी ने **चक्कवै**[22] (सं० **चक्रवर्ती**) शब्द का प्रयोग किया है । प्रधान रानी **पाट परधानी**[23] कहलाती थी और अन्य सभी **रानी**[24] उसे प्रणाम करती थी । राजा **गढ**[25] मे रहते थे । उनके निवास-स्थान को **मंदिल**[26] (स० **मन्दिर**) तथा रानियो के निवास-स्थान को **रनिवास**[27] कहा गया है । राजा की सेवा करने के लिए बहुत से दास-दासी होते थे । रनिवास मे **धामिनी**,[28] **धाई**,[29] **चेरी**[30] तथा **दासी**[31] रानी की परिचर्या करती थी । **राजबार**[32] (सं० **राजद्वार**) पर **पाजी**[33] (सं०**पत्ति**), **पँवरिया**[34] तथा **पाहरू**[35] रहते थे । दुर्ग की सुरक्षा का निरीक्षण **कोटवार**[36] (सं० **कोट्टपाल**) करते थे । अन्य पदाधिकारियो मे **असुपती**[37] (सं० **अश्वपति**), **गजपती**[38] (सं० **गजपति**), **गढ़पति**[39] तथा **महरा**[40] आदि प्रमुख थे । शासन-व्यवस्था तथा अन्य राजकीय कार्यो मे सहायता देने के लिए **राजसभा** होती थी जिसमे **मंत्री**[41], **पंडित**[42] तथा अन्य सामन्तादि होते थे । मत्री गण तो राजा को **छर**[43] (सं० **छल**) का आश्रय लेने का **मत**[44] भी देते थे किन्तु पडित लोग शास्त्र-सम्मत परामर्श दिया करते थे। सम्राटो की राजसभाओ मे वरिष्ठ सभासद् भी **राजा**[45] कहलाते थे और **मुकुटबंध**[46] होते थे । सम्राट की ओर से वृत्ति पाने वाले सामन्तो की सज्ञा **भोगी**[47] थी । प्रधान सामन्तो के

---

१. प० २९३।६ २. प० ४२८।३ ३. प० ६३१।६ ४. प० २९३।५
५. प० २९४।६ ६. प० ५३१।९ ७. प० ४४८।३ ८. प० ५१३।४
९. प० ५६८।७ १०. प० ५१४।८ ११. प० ४०२।७ १२. प० ५३८।२
१३. प० १३।२ १४. प० १३।७ १५. प० २७१।२ १६. प० १३।१
१७ प० १३।९ १८. प० ४८६।१ १९ प० २६।७ २० प० २६।७
२१ प० २६।३ २२. प० ४६।९ २३. प० ४९।४ २४. प० ४९।५
२५ प० १४।८ २६ प० ८५।१ २७ प० २२८।१ २८ प० ८५।४
२९. प० ८९।५ ३०. प० ३८५।३ ३१ प० ४६१।७ ३२. प० ४६।१
३३. प० ४४८।८ ३४. प० ४१।२ ३५ प० ५५२।८ ३६ पं० ४१।३
३७ प० २६।६ ३८. प० २६।६ ३९. प० ४४।१ ४० प० ३९२।६
४१. प० २२२।४ ४२ प० २३९।२ ४३. प० ६२१।७ ४४. प० ५३१।७
४५. प० २६३।५ ४६. प० ४७।३ ४७. प० २४१।२

लिए **राउत**[१] **(सं० राजपुत्र)** उपाधि थी। हिन्दू राजा **राय**[२] तथा **देव**[३] उपाधि धारण करते थे। मुसलमान शासक भी **खिताब**[४] पाते थे। उनके **दरबार**[५] मे **उमरा मीर**[६] बैठा करते थे। राजद्वार पर **निसान**[७] बजा करता था।

जायसी ने राज-वैभव सूचक सामग्री का भी उल्लेख किया है। इनमे **चँवर**[८] **(स० चामर)**, **छात**[९] **(सं० छत्र)**, **पाट**[१०] **(स० पट्ट)**, **मटुक**[११] **(सं० मुकुट)**, **चँदोवा**[१२] **(स० चन्द्रापक)** तथा **सिंघासन**[१३] **(सं० सिंहासन)** आदि की गणना की जा सकती है।

तत्कालीन शासन-व्यवस्था मे पदाधिकारियो के अतिरिक्त **दूत**[१४] का स्थान भी महत्वपूर्ण था। जायसी ने इस अर्थ मे **बसीठ**[१५] **(सं० अवसृष्ट)** और **परेवा**[१६] **(सं० पारावत)** शब्दो का व्यवहार किया है। कुछ **दूति**[१७] स्त्रियाँ भी गुप्त रूप से समाचार देती थी। गुप्त समाचारो का पता लगाने वाले **भेदी**[१८] कहलाते थे। दूत लिखित और मौखिक सन्देश ले जाते थे।

न्याय सम्बन्धी शब्दावली राज्य मे **अदल**[१९] (अ० अद्ल) अथवा **निआउ**[२०] **(सं० न्याय)** की भी व्यवस्था थी। **अपराध**[२१] करने पर अपराधियो को **हथकरी**[२२] **(सं० हस्त कटक)**, **बेरी**[२३] **(सं० वलय)** और **साँकरि**[२४] **(सं० शृंखला)** आदि मे बाँधकर **मँजूसा**[२५] **(सं० मंजूषा=कठघरा)** मे डाल दिया जाता था। **बँदिवान**[२६] लोगो को **आदिल**[२७] **(अ० आदिल)** के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था जहाँ **सपत**[२८] **(सं० शपथ)** ली और **साखी**[२९] **(सं० साक्षी)** दी जाती थी। अपराध सिद्ध होने पर अनेक प्रकार के **डाँड़**[३०] **(सं० दण्ड)** दिए जाते थे। भयंकर अपराधो मे **बधिक**[३१] अथवा **जियबधा**[३२] अपराधी को **सूरी**[३३] **(सं० शूली)** या **फाँसी**[३४] **(सं० पाशी)** देने का काम करते थे। कभी-कभी **देस निसारा**[३५] **(सं० देश निष्कासन)** भी दिया जाता था।

शस्त्रास्त्र तथा युद्ध सम्बन्धी शब्दावली : जायसी-काव्य मे मध्यकालीन प्रमुख शस्त्रास्त्रो की नामावली स्फुट प्रसगो मे मिलती है। हथियार के साधारण अर्थ मे **हतियार**[३६] तथा **अत्र**[३७] **(स०अस्त्र)** शब्द प्रयुक्त है। शस्त्रास्त्र के अर्थ मे **लोहँ** शब्द भी प्रयुक्त है, यथा—

लोहँ दुहुँ दिसि भएउ अघाऊ[३८]। **दर लोहँ दरपन भा आवा**[३९]।

---

१. प० ५५८।१ २. प० १३४।२ ३. प० ४६४।६ ४. प० १२।३
५. प० १५।६ ६. प० ४५७।८ ७ प० ४७।८ ८ प० ४७०।५
९. प० ४७।४ १०. प० १३।२ ११. प० ५१५।२ १२. प० २६१।४
१३. प० २८२।३ १४. प० ४५८।७ १५. प० २१७।७ १६. प० ५०२।१
१७. प० २४७।२ १८. प० २१५।५ १९ प० १५।१ २०. प० १५।७
२१. प० २११।६ २२ प० ५७६।१ २३. प० ५७६।१ २४. प० ५७६।१
२५. प० ५७६।२ २६ प० ५७८।१ २७. प० १५।२ २८. प० ५३७।५
२९. प० २७३।१ ३०. प० ५७७।६ ३१. प० ५७८।२ ३२. प० ५७८।१
३३. प० २३९।६ ३४. प० २४४।६ ३५. प० ४४९।२ ३६. प० १०२।२
३७. प० १०१।६ ३८. प० ५१९।१ ३९. प० ५२०।५

लोहे से निर्मित होन के कारण ही शस्त्रो को यह सज्ञा दी गई थी। अस्त्रो मे प्रमुख स्थान **तरवार**[1] (**सं० तरवारि**) का है। इससे मिलते-जुलते अन्य अस्त्रो मे **करवार**[2] (**सं० करवाल**), **खरग**,[3] **खाँडा**[4], **कटारी**[5], **जमकातरि**[6] या **जमकाति**[7] (**सं० यमकर्तृका**) तथा **तबल**[8] (**फ़ा० तबर**) आदि आते है। तलवार की श्रेणी के अन्य शस्त्रो मे **छुरी**[9] (**सं० क्षुरिका**), **बाँक**[10] (**सं० वक्र**), **कुंत**[11], **नेजा**[12] (**फा० नेज**), **सेल**[13], **साँग**[14], **भाल**[15] (**सं० भल्लक**) आदि आते है। **ढाल**[16] और उसके एक विशेष भेद **ओड़न**[17] की चर्चा भी मिलती है। गदा के लिए **गुरुज**[18] (**फा० गुर्ज**) शब्द प्रयुक्त है। धनुष को **धनुक**[19] (**सं० धनुः**) और उसकी डोरी को **पनच**[20] (**सं० प्रत्यचा**) कहा गया है। **लेजिम**[21] तथा **जंत्र कमान**[22] विशेष प्रकार के धनुष थे। धनुष का अभिन्न अग **तीर**[23], **बान**[24] या **सर**[25] है। वाणो के समूह को **बनावरि**[26] (**सं० वाणावली**) कहा जाता है। वाण का एक विशेष भेद **अगिनबान**[27] कहा जाता था। जायसी ने मुसलमानो के नए अस्त्र **तुपुक**[28] (**तुर्की तुपक**) और उससे सम्बद्ध वस्तुओ का भी निर्देश किया है। **गोला**[29] (**स० गोलः**), **गोट**[30], **पलीता**[31] (**फ़ा० फतीलः**), **दारू**[32] (**फा० बारूद**) आदि ऐसे ही शब्द है। तोप के अर्थ मे **कमान**[33], **नारी**[34] (**सं० नलिका**) शब्द भी प्रयुक्त है। तोपो के मुँह मे लगी हुई पच्चर के लिए **जीभ**[35] और **रसना**[36] शब्द प्राप्त होते हैं। कवि ने एक स्थान पर तोप के गोले बनाने की एक प्रक्रिया का भी सकेत किया है—

औ बाँधे गढ़ि गढ़ि मँतवारे। फाटै धरति होहिं जिवधारे[37]।

पत्थरो के छोटे गोले-गोली गढकर बारूद मे भर दिए जाते थे फिर उनके ऊपर मिट्टी, सन, रूई आदि लपेट दी जाती थी। जब नीचे फेके जाने पर वे फटते तो धरती पर छिटक कर मार करते थे। यहाँ गोलो के लिए **मँतवारे** शब्द आया है। जायसी के युग मे बारूद को दारू और तोपो को मँतवारी कहा जाता था—**दारू पियहिं सहज मँतवारी**[38]। तोपो के नाम के आधार पर ही सम्भवत गोलो को मँतवारा कहा गया होगा। मिट्टी के तेल के गोलो के लिए **अंगार**[39] शब्द प्रयुक्त है। स्फुट शस्त्रास्त्रो मे **चक्र**[40], तथा **नाग फाँस**[41] (**सं० नागपाश**) की चर्चा मिलती है।

---

१. प० ५१८।६   २. प० ६३३।४   ३. प० १३।५   ४. प० १३।३
५. प० २६३।२   ६. प० ३९४।३   ७. प० १६१।२   ८. प० ४९९।२
९. प० ५४१।८   १० प० ५८०।४   ११. प० ५१८।६   १२. प० ६३०।५
१३. प० ५१८।४   १४. प० ६३५।७   १५ प० ४१६।९   १६. प० ५०५।५
१७. प० ६३६।६   १८. प० ६३६।७   १९. प० १०१।८   २० प० ५७३।२
२१. प० ४९९।४   २२ प० ४९९।३   २३. प० ४९९।३   २४. प० १०१।८
२५. प० ३५३।२   २६. प० १०४।३   २७. प० ११३।५   २८. प० ५०६।८
२९ प० ५०६।१   ३०. प० ५२५।४   ३१. प० ५०६।८   ३२. प० ५०७।१
३३. प० ५०६।१   ३४. प० ५०७।१   ३५. प० ५०६।६   ३६. प० ५०७।५
३७. प० ५०४।३   ३८ प० ५०७।१   ३९. प० ५२३।६   ४०. प० १०१।८
४१. प० २४४।३

जायसी-काव्य मे युद्ध के कई पर्यायवाची शब्द मिलते हैं, यथा– **लराई**[1], **रन**[2], **संग्राम**[3], **जुझाइ**[4], **जूझ**[5] आदि । सेना के लिए **सैना**[6], **अनी**[7], **कटक**[8] तथा **दर**[9] शब्द व्यवहृत हैं। सेना के चार भाग होते थे–हाथी, घोडे, रथ और पैदल । जायसी ने **गजदल**[10], **असुदल**[11], **रथ**[12] तथा **दर**[13] कह कर इन सभी का संकेत किया है । घोडे पर सवार सैनिको के लिए **असवार**[14] शब्द आया है। सैनिको मे **धानुक**[15] **(सं० धानुष्क)** तथा **भलइत**[16] होते थे। सैनिको के लिए **जुझारू**[17], **सूर**[18], **वीर**[19], **बहादुर**[20] और **जंगी**[21] आदि शब्द मिलते हैं । युद्ध मे सैनिको के लिए विशिष्ट वेश-भूषा आवश्यक थी । जायसी ने इस सन्दर्भ मे **झिलमिल**[22], **सनाह**[23] (स० सन्नाह), **बकतर**[24] (फ़ा० **बक्तर**), **जेबा**[25], **खोलि**[26], **टोपा**[27], **कुंडि**[28], **राग**[29] तथा **पहुँची**[30] का उल्लेख किया है। कवच के लिए 'लोह' शब्द भी प्रयुक्त है– **लोहै सार पहिरि सब कोपा**[31] । युद्ध वर्णन मे सैनिको की वेश-भूषा के साथ-साथ हाथी-घोडो की सज्जा से सम्बद्ध शब्द भी प्राप्त होते है, यथा– **सिरी, टैआ, गजझाँप, चौरासी, पोखर** (दो० ५१३) तथा **सारि**[32] । यह हाथी और घोडो दोनो के लिए प्रयुक्त होते थे ।

जायसी ने तत्कालीन युद्ध-प्रणाली से सम्बद्ध अन्य अनेक शब्दो का भी व्यवहार किया है । शत्रु के लिए **सतुरु**[33], **रिपु**[34] तथा **बैरि**[35] शब्द आए है । आक्रमण करने के अर्थ मे **उठौनी**[36] शब्द मिलता है । गढ के चारो ओर घेरा डालना **अँगूठी**[37] करना कहलाता था । कभी-कभी गढ पर **ढोवा**[38] करके उसे **छेंका**[39] जाता था । उसमें **सुरँग**[40] भी लगाई जाती थी और दुर्ग के सम्मुख **गरगज**[41] (ऊँचाई पर से तोपे चलाने के लिए निर्मित टीला) बाँध कर गोले फेंके जाते थे । शत्रु-पक्ष के खेमो मे आग लगाने के लिए दुर्ग से जलती हुई **लूक**[42] को धनुष से फेका जाता था । नीचे खड़े हुए शत्रु-पक्ष को नष्ट करने के लिए पत्थर की **सिला**[43] तथा **कोल्हु**[44] को भी कोट से गिराया जाता था। प्रत्येक दल के साथ **बैरख**[45] **(तु० बैरक)** या **धुजा**[46] होती थी । एक **अचल धजा**[47] भी होती थी जो सेना के पीछे गाडी जाती थी । सैनिक उससे

---

१. प० २४।४ • २ प० २११।६ ३. प० १९८।५ ४ प० ५०८।८
५ प० २४२।२ ६. प० १०४।२ ७. प० १०४।१ ८. प० २६।३
९. प० २६।३ १०. प० ५१५।१ ११. प० ५१५।१ १२. प० २७७।२
१३. प० २६।३ १४. प० ५०५।२ १५ प० ५०४।५ १६. प० ५१४।९
१७. प० १२।५ १८. प० १३।४ १९. प० २२।४ २०. प० ४९९।३
२१. प० ४९९।३ २२. प० ३४१।५ २३. प० ५१२।४ २४. प० ६३०।८
२५. प० ४९९।४ २६. प० ४९९।४ २७ प० ५१२।४ २८. प० ६३०।८
२९. प० ४९९।४ ३० प० ५१२।४ ३१. प० ५१२।४ ३२. प० ४९७।१
३३. प० ३७५।३ ३४ प० ५३३।५ ३५ प० ३३४।३ ३६ प० ६३०।७
३७. प० ५७५।४ ३८ प० ५२४।२ ३९. प० २४।४ ४०. प० २१५।६
४१ प० ५२५।२ ४२. प० ५२३।४ ४३ प० ५२३।४ ४४. प० ५२३।५
४५ प० ५०५।५ ४६. प० ३४४।२ ४७ प० ५१५।३

पीछे हटने की अपेक्षा **खेत**[1] रहना श्रेयस्कर समझते थे। हार होते हुए देख कर लड़ते हुए मर मिटने की क्रिया को **साका**[2] और उसे करने वाले व्यक्ति को **सकबंधी**[3] कहा गया है। **युद्ध** मे सफलता न मिलने पर **मेराउ**[4] **(सं० मेलापक)** का प्रस्ताव भी रखा जाता था।

धर्म, दर्शन तथा लोक-विश्वास सम्बन्धी शब्दावली : धर्म तथा दर्शन प्रत्येक जाति तथा देश की सस्कृति के अभिन्न एव महत्वपूर्ण अग रहे है। प्रत्येक साहित्य मे सस्कृति के इस विशिष्ट पक्ष को महत्वपूर्ण स्थान मिलता रहा है। सूफी लोग तो प्रधानत धर्म-प्रचारक थे ही और उन्होने सर्वसाधारण को अपने सिद्धान्तो का प्रचार करने की भावना से प्रेरित होकर ही प्रेम-कथाओ तथा सरल भाषा का आश्रय लिया था। सूफी कवि जायसी ने भी 'पद्मावत' मे लौकिक प्रेम-कथा के बहाने आध्यात्मिक तथ्यो की व्यजना की है। 'आखिरी-कलाम' मे तो कवि की दार्शनिक विचारधारा अधिक पल्लवित नही हो सकी है, किन्तु 'अखरावट' तथा 'पद्मावत' मे इन विचारो का सुन्दर निदर्शन हुआ है। 'अखरावट' इस दृष्टि से दर्शन-प्रधान काव्य कहा जा सकता है। जायसी-काव्य मे धर्म सम्बन्धी शब्दावली की छानबीन करते समय कवि की धार्मिक सहिष्णुता एव सामजस्य-भावना का स्मरण रखना भी आवश्यक है, क्योकि उक्त भावनाओ का प्रभाव प्रयुक्त शब्दावली पर स्पष्ट है। जायसी प्रेम-मार्गी सूफी कवि थे किन्तु वे किसी भी धर्म, सम्प्रदाय अथवा साधना-पद्धति के विरोधी न थे। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कहा है

बिधिना के मारग है ते ते। सरग नखत तन रोवाँ जेते।[5]

स्वय प्रेम-मार्गी होते हुए भी उन्होने ज्ञान-मार्ग की निन्दा कही नही की, अपितु एक-दो स्थलों पर उसकी श्रेष्ठता का महत्व ही स्वीकार किया है।[6] मुसलमान होते हुए तथा मूर्ति-पूजा मे विश्वास न रखते हुए भी उन्होने महादेव-पार्वती की पूजा का वर्णन बडी श्रद्धा से किया है तथा उसके द्वारा मनोरथ-साफल्य की सूचना भी दी है। इसी प्रकार उन्होने वेद-पुराण आदि हिन्दू धार्मिक ग्रन्थो का नाम भी श्रद्धापूर्वक लिया है और हिन्दू देवी-देवताओ के प्रति भी सम्मानसूचक वाक्य कहे है। जायसी सच्चे प्रेम-साधक थे तथा उनकी दृष्टि साम्प्रदायिकता के जाल से सर्वथा मुक्त थी। कवि की धर्म सम्बन्धी उदारता तथा सामंजस्य-भावना का आभास इस दोहे से भली प्रकार लग सकता है

जो **पुरान बिधि** पठवा सोई पढत **गिरथ**।
अउर जो भूले आवत ते सुनि लागत तेहि पंथ।[7]

---

१. प० ४६८।६ २ प० २४२।५ ३ प० ४६१।४ ४. प० ५३३।४
५. अख० २५।२
६. मुहमद यह मन अमर है कहु किमि मारा जाइ।
ग्यान सिला सौं जो घँसे, घँसतहि घँसत बिलाइ। प० ४२२।८-९
७. प० १२।८-९

उक्त पक्तियो मे कवि ने 'कुरान' को 'पुरान', 'अल्लाह' को 'विधि', 'किताब' को 'गिरथ' (स० ग्रन्थ) और 'दीने इस्लाम' को 'पथ' कह कर हिन्दू धर्म के पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग किया है। इसी प्रकार कुछ अन्य स्थलो पर उसमान को **पंडित**[1], 'कलमा' को **बचन**[2], इब्लीस को **नारद**[3], अजराइल को **जम**[4] (**संयम**), अनल्हक को **सोऽहं**[5] तथा जन्नत को **कैलास**[6] कह कर उन्होने अपनी धार्मिक सहिष्णुता का सुन्दर परिचय दिया है[7]। जायसी की इसी सहिष्णु प्रवृत्ति के कारण हमे उनके काव्य मे तत्कालीन सामान्य हिन्दू जनता की धार्मिक प्रवृत्तियो के द्योतक शब्द यथेष्ट मात्रा मे प्राप्त होते हैं जो तत्कालीन धार्मिक दशा का अध्ययन करने मे विशेष सहायक सिद्ध हो सकते है। लोक-जीवन को महत्व देते हुए जायसी ने अनेक स्थलो पर प्रसिद्ध हिन्दू देवी-देवताओ तथा अन्य लोकोत्तर प्राणियो का उल्लेख किया है, यथा इद्र[8], जम[9], नारद[10], ब्ररह्मा[11] (ब्रम्हा[12], ब्रह्मा[13], ब्रह्म[14]), लखिमी[15], (लखिमिनी[16]), किरसुन[17] (किस्न[18], किस्नमुरारी[19], कान्ह[20]), नराएन[21], राघौ[22] (राम[23]), सीता[24], (रामा)[25], हनिवत[26], संकर[27], महादेव[28], (महेस[29], गिरिजापति[30], रुद्र[31], सिव[32]), पारवती[33], (गौरा[34]), कुबेरु[35], बिस्नु[36], सारदा[37], सुरसती[38], चंद्र[39] तथा रवि[40]। कुछ पौराणिक पात्र भी उल्लिखित है, यथा– एरापति[41], कंसासुर[42], राहु[43], सहस्सरबाहु[44], करन[45], गोपिचंद[46], भर्तंहरि[47], पिंगला[48],

---

१. प० १२।४ २ प० १२।७ ३. अख० ६।३ ४. आखि० २०।५
५. अख० ५३।६ ६ प० २६।२

७. कुछ सूफी कवियों ने भिन्न मनोवृत्ति का भी परिचय दिया है। नूर मुहम्मद ने 'अनुराग बांसुरी' में इस्लाम की बांसुरी के सम्मुख हिन्दू देवी-देवताओं को मूर्च्छित होते दिखाया हैं। नसीर तथा निसार ने 'प्रेमदर्पण' और 'यूसुफ जुलेखा' का कथानक शामी परम्परा से चुना है। मूर्ति-पूजा का विरोध तो मंझन, उसमान, जान, कासिमशाह, शेख रहीम, अली मुराद, नसीर तथा निसार आदि लगभग सभी मुसलमान सूफी हिन्दी कवियो ने किया है। इस दृष्टि से जायसी की धार्मिक सहिष्णुता अत्यन्त उच्च कोटि की है।

८. अख० ३०।३ ९. अख० ३२।८ १०. अख० ४३।१ ११. प० ५४।९
१२ प० १०८।६ १३ प० २६४।३ १४. प० ३६६।४ १५. प० ९२।३
१६. प० ४१५।५ १७. प० १०२।३ १८. प० ११५।५ १९ प० २६४।४
२०. प० ४२८।१ २१ प० ५७६।४ २२ प० १०२।३ २३. प० १०४।२
२४. प० १३१।४ २५. प० ४०५।६ २६ प० ४०५।६ २७. प० ४७२।१
२८. प० २१२।२ २९. प० २१२।५ ३०. प० २१२।५ ३१ प० ३६६।४
३२. प० ३६६।४ ३३ प० २०६।४ ३४. प० २२९।४ ३५. प० २६५।४
३६. प० ४०४।४ ३७. प० ४७८।८ ३८. प० ४७८।८ ३९. प० ४७८।९
४०. प० ४७८।९ ४१. प० २६।५ ४२. प० १०२।४ ४३. प० १०२।५
४४. प० १०२।५ ४५ प० १४५।७ ४६. प० १६०।२ ४७. प० २०८।३
४८. प० २०८।३

बिक्रम[1], **भोज**[2], **गहर**[3], **नल**[4], **दमनहि**[5] (**दमयन्ती**), **सेस**[6] (**फनपति**[7]), **फनिंद्र**[8], **बासुकि**[9], **बलि**[10], **कुरुंभ**[11], **कुभकरन**[12], **भीव**[13], **अनिरुध**[14], **बानासुर**[15], **भभीखन**[16], **महिरावन**[17], **दसरथ**[18], **राधिका**[19], **राही**[20] (सं० **राधिका**), **चद्रावली**[21], **सैरिंधी**[22], **हरिचद**[23], **लखन**[24], **अगद**[25], **अरजुन**[26], **नल**[27], **नील**[28], **कारी**[29], **सखासुर**[30], **दुसासन**[31], **सुखदेऊ**[32], **मुस्टिक**[33], **मालकडेऊ**[34], **परसु**[35], तथा **जुरजोधन**[36] आदि । इस तालिका को देखने से यह स्पष्ट ही है कि इनके अन्तर्गत **देव**[37], **देवता**[38], **दानौ**[39] (सं० **दानव**), **राकस**[40] (सं० **राक्षस**) तथा **दयंता**[41] (जिन्हे कवि ने **मंसुखवा**[42] भी कहा है) आदि सभी को स्थान मिला है । प्रसगवश यत्र-तत्र **भूत**[43], **परेत**[44], **आछरि**[45], **अपछरा**[46] (सं० **अप्सरा**), **हूर**[47] तथा **भोकस**[48] (स० **पुल्कस**) आदि का भी उल्लेख आ गया है । 'पदमावत' के कथानक का आधार हिन्दू लोक-जीवन रहा है, अत उसमे कवि को इस्लाम तथा मुसलमानो के धार्मिक मान्य पुरुषो के उल्लेख का अवसर नही मिल सका, किन्तु इस अभाव की पूर्ति 'आखिरी कलाम' मे हो गई है । इस कृति मे इस्लाम की धार्मिक तथा साम्प्रदायिक पुस्तको के आधार पर प्रलय के दिनो का विस्तृत वर्णन किया गया है और उसी प्रसंग मे **मैकाइल**[49], **जिबरईल**[50], **इसराफील**[51] तथा **अजराइल**[52] इन चार **फिरिस्तन**[53] और **आदम**[54], **हौवा**[55], **मूसा**[56], **ईसा**[57], **इब्राहिम**[58], **नूह**[59], **फातिम**[60], **हसन-हुसैन**[61], **यजीद**[62], **ख्वाज**[63] **खिजिर**

---

१. प० २१२।६   २ प० २१२।६   ३. प० २३५।६   ४. प० २५५।७
५ प० २५५।७   ६. प० ४६५।२   ७. प० २६४।५   ८ प० ५०५।१
९. प० ४२१।६   १०. प० २६५।४   ११. प० ४६५।३   १२. प० २६५।६
१३. प० २६५।६   १४. प० २७४।३   १५. प० २७४।३   १६. प० ३६०।१
१७. प० ३६४।४   १८. प० ४१३।४   १९. प० ४२६।४   २०. प० ४२८।१
२१. प० ४२६।४   २२ प० ४६१।४   २३ प० ५०६।६   २४ प० ६३५।३
२५. प० ६३१।७   २६ प० ५६१।७   २७ प० ६११।४   २८ प० ६११।४
२९. प० ५७६।५   ३० प० ५७६।६   ३१. प० ५७६।७   ३२. प० ६०४।५
३३ प० ६११।३   ३४. प० ६११।३   ३५. प० ६११।५   ३६. प० ६१४।६
३७. प० ११०।७   ३८ प० ११८।४   ३९. प० ३६६।३   ४०. प० ४।७
४१ प० ४।७   ४२. प० ३६६।२   ४३. प० ४।७   ४४. प० ४।७
४५. प० १६०।२   ४६. प० २०६।३

४७. आखि० ५३।६ यह उल्लेखनीय है कि यह शब्द इस्लाम के ही प्रसंग मे आया है । हिन्दू धर्म के वर्णन में 'अप्सरा' शब्द का प्रयोग हुआ है ।

४८. प० ४।७ · लाला भगवानदीन ने इसकी व्युत्पत्ति सं० 'भुवौकस' से बताई है । पदमावत, स० ला० भगवानदीन, पृ० २ ।

४९ आखि० १५।१   ५० आखि० १७।१   ५१. आखि० १९।१   ५२ आखि० २०।१
५३ आखि० ५०।५   ५४ आखि० ३२।१   ५५. आखि० ३३।७   ५६. आखि० ३४।१
५७. आखि० ३६।२   ५८ आखि० ३६।४   ५९. आखि० ३६।७   ६०. आखि० ३८।१
६१. आखि० ३८।२   ६२. आखि० ४२।४   ६३. प० २०।५

तथा **मुहम्मद**[1] साहब की चर्चा भी हो गई है। उल्लेखनीय है कि कवि ने अजराइल को (जो मौत का फरिश्ता कहा जाता है) एक स्थान पर **जम (सं० यम)** कह कर भी सबोधित किया है[2]। यह प्रयोग कवि की धार्मिक सहिष्णुता तथा उदारता का सुन्दर प्रमाण है। अन्य पात्रो मे 'शैतान' का उल्लेख महत्वपूर्ण है जिसके लिए कवि ने **इबलीस**[3] तथा **नारद**[4] दो शब्दो का प्रयोग किया है।

उपासना-पद्धति तथा उपासक : हिन्दू देवी-देवताओ की उपासना तथा पूजा प्राचीनकाल से ही भारतीय लोक-जीवन का एक आवश्यक अग रही है। इस पूजा तथा स्तुति का उद्देश्य देव-विशेष को प्रसन्न करके उससे वरदान या प्रसाद रूप मे अभीष्ट फल प्राप्त करना ही होता था। जायसी ने अपने काव्य मे इस महत्वपूर्ण धार्मिक कृत्य का भी उल्लेख किया है, किन्तु उन्होने केवल शिव की पूजा की ही चर्चा की है। पद्मावती योग्य वर प्राप्त करने की इच्छा से 'विस्वनाथ की पूजा'[5] करने के लिए अपनी सहेलियो सहित जाती है। उसकी सखिया पूजा के लिए 'फर फूल' तथा पूरी, 'गोझा' (स० गुह्यक) आदि विविध पक्वान्न लेकर चलती है[6]। मार्ग मे गायन, वाद्य, सगीत तथा नृत्य आदि मे लिप्त होती हुई वे मन्दिर पहुचती है[7]। मन्दिर मे प्रविष्ट होने पर पद्मावती ने

एक जोहार कीन्हि औ दूजा। तिसरें आइ चढ़ाएन्हि पूजा।
फर फूलन्ह सब मंडप भरावा। चदन अगर देव नहवावा।
भरि सेंदुर आगे होइ खरी। परसि देव औ पाएन्ह परी।[8]
... ...

इंछि इछि बिनई जसि जानी। पुनि कर जोरि ठाढ़ि भै रानी।[9]

देव-पूजा का केवल एक यही प्रकरण हमे 'पद्मावत' मे प्राप्त होता है। यह भी उल्लेखनीय है कि यद्यपि मध्यकाल मे यक्ष, नाग, भूत, पिशाच, ग्रह, वृक्ष, नदी तथा गिरि आदि की कल्पना देव रूप मे कर उनकी पूजा की परम्परा को सार्वजनिक मान्यता मिल चुकी थी किन्तु जायसी ने इस प्रकार की पूजा का भी कोई उल्लेख नही किया है। पूजा का सामान्य रूप मूर्ति-पूजा था जिसे जायसी ने **पाहन पूजा**[10] कहा है। किसी एक देवता को सर्वाधिक पूज्य मान कर उसकी भक्ति करने वालो का उल्लेख उसी देवता के नाम पर करने की प्रथा भी प्रचलित थी। यथा वासुदेवक, वैष्णव, शैव आदि। जायसी ने भी इसी प्रकार **रामजन**[11] और **महेसुर**[12] **(स० माहेश्वर)** इन दो प्रकार के भक्तो का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त उन्होने आध्यात्मिक जगत मे क्रियाशील तथा लीन रहने वाले अन्य लोगो

---

१ आखि० ३५।६ २. आखि० २०।५ ३. अख० ३।६ ४ अख० ६।३
५. प० १८५।६ ६. प० १८५।८ ७. प० १८६।१-७ ८ प० १९१।३-५
९. प० १९२।१ १०. प० २०२।६ ११. प० ३०।४ १२ प० ३०।७

की भी चर्चा की है और इस वर्ग के अन्तर्गत **पीर**[1] (फा० पीर), **सिद्ध**[2], **जपा**[3], **तपा**[4], **रिखेस्वर**[5], **सन्यासी**[6], **मसवासी**[7] (सं० मासोपवासी), **दिगम्बर**[8], **सरसुती**[9], **जती**[10], **सेवरा**[11] (स० श्वेतपट), **खेवरा**[12], (स० क्षपणक), **बानपरस्ती**[13] (सं० वानप्रस्थी), **सिध**[14], **साधक**[15], **अबधूत**[16], **तपसी**[17], **बैरागी**[18], **नाथ**[19], **उदासी**[20], **जोगी**[21], **जोगिनि**[22], **नबी**[23] (अ० नबी), **मुरसिद**[24] (अ० मुर्शिद), **इमाम**[25] (अ० इमाम), **रसूल**[26] (अ० रसूल), **पैगम्बर**[27] (फा० पैगम्बर), **उमत**[28] (अ० उम्मत) आदि शब्दो का उल्लेख किया जा सकता है। जायसी ने इन सभी शब्दो मे से 'जोगी' शब्द का प्रयोग सबसे अधिक किया है।[29]

धार्मिक विश्वास तथा लोकाचार के बोधक शब्द · **पाप**[30] के क्षय तथा **पुन्य**[31] की प्राप्ति अथवा मनोकामना की सफलता के हेतु दान, तप, व्रत, तीर्थयात्रा आदि विविध धार्मिक कार्यो का स्थान भारतीय जीवन मे प्राचीनकाल से ही महत्वपूर्ण रहा है। इस प्रकार का भी विश्वास प्रचलित रहा है कि इनके द्वारा सुन्दर पारलौकिक जीवन की सिद्धि इहलोक मे ही सभव है। जायसी के काव्य मे (जो अपने युग के लोकजीवन का एक सजीव ज्वलन्त चित्र है) हमे **दान**[32] की यथेष्ट चर्चा प्राप्त होती है। कवि ने दान महिमा का विस्तृत वर्णन विशेष रुचि से किया है[33]। पदमावत मे एक-दो स्थलो पर दान देना भी वर्णित है। यथा, पद्मावती के रतनसेन से प्रथम सयोग के उपरान्त उसे श्रान्त तथा शिथिल देख कर स्त्रिया कहती है

---

१ प० १८।१ २ प० २२।५ ३ प० ३०।३ ४. प० ३०।३
५ प० ३०।४ ६. प० ३०।४ ७. प० ३०।४ ८ प० ३०।५
९ प० ३०।६ १०. प० ३०।६ ११ प० ३०।८ १२ प० ३०।८
१३. प० ३०।८ १४ प० ३०।८ १५ प० ३०।८ १६. प० ३०।८
१७ प० १९४।९ १८. प० २६७।२ १९. प० २२०।७ २०. प० ३१०।७
२१. प० ३०।६ २२. प० ६००।६ २३. अख० १०।२ २४. अख० १०।५
२५. अख० १०।६ २६. आखि० २४।२ २७. आखि० ५०।६ २८. आँखि० २४।५
२९ देखिए प० ५५।९ १२३।५, २१८।८, २१९।८, २२०।२-९, २२२।६, २४४।१, २५६।२, २५८।८, २५९।१, २६०।३-५, २६१।२, २६३।७, २६५।२, २६७।८, २६९।४, २७०।९, २७२।७, २७८।२, २९३।४, २९५।६, ३०३।५, ३०४।६, ३०८।१, ३१०।५, ३१६।२, ३३३।९, ३३४।१, ३६५।१, ३६७।१, ३७३।४-५, ४२७।७, ३६०।७, ४३६।९, ४५८।५ तथा ६००।३ आदि। ३०. प० ४०९।९ ३१ प० ३८७।२
३२. प० ४२७।१
३३. अ– धनि जीवन औ ताकर जिया। ऊंच जगत महँ जाकर दिया।
दिया सो सब जप तप उपराहीं। दिया बराबर जग किछु नाहीं।
एक दिया तेइँ दसगुन लाहा। दिया देखि धरमी मुख चाहा।
दिया सो काज दुहू जग आवा। इहाँ जौं दिया उहां सो पावा।
दिया करै आगें उजियारा। जहां न दिया तहाँ अंधियारा।

दरब उँबारहु अरघ करेहू । औ लै बारि सन्यासिहि देहू ।[1]

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर पद्मावती राघव चेतन को सूर्य-ग्रहण के कष्ट की शान्ति के लिए **उतारा**[2] (हि० **उतारना**) दान करती है । इस स्थल पर **दखिना**[3] (**सं० दक्षिणा) देने** का भी उल्लेख है । **तप**[4] करना, **करवत**[5](**सं० करपत्र**)लेना, **तिर्थ**[6] (**तीर्थ**) जाना आदि भी पुण्य कृत्य हैं किन्तु जायसी ने उनका नामोल्लेख मात्र ही किया है । उन्होने एक अन्य प्रचलित लोकाचार का वर्णन भी अपने काव्य मे किया है और वह है 'मनौती मानना' । लोक मे मनोरथ पूर्ण होने पर दूध या पवित्र तीर्थजल से भरा हुआ कलश चढाने की मनौती मानी जाने की प्रथा है । इस प्रथा का सकेत 'पद्मावत' मे प्राप्त होता है । विवाह होने के पूर्व यौवन-भार-भरिता पद्मावती देवता से कहती है

बर सँजोग मोहि मेरवहु कलस जाति हौं मानि ।
जेहि दिन इंछा पूजै बेगि चढ़ावौं आनि ।[7]

इन कृत्यो के अतिरिक्त कुछ अन्य कार्य भी होते थे, यथा, यात्रियो की सुविधा के लिए **धरमसार**[8] (**धर्मशाला**) बनवाना, **अन्नदान**[9], **पानी पिलाना**[10], **भिख्या**[11] (**सं० भिक्षा**) देना आदि । देवता को प्रसन्न करने के लिए कभी-कभी **बलि**[12] भी दी जाती थी । राजा की बलि **भीवँ**[13] (**स० भीम) बलि** मानी जाती थी ।

प्रचलित लोक विश्वासो के अनुसार ही जायसी ने **सरग**[14] (**सं० स्वर्ग**) तथा **नरक**[15] का भी उल्लेख किया है । 'पद्मावत' मे कवि ने स्वर्ग के लिए प्राय: 'कबिलास[16]' शब्द का

दिया मंदिल निसि करै अंजोरा । दिया नांहि घर मूसहिं चोरा ।
हातिम करन दिया जौं सिखा । दिया अहा धरमन्हि महं लिखा ।
निरमल पंथ कीन्ह तिन्ह जिन्ह रे दिया कछु हाथ ।
किछु न कोई लै जाइहि दिया जाइ पै साथ । प० १४५।१-६

आ- **लोभ न कीजै कीजै दानू । दानहि पुन्य होइ कल्यानू ।**
दरबहि दान देइ बिधि कहा । दान मोख होइ दोख न रहा ।
दान आहि सब दरब क चूरू । दान लाभ होइ बांचै मूरू ।
दान करै रछ्या मंझ नीरा । दान खेइ लै आवै तीरां ।
दान करन दै दुइ जग तरा । रावण संचि अगिनि मंह जरा ।
दान मेरु बढ़ि लाग अकारां । सैंति कुबेर बूड़ तेहि भारा । प० ३८७।२-७

१ प० ३२८।६ २. प० ४५०।६ ३ प० ४५०।७ ४ प० १२६।८
५. प० २४६।६ ६ प० ६०४।२ ७. प० १६१।८-६ ८. प० ६००।१
९. प० ६००।२ १०. प० ६००।२ ११. प० २१६।८ १२. प० २२४।२
१३. प० १६६।८ १४. अख० २।८ १५. अख० २।८ १६. प० २६।५

प्रयोग किया है। 'आखिरी कलाम' मे उन्होने इस्लाम धर्म से सम्बद्ध कथानक का वर्णन करने के कारण इनके स्थान पर क्रमश **बिहिस्त**[1] (फा० बिहिश्त) और **दोजख**[2] (फा० दोजख़) शब्दो का भी व्यवहार किया है। अखरावट मे स्वर्ग के लिए कही-कही **'बैकुंठ'**[3] अथवा **'रामपुरी'**[4] प्रयुक्त है। आखिरी कलाम मे **कौसर**[5] तथा **पुल सिलवात**[6] का उल्लेख भी मिलता है।

दार्शनिक शब्दावली

सुनि हस्ती कर नावँ अँधरन्ह टोवा धाइ कै।
जेइ टोवा जेहि ठावँ मुहमद सो तैसै कहा।[7]

उक्त कथन विभिन्न दर्शनो के सम्बन्ध मे जायसी के दृष्टिकोण पर सम्यक् रीति से प्रकाश डालता है। उनका विचार था कि प्रत्येक मत मे सत्य का कुछ न कुछ अश अवश्य रहता है, अत किसी एक मत-विशेष का यह आग्रह भ्रमपूर्ण है कि ईश्वर तथा उसको प्राप्त करने के साधनो का वास्तविक ज्ञान उसी मे निहित है। सच्चे साधक को प्रत्येक क्षेत्र मे ईश्वर की सत्ता का आभास होता है और प्रत्येक धर्म उसकी दृष्टि मे मान्य है। जायसी ऐसे ही सच्चे, उदार तथा सारग्राही साधक थे। उन्होने उत्तर भारत मे तत्कालीन प्रचलित प्रमुख धर्मों से सारतत्व ग्रहण किया और उसे अपनी आध्यात्मिक विचारधारा मे स्थान दिया। यही कारण है कि जायसी के अध्यात्म पर इस्लाम तथा सूफी मत के अतिरिक्त सिद्धो की साधना-चर्या, नाथो की योग-परम्परा तथा अद्वैतवाद आदि का प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता है। जायसी के विशिष्ट दार्शनिक दृष्टिकोण मे उक्त दार्शनिक तथा धार्मिक परम्पराओं का सारभूत अश निहित था। अत यह सर्वथा स्वाभाविक है कि उनकी भाषा मे भी उक्त प्रभावों से सम्बद्ध शब्दावली हो। इस स्थल पर यह भी उल्लेखनीय है कि सूफियो को पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से मोह सा था[8], अतएव सूफी कवि जायसी की शब्दावली मे प्रमुख सहजयानी, नाथपथी, रसायनवादी तथा अन्य दार्शनिक शब्द एव प्रतीक और भी सरलता से स्थान पा गए। इन पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग करने मे कवि ने कुछ स्थलो पर श्लेषमयी द्वयर्थक शैली को अपनाया है, फलतः जहा एक ओर लौकिक प्रेम-कथा की गति मे कोई व्याघात नही आने पाता, वही दूसरी ओर आध्यात्मिक अर्थों की रसमयी स्रोतस्विनी भी प्रवाहित होती रहती है। प्रेम-कथा के वाच्यार्थ के साथ-साथ साधन-पक्ष भी व्यग्यार्थ मे समाविष्ट रहता है। इस प्रकार के स्थल सिंहलद्वीप के मार्ग का वर्णन और सिहलगढ की दुर्गमता, रत्नसेन का तूफान मे फसना और राक्षस द्वारा बहकाया जाना आदि है। कही-कही

---

१. आखि० ३३।५ २. आखि० ४२।४ ३. अख० ३।७ ४. अख० १६।३
५. आखि० ४४।३ ६. आखि० २७।१ ७. अख० २४।१०-११
8 'The Muslim mystic's fondness for technical terms is notorious.' Mohd. Habib · Early Muslim Mysticism - Kashi Vidyapith Rajat Jayanti Abhinandan Granth - p. 73.

पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से नीरसता भी आ गई है, यथा , प्रथम समागम के अवसर पर सखियों द्वारा पद्मावती के छिपाए जाने पर रत्नसेन का रसायनवादी शब्दावली से युक्त प्रलाप –

का बसाइ जौं गुरु अस बूझा। चकाबूह अभिमनु जो जूझा।
बिख जो देहि अंब्रित देखराई। तेहि रे निछोहिंहि को पतिआई।
मरै सो जान होइ तन सूना। पीर न जानै पीर बिहूना।
पार न पाव जो गंधक पिया। सो हरतार कहौ किमि जिया।
सिद्धि गोटिका जापहँ नाहीं। कौनु धातु पूँछहु तेहि पाहीं।
अब तेहि बाजु राँग भा डोलौं। होइ सार तब बर कै बोलौं।[1]

श्लेष और मुद्रा के चमत्कार से भले ही युक्त हो किन्तु रस मे सहायता नही पहुँचाता है। इस प्रकार के प्रयोगो से पारिभाषिक शब्दो के प्रति कवि की आसक्ति प्रकट होती है।

जायसी-काव्य मे बहुत से पारिभाषिक तथा प्रतीकात्मक दार्शनिक शब्द व्यवहृत है। उनमे **चाँद सुरुज**[2] अत्यधिक महत्वपूर्ण है। सिद्ध कवियो मे चन्द्र और सूर्य का प्रतीक बहुत प्रचलित था। काव्य-साधन से सम्बद्ध हठयोग की परम्परा मे ये इडा और पिंगला के प्रतीक थे। सूफी कवियो ने इनको क्रमश नायिका-नायक के रूप मे स्वीकार किया। इडा और पिंगला के लिए दो० सख्या ४४५ मे **साँवरि गोरी, धूप छाँह, रात दिन, गंगा जमुना** तथा अन्यत्र **नीर खीर**[3] आदि शब्द प्रयुक्त हैं। इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाडियों के लिए **तिरबेनी**[4] शब्द भी मिलता है। शरीर के लिए **गढ़,**[5] **घट,**[6] **भाँडा,**[7] **मंदिर,**[8] **सराय,**[9] **पींजर,**[10] **नगरी,**[11] **कोल्हू**[12] तथा **बुंद**[13] आदि शब्द आए है। सिंहलगढ और शरीर को तो कवि ने एक दूसरे का प्रतिरूप माना है। जायसी ने स्वय ही कहा है–

गढ़ तस बाँक जैसि तोरि काया। परखि देखु तै ओहि की छाया।[14]

सिंहलगढ का वर्णन काय-साधन की ही व्याख्या है। पद्मावत के छन्द सख्या २१५ मे इस रूपक का विस्तार है, तथा अनेक महत्वपूर्ण शब्द व्यवहृत हैं, यथा **गढ़,** (शरीर), **नौ पौरी** (शरीर के नौ इन्द्रिय द्वार), **पाँच कोटवारा** (पच प्राण जो इन नव द्वारो की रक्षा करते हैं), **दसवें दुआर** (ब्रह्मरन्ध्र, जहाँ कुंडलिनी का पहुँचना कठिन है), **बाट सुठि बाँकि** (मेरुदंड के पॉच चक्रो से आगे ब्रह्माण्ड मे प्रवेश करने के लिए जो महारन्ध्र है, उसमे सुषुम्ना तिरछी होकर प्रवेश करती है), **भेदी** (जिसे षड्-चक्र-भेदन और कुडलिनी की सिद्धि

---

१ प० २६४।१-६ २. प० ७३।५ ३. प० ४३।१ ४. अख० २४।३
५. प० २१५।१ ६. प० २०८।६ ७. अख० ५।१ ८. अख० ५।२
९. अख० १३।५ १०. अख० १३।८ ११. अख० १६।१ १२ अख० २८।५
१३ अख० ७।१० १४. प० २१५।१

का रहस्य गुरु से ज्ञात हुआ हो), **चाँटी** (पिपीलिका गति), **सुरंग** (सुषुम्ना), **कुंड** (मूलाधार-चक्र), **चोर** (अधम साधक), **जुआरी** (मध्यम साधक), **मरजिया** (उत्तम साधक) तथा **सीप** (सहस्रारदल कमल मे मणिपद्म)। **सिंघलदीप**[1] सिद्धि-स्थान के प्रतीक-रूप मे प्रयुक्त है। एक स्थल पर नौ इन्द्रिय द्वारो को **नव सेंध**[2] कहा गया है।

जायसी-काव्य मे **जोग**[3] (सं० **योग**) मे सम्बद्ध पारिभाषिक शब्दावली भी मिलती है, यथा– **पवनबंध**[4], **समाधि**[5], **पिंगला**[6], **सुखमन**[7], **नारी**[8], **सुन्नि**[9] (सं० **शून्य**), **तारी**[10] (सं० **त्राटक**), **परसबद**[11], **अनहद**[12], **नाद**[13], **उलटि दिस्टि**[14] आदि। प्रसगवश उल्लेखनीय है कि कवि ने योग के उपकरणो तथा योगियो की वेश-भूषा की चर्चा छन्द सख्या १२६ मे कर दी है। अन्य स्थलों पर आत्मा के लिए **राजा**[15] तथा **दुलहिन**[16], प्राण के लिए **हंस**[17] और **परेवा**[18], ससार के लिए **हाट**[19], **दरपन**[20], **रूख**[21], गुरु के लिए **भृंगि**[22], शिष्य के लिए **फनिग**[23], शरीर स्थित सात चक्रों के लिए **सात खँड**[24], आठवे चक्र के लिए **कबिलास**[25], सुरति के लिए **सहि**[26] (स० **सखी**), दिव्य अनुभूति के लिए **पेई**[27] (सं० **पेटिका**), मन के लिए **दीपक**,[28] **ऊख**,[29] **चोर**,[30] उष्णीष कमल मे महासुख के स्थान के लिए **सुखबासी**,[31] ज्ञान के लिए **पौ**[32] (सं० **प्रभा**), हृदय के लिए **कोठा**,[33] कामादि विकारो के लिए **कटक**,[34] **ठग**,[35] **बटपार**,[36] **चोर**[37] तथा सहस्रार चक्र के लिए **माँग**[38] आदि शब्दो का व्यवहार मिलता है। छन्द सख्या २६३–२६४ मे रसायनवादियो की शब्दावली प्रयुक्त है। इस सम्बन्ध मे वर्णित धातुओ की चर्चा पिछले पृष्ठो मे की जा चुकी है। इन पारिभाषिक शब्दो का उल्लेख कवि के शब्द-मोह का परिचायक है।

सूफी-दर्शन से सम्बद्ध प्रमुख प्रयुक्त शब्द इस प्रकार है–**पेम**,[39] **चारि बसेरे**,[40] **तरीकत**[41] (अ० **तरीकत**), **हकीकत**[42] (अ० **हकीकत**), **मारफत**[43] (अ० **मारिफत**), **सरीअत**[44] (अ० **शरीअत**), **गुरु**[45], **मुरसिद**[46] (अ० **मुर्शिद**), **पीर**[47] (फा० **पीर**), **मुरीद**,[48] **दरगाह**[49]

---

१. प० २१५।६ २. प० १२४।७ ३. प० ३१३।७ ४. प० १७३।६
५ प० २३५।३ ६. प० २३५।३ ७. प० २३५।३ ८. प० २३५।३
९. प० २३५।३ १०. प० २३५।३ ११. प० २५९।६ १२. अख० ११।९
१३. अख० ११।२ १४ प० २१६।१ १५. प० ४४५।१ १६. म०बा० ८।२
१७. प० ३४२।९ १८. अख० १३।८ १९ प० ३७।७ २०. अख० १४।१०
२१. अख० ११।१० २२. प० १८२।४ २३. प० १८२।४ २४. प० २९१।१
२५. प० ३९१।१ २६. प० ३१३।४ २७ प० २१४।६ २८ अख० १३।७
२९ अख० २२।८ ३०. अख० २१।११ ३१ प० २९१।५ ३२. प० ३१३।३
३३ प० ३१३।७ ३४. अख० ३३।४ ३५. अख० ९।१० ३६. अख० २५।९
३७. प० १२४।६ ३८. प० १००।८ ३९. प० ९६।९ ४०. प० ४१।९
४१. अख० २६।२ ४२. अख० २६।५ ४३. अख० २६।८ ४४ अख० २६।८
४५. अख० २६।८ ४६ अख० २६।१० ४७. अख० १०।५ ४८ अख० ९।५
४९. अख० ३३।४

(फा० दरगाह), जमाल[१] (अ० जमाल) तथा जलाल[२] (अ० जलाल) आदि। इनके अतिरिक्त दर्शन सम्बन्धी कुछ अन्य शब्द भी महत्वपूर्ण हैं, जो ईश्वर, सृष्टि, जीव, प्रेम, धर्म, साधना-पद्धति आदि के विवेचन मे जायसी-काव्य के अन्तर्गत यत्र-तत्र बिखरे हुए मिलते हैं, यथा — अलख,[३] पूर पुरान,[४] ठाकुर,[५] अंस,[६] बिधिना,[७] साइं,[८] अगम,[९] अगोचर,[१०] अकथ,[११] करता,[१२] सिरजनहारा,[१३] हरता,[१४] धरता,[१५] करतार,[१६] दंउ,[१७] खेलार,[१८] निरमल,[१९] अल्ला[२०] (अल्लाह), मीर,[२१] धनपति,[२२] बडराजा,[२३] अस्थिर[२४] (स्थिर), अरूप,[२५] अबरन,[२६] परगट गुपुत[२७] सरब बियापी[२८], गुसांई,[२९] दई,[३०] विधि,[३१] विधाता,[३२] ईसर,[३३] उतपति,[३४] सिस्टि,[३५] आसु,[३६] आतमा[३७], जग[३८], माया,[३९] संसार,[४०] मन,[४१] ज्ञान,[४२] परमहंस,[४३] सोऽहं,[४४] काया,[४५] पिंड,[४६] जीव,[४७] सत,[४८] धरम,[४९] दीन,[५०] पंथ,[५१] परलै,[५२] अवना-गवना,[५३] आउकारा,[५४] नमाज[५५] (अ० नमाज) तथा हौं[५६] (सं० अहं) आदि। दार्शनिक शब्दावली की चर्चा समाप्त करने के पूर्व एक अन्य तथ्य का उल्लेख कर देना भी आवश्यक है। यह सुविदित है कि सूफी कवियो ने भारत मे हिन्दू जनता के गीतो तथा कथानको मे एक सहज आकर्षण पाया और अपने सिद्धान्तो का प्रचार करने के लिए उन्होने उन गीतो तथा कथानको को अपनाया। कुछ कट्टरपथी मुसलमानो को सूफियो का यह हिन्दूपन अप्रिय लगा और उन्होने इसका विरोध किया, फलत सूफियो ने अपनी सहज उदारता के कारण हिन्दी गीतो मे प्रयुक्त तथा लौकिक अर्थ से सम्बद्ध सामान्य शब्दो का भी आध्यात्मिक अर्थ बताना आरम्भ कर दिया।[५७] मुहसिन

---

१. अख० ७।३   २. अख० ७।३   ३. अख० २।१   ४. अख० २।२
५. अख० ३।१   ६. अख० ४।३   ७. अख० २५।२   ८. अख० २५।१०
९. अख० ३५।१   १०. अख० ३५।१   ११. अख० ३५।१   १२. अख० ४।७
१३. अख० ४।७   १४ अख० ४।७   १५. अख० ४।७   १६. अख० ७।१
१७ अख० ७।३   १८. अख० ८।१   १९. अख० ११।३   २०. अख० ११।३
२१. आखि० १०।८   २२. प० ५।१   २३. प० ६।१   २४. प० ६।८
२५. प० ७।१   २६. प० ७।१   २७. प० ७।२   २८. प० ७।२
२९. प० ८।२   ३०. प० ११।६   ३१. प० १६।७   ३२. प० ६६।६
३३. प० २१४।२   ३४. अख० ४।१   ३५. आखि० ६।३   ३६. आखि० १०।८
३७. आखि० २।२   ३८. अख० ११।१   ३९. अख० ११।१   ४०. अख० ११।२
४१. अख० ११।८   ४२. अख० १२।४   ४३. अख० १३।४   ४४ अख० १३।४
४५. अख० १६।१   ४६ अख० ३०।६   ४७. अख० ३०।६   ४८. प० ६०५।५
४९. प० ६०५।५   ५०. प० २०।३   ५१. प० २०।५   ५२ आखि० १४।१
५३. अख० २०।६   ५४. अख० ३२।४   ५५. अख० २४।१   ५६ अख० १६।१०

५७ श्रीकृष्ण तथा राधा की प्रेम कथाएं सूफियों को भी अलौकिक रहस्य से परिपूर्ण ज्ञात होती थीं। इन कविताओं का 'सभा' में गाया जाना आलिमो को तो अच्छा लगता ही न होगा, कदाचित् कुछ सूफी भी इन हिन्दी गानो की कटु आलोचना करते होंगे, अत इन कविताओं का आध्यात्मिक रहस्य बताना भी परम आवश्यक सा हो गया।'

सैयद अतहर अब्बास रिज़वी : हक़ायक़े हिन्दी : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, भूमिका, पृ० २२।

फैज़ काशानी[1] तथा मीर अब्दुल वाहिद विलग्रामी[2] ने इसी प्रकार के शब्दो के आध्यात्मिक सकेतो पर प्रकाश डाला है। इन अर्थो के अनुसार जायसी-काव्य मे प्रयुक्त बहुत से लौकिक परम्परा के शब्द भी विशिष्ट आध्यात्मिक सकेतो के प्रतीक माने जाकर दार्शनिक शब्दावली के अन्तर्गत स्थान पा सकते है।

अन्य प्रचलित विश्वासो के द्योतक शब्द : जायसी ने अपने काव्य मे अनेक **स्थलो** पर लोक-विश्वास तथा ज्योतिषसम्बन्धी विचार व्यक्त किए है। इन्हे तीन प्रमुख वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है। अ— शकुन-अपशकुन सम्बन्धी विश्वास, आ— यात्रासम्बन्धी मुहूर्त-विचार तथा लोक-विश्वास तथा इ— अन्य लोक-विश्वास।

(अ) **शकुन-अपशकुन सम्बन्धी विश्वास** भारतीय जीवन मे शकुन तथा अपशकुनो का परम्परागत महत्व रहा है। 'पद्मावत' के अतर्गत 'नखशिख वर्णन खड', 'जोगी-खड' तथा 'रत्नसेन-विदाई-खंड' मे इस प्रकार के विश्वासो का वर्णन किया गया है। 'नखशिख-खड' मे हीरामन रत्नसेन से पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहता है

पन्नग पंकज मुख गहे खंजन तहाँ बईठ।
छात सिंघासन राज धन ता कहं होइ जो डीठ।[3]

जो व्यक्ति नाग के मुह मे रक्खे हुए कमल पर बैठे हुए खजन के दर्शन करता है, उसे राज्य प्राप्त होता है। यह राजयोग का शकुन है। 'जोगी-खड' मे रत्नसेन के सिंहलगढ-प्रस्थान के अवसर पर भी जायसी ने इस प्रकार के कतिपय लोक-प्रचलित शकुनो का उल्लेख किया है, यथा

आगें सगुन सगुनिआं ताका। दहिउ मच्छ रूपे कर टाका।
भरें कलस तरुनी चलि आई। दहिउ लेहु ग्वालिनि गोहराई।
मालिनि आउ मौर लै गांथें। खंजन बैठ नाग के माथें।
दहिनें मिरिग आइ गौ धाई। प्रतीहार बोला खर बाईं।
बिर्ख संवरिआ दाहिन बोला। बाएँ दिसि गादुर नहिं डोला।
बाए अकासी धोबिन आई। लोवा दरसन आइ देखाई।
बाएं कुरारी दाहिन कूचा। पहुंचै भुगुति जैस मन रूचा।[4]

और अन्त मे उनके प्रभाव का कथन करते हुए लोक-प्रचलित मान्यताओ का समर्थन भी कर दिया है

जाकहं होंहि सगुन अस औ गवनै जेहि आस।
अस्टौ महासिद्धि तेहिं जस कबि कहा बिआस।[5]

---

१. प० रामपूजन तिवारी : सूफीमत, साधना और साहित्य, पृ० ५२२-२३।
२. हकायके हिन्दी : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१४।
३. प० ११५।८-९ ४ प० १३५।१-७ ५. प० १३५।८-९

नेत्र तथा भुजाओ का फडकना भी शकुन-अपशकुन प्रसग के अतर्गत आता है। जायसी ने 'चित्तौर-आगमन-खड 'मे नागमती के नेत्र तथा भुजाओ के फड़कने का उल्लेख करते हुए रत्नसेन के आगमन तथा नागमती के मिलन का जो पूर्वाभास दिया है,[१] उसे भी **'सगुन'**[२] (**सं० शकुन**) कहा जा सकता है।

आ—यात्रा सम्बन्धी मुहूर्त-विचार तथा लोक-विश्वास : यात्रा के सम्बन्ध मे ज्योतिष के अन्तर्गत दिक्शूल, चन्द्रवासचक्र, योगिनी, काल तथा राहु (यदि योगिनी के साथ हो) का विचार किया जाता है। जायसी ने इनमे से चार का उल्लेख किया है। दिशाशूल का विवरण दो० ३८२ तथा योगिनी-चक्र का वर्णन दो० ३८३ मे है। **'काल'**[३] तथा **'चन्द्रमा'**[४] का उल्लेख नाममात्र को किया गया है। **'दिसासूर'**[५] के सम्बन्ध मे जायसी का कथन है

आदित सूक पछिउँ दिसि राहू। बिहफै दखिन लंक दिसि डाहू।
सोम सनीचर पुरुब न चालू। मंगर बुद्ध उतर दिसि कालू।[६]

किन्तु यदि दिशाशूल रहते हुए भी यात्रा करना आवश्यक है, तो उसके दोष के निवारण की विधि का भी उल्लेख हमे प्राप्त होता है

मंगर चलत मेलु मुख धना। चलिअ सोम देखिअ दरपना।
सूकहि चलत मेलु मुख राई। बिहफै दखिन चलत गुर खाई।
आदित हीं तबोर मुख मंडिअ। बावभिरंग सनीचर खंडिअ।
बुद्धहि दधि कै चलिअ भोजना। ओखद यहै और नहीं खोजना।[७]

इसी प्रकार **चक्रजोगिनी**[८] (**स० योगिनीचक्र**) का भी विवरण दिया गया है जो इस प्रकार है :

बारह ओनइस चारि सताइस। जोगिनि पच्छिउं दिसा गनाइस।
नव सोरह चौबिस औ एका। पुरुब दखिन गौनै कै टेका।
तीन एगारह छबिस अठारह। जोगिनि दक्खिन दिसा बिचारह।
दुइ पचीस सत्रह औ दसा। दक्खिन पछिउं कोन बिच बसा।
तेइस तीस आठ पन्द्रहा। जोगिनि होइ पुरब सामुंहा।
बीस अठारह तेरह पाचा। उत्तर पछिउं कोन तेहि बांचा।
चौदह बाइस ओनतिस सात। जोगिनि उतर दिसा कहं जात।

एकइस औ छ चौदह जोगिनि उत्तर पुरुब के कोन।
यह गनि चक्र जोगिनी बांचहु जौ चाहौ सिधि होन।।[९]

---

१. प० ४३४।६ २. प० १३५।८ ३ प० ३८१।६ ४. प० ३८२।६
५ प० ३८१।६ ६. प० ३८२।१-२ ७. प० ३८२।४-७ ८ प० ३८२।४
९, प० ३८३।१-९

इ– कुछ अन्य लोक-विश्वास : जायसी ने कुछ अन्य मध्यकालीन विश्वासो का भी उल्लेख किया है, यथा किसी भी कार्य को आरम्भ करने के पूर्व उसकी सफलता के हेतु **'सिद्ध-गनेस'**[१] (सिद्ध गणेश) मनाना आवश्यक समझा जाता था।[२] मरण काल मे यदि व्यक्ति को **'गांग गति'**[३] (स० गंगा गति) प्राप्त हो तो उसके पापो का क्षय हो जाता है, इस विश्वास के कारण अधिकाशन मृतको की **'भागीरथी'**[४] होती थी। सिद्धि-प्राप्त योगियो के पास **'उडत-छाला'**[५] होती थी, जिस पर बैठ कर वे आकाश मार्ग से सभी अभीप्सित स्थानो को जा सकते थे।[६] लोक मे **जाखिनी पूजा**[७] **(यक्ष-यक्षिणी पूजा)** का भी प्रचार था। यक्षिणी-सिद्धि से चमत्कार की शक्ति सम्भव मानी जाती थी।[८] गावो मे यह परम्परा अब भी प्रचलित है।[९] मनुष्यो तथा अन्य प्राणियो को वश मे करने के लिए[१०] **पाढ़ित**,[११] **जोहन मोहन**[१२] तथा **टोना**[१३] या **मंत्र**[१४] आदि का प्रयोग होता था। कामरूप की लोना चमारिन इन कार्यो मे अत्यन्त पटु मानी जाती थी[१५], तथा मध्यकाल मे वह अपने जादू-टोने के लिए बहुत प्रसिद्ध हो गई थी।[१६]

स्वप्न-विचार भारतीय समाज प्राचीन काल से स्वप्न और उसके शुभाशुभ फल मे विश्वास करता आया है। पद्मावत मे भी एक स्थान पर इस प्रकार का उल्लेख आया है। देवपूजा के उपरान्त पद्मावती राजमन्दिर लौटती है और उसी रात्रि को वह एक स्वप्न देखती है जिसमे उसे ऐसा जान पडता है कि पूर्व दिशा मे चन्द्रमा उदय हुआ और पश्चिम मे सूर्य। फिर सूर्य चल कर चन्द्रमा के पास आया और दोनो का मेल हुआ। ऐसा प्रतीत हुआ मानों रात और दिन दोनो मिल कर एक हो गए। राम ने आकर रावण का गढ घेर लिया। अर्जुन के बाण ने रोहू मछली को बेध दिया। हनूमान ने लका लूट ली तथा वाटिका का विध्वस कर दिया[१७]। पद्मावती जब अपनी सखी को यह स्वप्न सुनाकर उसका फल

---

१ प० ३७६।९

२. सिद्धगनेस मनावहु बिधि पुरवै सब काज। प० ३७६।९ ३ प० १२७।६

४. भागीरथी होइ करु फेरा। प० ३६८।७ ५. प० २३६।७

६. सब उड़त छाला लिखि दीन्हा। बेगि आउ चाहौं सिध कीन्हा। प० २३६।७

७. प० ४४७।४ ८. राघौ पूजा जाखिनी दुइज देखावा साझ। प० ४४७।८

९ बीरब्रह्म शीर्षक लेख, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, जनपद-वर्ष ११, अंक ३, पृ० ६४-७३।

१० पाढित औसि देवतन्ह लागा। मानुस का पाढ़ित हुति भागा। प० ५८५।६

११. प० ५८५।३ १२. प० ५८७।१ १३. प० ३१४।४ १४. प० ५७५।७

१५. क्रुक, पॉपुलर रेलिजन, पृ० ३७६ तथा शिरेफ –पदमावती, पृ० २२२।

१६. जस कांवरू चमारी लोना। को न छरा पाढित औ टोना। प० ५८५।२

१७. जनु ससि उदौ पुरुब दिसि कीन्हा। औ रबि उदौ पछिवँ दिसि लीन्हा।
पुनि चलि सुरुज चांद पहँ आवा। चांद सुरुज दुहुं भएउ मेरावा।
दिन औ राति जानु भइ एका। राम आइ रावन गढ़ छेंका।
तस किछु कहा न जाइ निखेधा। अरजुन बान राहु गा बेधा।

पूछती है तो सखी स्वप्न की व्याख्या करते हुए उसे शुभ फल बताती है[1]। सखी का यह स्वप्न फल-विचार कुछ दिनो के पश्चात् सत्य सिद्ध होता हुआ दिखाकर जायसी ने स्वप्न मे सामान्य जन के विश्वास को उचित ठहराया है।

कला-कौशल सम्बन्धी शब्दावली : ललित कलाएँ पाँच मानी जाती हैं—सगीत, वास्तु, मूर्ति, चित्र तथा साहित्य। जायसी-काव्य में मुख्यतया सगीत तथा वास्तु से सम्बद्ध शब्दावली मिलती है। पहले सगीतसम्बन्धी शब्दावली को लें। जायसी ने अनेक स्थलो पर विविध वाद्य-यत्रो तथा सगीत के पारिभाषिक शब्दो का उल्लेख किया है, यथा—छन्द सख्या १८९ मे **ढोल, दुंद (सं० दुंदुभि), भेरी (स० भेर.), माँदर (सं० मर्दल), तूर (स० तूर्य), झाँझ, संख, सींग (सं० शृंगी), डफ (अ० दफ), बंसकारि, महुवर (सं० मधुकर)** तथा छन्द सख्या ५२७ में **पखाउझ (सं० पक्षातोद्य), आउझ (सं० आतोद्य), सुरमंडल (सं० स्वरमंडल), रबाब (फा० रबाब), बीन, पिनाकि, कुमाइच (फा० कमरचा), अँबिरती, चंग (फा० चंग), उपंग (सं० उपांग), नागसुर (स० नागसुरम्), बंसि (स० वंशी), हुरुक (सं० हुडुक्क), मँजीरा (सं० मंजीर), तंत (सं० तत्र), वितंत (सं० वितंत्र), सिखर (सं० शिखर)** तथा **घनतारा** आदि वाद्य-यत्र वर्णित हैं। स्फुट प्रसंगो मे **किंगरी**[2] **(सं० किन्नरी), गजर**[3]**, घंट**[4]**, घन**[5]**, घरियार**[6]**, डाँक**[7]**, ढोलक**[8] **(फा० दुहुल), डँबरू**[9]**, तबल**[10]**, दवाँवाँ**[11] **(फ़ा० दमाम), निसान**[12] **(फा० निशान), पँचतूरा**[13] **(सं० पंचतूर्य), मृदंग**[14]**, मुर**[15] **(सं० मुरज), मँदिर**[16] तथा **हाड़ी**[17] उल्लिखित हैं। वाद्य-यंत्रो के साधारण अर्थ मे **बाजन**[18] **(सं० वाद्य)** और **जत्र**[19] **(सं० यंत्र)** शब्द प्रयुक्त है। कवि ने गायन के अन्तर्गत **राग भैरौं, मालकौस, हिंडोल, मेघ मलार, सिरी राग** तथा **दीपक** आदि **छबउ राग** की चर्चा छन्द सख्या ५२८ मे की है। यत्र-तत्र **छत्तीस रागिनी**[20] तथा **छतीसों रागा**[21] का निर्देश भी हुआ है। सामान्य लोक-गीतों मे **मनोरा झूमक**[22]**, पंचमि**[23]**, चाँचरि**[24]**, साहाग,**[25] **सोहिला**[26] तथा **धमारी**[27] का वर्णन मिलता है।

---

१ . . .. । **कालिह जो गइहु देव के बारू।**
पूजि मनाइहु बहुत बिनाती। परसन आइ भएउ तुम्ह राती।
सूरुज पुरुख चाँद तुम्ह रानी। अस बर देव मिलावा आनी।
पछिवँ खंड कर राजा कोई। सो आवै बर तुम्ह कहँ होई।
पुनि कछु जूझि लागि तुम्ह रामा। रावन सो होइहि संग्रामा।
चाँद सुरुज सिउँ होइ बिआहू। बारि बिधाँसब बेधब राहू।
सुख सोहाग है तुम्ह कहँ पान फूल रस भोग।
आजु कालिह भा चाहिअ अस सपने क संजोग। प०१९८।१-६, ८-९

२. प० १२६।१ ३ प० ४२।७ ४. प० १६४।७ ५ प० १६४।७
६ प० ४२।१ ७. प० १७।४ ८. प० ६३९।७ ९. प० २०७।५
१० प० २३।२ ११. प० ४२७।१ १२. प० ४७।३ १३ प० ६३९।४
१४. प० ६३९।७ १५. प० ६३९।७ १६. प० १८९।२ १७ प० ५०३।५
१८. प० १८४।१ १९. प० ५२७।३ २० प० ५२८।५ २१. प० २९९।७
२२. प० १८६।३ २३. प० १८९।१ २४ प० १८९।७ २५. प० २७५।४
२६. प० २७७।७ २७. प० ३५३।१

वास्तुकला सम्बन्धी शब्दावली सिंहलगढ तथा चित्तौडगढ के वर्णनों मे स्थापत्य-सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण शब्द प्राप्त होते है। इनसे मध्यकालीन स्थापत्य कला पर सुन्दर प्रकाश पडता है। जायसी के वर्णनानुसार दुर्ग के चारों ओर बाँकी **खोह**[1] होती थी, जिसे पार कर सकना बडा कठिन था। एक **कोट**[2] **(सं० कोट्ट)** भी होता था, जिसमे अनेक **पँवरी**[3] **(सं० प्रतोली)** होती थी तथा उसके सिरों पर **कौसीसा**[4] **(सं० कपिशीर्षक)** या **कँगूरे**[5] **(फा० कुंगरा)** बने होते थे। इन पँवरियो पर 'गढि काढे' हुए सिंह दिखाई पडते थे[6]। दुर्ग मे अनेक **खण्ड**[7] होते थे, जिन तक पहुँचने के लिए **गरेरी सीढी**[8] बनी हुई थी। राजा के निजी निवास के लिए **कबिलास**[9] **(सं० कैलाश)** नामक भवन होता था। **धौराहर**[10] **(सं० धवलगृह)** के ऊपर के खड मे यह भाग होता था,[11] जहाँ राजा-रानी रहते और सोते थे। यहाँ का शयनकक्ष **चित्तरसारी**[12] **(सं० चित्रशालिका)** या **सुखवासी**[13] भी कहलाता था। इसकी छत, **गच (फा० गच)** तथा दीवारो पर 'सोने'[14] का काम बना रहता था।[15] 'धौराहर', राजमंदिर के भीतर उस भाग को कहा जाता था, जहाँ राजा-रानी निवास करते थे। अविवाहित वयस्का राजकुमारियो के लिए भी ऐसे ही **सात खंड**[16] वाले धौराहर मे अलग निवास की व्यवस्था की जाती थी[17]। यह धौराहर दुर्ग के मध्य मे होते थे, जहां तक पहुँचने के लिए अनेक **पवरि (सं० प्रतोली)** पार करनी पडती थी। प्रत्येक 'पवरि' मे भी कई खड होते थे।[18] राजमदिर के सम्बन्ध मे

---

१ प० ४०।३ २. प० ४०।६ ३. प० ३६।२ ४ प० ४०।४

५ प० ५०४।५

६. पंवरिहि पंवरि सिंघ गढ़ि काढ़े। डरपहिं राय देखि तेन्ह ठाढ़े। प० ४१।४

७. प० ४०।५

८. प० ३१।४ ६. प०४८।१ १० प० ४८।२

११. सात खंड ऊपर कबिलासू। तहं सोवनारि सेज सुखबासू। प० २६१।१

१२ प० २८२।२ १३. प० २२६।३

१४. साजा राजमंदिर कबिलासू। सोने कर सब पुहुमि अकासू। प० ४८।१

१५ चित्रावली में भी सोने के पानी से फर्श ढालने का उल्लेख है –
खड ऊपर खंड होहिं बिनानी। कै गच ढारहि कचन पानी। चि० १०५।७

१६. सुने सात बैकुंठ जस तस साजे खंड सात। प० ४८।८

१७. सात खंड धौराहर तासू। पदुमिनि कहं सो दीन्ह नेवासू। प० ५४।२
इस्लाम के आगमन से हिन्दू आभिजात्य वर्ग की धारणाओं में अधिकाधिक रूढिवादिता आ गई थी। हरम-पद्धति तथा अन्य संकुचित मनोभावो का प्रभाव इसी वर्ग पर विशेष रूप से पड़ा। अन्तःपुर में अनेक रानियों तथा बालिकाओं का धौराहर में ही निवास तथा अध्ययन इसी प्रभाव के द्योतक हैं।

१८ पंवरि सात सातौ खंड बाँकी। प० ५५२।५

जायसी का वर्णन[1] मध्यकालीन स्थापत्य के एक महत्वपूर्ण तथ्य का परिचय देता है। चारो ओर परकोट या **पगार**[2] (**सं० प्राकार**), उसके भीतर गढ, गढ के भीतर राजमदिर तथा राजमदिर मे रनिवास (जिसे 'धौराहर' कहा जाता था)। गढ के इतने अन्तरग भाग मे होने के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति के लिए धौराहर तक पहुँचना सम्भव न था। दुर्ग मे जाने के लिए गुप्त **सुरंग**[3] भी होती थी, जिसका प्रवेश-द्वार पानी से भरे एक गहरे 'कुण्ड' मे छिपा रहता था।[4] जायसी ने इस प्रवेश-द्वार को **सरगदुवारी**[5] कहा है। धौराहर मे 'कबिलासू' ही वह स्वर्ग था, जहाँ इस द्वार से प्रवेश कर सुरग मार्ग से चढते हुए पहुँचा जा सकता था।[6]

भवनो के निर्माण के अतिरिक्त उनकी सज्जा भी वास्तुकला का एक अंग रही है। जायसी की भाषा इस क्षेत्र मे भी उपयोगी सिद्ध होती है। उसमे कुछ ऐसे पारिभाषिक शब्द, क्रिया-पद तथा वाक्याश दृष्टिगत होते है, जो हमारे सम्मुख तत्कालीन स्थापत्य-कला की उत्कृष्टता का द्वार ही खोल देते है। जायसी के वर्णनो के अनुसार उस युग मे द्वारो पर दोनो ओर दो सिंह बनाने की प्रथा थी।[7] उन्हे मरोडकर पूँछ फटकारते तथा जीभे निकाले हुए बनाया जाता था।[8] खम्भो के शीर्ष भाग के पास हाथी की सूड की तरह उठे हुए हल्के घुमावदार तोरण लगाए जाते थे। उनके साथ दोनो खम्भे ऐसे लगते थे मानो बीच मे झूला (हिंडोरा) लटका हो।[9] खम्भो पर उभरी हुई स्त्री मूर्तियाँ (इन्हे शाल-भजिका या स्तम्भ-प्रतिमा भी कहते हैं) भी बनाई जाती थी।[10] महलो मे भाँति-भाँति के नग पच्चीकारी (**उबेह**)[11] करके लगाए जाते थे तथा अनेक प्रकार की नक्काशियाँ (**कटाव**)[12] बनाई जाती थी। महल का एक भाग ऐसा भी होता था, जहाँ की सारी सजावट फुलवाडी के समान थी और

---

१. सिंहलगढ़ को देखकर रत्नसेन और तोते के प्रश्नोत्तर (दो० १५९–१६०) से मिलता हुआ प्रकरण रामचरितमानस (लंका कांड) (१३।१-७) में भी है, जहाँ लंका की ओर देख कर राम ने विभीषण से प्रश्न किया था। चित्रावली, दो० २३२।४ में भी रूपनगर में चित्रावली का धौराहर देख कर ऐसा ही प्रश्नोत्तर हुआ है।

२. प० ४८३।७ ३. प० २१५।६

४. गढ़ तर सुरंग कुंड अवगाहा। तेहि महं पंथ कहौं तोहि पाहाँ। प० २१५।६

५, प० २१५।६

६. ढूंढ़ि लेहि ओहि सरग दुवारी औ चढ़ु सिंघलदीप। प० २१५।६

७. सारदूर दुहु दिसि गढ़ि काढ़े। गलगाजहिं जानहुं रिसि बाढ़े। प० ५५५।६

८. बहु बनान वै नाहर गढ़े। जनु गाजहिं चाहहिं सिर चढ़े।
टारहिं पूंछ पसारहिं जीहा। कुंजर डरहिं कि गुंजरि लीहा। प० ४१।५-६

९. कनक खभ जनु रचेउ हिंडोरा। प० २८९।६

१० पुतरीं गढ़ि गढि खंभन्ह काढ़ीं। प० २९०।२

११ जांवत सबै उरेह उरेहे। भांति भांति नग लाग उबेहे। प० ४८।४

१२ भा कटाव सब अनबन भांती। चित्र होत गा पाँतिहि पाँती। प० ४८।५

सब फूल, पत्ती, फल तथा वृक्ष आदि सोने के ही बने होते थे।[1] सामान्यतया धौराहर तथा मडप आदि को सोने से सजाने की प्रथा थी।[2] जायसी-काव्य मे स्फुट प्रसगो मे स्थापत्य का निर्देश करने वाले कुछ अन्य शब्द भी मिलते है, यथा · **बावरी**[3] (**बाप+डी या ली प्रत्यय**), **बैठक**[4], **पावरी**[5], **मंडप**[6], **चौपार**[7] (**स० चतुष्पाल**), **फेरू**[8], **पालि**[9], **ओबरी**[10] (**सं० अपवरक**), **अठखंभा**[11] (**स० अष्टस्तम्भ**), **चौबारा**[12] (**सं० चतुर्द्वारक**), **झरोखा**[13] (**सं० जालगवाक्ष**), **चौखंडी**[14], **बुरुज**[15] (अ० **बुर्ज**), **पालक पीढ़ी**[16] (**सं० पर्यंक+पीठिका**), **खोरी**[17], **माढ़ी**[18] (**सं० माडि**), **मेरू**[19], **मढ**[20] तथा **बरोठा**[21] (**सं० द्वारकोष्ठ**) आदि। कवि ने स्थापत्य के लिए उपयोगी **ईंटि**[22] (**सं० इष्टका**), **गिलावा**[23] (**फा० गिलावः**) तथा **चूना**[24] (**सं० चूर्ण**) आदि पदार्थो का भी यत्र-तत्र उल्लेख कर दिया है। निर्माण के समय चूने, गारे तथा ईंट आदि के ढोए जाने के प्रसग मे '**ढोई**'[25] (**हिं० ढोना**) शब्द का प्रयोग भी द्रष्टव्य है। इस चर्चा को समाप्त करने के पूर्व एक अन्य तथ्य का भी उल्लेख करना आवश्यक है, और वह यह, कि राजमहलो तथा गढो की रचना-विधि के साथ-साथ जायसी ने सामान्य कृषक के निवास-स्थान से सम्बद्ध शब्दो का भी व्यवहार किया है। पद्मावत के दो० सख्या ३५६ मे द्वयर्थक शैली मे ऐसे अनेक शब्द प्रयुक्त है, यथा, **छाजनि** (फूस का छप्पर), **तना** (तनी, डोरी), **तिनु** (फूस), **आगरि** (छप्पर के अगले भाग की बल्ली), **साँठ** (सन का डंठल), **बात** (सरकडे की कमाचियाँ), **जिय** (रस्सी), **मूँज** (मूँज की रस्सी), **बंध** (बधन), **बाक** (आडी लगी हुई छोटी लकडियाँ), **टेक** (बँड़ेर को रोकने के लिए लगाई गई लकडी), **नैन** (छप्पर के छेद), **कोरे** (बिना चिरे हुए बाँस), **ठाट** (छप्पर का ढाँचा), **छान्हि** (छप्पर), **थंभ** तथा **थूनी** (छप्पर को रोकने के लिए लगाई गई लकडी) आदि।

चित्रकला के भी स्फुट सकेत यत्र-तत्र प्राप्त होते है, यथा कनक पखि पैरहिं अति लोने। जानहु **चित्र सँवारे सोने**[26]। जायसी से पहले ही गुजरात की जैन-अपभ्रश शैली मे चित्रो के अंतर्गत सोने के पानी की स्याही[27] के प्रयोग की परम्परा चल पडी थी, जैसा सुवर्णाक्षरी-कल्पसूत्र एव अन्य हस्तलिखित ग्रन्थो से ज्ञात होता है। जायसी ने सभवत उसी ओर

---

१. **चहूँ पास फुलवारी बारी। माँझ सिंघासन धरा सँवारी।**
जनु बसंत सब फूला सोने। हँसहिं फूल बिगसहिं फर लोने। प० ५५६।३-४
२. **सब क धौरहर सोनै साजा। प० ४४।२**
३. प० ३०।१ ४. प० ३०।१ ५. प० ३०।१ ६ प० ३०।३
७. प० ३६।५ ८. प० ४०।६ ६. प० ६०।१ १० प० १३३।६
११ प० ३३०।१ १२ प० ३३७।५ १३ प० ४५१।१ १४. प० ५०४।३
१५. प० ५०४।७ १६. प० ५५३।३ १७. प० ५५४।६ १८ प० ५६२।५
१६. प० १६२।३ २०. प० १७८।६ २१ प० ५८७।२ २२. प० ४८।३
२३ प० ४८।३ २४ प० २८६।४
२५. **राजा केरि लागि रहै ढोई। फूटै जहाँ संवारहिं सोई। प० ५२६।१**
२६ प० ३१।७
२७. **पुनि धनि कनक पानि मसि माँगी। प० २३२।१**

सकेत किया है। महलो की दीवारो पर भी विविध प्रकार के **उरेह (सं० उल्लेख)** अकित किए जाते थे[१]। प्रसगवश **चितेरे**[२] और **चित्र**[३] की भी चर्चा हो गई है।

कला-कौशल सम्बन्धी स्फुट उल्लेखो मे कतिपय अन्य कलात्मक शिल्पो की चर्चा भी अप्रासगिक न होगी, यथा आभूषणो मे अलकरण के लिए अनेक चित्र खोदे जाते थे।[४] सोने का फूल या कली बना कर उसके भीतर माणिक्य और उसके भी अन्दर पन्ना या कोई और नग जडा जाता था।[५] शिलापट्टो को परस्पर जोडने के लिए लोहे की गुल्लिया काम मे लाते थे।[६] लोहे और फौलाद के हथियारो तथा कवचो आदि पर फूल पत्ती आदि खोद कर उसमे सोने का तार भर दिया जाता था, जिससे लोहे पर सोने के फूल आदि बने दिखाई पडते थे।[७] महलों के विशिष्ट कमरो या अन्य स्थानो के आसपास जालीदार गवाक्ष बने होते थे जिनमे बैठ कर रानिया नीचे की सब बाते देख सकती थी। इनमे से एक प्रकार के गवाक्ष मे वृक्ष या झाड की आकृति ढाल कर सम्पूर्ण जाली बनाई जाती थी, इसे **झरोखा (स० जालगवाक्ष)** कहते थे। अप्सराओ की ऐसी मूर्तियाँ भी बनाई जाती थी, जिसमे वे सामने की ओर चलती हुई गर्दन मोड कर पीठ की ओर देखती हुई चित्रित की जाती थी।[८]

काव्य-कला से सम्बद्ध शब्दो के अन्तर्गत **कवि**[९] और **कवित**[१०] का उल्लेख मिलता है। यहाँ यह बता देना सम्भवत अनुचित न होगा कि जायसी ने वेद, पुराण, तथा **ग्रन्थ**[११] आदि की चर्चा करते हुए **रिग जजु साम अथर्वन**[१२], **अमर भारथ पिंगल औ गीता**[१३], **भावसति ब्याकरन सरसुती पिंगल पाठ पुरान,**[१४] **मुगुधावति,**[१५] **मिरिगावति,**[१६] **मधुमालति**[१७], **पेमावति**[१८] आदि का नाम लिया है। यह तो कहना कठिन है कि वे **चतुर वेद**[१९] और **चतुर्दस विद्या**[२०] पढे थे, किन्तु उन्होने उनके सम्बन्ध मे थोडा बहुत सुन अवश्य रखा था, इसमे कोई सन्देह नही।

भौगोलिक शब्दावली जायसी-काव्य मे पर्वत, वन, नदी, समुद्र, कीट, पतग, क्षुद्र जतु, पशु-पक्षी, फल-फूल, वृक्ष, नगर, ग्राम तथा देश से सम्बद्ध शब्दावली मिलती है। यहाँ इस प्रकार के प्रमुख शब्द उदाहरणार्थ प्रस्तुत है, यथा—

---

१. जाँवत सबै उरेह उरेहे। प० ४८।४ २. प० ४६८।६ ३ प० ४६८।६

४. रचे हँथौड़ा रूपइँ ढारी। चित्र कटाउ अनेग संवारी। प० ३७।३

५. कंचन करी रतन नग बना। जहां पदारथ सोह न पना। प० ४४०।६

६. पाहन लोह पोढ़ जग दोऊ। सोउ मिलहिं मन संवरि बिछोऊ। प० ४२८।३

७. बरन बरन पखरे अति लोने। सार संवारि लिखे सब सोने। प० ५१३।४

८. जब फिरि चली देख मैं पाछें। आछरि इद्र केरि जस काछें। प० ४८४।२ तथा
बैरिनि पीठि लीन्ह ओइं पाछें। जनु फिरि चली अपछरा काछें। प० ११५।१

९. प० २०।७ १०. प० ६५२।३ ११. प० ४७९।८ १२ प० १०८।५
१३. प० १०८।७ १४. प० १०८।८ १५. प० २३३।४ १६. प० २३३।५
१७ प० २३३।६ १८. प० २३३।७ १९. प० २७०।८ २०. प० ४४६।९

क–पर्वत, वन, नदी तथा समुद्र : पहार[१] (परबत[२], गिरि[३], पब्बै[४]), मेरु[५] (सं० सुमेरु), खिखिंद[६] (सं० किष्किन्ध), मलैगिरि[७] (सं० मलयगिरि), हिवचल[८] (सं० हिमांचल), धौलागिरि[९] (सं० धवलगिरि), बन[१०], आरन[११], कजरी बन[१२] (सं० कदली वन), डंडकआरन[१३] (सं० दण्डकारण्य), बींझवन[१४] (सं० विंध्यवन), मिरगारन[१५] (सं० मृगारण्य), केदली वन[१६], नदी[१७], दरिया[१८], गाँग[१९] (गंगा[२०], सुरसरि[२१]), जउन[२२] (जमुना[२३], कालिंदी[२४]), सुरसती[२५], समुद्र[२६] (समुंद्र[२७], समुंद[२८], समुद्र,[२९] समुंद,[३०] सायर[३१], उदधि[३२] तथा सागर[३३]) ।

इनसे सम्बद्ध अन्य महत्वपूर्ण शब्द भी यत्र-तत्र मिलते है, यथा–

पाटी[३४] (स० पट्टिका), घाटी[३५] (सं० घट्ट), सिखर[३६], कूरी[३७] (सं० कूट), झरना[३८] (स० क्षरण), सोती[३९], भंवर[४०], खोह[४१] (सं० गोह), लहरि[४२], तरंग[४३], पाट[४४], तीर[४५], टट[४६] (सं० तट), घाट[४७], नारा[४८] (सं० नाल), ताल[४९], तलावरि[५०] (सं० तल्ल), पोखरि[५१] (सं० पुष्कर) तथा दुआरा[५२] (सं० द्वार) आदि ।

---

१. प० २।१ २ प० ६।४ ३. प० ४५।६ ४ प० २४१।४
५ प० २।१ ६. प० २।१ ७. प० २७।३ ८. प० ११७।४
९ प० १४७।४ १० अख० १८।४ ११ प० २।५

१२. प० १३०।७–ऋषिकेश से बदरिकाश्रम तक का वन-प्रदेश महाभारत (वनपर्व १४६। ७५-७९) में कदली वन कहा गया है । यह कहा जाता है कि वहाँ केवल सिद्धों की ही गति होती थी । लोक में इसे ही कजरी वन कहा जाने लगा । कवि ने इसे केदली वन भी कहा है ।

१३. प० १३७।४ १४. प० १३७।४

१५ प० १३९।१– म० म० सुधाकर द्विवेदी के अनुसार मृगारण्य नर्मदा के तट पर एक स्थान-विशेष था जिसे हिरणपाल कहते हैं । यह पहले बीजागढ़ में था और आजकल निमाड़ के अन्तर्गत आता है । यहाँ तीन पर्वतों के आ जाने से नर्मदा के तीन खंड हो गए हैं, जो पुल के तीन खम्भो से जान पड़ते हैं, जिन्हें हरिण सहज ही में कूद जाते हैं ।
पदुमावती : स० जॉर्ज ग्रियर्सन तथा म० म० सुधाकर द्विवेदी, पृ० २७९ ।

१६. प० ४९३।२ १७. प० २।२ १८. आखि० ९।३ १९. प० १५।९
२० प० १४३।३ २१. प० ३२१।६ २२ प० १५।९ २३. प० १००।६
२४. प० २१६।२ २५ प० ४७१।४ २६ आखि० ६।३ २७ प० २।१
२८. प० १०।२ २९ प० १८।४ ३०. प० १०४।२ ३१. प० १५०।१
३२. प० १७०।८ ३३. प० २२५।५ ३४. प० १३६।४ ३५. प० १३६।४
३६. प० २१।६ ३७. प० ६२८।५ ३८. प० २।२ ३९. प० १००।६
४०. प० १०३।९ ४१. प० १३६।५ ४२. प० १४१।५ ४३. प० २५१।५
४४. प० १५६।६ ४५ प० १०३।९ ४६. प० ३९९।९ ४७. प० ४१३।९
४८. प० १३६।५ ४९. प० ३३।१ ५०. प० ३३।१ ५१. प० ४२५।५
५२. प० १३८।७–कवि ने इस शब्द का प्रयोग 'घाटी का मार्ग' या 'दर्रा' के लिए किया है ।

इसी प्रसग मे जायसी के दो उल्लेख विशषरूप से महत्वपूर्ण हैं। प्रथम के अन्तर्गत नदियो की संख्या का उल्लेख है–**नदी अठारह गंडा मिलीं समुंद कहँ जाइ**[1]। प० रामचन्द्र शुक्ल ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि अवध मे जनसाधारण के बीच यह प्रसिद्ध है कि समुद्र मे अठारह गडे (अर्थात् ७२) नदिया मिलती है[2]। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का अनुमान है कि जायसी ने मध्यकालीन तीर्थ ग्रन्थो की अनुश्रुति से भारत की मुख्य नदियो की यह सख्या प्राप्त की होगी[3]। यहाँ यह सकेत करना सम्भवत अनुचित न होगा कि प्राचीन ग्रन्थो मे भी इस प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते है। महाभारत[4] के उल्लेखानुसार अकेली गगा ही पाँच सौ नदियों को लेकर समुद्र मे मिलती है। पचतत्र मे यह सख्या नौ सौ तक है।[5]

दूसरा उल्लेख **'सात समुंद्र'**[6] का है। जायसी ने 'खार', 'खीर', 'दधि', 'उदधि', 'सुरा' और 'किलकिला' इन छह समुद्रो का नाम लिया है[7]। सातवे समुद्र से कवि का तात्पर्य सिंहलद्वीप मे स्थित मानसरोदक से है **सतएं समुंद मानसर आए**[8]। इस कथन को भी भौगोलिक न मानना ही उचित होगा, क्योकि विश्व के भूगोल मे इनका अस्तित्व नही है।

ख— कीट-पतंग तथा क्षुद्र जन्तु : भंवरा[9] (सं० भ्रमर), पतंग[10], फनिग[11], पनिग[12] (सं० पतंग), भुअंग[13], सांप[14] (सं० सर्प), नाग[15], बिसहर[16] (सं० विषधर), भुअंगिनि[17], नागिनि[18], अजगर[19] (सं० अजगर), चांटा[20], चांटी[21], बीरबहूटी[22], मांखा[23] (सं० मक्षिका), बिसा[24], उंदुर[25], गिरगिट[26] (स० गलगति), घुन[27], भंभीरा[28] (सं० भ्रमरक), उड़ैनी[29] (हि० उड़ना), बीछी[30], कुरुँम[31], कारी[32] (सर्प-विशेष) तथा ढंग[33] (भ्रमर) आदि।

---

१. प० ४२५।६
२. जायसी-ग्रन्थावली सं० प० रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका, पृ० १८८।
३. पदमावत : स० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ६५७।
४. महाभारत : वनपर्व, ११४।२
५. 'यत्र जाह्नवी नवनदी शतानि गृहीत्वा नित्यमेव प्रविशति तथा सिन्धुश्च।' पंचतन्त्र १।३५८
६. प० १४१।४, परम्परा के अनुसार सात समुद्रो की नामावली इस प्रकार है लवण (क्षार), इक्षु, सुरा (मद्य), घृत, दधि, दुग्ध तथा जल। जायसी द्वारा उल्लिखित नाम किंचित् भिन्न हैं।

७. प० १४१।८	८. प० १५८।१	९. अख० ३२।८	१०. प० १७८।४
११. प० १८२।४	१२. प० ५०२।५	१३. प० ६९।५	१४. प० ३८८।९
१५. प० ५५।३	१६. प० ५८५।३	१७. प० ३२१।५	१८. प० ३२१।५
१९. प० ३९१।२	२०. प० १५६।६	२१. प० २१५।५	२२. प० २२३।५
२३. प० ४३८।७	२४. प० ४४३।६	२५. प० ४।६	२६. प० ९७।३
२७. प० १५८।९	२८. प० ३४५।६	२९. प० ४९६।४	३०. प० ५८०।४
३१. प० ४५।९	३२. प० २६५।३	३३. प० ५६०।५	

ग—पशु पशुओ मे सर्वप्रथम **सिंघ**[1] की चर्चा की जा सकती है। जायसी ने इसके लिए **नाहर**[2], **केहरि**[3], **सदूर**[4] तथा **सारदूर**[5] (**स० शार्दूल**) आदि शब्दो का व्यवहार किया है। सिह के बच्चे के लिए **सिंघेला**[6] शब्द प्रयुक्त है। जगली पशुओ के साधारण अर्थ मे **सउज**[7] या **सौजा**[8] शब्द व्यवहृत है। प्रमुख वर्णित जगली पशु **लोवा**[9] (**स० लोपाक**), **रीछ**[10] (**स० ऋक्ष**), **भालू**[11], **गैंड**[12], **साहि**[13], **बाघ**[14], **गादुर**[15], **जँमुक**[16] (**सं० जम्बुक**) तथा **बिग**[17] (**सं० वृक**) आदि है। पालतू तथा सामान्य पशुओ मे **मंजारी**[18], (**बिलाई**)[19], **बंदर**[20], (**हरि**)[21], **हरिन**[22], (**सारँग**,[23] **ससिवाहन**[24], **मिरिग**[25]), **भेड**[26], **गौ**[27], **बैल**[28] (**बिर्ख**)[29], **खर**[30], (**गदहा**)[31], **लगूर**[32] (**स० लांगूलिन्**), **ऊँट**[33] (**सं० उष्ट्र**), **कुरगिनि**[34] तथा **बेसरा**[35] आदि उल्लिखित है। छन्द सख्या ५४२ मे उन पशुओ की नामावली दी गयी है जिनका माँस खाया जाता था, यथा—**छागर** (**बकरा**), **मेंढा** (**सं० मेष**), **रोझ** (**सं० ऋश्य—नीलगाय**), **लगुना**, **चीतल**, **गौन**, **झाँख** (**हरिण जाति के विभिन्न पशु**), तथा **ससा** (**स० शशक**) आदि। **असु**[36] (**स० अश्व**) तथा **गज**[37] सवारी के लिए उपयोगी पशु थे। पद्मावत मे विभिन्न प्रकार के हाथियो तथा घोडो का वर्णन है, यथा छन्द सख्या ४५ मे **सेत**, **पीत**, **रतनारे**, **हरे**, **धूम**, **कारे** और **मेघ** के वर्ण वाले हाथियो का तथा छन्द सख्या ४९६ मे **काले**, **कैकानी**, **कुमैंइत** (**अ० कुम्मैत**), **लील**, **सनेबी**, **खग**, **कुरग**, **बोर**, **दुर**, **केबी**, **अवलक**, **अबसर** (**अ० अबरश**), **अगज**, **सिराजी**, **चौधर**, **चाल**, **समंद**, **ताजी**, **खुरमुज**, **नोकिरा**, **जरदा**, **अगरान**, **बोलसिर**, **पँचकल्यान**, **सँजाब**, **मुसुकी**, **हिरमिजी**, **इराकी**, **तुरकी**, **भोथार** तथा **बुलाकी** घोडो का उल्लेख है। अन्यत्र **हाँसुल**[38] तथा **कियाह**[39] भी वर्णित है। बिगडैल घोडो को जायसी ने **काटर**[40] कहा है। घोडो को वश मे लाने के लिए **ढाठ**[41], **बाग**[42] (**सं० वल्गा**), **ताजन**[43] (**फा० ताजियानः**) तथा **पलान**[44] (**सं० पर्याण**) आदि की आवश्यकता पडती है। शतरज मे प्रयुक्त ऊँट तथा हाथी के मोहरो के लिए क्रमशः **रुख**[45] (**फा० रुख**) तथा **फील**[46] (**फा० फील**) शब्द व्यवहृत है। हाथी-घोडो की पीठ पर पडी हुई झूल **पाखरि**[47] (**सं० प्रखर**) कहलाती है। उद्दण्ड बैल के लिए **गरिआर**[48] विशेषण मिलता है।

---

१. प० १५।५	२. प० ४१।५	३ प० ५५।७	४ प० १४४।६
५ प० ६३७।७	६ प० ६१४।३	७ प० १०४।९	८ अख० १८।४
९ प० ३।६	१० प० ३९०।६	११ प० ५९९।२	१२ प० ५०८।३
१३ प० ५२४।५	१४. प० ५७२।९	१५. प० १३५।५	१६ प० ५१९।६
१७. प० ५१९।४	१८ प० ५६।३	१९. आखि० १५।६	२०. प० २०७।६
२१ प० ८६।७	२२ प० ४८७।७	२३ प० ३२।३	२४. प० १६८।५
२५. प० २००।४	२६ प० २०२।९	२७. प० ५०१।६	२८ प० २०७।१
२९. प० १३५।५	३०. प० १३५।४	३१. आखि० १४।७	३२. प० २०६।६
३३ प० ४९५।८	३४. प० ५५।४	३५. प० ४८५।८	३६. प० ५१५।१
३७. प० २६।६	३८. प० ४६।२	३९. प० ४६।२	४० प० २७३।६
४१. प० २४५।७	४२. प० १०३।३	४३. प० ४६।४	४४. प० ३४७।३
४५ [illegible]	४६. प० ५६७।७	४७. प० ५१४।१	४८. प० १५७।२

घ–पक्षी : हिन्दी के अधिकाश कवि प्राय: परम्परागत पक्षियो (हस, पिक, चातक, शुक, सारिका, काक, कपोत, खजन, चकोर, चक्रवाक, वक, सारस तथा मयूर आदि) का वर्णन प्रचलित कवि-प्रसिद्धियों के अनुसार करते रहे है। वे परम्परागत वर्णनो के घेरे से बाहर नही जा सके, किन्तु जायसी ने जहाँ एक ओर इन परम्परागत पक्षियो का उल्लेख किया है, वही दूसरी ओर ग्राम्य-जीवन के उपेक्षित, किन्तु कृषको के सुपरिचित, पक्षियो का वर्णन करके उनसे अपने नैकट्य का परिचय दिया है। पद्मावत मे सिहलद्वीप वर्णन के अन्तर्गत छन्द सख्या २९ मे विविध पक्षियो के नाम वर्णित है, यथा–**चुहचुही, पाँडुक, सारौ, सुवा, परेवा, पपीहा, गुडरू, कोइल, भिंगराज, महरि, हारिल, मोर** तथा **काग**। इसी छन्द मे कवि ने पक्षियो की बोलियो का यथावत् वर्णन करते हुए उनके शब्दो को प्राय सार्थक अथवा साभिप्राय रूप मे प्रस्तुत करने का यत्न किया है, यथा पाँडुक **एकै तुही**, पपीहा **पिउ पिउ**, गुडरू **तुही-तुही**, कोयल **कुहू कुहू** और महरि **दही दही** बोलती है। किसी दिशा मे सारिका और तोते **रहचह** कर रहे है, तो दूसरी ओर मोर की कुहुक सुनाई पडती है। छन्द सख्या ३३ मे जल से सम्बद्ध प्रमुख पक्षी वर्णित है, यथा–**चकई, चकवा, सारस, कँवा, सोन, ढेक, बक** तथा **लेदी** आदि। छन्द संख्या ५४२ मे बादशाह के भोज के लिए पकडे गए पक्षियो मे **खेहा, चरज, बनकुकुटी, जल कुकुटी, पिदारे, नकटा, सिलारे, तीतर, बटई, लवा, कूँज** (सं० **क्रौंच**), **पुछारि** आदि प्रमुख है। छन्द संख्या ३५८ मे भी श्लिष्ट शैली मे कवि ने पक्षियो की नामावली देते हुए नागमती का विरह-निवेदन प्रस्तुत किया है। इस अश मे आए हुए कुछ प्रमुख नाम इस प्रकार है–**चिल्हबाँस, खरबान, चितरोख, बया, गौरवा, तिलोरि, धौरी, कँठलवा** तथा **जलहंसा आदि**। दो० सख्या १३५ मे **प्रतीहार, अकासी धोबिन, कुरारी** तथा **कूचा** पक्षियो का नाम मिलता है। इसके अतिरिक्त स्फुट प्रसगो में वर्णित,* स्थल से सम्बद्ध पक्षियो की नामावली, इस प्रकार है–**पपीहरा**[१], **मंजूर**[२] (सं० मयूर), **चकोर**[३], **उलू**[४], **रायमुनी**[५], **फुलचुही**[६], **सैचान**[७] (सं० संचान), **सेनि**[८] (सं० श्येन), **घिरिनि परेवा**[९], **चील्ह**[१०], **कोकिला**[११], **सोनहा**[१२], **महोख**[१३], **खूसट**[१४], **भुँजइलि**[१५], **तँवचूर**[१६] (सं० **ताम्रचूड़**), **खंजन**[१७], **चात्रिक**[१८], **लागना**[१९], **उसरबगेरी**[२०], **गीध**[२१], **चक्क**[२२] तथा **चकोरी**[२३] **आदि**। जल से सम्बद्ध पक्षियो मे **बकुली**[२४], **हंस**[२५] (**मराल**),[२६] **हंसिनि**[२७] तथा **कौड़िया**[२८] काउल्लेख है। पद्मावत मे तोता तो एक महत्वपूर्ण पात्र ही है।

---

१. प० ३५९।९ २. प० ३६०।६ ३. प० ६१।५ ४. प० ८७।५
५. प० ३२६।५ ६. प० ३२६।५ ७. प० ३०५।५ ८. प० ५९७।८
९. प० ३५३।८ १०. प० ३६९।५ ११. प० ४०२।८ १२. प० ४१९।५
१३. प० ४३२।४ १४. प० ४३२।७ १५ प० ४४०।५ १६ प० ४४२।४
१७. प० ४७४।३ १८. प० ४७८।३ १९ प० ४८७।६ २०. प० ५४१।४
२१. प० ६४३।८ २२. प० २३४।६ २३ प० २३४।६ २४. प० ८४।२
२५. प० ३४७।६ २६. प० ४४०।१ २७. प० ४४०।५ २८. प० ४०१।६

जायसी ने उसके लिए **सुअटा**[1], **परबता**[2], **सूक**[3], **सुग्गा**[4] तथा **कीर**[5] आदि शब्दों का व्यवहार किया है। **राजपंखि**[6] तथा **ककनूँ**[7] (अ० **ककनूस**) नामक दो काल्पनिक पक्षियो का उल्लेख भी जायसी-काव्य मे मिलता है। पक्षियो के साधारण अर्थ मे **पंखि**[8], **पंखी**[9], **पाँखी**[10], **परेवा**[11], **विहंगम**[12], **पँखेरू**[13] तथा **पंछी**[14] शब्द प्रयुक्त है।

च—जलचर : जलचरो मे **मेंजा**[15] (सं० **मेचक**), **सूस**[16] (सं० **शिशुक**), **गोह**[17], **घरियार**[18], **दादुर**[19] (स० **दर्दुर**), **काछू**[20], **कछू**[21] (स० **कच्छप**), **कमेंठ**[22] (सं० **कमठ**), **कुरुँम**[23] (सं० **कूर्म**) तथा **मगर**[24] (सं० **मकर**) तो हे ही, सर्वाधिक प्रमुख स्थान **मंछ**[25] का है। इसके अन्य पर्यायवाची शब्द **मच्छ**,[26] **मीन**[27], **माँछ**[28], **मछरी**[29] आदि है। बादशाह-भोज-खण्ड के अन्तर्गत छन्द संख्या ५४२ मे **पढ़िना** (सं० **पाठीन**), **रोहू** (सं० **रोहित**), **संध**, **सुगंध** (सं० **शिलीन्ध्र**), **टेंगनि**, **मोइ**, **सिंगी** (सं० **शृंगी**), **मँगुरी** (सं० **मद्गुर**), **नरिया**, **भोथ**, **बॉब**, **बँगरे** (स० **भंगिका**), **चरक**, **चाल्ह**, तथा **परहाँसी** आदि भेद वर्णित है। एक स्थान पर **सहरी**[30] (सं० **शफरी**) उल्लिखित है।

छ—वृक्ष, लता तथा पुष्पादि से सम्बद्ध शब्द : जायसी-काव्य मे वृक्षो, फलो तथा फूलो से सम्बद्ध शब्दावली प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होती है। कुछ स्थलो पर इनकी विस्तृत तालिकाएँ मिलती है, अन्यत्र इनसे सम्बद्ध शब्द आलकारिक अथवा स्वतत्र रूप मे प्रयुक्त है। वृक्ष के साधारण अर्थ मे अनेक शब्द प्रयुक्त हैं, यथा, **रूख**[31] (सं० **वृक्ष**), **तरिवर**[32] (स० **तरुवर**), **बीरौ**[33], **बिरवा**[34] (सं० **विटप**), **बिरिख**[35], **बिरिछ**[36] (सं० **वृक्ष**) आदि। लता के लिए **बेलि**[37] और **बँवरि**[38] शब्द व्यवहृत है। झाडियों के लिए **झार**[39] (सं० **शाट**) तथा **झाँखर**[40] (दे० **झखड**) शब्दो का व्यवहार किया गया है। फल के लिए **फर**[41] तथा **फूल**[42] के लिए **पुहुप**[43] और **कुसुम**[44] शब्दो का उल्लेख है। **करी**[45] (सं० **कलिका**) फूल का अविकसित रूप तो है ही, अस्फुट सौन्दर्य का भी उपमान है। फूल **फुलवारी**[46] मे खिलते है और उनकी **सुगंध**[47] (**बास**[48]

---

१. प० ६७।८	२. प० ७६।५	३ प० २९८।४	४. प० ४३६।३
५. प० ४७५।१	६ प० ३९६।३	७. प० २०५।१	८. प० २९।१
९. प० ३७०।७	१० प० ३६०।२	११. प० ६८।२	१२. प० ३६०।७
१३ अख० १८।४	१४ प० ३५८।८	१५ प० १४८।१	१६. म० बा० ३।७
१७. म०बा० ३।७	१८. म०बा० ३।७	१९. प० ३३७।३	२० प० २३८।५
२१. म०बा० ३।७	२२. प० ४८१।८	२३. प० ४९७।९	२४. प० १५०।४
२५ प० ३३।६	२६. प० १५०।४	२७. प० २३०।७	२८ प० ३६३।६
२९ म०बा० ४।४	३०. म०बा० ६।१२	३१. प० ३१।४	३२. प० ६९।३
३३. प० २७९।३	३४ अख० ३।३	३५. प० १८९।९	३६. अख० ३।२
३७. प० ३४।९	३८. प० ३८१।५	३९ प० १८७।२	४०. अख० १५।१
४१. प० ३१।८	४२. प० ३२।२	४३. प० ३५।६	४४. प० १०६।४
४५. प० ६२।३	४६ प० ३५।१	४७. प० ३५।९	४८. प० ४७।६

गंध[१], **परिमल**[२], **बासना**[३], **अरघानि)**[४] सभी दिशाओ मे फैलती है। कली की बँधी हुई **पंखुरी**[५], **संपुट**[६] कहलाती है। कुछ फूलो मे **काँट**[७] (सं० कण्टक) भी होते है। वृक्षो के विविध अंगो का उल्लेख भी जायसी-काव्य मे यथास्थल मिलता है। इनमे **कोंप**[८] (सं० कुड्मल), **अंकूरू**[९], **बिया**,[१०] **बोज**[११], **मूल**[१२], **पींड**[१३] (सं० पिण्ड), **गाभ**[१४] (सं० गर्भ), **डाभ**[१५] (सं० दर्भ), **डार**[१६], **साखा**[१७], **पात**[१८] (सं० पत्र) तथा **पालौ**[१९] (सं० पल्लव) की चर्चा की जा सकती है। उल्लिखित प्रमुख वृक्षों की नामावली इस प्रकार है —**तार**[२०] (स० ताल), **ढांख**[२१] (देशज ढंख), **बबूर**[२२] (सं० बर्बुर), **चंदन**[२३], **आक**[२४] (स० अर्क), **बर**[२५] (स० वट), **पीपर**[२६] (सं० पिप्पल), **पाकर**[२७] (सं० पर्कटी), **असोग**[२८] (सं० अशोक), **पतग**[२९] (सं० पत्राग), **करील**[३०] (स० करीर), **नीबि**[३१] (सं० निम्ब), **जवास**[३२] (स० यवासक), **छतिवनु**[३३] (सं० सप्तपर्ण), **कँवाछ**[३४] (सं० कपिकच्छु) आदि। पद्मावत के छन्द संख्या ३५ मे इन फूलो का उल्लेख है--**केवरा** (स० कुर्बक), **चंपा** (सं० चम्पक), **कुंद**, **चँबेली**, **गुलाल**, **कदम**, **कूजा** (सं० कुब्जक), **बकौरी**, **नागेसरि** (स० नागकेसर), **सदबरग**, **नेवारी** (स० नीपावली), **सिगारहार** (सं० हरशृंगार), **सोन जरद**, **सेवती** (सं० शतपत्रिका), **रूप मजरी**, **मालती**, **जाही** (सं० जाति), **जूही** (स० यूथिका), **सुदरसन** (स० सुदर्शन), **बोलसिरी** (सं० मौलिश्री) **बेइलि** (सं० विचकिल), **करना** सं० कर्णक)। इनके अतिरिक्त स्फुट रूप मे वर्णित पुष्प इस प्रकार है–**कोई**[३५] (सं० कुमुदिनी), **पुरइनि**[३६] (सं० पुटकिनी), **कुमुद**[३७], **नलिनि**[३८], **कमोद**[३९], **कोका बेरी**[४०], **सेंवर**[४१] (सं० शालमलि), **मँजीठ**[४२] (सं० मंजिष्ठा), **गुनगौरी**[४३], **केतुकि**[४४], **अंबुज**[४५], **कँवल**[४६], **टेसू**[४७] (सं० किंशुक), **केत**[४८], **परास**[४९] (सं० पलाश), **कास**[५०] (सं० काश), **बिकाबरि**[५१], **तिलक**[५२], **अरसी**[५३] (सं० अतसि), **पंकज**[५४] तथा **फूल दुपहरी**[५५]। फूलो के गुच्छे को **बकचुन**[५६] कहा गया है। फलो की नामावली

---

१. प० ५१।७ — २ प० ५९।९ — ३ प० १८४।८ — ४ प० १७८।८
५. प० ३१।५ — ६ प० २५०।९ — ७ प० १८९।९ — ८. प० ६२।५
९. प० ६०९।६ — १०. प० २५२।५ — ११. अख० ३।२ — १२ प० ४३।५
१३. प० २८।२ — १४. प० ४८२।२ — १५. प० २१।४ — १६. प० २८।२
१७, प० २८।७ — १८. प० ४३।६ — १९. प० १८३।७ — २० प० २।४
२१. प० १०।३ — २२ प० १५४।४ — २३. प० १८८।७ — २४. प० ३४६।६
२५. प० ३८१।३ — २६. प० ३८१।३ — २७. प० ३८१।३ — २८. प० ४१४।१
२९ प० ४२०।९ — ३० प० ४३४।६ — ३१. प० ४३६।१ — ३२ प० ३४६।६
३३ प० ५९२।३ — ३४. प० १६८।२ — ३५. प० ५४।४ — ३६ प० २५२।५
३७ प० ३२३।१ — ३८. प० ४१४।४ — ३९. प० १८४।४ — ४०. प० ४३९।१
४१. प० २०२।३ — ४२. प० २२८।३ — ४३ प० १८८।५ — ४४ प० १८८।४
४५. प० १११।४ — ४६. प० ३५४।८ — ४७. प० ३५२।३ — ४८. प० ३७७।८
४९. प० ३५९।५ — ५०. प० ३४७।७ — ५१. प० ४३३।५ — ५२. प० ४७५।४
५३. प० ३२२।३ — ५४. अख०३८।७ — ५५. प० १०६।२ — ५६. प० ३७७।५

खाद्य-पदार्थों के साथ दी जा चुकी है। केले का गुच्छा **घउरी**[1] (**सं० घृतोद**) कहलाता है। वृक्षो, लताओ तथा तृणादि के संयुक्त अर्थ मे **बनाफति**[2] (**सं० वनस्पति**) शब्द आया है।

ज–देश, नगर तथा ग्राम : जायसी के काव्य मे अनेक स्थानो के नाम भी उल्लिखित है। बादशाह चढाई-खंड (दो० ४९६) में घोडो का वर्णन करते हुए कवि ने उनसे सम्बद्ध देशों व स्थानो का भी उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं–**कैकान, सिराज, खुरमुज, हुरमुज, इराक तथा तुरुकी**। दो० ४९८ मे अलाउद्दीन की सहायतार्थ आने वाले राजाओ के प्रसग मे **खुरासान, हरेऊ, गौर बंगाल, रूम, साम, कासमीर, ठट्ठा, मुलतान, बीदर, माँडौ, गुजरात ओडैसा, काँवरू, कामता, पँडुआ, देवगिरि, उदैगिरि, कुमाऊँ, खसिया, गौर गाजना, तिलंग** तथा **मगर** स्थान–नाम आए हैं। छन्द सख्या ५०० मे **रनथँभउर, नरवर, जूनागढ़, चंपानेरि, चँदेरी, गवालियर, कालिंजर, अजैगिरि, बाँधौ, रोहितास, बिजैगिरि** आदि मध्यकालीन प्रसिद्ध गढ उल्लिखित है। स्फुट रूप से आगत अन्य स्थान–नाम इस प्रकार है– **ढिल्ली**[3] (**ढीली**)[4], **जायस**[5], **चितउर**[6] (**चित्रगढ़**)[7], **लंका**[8], **सिंघल**[9], **पयाग**[10] (**सं० प्रयाग**), **बानारसी**[11], **बीजानगर**[12], **कुंड औ गोला**[13] (**गोलकुडा**), **खटोला**[14], **रतनपुर**[15], **खटगा**[16], **अजोध्या**[17], **जगरनाथ**[18], **कुंभलनेर**[19], **कनउज**[20], **दुवारिका**[21], **केदार**[22], **मक्का**[23] **मदीना**[24], **सेतबंध**[25] आदि। स्थानो के वाचक साधारण शब्द **नगर**[26], **नगरी**[27], **गाँव**[28] तथा **बसगति**[29] आदि है। तुर्कों की वस्ती के लिए **तुरकाना**[30] शब्द प्रयुक्त है।

झ–दिशा, ऋतु, जलवायु तथा भूगोल सम्बन्धी शब्द : भौगोलिक शब्दावली के अन्तर्गत **उत्तर**[31], **दखिन**[32], **पुरुब**[33], **पछिवँ**[34] का **दिसि**[35] रूप मे तथा **बसंत**[36], **ग्रीखम**[37], **पावस**[38], **सरद**[39], **सिसिर**[40], **हेवत**[41] का **रितु**[42] रूप मे उल्लेख किया जा सकता है। ग्राम्य-प्रकृति तथा जलवायु के द्योतक कतिपय शब्दो के प्रयोगो का निर्देश भी यहाँ किया जा सकता हैं, यथा–**बौंडरा**[43] (**सं० ववंडर**), **तपनि**[44], **सियरि बतास**[45], **पाला**[46] (**सं० प्रालेय**), **माँहुट**[47] (**स० माघवृष्टि**),

---

१. प० ३४।५ २. प० १८३।५ ३. प० १३।१ ४ प० ४५७।१
५. प० २३।१ ६ प० २४।२ ७ प० १७६।८ ८. प० २६।२
९. प० ३६।१ १०. प० ११४।६ ११. प० ११४।७ १२ प० १३८।४
१३. प० १३८।५ १४. प० १३८।५ १५. प० १३६।६ १६. प० १३८।७
१७. प० ३९१।३ १८ प० ४२०।१ १९ प० ५१०।१ २० प० ५२९।५
२१. प० ६०३।७ २२. प० ६०३।९ २३. अख० १०।२ २४ अख० १०।२
२५. प० ४७५।३ २६. प० १३४।६ २७. प० ३९८।९ २८. प० १३४।६
२९ प० ५५४।१ ३० प० ४५६।६ ३१. प० १३८।६ ३२. प० १५९।८
३३ प० १९७।४ ३४. प० १९७।४ ३५. प० १७०।९ ३६. प० १८२।८
३७ प० ३३६।१ ३८. प० ३३७।१ ३९. प० २५१।२ ४०. प० १८३।१
४१. प० ३४०।१ ४२. प० ३४०।१ ४३. प० ११७।२ ४४. प० ३३६।१
४५. प० ३३७।८ ४६. प० ३४०।१ ४७. प० ३५१।१

झोला[1] (स० **चोल**), **दवँगरा**[2], **लुआरो**[3], **सिआला**[4] (सं० **शीतकाल**), **लूक**[5] (सं० **उल्का**), **ब्रिस्टि**[6] (स० **वृष्टि**), **ओला**[7], **पुरवाई**[8], **आँधी**[9] (सं० **अन्धिका**), **जेठ-असाढ़ी**[10] आदि। **धरती**[11] के अनेक पर्यायवाची शब्दो का व्यवहार यत्र-तत्र मिलता है, यथा–**पुहुमि**[12], **प्रिथिमी**,[13] **पिरथिमी**[14], **मेदिनि**[15], **मही**[16], **भुइँ**[17] **धरनि**[18], **भुम्मि**[19] आदि। नीची भूमि के लिए **खाल**[20] तथा ऊँचे नीचे स्थल वाली भूमि के लिए **बेहड़**[21] शब्द प्रयुक्त है। भौगोलिक शब्दावली के अन्तर्गत आने वाले अधिकाश शब्द आज भी अवधी-क्षेत्र के ग्रामो मे प्रचलित है। जायसी-काव्य मे उनका प्रयोग यह पुष्ट करता है कि ग्राम्य-शब्दावली मे कवि की पैठ बडी गहरी थी।

जायसी-काव्य मे उपलब्ध शब्दावली मात्र के आधार पर तत्कालीन लोक-जीवन के विविध पक्षो से सम्बद्ध जो संकेत प्राप्त होते है, वे यह भली भाँति सिद्ध कर देते है कि जायसी ने अपनी शब्दावली मे जन-जीवन के यथार्थ को बडी रुचि से अपनाया था, इसी से उनकी भाषा इतनी अर्थवती हो गई है। यह सत्य है कि कवि ने बहुत से शब्दो को पूर्ववर्त्ती साहित्य तथा परम्परा से भी चुन लिया है किन्तु इतना सर्वथा निश्चित है कि अधिकाश प्रयुक्त शब्द जायसी के युग का सजीव चित्र प्रस्तुत करते है और हिन्दी साहित्य मे अपने युग की अमूल्य धरोहर बन सुरक्षित है।

---

१ प० ३५१।५   २. प० ३५१।६   ३. प० ३५४।७   ४. प० ३४०।१
५. प० ३६३।३   ६. प० ५२३।६   ७. प० ३५१।६   ८ प० ६३१।१
९ प० ३८९।१   १० प० ३५६।१   ११. प० १।४   १२. प० १३।७
१३ प० १५।१   १४ प० १५।८   १५. प० १६।९   १६. प० १९।६
१७. प० ५१।५   १८. प० ३३८।५   १९ प० ३३०।३   २०. प० ५०६।८
२१. प० ४०६।९

८

उपसंहार

पिछले पृष्ठो मे ध्वनि, शब्द-समूह, व्याकरण, कलात्मक सौष्ठव तथा सास्कृतिक महत्व आदि की दृष्टि से जायसी की भाषा का विस्तृत अध्ययन किया गया है और यथास्थान महत्वपूर्ण तथ्यो पर पृथक्-पृथक् प्रकाश डाला गया है। यहाँ उक्त भाषा को उसके सम्पूर्ण परिवेश मे देखने तथा उसका मूल्याकन करने के हेतु समस्त अध्ययन के प्रमुख तथ्यों तथा सम्बद्ध निष्कर्षो को सक्षेपत प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

ध्वनि-विचार—पृथक् लिपि-चिह्नो के न होने पर भी स्वर-ध्वनियो के अन्तर्गत ह्रस्व ए तथा ह्रस्व ओ का अस्तित्व प्रमाणित होता है। 'ऋ' ध्वनि यद्यपि अखरावट मे दो स्थानो पर प्रयुक्त है तथापि यह निश्चय ही प्रतिलिपिकार की त्रुटि है। पद्मावत के सुसम्पादित सस्करण मे इसका सर्वथा अभाव है तथा लिखित रूप सर्वत्र 'रि' है, जो पूर्णतया स्वाभाविक है। 'ऋ' ध्वनि के अन्य प्राप्त परिवर्तित रूप 'अ', 'आ', 'इ', 'ई', 'उ', 'ऊ' तथा 'इरि' आदि है। दो स्वरो के सयोग प्रचुरता से प्राप्त होते है। तीन स्वरो के सयोग भी उपलब्ध होते है। नासिक्य व्यजनो मे से 'न्' तथा 'म्' का ही प्रयोग पद के आदि तथा मध्य मे हुआ है। पद-मध्य मे यत्र-तत्र 'ण्' भी मिलता है किन्तु प्रयोग विरल है। 'ङ्' तथा 'ञ' के लिए कवि ने सर्वत्र अनुस्वार का प्रयोग किया है। 'न्ह्' तथा 'म्ह्' महाप्राण ध्वनियाँ भी प्रयुक्त है। 'ड', 'ढ' तथा 'ल्ह' ध्वनियो का प्रयोग जायसी ने किया है, किन्तु 'र्ह्' ध्वनि का प्रयोग नही मिलता।

'य्' तथा 'व्' ध्वनिया श्रुति के रूप मे अनेक स्थलों पर प्रयुक्त है। सामान्यत ये ध्वनिया क्रमश 'ज्' तथा 'ब्' मे परिवर्तित मिलती है। 'श्', 'ष्' तथा 'स्' ध्वनियो मे से केवल 'स्' का व्यवहार ही उल्लेखनीय है। अन्य दो ध्वनिया प्राय 'स्' मे परिवर्तित हो गई हैं। 'ष्' के अन्य परिवर्तित रूप 'ख्' तथा 'ह्' है। कही-कही 'ख्' के लिए 'ष्' लिपि-चिह्न का प्रयोग हुआ है। यह मध्ययुगीन नागरी लिपि-शैली की सामान्य विशेषता है। जायसी काव्य मे सयुक्त व्यजनो का प्रयोग बहुत कम हुआ है। अधिकाशत इनके स्थान पर स्वरागम, स्वरभक्ति आदि के कारण सरलीकृत रूप ही प्राप्त होते है। ध्वनि परिवर्तन की प्रवृत्ति स्वर तथा व्यजन दोनो मे लक्षित की जा सकती है। स्वर परिवर्तन के अन्तर्गत अ>इ, उ>इ, ऊ>औ, औ>आ, अय> औ तथा अव>ऐ विशेषत. उल्लेखनीय है। स्वर सम्बन्धी कुछ विशेष परिवर्तन स्वरलोप, स्वरागम तथा स्वर-विपर्यय भी मिलते है। कुछ स्वरों का

दीर्घीकरण क्षति-पूर्ति के लिए हुआ है। सबसे अधिक स्वर-परिवर्तन पद के मध्य मे हुए हे। व्यंजन-परिवर्तन के अन्तर्गत आदि व्यंजन मे द>ढ, त>ट, द>ज तथा न>ल के प्रयोग महत्वपूर्ण हैं। मध्य व्यजन मे र>ल तथा न>र विशेष रूप से द्रष्टव्य है। 'य्', 'व्', 'श् के स्थान पर क्रमश 'ज्', 'ब्', 'स्' सामान्य परिवर्तन हैं। ध्वनि-परिवर्तन के विविध प्रकारो से – आगम, लोप, विपर्यय, महाप्राणीकरण, अल्पप्राणीकरण, घोषीकरण, अघोषीकरण तथा मूर्धन्यीकरण आदि से– सम्बद्ध बहुत से प्रयोग प्राप्त होते है। व्यजनागम, व्यजन-लोप तथा व्यंजन-विपर्यय के उदाहरण भी मिलते है। आदि व्यंजनो की अपेक्षा मध्य व्यजनो मे अधिक परिवर्तन मिलता है। छन्द के अनुरोध से भी ध्वनि-परिवर्तन हुआ है। कही लघु अक्षर को गुरु और कही गुरु अक्षर को लघु कर दिया गया है। लघु अक्षर को गुरु बनाने के लिए ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण तथा व्यंजनद्वित्व करने की प्रवृत्ति प्रमुख है। इसके विपरीत गुरु अक्षर को लघु करने के लिए दीर्घ स्वर के ह्रस्वीकरण, व्यजन-द्वित्व के क्षतिपूर्तिरहित सरलीकरण तथा अनुस्वार के अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति लक्षित की जा सकती है।

शब्द-समूह—जायसी द्वारा प्रयुक्त शब्दावली मे तत्सम, अर्द्धतत्सम, तद्भव, देशज तथा विदेशी आदि सभी वर्गों के शब्दो का समावेश है। समष्टि रूप मे तत्सम शब्द लगभग पन्द्रह प्रतिशत, अर्धतत्सम शब्द लगभग सात प्रतिशत, तद्भव शब्द लगभग अड़सठ प्रतिशत, देशज शब्द लगभग पाँच प्रतिशत तथा विदेशी शब्द लगभग तीन प्रतिशत है। विभिन्न कृतियो पर पृथक्-पृथक् विचार करने से इस अनुपात मे थोडा बहुत अन्तर स्वाभाविक है, यथा, आखिरी कलाम मे विदेशी शब्दो तथा महरी बाईसी मे देशज शब्दो का अनुपात अधिक है। जायसी की रचनाओं मे म० भा० आ० भा० की शब्दावली तथा अन्य क्षेत्रीय एव प्रान्तीय बोलियों तथा भाषाओं की शब्दावली अत्यधिक सीमित है। कुल मिलाकर इन्हे लगभग दो प्रतिशत माना जा सकता है।

रूप-विचार—रूप-रचना की दृष्टि से जायसी की भाषा अपभ्रंशोत्तर और उदय-कालीन आधुनिक भारतीय आर्य भाषा की विशेषताओ से युक्त दिखाई पडती है। इनमे से एक प्रमुख विशेषता है निर्विभक्तिक सज्ञा शब्दो का सभी कारको मे प्रयोग। आधुनिक भारतीय आर्य भाषा मे परसर्गों का विकास होने से पूर्व बहुत दिनों तक ऐसे निर्विभक्तिक संज्ञा रूपो की बहुलता थी। सविभक्तिक प्रयोगो मे 'न्हि' अथवा 'हिं' विभक्ति का व्यवहार सभी कारको मे मिलता है। आकारान्त संज्ञा कर्त्ता मे इसका प्रयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है यथा राजै, 'सुअै', 'गौरै' आदि। उच्चारण मे 'हि' (हिं) के 'ह्' ध्वनि के लुप्त हो जाने से 'इ' ध्वनि अवशिष्ट रही जो कालान्तर मे 'अ' से जुडकर '–ऐ' अथवा 'ऐं' हो गई यथा—राजा+ –हिं=राजहिं, राजहि>राजइ राजइँ>राजै, राजै। दो-एक स्थलो पर '–हँ' विभक्ति का प्रयोग मिलता है। लगभग सभी कारको मे कुछ प्रयोग ऐसे भी मिलते है, जिनमे सज्ञा शब्द के अन्त्य स्वर को केवल सानुनासिक कर दिया गया है। यह 'हँ' विभक्ति का हकाररहित रूप है। जायसी ने बहुवचन मे –'न्ह', –'न्हि' तथा '–न' के अतिरिक्त पश्चिमी हिन्दी के '–ऐं' प्रत्यय का भी योग किया है। परसर्गों के प्रयोग की दृष्टि

से जायसी की भाषा समृद्ध कही जा सकती है। परसर्गों का प्रयोग सज्ञा शब्दो की अपेक्षा सर्वनामो के साथ अधिक हुआ है। यत्र-तत्र पश्चिमी हिन्दी के परसर्ग (की, मे आदि) व्यवहृत मिलते है। सर्वनामो मे एक ओर पश्चिमी हिन्दी से प्रभावित रूप मिलते हैं, यथा 'तेरे', 'तेरे', 'तुम्हे', 'तिन्हे' तथा 'जिन्है' आदि और दूसरी ओर मागधी की प्रवृत्ति से प्रभावित अवधी के पूर्वी रूप के एकारान्त युक्त सर्वनाम, यथा—'सेउ', 'केउ', 'केऊ', 'केहु' तथा 'जे' आदि, किन्तु प्रधानता अवधी के मध्यवर्ती रूप की है। 'तू' के साथ कन्नौजी तथा पश्चिमी अवधी का 'तुइ' रूप भी प्रयुक्त है। कतिपय विशेषण भी पश्चिमी हिन्दी से प्रभावित होने के कारण अकारान्त विशेषणो की भाति बहुवचन मे एकारान्त हो गए है। संख्यावाचक विशेषणो पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि जायसी ने यत्र-तत्र सस्कृत के कतिपय सख्यावाचक विशेषणो का (यथा–सप्त, अष्ट, नव तथा कोटि का) और म० भा० आ० भा० से प्रभावित सख्याओ का (यथा–दह, एगारह, इग्यारह आदि का) प्रयोग किया है। प्रधानता आ० भा० आ० भा० मे प्रचलित रूपो की है। जायसी द्वारा प्रयुक्त अधिकाश क्रियाए आ० भा० आ०भा० की है। सस्कृत, प्राकृत-अपभ्रश तथा अरबी-फारसी की क्रियाए अपवादस्वरूप प्रयुक्त है। क्रियाओ का एक उल्लेखनीय अश लोक शब्दावली से सम्बद्ध है। विविध कालो की रूप-रचना मे क्रियापदो मे सयोगात्मकता पाई जाती है, जो सस्कृत तथा प्राकृत आदि भाषाओ मे थी, किन्तु जो अब साहित्यिक हिन्दी मे लुप्त हो चुकी है। एक ही प्रकार के प्रत्ययो के योग से बने हुए रूपो को विभिन्न कालो मे प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति भी मिलती है। यह भले ही किसी व्यापकता की ओर संकेत करती हो, किन्तु कही-कही अर्थ की दृष्टि से अस्पष्टता का कारण भी है। सक्षेप के लिए प्राय धातु के मूल रूप का प्रयोग करने की प्रवृत्ति भी उल्लेखनीय है। जायसी-काव्य मे प्रधानत भू के 'भ' और 'हो' रूप, अस् के 'अह', 'आह' तथा 'ह्' रूप और गौणत रह् का 'रह्' रूप तथा आ+क्षे का 'आछ' रूप आदि सहायक क्रियायें प्रयुक्त मिलती है। ये सहायक क्रियाये इने-गिने स्थलो पर ही प्रयुक्त हुई है (प्राय प्रधान क्रिया का कृदन्ती रूप ही अर्थ को पूर्ण अभिव्यक्त करता है)। अधिकाशत इनका प्रयोग स्वतत्र रूप मे ही मिलता है। क्रियार्थक संज्ञा के कतिपय रूपो पर पश्चिमी हिन्दी का प्रभाव स्पष्ट है। रूप-विचार के अन्तर्गत उक्त विवेचित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि जायसी द्वारा प्रयुक्त अवधी शत प्रतिशत अवधी नहीं है। उसमे पश्चिमी हिन्दी की छाया भी झलकती है। बीच-बीच मे यदि कुछ नए रूप आ गए है, तो यत्र-तत्र म० भा० आ० भा० के रूपो की झलक भी प्राप्त होती है। किन्तु इस वैविध्य का तात्पर्य यह कदापि नही है कि जायसी की भाषा खिचडी है। साहित्य की भाषा मे थोडा बहुत मिश्रण होना तो सर्वथा स्वाभाविक ही है और जायसी की भाषा से प्राप्त होने वाला रूप-वैविध्य इसी तथ्य की पुष्टि करता है, बल्कि यहाँ यह कहना अधिक युक्तिसगत है, कि जायसी की भाषा अपने समकालीन अन्य कवियो की अपेक्षा कही अधिक ठेठ है। व्याकरण की दृष्टि से भी वह अधिकाशत शुद्ध तथा व्यवस्थित है। यत्र-तत्र अपवाद-स्वरूप कुछ प्रयोग व्याकरणविरुद्ध भले ही मिल जाएँ, किन्तु सामान्य रूप से जायसी ने व्याकरणसम्मत रूपो का ही व्यवहार किया है। जायसी ने पूर्वी अवधी के अतिदीर्घ संज्ञा तथा विशेषण रूपो का प्रयोग बहुत कम किया है और

प्रयुक्त रूपो के व्याकरणिक स्वरूप पर विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि जायसी की भाषा मे अवधी के मध्यवर्ती रूप की प्रधानता है। यह तथ्य जायस से जायसी के घनिष्ठ सम्बन्ध की और भी अधिक पुष्टि करता है।

कला-पक्ष : ~~व्याकरण की दृष्टि से ही नही~~ कला-पक्ष की दृष्टि से भी जायसी की भाषा समर्थ, सशक्त, सन्तुलित तथा सुव्यवस्थित है। कवि की वर्ण-योजना अधिकतर ललित तथा मधुर है। हृदय की शृगारमयी अनुभूतिया (विशेषत व्यथा और वेदना) मधुर वर्णावली मे लिपट कर अत्यन्त मर्मस्पर्शी बन गई हैं। सूरदास, तुलसीदास अथवा नददास के समान अत्यधिक मधुर वर्ण-सगीत का विधान तो जायसी ने नही किया है, किन्तु उन्होने वर्ण-योजना मे अपने कवि-सुलभ नैपुण्य का सकेत अवश्य किया है। कवि की सहज, ऋजु तथा प्रसादगुण युक्त वर्ण-योजना से सामान्य प्रसग भी प्राणवान् हो उठे है। जायसी की भाषा के कलापक्ष का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है, शब्द-विन्यास। जायसी का शब्द-विन्यास सशक्त तथा उपयुक्त है। 'आखिरी कलाम मे तो अवश्य ही भरती के व्यर्थ और अशक्त शब्दो के खटकने वाले प्रयोग अनेक स्थलों पर मिलते है, किन्तु पदमावत तथा अखरावट इस दोष से मुक्त है। इन कृतियो मे अधिकाश स्थलो पर शब्द अर्थ-गौरव एव भाव-सम्पत्ति से मण्डित है तथा विषय के सौन्दर्य को और अधिक दीप्ति प्रदान करते हैं। जायसी की भाषा की यह दीप्ति उनकी शब्दावली की सहजता मे सन्निहित है। कवि ने नन्ददास की भाँति भाषा मे 'जडिया' की नक्काशी, खराद तथा कान्ति-निक्षेपण की चेष्टा नही की है, किन्तु आडम्बररहित सहज सौन्दर्य वाले शब्दो के द्वारा अपने भावो की स्वाभाविक अभिव्यजना मे कवि को कमाल हासिल है। उन्होंने अधिकाशतः ग्रामीण तथा तद्भव शब्दावली का व्यवहार किया है। यत्र-तत्र कुछ शब्द अपनी एकदेशीयता के कारण निश्चय ही दुरूह है किन्तु ऐसे दुर्बोध शब्दो का वाहुल्य जायसी-काव्य में नही है। अधिकता ऐसे ही शब्दो की है, जिनसे अवधी की मिठास छलकी पडती है। ऐसी मधुर शब्दावली का प्रयोग अपनी मार्मिकता के कारण हृदय की गहराइयो को छू लेता है। भाषा मे सौन्दर्य-विधान के लिए जायसी ने शब्द-मैत्री का भी ध्यान रक्खा है। द्वयर्थक शब्द-योजना भी कवि के सुन्दर शब्द-विन्यास का महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली अग है। कुछ स्थलों पर कवि की शब्द-योजना इतनी विदग्ध है कि उसमे एक ओर तो नितान्त परिशुद्ध काव्य झलकता है और दूसरी ओर अध्यात्म की सरस्वती प्रवाहित होती चलती है। इस प्रकार की शब्द-योजना केवल चमत्कार-विधायक ही नही है, आध्यात्मिक तथ्यो की सफल तथा सशक्त व्यजिका भी है। जायसी ने शब्द-विन्यास मे प्रसंगानुकूलता का निर्वाह किया है। अपवाद-स्वरूप वे कही दार्शनिक विवेचन के मोह मे पडकर पारिभाषिक शब्दावली का अप्रासंगिक तथा अवाछित प्रयोग कर बैठे है, जिससे भाषा तथा भाव दोनो के सौन्दर्य को हानि पहुँची है, किन्तु इस प्रकार के स्थल अत्यल्प हैं। अधिकाश स्थलो पर कवि ने भावानुभूति की तीव्रता के साथ शब्द-विधान की महत्ता की ओर भी ध्यान दिया है और इसी से उसकी भाषा शब्द-संगीत तथा अर्थ-गौरव के समन्वित योग से अत्यन्त आकर्षक हो गई है। जायसी की भाषा मे सूक्तियो, मुहावरो तथा कहावतो

के सुन्दर प्रयोग मिलते है तथा सहजता, समर्थता, मधुरता, एकरूपता, चित्रात्मकता और अल्पाक्षरविशिष्टता आदि गुणों से युक्त उनकी भाषा की आभा सहृदयो को सहज ही विमुग्ध कर लेती है।

सास्कृतिक दृष्टि से भी जायसी की भाषा का विशेष महत्व है। तत्कालीन जीवन के विविध पक्षो से—सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक तथा कला-कौशल आदि से सम्बद्ध प्रभूत शब्दावली जायसी-काव्य मे बिखरी पडी हैं। यह अध्येता के सम्मुख अपने युग के लोक-जीवन का जीता जागता चित्र उपस्थित कर देती है। सचमुच ही जायसी की भाषा मे ऐसे प्रचुर शब्द-रत्न अपने युग की अमूल्य धरोहर बन सुरक्षित है तथा हिन्दी साहित्य और भाषा के लिए गौरव का विषय है।

इस समीक्षा को समाप्त करने के पूर्व जायसी की विभिन्न कृतियो की भाषा के सम्बन्ध मे तुलनात्मक सकेत कर देना भी समीचीन होगा। जायसी की समस्त कृतियो मे से 'आखिरी कलाम' की भाषा सबसे अधिक शिथिल है और 'पद्मावत' की सबसे अधिक सुगठित। भाषा की उत्तमता के उत्तरोत्तर विकास-क्रम को ध्यान मे रखते हुए जायसी की रचनाओ का क्रम इस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है—आखिरी कलाम, महरी बाईसी, अखरावट तथा पद्मावत। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि डॉ० माताप्रसाद गुप्त को उक्त कृतियो मे से केवल पद्मावत की ही अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई जिनके आधार पर गुप्त जी ने पदमावत का अति श्रेष्ठ पाठ सम्पादित किया है, अन्य कृतियो की एकाधिक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त न होने के कारण उनका सम्पादित रूप अन्तिम नही कहा जा सकता है, फिर भी आखिरी कलाम के प्राप्त स्वरूप की भाषा-शैली का अध्ययन करने से यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है, कि उक्त कृति भाषा की दृष्टि से सर्वाधिक शिथिल है। महरी बाईसी की भाषा भी अधिक प्रौढ नही है, किन्तु उसमे आदि से अन्त तक संगीतात्मकता है जो भाषा-शैथिल्य को ढक लेती है। अखरावट की भाषा निश्चय ही जायसी के भाषाधिकार का ज्वलन्त उदाहरण है। जन-साधारण के बोधार्थ दार्शनिक विषय की मीमासा करने के लिए भाषा पर साहित्यकार का अत्यधिक अधिकार होना अनिवार्य है, तभी वह सरस, सुबोध तथा हृदयग्राही शैली मे गूढ दार्शनिक सिद्धान्तो की विवेचना सफलता पूर्वक कर सकता है। यदि इस दृष्टि से अखरावट तथा पद्मावत दोनो की भाषा को कसौटी पर कसा जाय तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कही-कही अखरावट की भाषा पद्मावत की भाषा से भी अधिक प्रौढ है। फिर पद्मावत की भाषा को सर्वश्रेष्ठ ठहराने का कारण क्या है ? बात यह है कि पद्मावत मे कवि ने विविध प्रकार के मनोभावो, दृश्यो तथा चरित्रो के शब्द-चित्र प्रस्तुत किए है और उसकी भाषा सर्वत्र अपना गौरव बनाए रखने मे सफल रही है, इसके विपरीत अखरावट मे भाषा को केवल एक सीमित दायरे मे (दार्शनिक दायरे मे) बध कर रहना पडा है, इसीलिए मेरी दृष्टि मे पद्मावत की भाषा अपनी अनेक देशीयता तथा अनेकरूपता के कारण अखरावट की एकदेशीय भाषा की अपेक्षा अधिक उत्तम है।

काव्य मे अवधी का व्यवहार जायसी के पूर्व ही आरम्भ हो चुका था, किन्तु तब तक उसका सौन्दर्य निखर नही पाया था। अवधी के जीवन मे जायसी का आगमन मानो यौवन के मादक अल्हडपन का आगमन था, जिसके सम्पर्क मे आते ही अवधी का रोम-रोम एक नवीन स्पन्दन, एक स्फूर्तिमयी चेतना से थिरक उठा। गोस्वामी तुलसीदास ने इस भोली-भाली अल्हड ग्रामीण युवती को नागरिकता का पाठ पढा कर लोक-व्यवहार मे दीक्षित किया किन्तु सौन्दर्य, स्नेह, तथा पवित्रता की सुकुमारता से मण्डित उस ग्रामीणा को यौवन की मादकता प्रदान कर सहृदयो का मन बरबस लुभा लेने वाली नायिका के रूप मे साहित्य के रंगमच पर अवतरित करने का श्रेय जायसी को ही है। जायसी ने एक स्थल पर जेवनार-वर्णन के सम्बन्ध मे जो बात कही है, वही उक्ति उनकी भाषा के सम्बन्ध मे पूर्णत' चरितार्थ होती है--

कही न जाइ मिठाई कहति मीठि सुठि बात।
जेंवत नाहिं अघाइ कोइ हिय बरु जाइ सिरात ॥

सचमुच ही जायसी की भाषा से माधुर्य छलका पड़ता है। अवधी की उस आरम्भिक अवस्था मे जायसी ने अपनी समर्थ तूलिका से उसका जैसा शृंगार किया, वैसा गोस्वामी तुलसीदास को छोडकर आज तक कोई दूसरा कवि नही कर सका है। मलिक मुहम्मद जायसी अवधी के लिए सच्चे अर्थों मे 'मलिक' तथा 'मुहम्मद' थे।

ग्रन्थ-सूची

हिन्दी-ग्रन्थ

अकबरी दरबार के हिन्दी कवि : डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ; स० २००७ वि० ।

अपभ्रंश साहित्य डॉ० हरिवंश कोछड, भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली; स० २०१३ वि० ।

अयोध्या का इतिहास : अवधवासी लाला सीताराम, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, सन् १९३० ई० ।

अरब और भारत के सम्बन्ध : सुलैमान नदवी, अनुवादक रामचन्द्र वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, सन् १९३० ई० ।

अलकार मजरी : कन्हैयालाल पोद्दार, मथुरा, सं० १९९३ वि० ।

अवध के प्रमुख कवि : डॉ० व्रजकिशोर मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सन् १९६० ई० ।

अवधी और उसका साहित्य : डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; सन् १९५४ ई० ।

अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (भाग १,२) : डॉ० दीनदयालु गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००४ वि० ।

आईने अकबरी : सम्पादक तथा अनुवादक, श्री रामलाल पाण्डेय, विद्या मन्दिर, कानपुर; सन् १९३५ ई० ।

उत्तर तैमुर कालीन भारत (भाग १, २) : अनुवादक सैयिद अतहर अब्बास रिज़वी, अलीगढ मुस्लिम यूनिर्वसिटी, अलीगढ, सन् १९५८-५९ ई० ।

उदयपुर राज्य का इतिहास : श्री गौरीशकर हीराचन्द ओझा, अजमेर, स० १९८५ वि० ।

कबीर और जायसी का रहस्यवाद तथा तुलनात्मक अध्ययन : डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य सदन, देहरादून; सन् १९६० ई० ।

कबीर-ग्रन्थावली : स० श्यामसुन्दरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, स० २००३ वि० ।

कवितावली : गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, स० २००९ वि० ।

कविप्रिया (केशव ग्रन्थावली, खण्ड १) सम्पादक प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद; सन् १९५४ ई० ।

कविवर जायसी और उनका पद्मावत : डॉ० सुधीन्द्र, सरस्वती पुस्तक सदन, मोतीकटरा, आगरा, सन् १९५४ ई० ।

कृषक-जीवन सम्बन्धी ब्रजभाषा शब्दावली (भाग १, २) डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन', हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग; सन् १९६०-६१ ई० ।

कादम्बरी (एक सांस्कृतिक अध्ययन) : डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी; सन् १९५८ ई० ।

कामायनी की भाषा : श्री रमेशचन्द्र गुप्त, अशोक प्रकाशन, नई सडक, दिल्ली-६, सन् १९६४ ई० ।

काव्य कल्पद्रुम : श्री कन्हैयालाल पोद्दार, गगा ग्रन्थागार, लखनऊ; सं० १९९१ वि० ।

काव्य दर्पण प० रामदहिन मिश्र, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना ।

काव्य निर्णय · आचार्य भिखारीदास; स० श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी, कल्याणदास ऐण्ड ब्रदर्स, ज्ञानवापी, वाराणसी ।

काव्यशास्त्र डॉ० भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर; द्वितीय संस्करण, सन् १९६३ ई० ।

काव्यशास्त्र का इतिहास : डॉ० भगीरथ मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २०१५ वि० ।

कीर्तिलता : सं० डॉ० बाबूराम सक्सेना, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, सं० १९८६ वि० ।

कुतुबनकृत मृगावती : स० डॉ० शिवगोपाल मिश्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; शक १८८५ ।

ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली : डॉ० हरिहरप्रसाद गुप्त, राजकमल प्रकाशन; सन् १९५६ ई० ।

चंदायन : स० डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, बम्बई-४, प्रथम सस्करण, सन् १९६४ ई० ।

चित्ररेखा : प० शिवसहाय पाठक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी, सन् १९५९ ई० ।

चित्रावली : उसमान, स० श्री जगमोहन वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सन् १९१२ ई० ।

चिन्तामणि : प० रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, सन् १९४० ई० ।

जायसी और उनका पदमावत : एक सर्वेक्षण · श्री राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा; सन् १९६२ ई० ।

जायसी का पदमावत : काव्य और दर्शन : डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, अशोक प्रकाशन, नई सडक, दिल्ली-६; सन् १९६३ ई० ।

जायसी के परवर्त्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य : डॉ० सरला शुक्ल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ; सं० २०१३ वि० ।

जायसी-ग्रंथावली : स० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, सन् १९५१ ई० ।

जायसी-ग्रथावली : सं० प० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पंचम सस्करण, स० २००८ वि० ।

जायसी-साहित्य और सिद्धान्त : पं० यज्ञदत्त शर्मा, आत्माराम एण्ड संस, सन् १९५५ ई० ।

तसव्वुफ अथवा सूफीमत : प० चन्द्रबली पाण्डेय, सरस्वती मन्दिर, बनारस, सन् १९४८ ई० ।

तुलसीदास की भाषा : डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव, लखनऊ विश्वविद्यालय; स० २०१४ वि० ।

दोहावली : गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर ।

नाथ-सम्प्रदाय डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, सन् १९५० ई० ।

पद्मावत : स० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सन् १९६३ ई० ।

पदमावत : स० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झासी, प्रथमावृत्ति स० २०१२ वि० ।

पद्मावत (पूर्वार्ध) . सं० लाला भगवानदीन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सन् १९२८ ई० ।

पदमावत का ऐतिहासिक आधार : श्री इन्द्रचन्द्र नारंग, हिन्दी-भवन, इलाहाबाद; सन् १९५६ ई० ।

पद्मावत का काव्य-सौन्दर्य : पं शिवसहाय पाठक, हिन्दी-ग्रंथ रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, बम्बई, सन् १९५६ ई० ।

पद्मावत का भाष्य डॉ० मुशीराम शर्मा, शिवाजी प्रकाशन मन्दिर, लखनऊ; सन् १९४७ ई० ।

पद्मावत में लोक-तत्व : डॉ० रवीन्द्र 'भ्रमर', प्रयाग, सन् १९६२ ई० ।

पदमावत-सार श्री इन्द्रचन्द्र नारग, हिन्दी-भवन, रानी मण्डी, इलाहाबाद, सन् १९५७ ई० ।

पृथ्वीराज रासो की भाषा : नामवर सिंह, सरस्वती प्रेस, बनारस, सन् १९५६ ई० ।

प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव : डॉ० रामसिंह तोमर, हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, सन् १९६४ ई० ।

प्राचीन भारतीय वेशभूषा : डॉ मोतीचन्द, भारती भंडार, प्रयाग, सं० २००७ वि० ।

बीजक कबीरदास, श्री वेंकटेश्वर प्रेस बंबई; सं० १९६१ वि० ।

बुद्धचरित · पं० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, स० १९९५ वि० ।

बुन्देली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन · डॉ० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल, विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ, जुलाई सन् १९६३ ई० ।

बोलचाल : अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, सं० २०१३ वि० ।

ब्रजभाषा : डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९५४ ई० ।

भारतीय-प्रेमाख्यान-काव्य : डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस ।

भाषा की शक्ति और अन्य निबंध डॉ० सम्पूर्णानन्द, इडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग; सन् १९५४ ई० ।

भोजपुरी भाषा और साहित्य . डॉ० उदयनारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना; सन् १९५४ ई० ।

मधुमालती : स० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद; सन् १९६१ ई० ।

मध्यकालीन धर्मसाधना : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद; सन् १९५२ ई० ।

मध्यकालीन प्रेमसाधना : पं० परशुराम चतुर्वेदी, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद; सन् १९५२ ई० ।

मध्यकालीन भारतीय संस्कृति : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, सन् १९२८ ई० ।

मध्ययुगीन प्रेमाख्यान : डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद ।

मलिक मुहम्मद जायसी (प्रथम खण्ड) डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, सन् १९४७ ई० ।

मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य : डॉ० शिवसहाय पाठक, ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर, सन् १९६४ ई० ।

मलिक मुहम्मद जायसीकृत कहरानामा और मसलानामा : श्री अमरबहादुर सिंह 'अमरेश', हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९६२ ई० ।

मिश्रबंधुविनोद : मिश्रबंधु, हिन्दी ग्रंथ प्रसारक मण्डली खँडवा व प्रयाग, स० १९७० वि० ।

रस मीमांसा : पं० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, स० २०११ वि० ।

रसज्ञ-रंजन : प० महावीर प्रसाद द्विवेदी, साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा, सन् १९३६ ई० ।

रहीम-रत्नावली : स० मयाशकर याज्ञिक, साहित्य-सेवा-सदन, काशी; तृतीय सस्करण, स० १९९५ वि० ।

राउरवेल और उसकी भाषा डॉ० माताप्रसाद गुप्त, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद; सन् १९६२ ई० ।

रामचरितमानस : गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर।

रासपंचाध्यायी : नन्ददास, सं० डॉ० प्रेमनारायण टण्डन, हिन्दी-साहित्य-भण्डार; सन् १९६० ई०।

संक्षिप्त पद्मावत : डॉ० श्यामसुन्दर दास, इडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, चतुर्थ संस्करण, सन् १९५० ई०।

सामान्य भाषाविज्ञान : डॉ० बाबूराम सक्सेना, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; सन् १९६१ ई०।

सार्थवाह : डॉ० मोतीचन्द्र, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सन् १९५३ ई०।

साहित्य चिंता डॉ० देवराज, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, सन् १९५० ई०।

सूफी-काव्य-संग्रह : सं० प० परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम सस्करण, सन् १९५१ ई०।

सूफी मत और हिन्दी साहित्य : डॉ० विमलकुमार जैन, आत्माराम एण्ड संस; सन् १९५५ ई०।

सूफीमत साधना और साहित्य : पं० रामपूजन तिवारी, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, सं० २०१३ वि०।

सूफी महाकवि जायसी : डॉ० जयदेव कुलश्रेष्ठ भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ स० २०१३ वि०।

सूर की भाषा : डॉ० प्रेमनारायण टण्डन, हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ; सन् १९५७ ई०।

सूरसागर : सं० पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं० २००५ वि०।

सूरसागर शब्दावली (एक सांस्कृतिक अध्ययन) : डॉ० निर्मला सक्सेना, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, सन् १९६२ ई०।

शब्द-साधना : श्री रामचन्द्र वर्मा, साहित्य-रत्न माला कार्यालय, बनारस, सं० २०१२ वि०।

हक़ायके हिन्दी : मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी, अनुवादक सैयिद अतहर अब्बास रिज़्वी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; स० २०१४ वि०।

हर्षचरित (एक सांस्कृतिक अध्ययन) : डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना; सन् १९५३ ई०।

हिन्दी के मुसलमान कवियों का प्रेम-काव्य : श्री गुरुदेव प्रसाद वर्मा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।

हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय : डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, अनु० प० परशुराम चतुर्वेदी, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ; स० २००७ वि०।

हिन्दी के विकास [illegible]पभ्रंश का योग : डॉ० नामवरसिंह, लोक-भारती प्रकाशन इलाहाबाद तृतीय सस्करण, सन् १९६१ ई०।

हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान : पं० परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड बम्बई, प्रथम सस्करण; सन् १९६२ ई० ।

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य : डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, अजमेर, सन् १९५३ ई० ।

हिन्दी प्रेमगाथा काव्य सग्रह : श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद ।

हिन्दी भाषा और साहित्य : डॉ० श्यामसुन्दर दास, इडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं० १९८० वि० ।

हिन्दी भाषा का इतिहास : डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, तृतीय सस्करण, सन् १९४९ ई० ।

हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास : प० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', बनारस, सन् १९३४ ई० ।

हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास : डॉ० उदयनारायण तिवारी, प्रयाग ।

हिन्दी में प्रत्यय-विचार : डॉ० मुरारीलाल उप्रैति, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा; सन १९६४ ई० ।

हिन्दी में समास-रचना का अध्ययन : डॉ० रमेशचन्द्र जैन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा; सन् १९६४ ई० ।

हिन्दी साहित्य भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, सन् १९५९ ई० ।

हिन्दी साहित्य का आदि काल : डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सन् १९५२ ई० ।

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ० रामकुमार वर्मा, रामनारायण लाल पुस्तक विक्रेता, सन् १९५४ ई० ।

हिन्दी साहित्य का इतिहास : प० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, स० २००५ वि० ।

हिन्दी साहित्य की भूमिका : डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रथरत्नाकर कार्यालय, बम्बई, सन् १९४८ ई० ।

हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास ग्रियर्सन, अनु० श्री किशोरीलाल गुप्त, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी ।

हिन्दी व्याकरण श्री कामताप्रसाद गुरु, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; स० २००९ वि० ।

हिन्दी शब्दानुशासन : पं० किशोरीदास वाजपेयी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१४ वि० ।

संस्कृत-ग्रंथ

काव्यादर्श . दण्डी, श्री कमलमणि ग्रथमाला कार्यालय, काशी, सं० १९८८ वि० ।

काव्यालंकार भामह, चौखम्बा सस्कृत सीरीज, बनारस, सन् १९२८ ई० ।

काव्यालंकारसूत्र : वामन, व्याख्याकार, आचार्य विश्वेश्वर, आत्माराम एण्ड सस, सन् १९५४ ई० ।

काव्यप्रकाश · मम्मट, व्याख्याकार डॉ० सत्यव्रतसिंह, चौखम्बा विद्या भवन बनारस; सन् १९५५ ई० ।

ध्वन्यालोक . आनन्दवर्द्धन, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, प्रथम सस्करण, सन् १९५२ ई० ।

रसगगाधर : पडितराज जगन्नाथ, व्याख्याकार पं० मदनमोहन झा, चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी, सन् १९५५ ई० ।

साहित्यदर्पण विश्वनाथ, व्याख्याकार, डॉ० सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी, सन् १९५७ ई० ।

प्राकृत-अपभ्रंश-ग्रन्थ

उक्ति-व्यक्ति-प्रकरणम् : प० दामोदर भट्ट, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, स० २०१० वि० ।

देशीनाममाला : हेमचन्द्र, स० मुरलीधर बनर्जी, कलकत्ता विश्वविद्यालय, सन् १९३१ ई० ।

प्राकृत-पैंगलम् . सं० डॉ० भोलाशकर व्यास, प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी सं० २०१८ वि० ।

वर्णरत्नाकर ज्योतिरीश्वर कविशेखराचार्य, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बगाल, कलकत्ता, सन् १९४० ई० ।

अंग्रेजी-ग्रन्थ

एवोल्यूशन ऑफ अवधी : डॉ० बाबूराम सक्सेना, इडियन प्रेस, इलाहाबाद, सन् १९३८ ई० ।

ए कम्पैरेटिव ग्रामर ऑफ दि माडर्न आर्यन लैंग्वेजेज ऑफ इण्डिया वीम्स, ट्रूब्नर एण्ड कम्पनी लुडगेट हिल, लन्दन, सन् १८७५ ई० ।

ए ग्रामर ऑफ हिन्दी लैंग्वेज : कैलॉग ।

ए बेसिक ग्रामर ऑफ माडर्न हिन्दी : डॉ० आर्येन्द्र शर्मा, गवर्नमैण्ट ऑफ इण्डिया, सन १९५८ ई० ।

ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया : डॉ० ईश्वरीप्रसाद, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, सन १९३९ ई० ।

नामानुक्रमणिका

(क) लेखक

बहुत से लेखकों तथा ग्रन्थों के नाम एक ही पृष्ठ पर अनेक बार आए हैं, किन्तु अनुक्रमणिका में उनका उल्लेख एक ही बार किया गया है।

(ग) पत्र-पत्रिकाएँ

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१४	का	की
१	१५	की	का
३	२४	मडलार्ही	मंडलाही
६	८	गोरु गोरूअ	गोरू गोरुअ
७	५	कुकुरू	कुक्कुरु
८	१५	रोडा	रोड
१७	१६	वोनो	दोनो
१८	११	सिंध	सिंघ
१९	३२	षष्ठ	सप्तम
२०	१६	षष्ठ	सप्तम
२२	२६	के	का
२३	३	स्वर	स्वर[१]
२५	१६	सँजोत	सँजोउ
२७	३	भटा	भेंटा
३०	२९	४६	४७
३०	३०	४७	४६
३३	३३	छेफा	छेंका
३४	१	भई	भेई
३६	१३	अएउँ	अएउँ
४५	२१	निस्वल निश्चल[२१]	निस्वल[२१] निश्चल
५१	१२	रू	र
५४	२१	पोलाद[११]	पोलाद[१२]
५४	२१	पलीता	पलीता
५५	४	टटट	टट
८७	२१	मौंहें	भौंहें
१००	१५	हमरे मोरि	हमरे (मोरि एकवचन के अन्तर्गत है)
१०३	१९	तुहँ	तुइँ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०३	२०	नै	नै
१०३	२४	त	तत्र
१०५	१३	तेरे	तेरे
१०५	२६	जो	जौ
१०६	७	तुम्हरे तथा तुम्हारे	तुम्हरै तथा तुम्हारै
१०६	२१	मो	सो, उह
१०६	२१	वै	वै, सो
१०८	१०	ोष	दीप
१०९	७	उन्हहि	उन्हहि
१०९	१६	ओहु	ओहू
१०९	१६	तिनहु	तिनहू
११०	१३	इहाँ	इहौ
११०	२१	इह	इहै
११४	८	जिन्हे	जिन्है
११८	१८	वै	वै
१२८	९	घाए	धाए
१३२	१७	धरे	परे
१३७	२०	इनके	इनमे से प्रमुख के
१४१	९	बहुवचन	बहुवचन
१४३	३	कहे	किहे
१४३	१५	बहुबचन	बहुवचन
१४३	१७	बिगसानी	बिगसानी
१४६	२२	हहिं	हहिं, है,
१४७	२०	है	है
१४७	२७	भई	भई
१४९	११	अहै	अहे
१५०	१४	वर्तमान अपूर्ण	अपूर्ण वर्तमान
१७२	३३	सतरंज	शतरज
१८४	१३	गौडी	गौडी
१८९	२३	मै	मे
१९१	२६	उदमनारायण	उदयनारायण
२००	३	अवधी	अवधी
२००	२३	तँ	तूँ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२००	२८	मिलत	मिलता
२०१	१४	कुंकुह	कुंकुंह
२७३	६	पुं	पर्पु
२७४	२०	सूपकर्म	सूपकर्म
२७६	३	, सुमार	अथवा सुमार
२७९	१७	कथी,	कथी तथा
२८९	२	म	इम
२९४	६	वोद्	वोढ्
२९८	१५	कहलाते है । तथा	तथा
२९८	१५	भी	शब्द भी
२९९	२९	प० अख०	अख०
३०२	३	है	है
३०२	२७	४६।९	४६१।८
३०६	७	को	मे

अनेक स्थलों पर अनुस्वार तथा मात्रा-चिह्न टूट गए हैं अथवा अशुद्ध मुद्रित हो गए